पुराण-मत-पर्य्यालोचन

उपाध्याय रामदेव जी आचार्य

गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी

तथा

पं० जयदेव विद्यालङ्कार द्वारा रचित

प्रथम बार १००० प्रति | सं० १९७६ वि० सन् १९१९ ई० | मूल्य प्रति पुस्तक

सर्वाधिकार सुरक्षित

गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मन्नालाल के प्रबन्ध से मुद्रित तथा प्रकाशित।

प्रथम वक्तव्य

वर्तमान भारत में अन्धविश्वास का बहुत जाल फैला हुआ है। इसके दूर करने के लिये सभी प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे हैं। परन्तु तब तक सभी व्यर्थ हैं जब तक सर्व साधारण के कानों तक सत्यता का गम्भीर उपदेश न पहुंचाया जाय। पुराणों पर श्रद्धा करने वालों पर ऐसा जादू छाया है कि वे अपने पुरोहितों के वश में हैं जैसा सुना वैसा मान लिया, बुद्धि और विवेक का कुछ भी उपयोग नहीं लेते, और नाहीं उन पुराणों को स्वयं पढ़ने का प्रबन्ध करते हैं। यद्यपि पुराणों का विस्तार बहुत बड़ा है तो भी उसकी सर्वाङ्ग समालोचना करके ज्ञान पिपासुओं के लिये यह ऐसा पर्यालोचन तय्यार किया है जिससे सर्वसाधारण स्वल्प में ही पुराणों में कहे गये सिद्धान्तों और लिखे गये देवी देवताओं की कथाओं को विवेक पूर्वक देख सकें।

इस ग्रन्थ को बनाने का विचार मेरे चित्त में तभी से था जब से गुरुकुल विश्वविद्यालय की उपदेशक कक्षाओं में पुराणों के ऊपर व्याख्यान करने का कार्य मुझे सौंपा गया था। इस आवश्यक कार्य की पूर्ति के लिये मुझे पुराण में से बहुत सा समालोचनीय विषय प्राप्त हुआ था। मैंने यह निश्चय किया कि यदि यह एक पुस्तकाकार में आ जाय और प्रकाशित हो जाय, तो सर्वसाधारण का बहुत उपकार होगा। यह कार्य बड़ा होने के कारण बिना सहायता के शीघ्र पुस्तक निकलने में कठिनता थी। यहां पर मैं सहर्ष लिखता हूं कि गुरुकुल के योग्य स्नातक पं० जयदेव शर्म्मा विद्यालङ्कार ने मुझे इस पुस्तक के लिखने और ललित भाषा से सुशोभित करने में बहुत सहायता दी और कहीं कहीं अपने स्वतन्त्र विचार भी दिये जिसके लिये मैं धन्यवाद देता हूं।

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने इसे गुरुकुल ग्रन्थावलिरूप में सर्वसाधारण के उपकारार्थ प्रकाशित किया है पाठकगण पुराणों की गूढ़ रचनाओं को पढ़कर अवश्य इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि सब, गप्पों और ठगों की गढ़ौलों हैं

नहीं छिप सकता। यह अवश्य प्रकाश डाल देगा, कि झूठा आडम्बर बुद्धि और विवेक के सामने तुच्छ है। पाठकों को यह भी विदित होता जायगा कि:—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः (भाग० १०,८४,१०)

"तीर्थ पानी के नहीं, देव मिट्टी और पत्थर के नहीं होते, प्रत्युत "भावे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।" परन्तु देवता भाव में रहता है। इसी प्रकार अनेकों प्रमाण पुराणों से उद्धृत किये हुये हैं, आशा है कि पाठकगण, इस पुस्तक को आद्यन्त पढ़ कर इस परिश्रम को सफल करेंगे।

यह संस्करण बड़ी शीघ्रता से निकलना पड़ा, अतः भाषा तथा मुद्रण की अनेक अशुद्धियां रह गई हैं। आशा है कि पाठकगण क्षमा करेंगे। द्वितीय संस्करण में संशोधन अवश्य हो जायगा।

भवदीय
रामदेव
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

॥ ओ३म् ॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनु संविदुः ॥

अथर्व० १०, ७०,

पुराण-मत-पर्यालोचन

प्रथम वक्तव्य

काल की गति अलौकिक है। विधाता की सृष्टि के कूपघटमाला के चक्र के सदृश इस संसार चक्र में जो जाति पहले उन्नति के पर्वत के शिखर पर दिव्य भोगों को भोगती तथा विद्या के अलौकिक चमत्कार को साक्षात् करती थी वह आज अवनति के गर्त में पड़ी हुवी अज्ञानान्धकार में लिप्त है। जिन जाति तथा देशों का किसी समय चतुर्दिगन्त में विजय दुन्दुभि द्वारा नाम और यश बड़े आवेश से आघोषित था—आज उनका नाम चिन्ह भी वसुधा-तल पर लेने वाला नहीं मिलता। इतना परिवर्त्तन तो स्वल्पकाल में ही होजाता है, परन्तु इस अद्भुत सर्ग में युग और कल्पों के परिवर्त्तन में तो प्राकृतिक संसार भी सर्वथा उलट जाता है। उस विधाता की महिमा अपरम्पार है जिसने इस प्रकार मानूतसर्ग बनाया।

इसी परिवर्त्तन शील महाभूत सर्ग की मानवीयसृष्टि के परिवर्त्तनज्ञान का मुख्यभाग इतिहास वेद महर्षियों ने स्थिर किया है। इतिहास के द्वारा मानव जातियों का परिवर्त्तन-शील चित्र चारित्र विदित होजाता है। मानव आकृतियों का परिवर्त्तन तथा जयविजयादि युक्तराज्य परिवर्त्तन को साधारण ऐतिहासिकों ने बहुत विस्तृत रूप से अपनाया है। परन्तु मानवीय विचार परिवर्त्तन—आदर्श को छोड़ कर इधर उधर भटकना तथा ज्ञान के राज्य से निकलकर अज्ञान के राज्य में आपड़ना—इस परिवर्त्तन का इतिहास अभी तक सम्भवतः किसी ने भी प्रकाशित करने का साहस किया हो।

इसी रेखा में अनुशीलन करते हुये हमारा यह एक तुच्छसा प्रयत्न है । इस में पुराण जो वर्त्तमान में हिन्दू जाति आर्यजाति जो भारत में रहती है—के धर्म ग्रन्थ समझे जाते हैं और जिन को पाश्चात्य विद्वान मिथ्या कथा ग्रन्थ मानते हैं । क्या वस्तु है । इन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई । इन मिथ्या कथा प्रवादों का मूल किस २ प्राचीन साहित्य भाग में गड़ा हुआ है । और कहां २ वृद्धि पा गया और समय २ पर साथ ही सामाजिक अधःपतन किस प्रकार हुवा और क्रमशः इतने मिथ्या कथा प्रवाद तथा सामाजिक कुरीति किस प्रकार विस्तृत हो गई इसका पर्यालोचन करना इस प्रयत्न का उद्देश्य है । महाभारत के काल से ही इस प्रकार की गिरावट प्रारम्भ हो गई थी । सामाजिक आचार विचार जातीय बंधन तथा अनुदार व्यवहार और अयोग्य भोजनाच्छादन तथा पतित धार्मिक आचार इसी काल से भारत की आर्य जाति में जड़ पकड़ चुके थे। इस लिए पुराण ग्रन्थों के पर्यालोचन के लिए हमें महाभारत से ही आरम्भ करना चाहिए । जिस से पुराणों का आनखाशिख तथा आमूलाशिखर विवेचन करने और समझने में सुगमता हो । साथ ही हमारा यह भी बड़ा प्रयत्न होगा कि बिना आधार के किसी भी वस्तु का उल्लेख नहीं किया जायगा, और साथ ही उच्च आदि सकल विद्या के भण्डार और सकल प्राचीन ऋषियों के मान्य प्रातः स्मरणीय भगवान् वेद के आदर्श उपदेशों के साथ तथा अर्वाचीन देशीय और विदेशीय विद्वानों के अलौकिक ज्ञान के साथ तथा महाभारत रामायण और पुराणों में ही प्रसंगागत प्राचीन आदर्श व्यवहारों के साथ तुलना करके दर्शाने का प्रयत्न किया जावेगा कि पुराण-साहित्य कितना अधःपतित तथा मिथ्या ग्रन्थ है और कितना जाति की जड़ों को खोखला करने वाला सिद्ध हुआ है ।

विवेचक सज्जनों के सामने कसौटी यही है जो आचार्य भगवान् दयानन्द अपने सत्यार्थप्रकाश की अनुभूमिकाओं में लिख गए हैं **"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।....."** (स० प्र० भू० पृ० ३) परन्तु **"......सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से वर्त्तना उचित है मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने के लिए है।........ यदि हम सब मनुष्य**

और विशेष विद्वज्जन ईर्षा द्वेष छोड़ कर सत्यासत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।" (स० प्र० अनुभूमिका)

एतदनुसार ही हम पाठकों को सत्यासत्य निर्णय की स्वतन्त्रता देते हैं।

वैदिक आदर्श हमें सिखाता है कि—

(१) एक ईश्वर की पूजा करो।

(२) सकल जीव लोक में अहिंसा वृत्ति से रहो।

(३) आहार व्यवहार में निष्काम तथा निःस्वार्थ रूप सदाचारी शिष्टों के मार्ग पर चलो।

(४) सब मनुष्य जाति भाई भाई है। प्रत्येक जीव कार्य करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में परतन्त्र होता हुवा अपने गुण कर्म स्वभावानुसार ऊँचे नीचे जा सकता है। अर्थात् सामाजिक वर्णाश्रम व्यवस्था का यही मुख्य नियम है।

(५) सम्पूर्ण वर्त्तन मद लोभ मोहादि पाप प्रवर्त्तक भावों से रहित होने चाहियें।

(६) सब कार्य बुद्धि से विचार के युक्ति युक्त निर्णय करके यथा विधि करने चाहियें—इत्यादि।

परन्तु दूसरी ओर पुराण हमें सर्वथा विरुद्ध शिक्षा देते हैं जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण पुराणों में

(१) बहु देवताओं की पूजा।

(२) यज्ञों में तथा श्राद्धों में और स्थान २ व्यवहारों में पशुहिंसा का विधान।

(३) स्थान स्थान में देवी देवता और ऐतिहासिक महानुभावों पर भी अश्लीलाचार का आरोप।

(४) ब्राह्मणादि वर्ण हठ और दुराग्रह पूर्वक जाति से मानना तथा इसी आधार पर अनुदार जातीय संकोच तथा घृणा और द्वेष का विधान।

(५) एवं यज्ञादि पवित्र समयों तथा उत्सवों में मदिरा मांसादि का व्यवहार।

(६) बुद्धि और युक्ति संगति को तिलाञ्जली दे कर अन्धविश्वास और अन्धी श्रद्धा को शिरोदेश पर धर कर नयन मूंद कर अज्ञानियों की न्याईं शास्त्र का भी निरस्कार कर

के बहु-विवाह और बाल विवाह आदि कुरीतियों में फंसना और फंसाना यह सब पौराणिक लीला है।

उपरोक्त सब गिरावटों के मूल जो कि पौराणिक समय में आकर वृहद् विस्तृत वृत्ताकार होगये हैं—महाभारत में पाये जाते हैं। अतः पुराण अनुशीलन की सुगमता के लिये हम महाभारत का प्रथम चार अध्यायों में अनुशीलन करेंगे और फिर पुराणों के अनुशीलन करने में दत्तचित्त होंगे।

हमें पूर्ण आशा है कि पाठक जन इस ओर भी ध्यान देकर हमारे श्रम को सफल करेंगे। हम भी अपना प्रयत्न सफल तभी समझेंगे जब कि विचार शील पाठक वृन्द इस पर स्वयं भी विचार कर के सत्यासत्य के निर्णय के लिये (हठ या दुराग्रह से केवल विवाद के लिये नहीं) कटिबद्ध होंगे। बहुत सम्भव है कि हमने इस कार्य को निवाहने में बहुत सी भूलें भी की हों परन्तु हमें पाठकों से पूरी आशा है कि वे हमारे स्खलितों तथा भूलों को हमें बताने की कृपा करेंगे।

हमने इस ग्रन्थ में केवल पुराणों के दोष ही दर्शाने का प्रयत्न नहीं किया परन्तु समालोचना को सर्वांग पूर्ण बनाने के लिये पुराणों के सद्गुणों की भी पर्याप्त प्रशंसा की है। इसी हेतु से हमारा यह प्रयत्न किसी भी सज्जन के दिल दुखाने वा धार्मिक आघात पहुंचा ने के विचार से सर्वथा भी नहीं है। परन्तु जहां तक हो सका है निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करते हुवे भगवान दयानन्द के चरण चिन्हों पर चल कर सत्यासत्य के निर्णय के लिये यह प्रयत्न आरम्भ किया गया है।

यदि कोई भद्रपुरुष हमें इस समालोचना वा आन्दोलन में अधिक सहायता हमारे विचारों के अनुकूल व प्रतिकूल सत्यासत्य निर्णय में देंगे तो हम उन के बड़े कृतज्ञ होंगे। हम अपने परिश्रम को सफल भी हुवा हुआ तब जानेंगे जब सत्य प्रेमी पाठक इस के वास्तविक उद्देश्य को जान कर इस रेखा में स्वयं भी सत्य निर्णय के लिये कटिबद्ध होंगे।

* ओ३म् *

प्रथम–अध्याय

सामाजिक अधःपतन

(प्राचीनकाल तथा महाभारत-काल में तुलना)

(१) भारतवर्ष की अवनति महाभारत के युद्ध से पहले ही प्रारम्भ हो गई थी। कालरात्रि के तुल्य भारतवर्ष का संहारक महाभारत-युद्ध तो अधःपतन को और भी वेग देने में सहायक हुवा था। यदि आदर्श समयों से इस समय की तुलना की जाय तो वास्तव में प्राचीन भारत की सभ्यता और महाभारत कालीन भारत की सभ्यता में आकाश और पाताल का भेद प्रतीत होता है। कहां रामायण का सुवर्ण-काल दूसरी ओर कहां महाभारत का घोर अयोमय कठोर दृश्य।

तुच्छ से राज्यभोग के लिये भाई भाई के बीच सर्व-संहारक महाभारी युद्ध होना ही इस बात की पुष्टि में ज्वलन्त प्रमाण है कि जाति का अधःपतन है।

परस्पर द्वेष

इधर केकयी अपनी दुर्भावना तथा मन्थरा की दुष्प्रेरणा से कोपगृह में जाकर राजा दशरथ से उसके प्यारे ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र के १४ वर्ष बनवास का वर इसलिये मांगती है कि कहीं अगले दिन कौसल्या के पुत्र राम को राजगद्दी न मिल जाय। श्रीरामचन्द्र बिना किसी भय तथा शोक के, बिना किसी लोभ और द्वेष के, पिता के वर को करने के निमित तथा माता की आज्ञा को शिराधार्य समझ कर बन चलने की शीघ्र ही तय्यारी कर देते हैं और केकयी से कहते हैं कि "*हे माता, ये मैं बिना विचारे ही पिता की आज्ञा को, १४ वर्ष बन में व्यतीत करने के लिये शीघ्र ही जाता हूं।"

---

* दण्डकारण्यमेषो ऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश॥ (रामा० अयोध्या० १६ स० ११)

आज राम का राज्याभिषेक सम्पूर्ण राजसभा के सभासद् तथा पुरवासी सहर्ष मनाने को उद्यत हैं। और इधर आज्ञापालक रामचन्द्र अपने छोटे भाई भरत के लिये राज्य को छोड़ स्वयं बन को जाते हैं। सारी प्रजा उनको रखती है और वे इनको दुःख-सागर में छोड़ कर बन को राज्य से अच्छा समझते हैं*।

इस बात के पता लगने पर भरत भी शीघ्र ही अयोध्या में राजदूतों द्वारा बुलाया जाता है। परन्तु राम को बनवास गया सुन कर तड़ितोपहत तरु की न्याई भूतल पर शोकाहत होकर गिर पड़ता है। वह अपनी माता और दासी को बुरा भला कह कर राम की स्तुति करता है। अराजक राज को देख कर राजकर्त्री सभा तथा वसिष्ठादि महामुनि भरत को राज्य देते हैं परन्तु वह भी नहीं लेता।

भरत स्वयं बन जाते हैं, राम से मिलते हैं, राम के चरणों में राज्य समर्पण करते हैं; परन्तु तुच्छवत् तिरस्कार ही राज्य के लिये राम का एक मात्र उत्तर है। बस राज्य दोनों भाइयों के मध्य में पादकन्दुक की तरह इधर उधर तिरस्कार पूर्वक लोटता है। कहां ये निःस्वार्थता, भ्रातृ प्रेम तथा निष्काम आज्ञा पालकता।

दूसरी ओर कुरु वंश के पैदा हुये कौरवों और पाण्डवों में अनन्त वैर की द्वेषाग्नि। दुर्योधन सदृश कुलक्षणी भाई अपने चचेरे भाई पाण्डवों को कहता है—

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि, विना युद्धेन भारत।"

"बिना युद्ध के मैं एक सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा। इधर देखिये कितना द्वेष साक्षात् अधःपतन को दिखा रहा है।

इसी द्वेष की अग्नि से प्रज्ज्वलित हुवा हुआ १८ दिन का कुरुक्षेत्र का समरांगण सम्पूर्ण पृथ्वी के नृपतियों का अन्त करने वाला हुआ। लक्षों नर वीरों के प्राण इस में बलि हो गये।

वेद भगवान का अभाव

[२] इस घोर युद्ध का कारण केवल मात्र यह द्वेष ही नहीं हो सकता, परन्तु महा युद्धों के कारण प्रायः अन्य सामाजिक व आचार सम्बन्धी कारण भी होते हैं। ये सब कारण देश की सामाजिक पतित अवस्था को सूचित करते हैं। वेदों का पढ़ना पढ़ाना सर्वथा छूट सा गया था।

---

* रामायण०, अयोध्या०, अ० ६७, श्लो० २ तथा अयोध्या०, ७६, १।

ब्राह्मणों की अवस्था बहुत गिरी हुई थी; और तो और, स्त्रियों के आचार व्यवहार भी नीच होगये थे। परस्पर व्यवहार में छल, धोखा, असत्य, लोभ, मोह, द्वेष का संचार बहुत था। जैसा कि हम आगे चल कर दिखायेंगे।

वेदभगवान के सूर्य तो वास्तव में उस समय अस्ताचल के शिखर पर अस्त होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वेदों के ज्ञाता मिलने कठिन थे। विरले वेदवक्ता भी मिलने असम्भव थे। वेदों का सार और मर्म समझने वाला तो रहा ही कठिनता से होगा। शान्तिपर्व में युद्ध के पश्चात् विरक्तबुद्धि युधिष्ठर को अर्जुनादि भ्राता राज्य करने के लिये नाना प्रकारों से समझा रहे थे तब प्रसंगवश युधिष्ठर कहते हैं—'कवि लोगों ने सार और असार देखने की इच्छा से सम्पूर्ण शास्त्रों को अनुस्मरण किया। तब शास्त्र और और आरण्यक भाग उपनिषदों और वेदप्रवादों को भी गुजरते हुए यज्ञ में कदलीस्तम्भ का छेदन करके भी उन्हें कोई सार प्राप्त नहीं हुआ।' * इसी प्रकार भीष्म जी उपदेश देते हुए कहते हैं वेद के ज्ञाता जो कि वेदोक्त मार्गों में व्यवस्था से रहें ऐसे जन मिलने दुर्लभ हैं। ‡

इस प्रकार जब महाभारत की अन्तःसाक्षी हमें बताती है कि वेद का सार जानने वाले और वेदोक्तमार्ग पर चलने वाले बहुत न्यून थे तो आप समझ सकते हैं कि वे वेदज्ञ ब्राह्मण—जिन में इतनी शक्ति होती थी कि युद्ध के लिये सज्ज दोनों सेनाओं के बीच में आकर वे युद्ध को बन्द करा सकते थे ऐसे ब्राह्मणों का सर्वथा अभाव ही होगया था। नहीं तो इतना महायुद्ध कभी न होता।

धर्म्म का नाश | [३] इस धार्मिक अधःपतन को ग्रन्थकारों ने नाना प्रकार से उल्लिखित किया है। महाभारत में वनपर्व में युधिष्ठिर मार्कण्डेय मुनि से कलियुग का भविष्य पूछते हैं मार्कण्डेय महाराज कहते हैं।

महाभारत—शान्ति पर्व, १९ अ०, १६—१७
* वेद वादानतिक्रम्य शास्त्राण्यारण्यकानि च।
विपाट्य कदलीस्तम्भं सारं ददृशिरे न ते॥
शान्ति०—मो० ध०, २१२ अ०,
‡ दुर्लभा वेदविद्वांसो वेदोक्तेषु व्यवस्थिताः।
प्रयोजन महत्वात्तु मार्गमिच्छन्ति संस्तुतम्॥

'हे भरतर्षभ! कृतयुग में बिना किसी छल और उपाधि के चतुष्पाद् धर्म स्थित था। त्रेता में एक पद अधर्म होने से तीन चौथाई धर्म शेष रहा और द्वापर में तो आधा धर्म नष्ट हो जाने से व्यामिश्र धर्म कहलाता है। तामस कलियुग के आ-जाने पर अधर्म ३ अंश हो जाता है। और धर्म तो केवल चतुर्थांश ही शेष रह जाता है। ज्यों २ युग गुजरते हैं त्यों २ मनुष्यों की आयु, वीर्य, बुद्धि, बल- और तेज घटते ही जाते हैं। हे युधिष्ठिर! राजा, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र ये सब धर्म का आडम्बर करने वाले छल या बहाने से धर्म पर आचरण करेंगे। अपने को व्यर्थ पण्डित मानने वाले लोग सत्य को अत्यन्त संक्षिप्त कर देंगे सत्य की हानि से आयु न्यून होगी और आयु की हानि से वे जी भी न सकेंगे। *

'परस्पर लोग वैर बांधलेंगे और एक दूसरे के घात करने के इच्छुक होंगे।" † 'इस युग के अन्त में लोग स्त्री आदि की संगति बहुत करेंगे और मच्छी का मांस खाकर जीयेंगे। "×ब्राह्मण लोग भी वेद की निन्दा करेंगे और व्रत पर आ-

* वन पर्व—१९० अ० सम्पूर्ण—

कृते चतुष्पात् सकलो निर्व्याजोपाधिवर्जितः।
कृत्स्नः प्रतिष्ठितो धर्मो मनुष्ये भरतर्षभ ॥
अधर्मपादविद्धस्तु त्रिभिरंशैः प्रतिष्ठितः।
त्रेतायां द्वापरेऽर्धेन व्यामिश्रो धर्म उच्यते ॥
त्रिभिरंशै रधर्मस्तु लोकाना क्रम्य तिष्ठति।
तामसं युगमासाद्य तदा भरतसत्तम ॥
चतुर्थांशेन धर्मस्तु मनुष्यानुपतिष्ठति ॥
आयुर्वीर्य मथो बुद्धि र्बलं तेजश्च भारत!
मनुष्याणामनुयुगं ह्रसन्तीति निबोध मे, ॥
राजानो ब्राह्मणा वैश्याः शूद्राश्चैव युधिष्ठिर!
व्याजैर्धर्मं चरिष्यन्ति धर्मवैतंसिका नराः ॥
सत्यं संक्षेप्स्यते लोकैः नरैः पण्डितमानिभिः!
सत्यहान्या ततस्तेषा मायुरल्पं भविष्यति,।
आयुषः प्रक्षयाद्विद्व न शक्ष्यन्त्युपजीवितुम् ॥ (९—१५)

† वैरबद्धा भविष्यन्ति परस्परवधैषिणः ॥ १७ ॥

भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगात्यये।
मत्स्यामिषेण जीवन्तो दुहन्तश्चाप्यजैडकम् ॥ २० ॥

चरण न करेंगे । " प्रत्युत हेतुवाद में मोहित हो कर यज्ञादि भी त्याग देंगे । "*

आगे चल कर मार्कण्डेय ने इस से भी भयंकर अवस्था कलिकाल की दिखाई है । पाठक गण मूल में देखने का कष्ट उठाएंगे ।

इस प्रकार प्रथम से ही यह भारत अधःपतन के अपने लक्षण उद्घोषित कर रहा है । और भी तुलना कीजिये ।

महिला समाज का अनादर

(४) रामायण काल में स्त्रियों की कितनी उच्च दशा थी । महिला मात्र का कितना मान था । किस आदर-भाव से स्त्री जाति को मातृबुद्धि से देखा जाता था । उस दृश्य को स्मरण कीजिये । जब कि राम के वन-वास चले जाने पर भरत और शत्रुघ्न मामा के घर से लौट के आते हैं और राम लक्ष्मण का वनवास देख कर माता पर कोप करते हैं । शत्रुघ्न ने विवश होकर मन्थरा दासी को केश से पकड़ कर सहसा घसीटा । उसकी आर्त दशा देख कर भरत के वचन इस प्रकार निकलते हैं—

"शत्रुघ्न, स्त्रियें सब प्राणिमात्र में अवध्य होती हैं । अतः क्षमा करो । मैं इस पापा दुष्टाचरण करने वाली कैकयी को मार दूं, यदि धर्म-पथ पर चलने वाला राम मुझ माता के हत्यारे को बुरी दृष्टि से न देखे । यदि राघव इस कुबड़ी को पीटा हुआ भी सुन लेगा तो धर्मात्मा राम मुझ से और तुझ से निश्चय से भाषण भी नहीं करेगा ।" + इस प्रकार भरत के बचनों को सुन कर शत्रुघ्न इस अकार्य करने से हट गया ।

(*) न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणाः वेदनिन्दकाः ।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः ॥

(+) रामायण—अयो० का०, ७८ सर्ग

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः ।
त्वाञ्चैव मां च धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः ।
न्यवर्तत ततो दोषात्तां मुमोच स मूर्छिताम् ॥ (२१—२४)

इधर तो अकार्य करने वालों पर इतना क्रोध होते हुवे भी भरत के धर्मानुकूल वचनों का इतना प्रभाव और स्त्रियों का इतना मान है। रामायण काल के ही स्त्री समाज के आदर का दूसरा दृष्टान्त भी साथ ही हम पाठकों के सन्मुख रख देते हैं।

वर्षा ऋतु के बीत जाने पर श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव की सहायता के प्रतिज्ञा-वचनों को स्मरण करके कहा कि देखो लक्ष्मण सुग्रीव प्रतिज्ञा करके अब समय पड़ने पर कामादि ग्राम्य धर्म में फंसा हुआ है। कहीं कृतघ्नता से हमें छोड़ न दे। जाओ सुग्रीव को फिर से अपने वचनों पर आने की शिक्षा दो।

भ्राता लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता के वचनों को सुन कर किष्किन्धा की ओर चल दिये। सुग्रीव की कामपरायणता तथा प्रतिज्ञा करके भी सब कुछ विसर के भोग विलास में पड़े हुये को देख अत्यन्त रुष्ट हुवे लक्ष्मण किष्किन्धा पहुंचे। सम्पूर्ण निवासी रुष्ट लक्ष्मण को देख कर भयभीत हुवे। भीषण लक्ष्मण के आगमन का समाचार सुग्रीव के अन्तः पुर तक पहुंचा। सुग्रीव ने बचने तथा लक्ष्मण के शान्ति का और कोई उपाय न सोच कर तारा को ही प्रथम लक्ष्मण के स्वागत के लिये भेजा।

सुग्रीव ने तारा से कहा कि—* "विशुद्ध आत्मा वाला लक्ष्मण तुझ को देख कर रोष न करेगा क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियों पर निर्दयता नहीं दिखला सकते।" अपने पति के ये शब्द सुन कर तारा लक्ष्मण को लेने आयी। वाल्मीकि मुनि लिखते हैं कि—

"महात्मा लक्ष्मण वानरराज की पत्नी को आया देख कर उदासीन भाव से नीचे मुख किये कोपादि सब दूर करके खड़े रहे।" †

* **बा० रामा०, किष्किन्धा०, ३३ स०,**

त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति।
नहि स्त्रीषु महात्मनः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्॥ ३६॥
स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः॥३६॥

देखिये यहां भी स्त्रियों के प्रति कैसे उदार-भाव तथा आदर और विनय के प्रत्यक्ष दृश्य हैं।

अब दूसरी तरफ महाभारत का एक अंश लीजिये।

महाराजा युधिष्ठिर द्यूत सभा में सम्पूर्ण राज्य और पांचों भाई और द्रौपदी सहित हार गये हैं। मद में आया दुर्योधन हठ व बलात्कार से द्रौपदी को खींच लाने के लिये दुःशासन को आज्ञा देता है। दुःशासन उठ कर निरपराधा द्रौपदी को केश से पकड़ कर बलात्कार उसको सभा के सामने नग्न करने का प्रयत्न करता है। चतुर्दिगन्त में बड़े बड़े राजा महाराजा तथा आचार्य गुरु भीष्मपितामह से महाविद्वान् और द्रोण से आचार्य बैठे हैं परन्तु किसी की शक्ति नहीं कि इस घोर अत्याचार को रोक सके। द्रौपदी सब विद्वानों और विद्या-वयो-वृद्धों से प्रश्न करती है और कहती है :—

"ये सब शास्त्रों को जानने वाले तथा क्रियाशील इन्द्र के तुल्य गुरुओं के आसन पर बैठे हुवे साक्षात् गुरु ही बैठे हुवे हैं। मैं इन के सामने ऐसी नहीं ठहर सकती यह कुरुवीरों की सभा के बीच कितना अत्याचार है कि मुझ रजस्वला को इस प्रकार खींचा जा रहा है। अरे दुःशासन, अब भी तेरी कोई निन्दा नहीं करता अवश्य इन की भी यही सम्मति है। धिक्! भारतवंशियों का धर्म नष्ट हो गया; क्षत्र कुलीनों का सदाचार भी नष्ट हो गया है जिस स्थान पर सभी कुरु लोग गयी बीती धर्म की तरंग को अब प्रत्यक्ष देख रहे हैं। द्रोण भीष्म और महात्मा विदुर का भी कुछ बल नहीं, क्योंकि क्या राजा के इस महा घोर अधर्म को ये नहीं देख रहे हैं।" [*]

(*) सभा पर्व—अ० ६६०

द्रौपद्युवाच—इमे सभायामुपदिष्टशास्त्राः क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ॥
गुरुस्थानाः गुरवश्चैव सर्वे, तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥ ३५ ॥
इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये रजस्वलां यत्परिकर्षसे माम् ।
नचापि कश्चित् कुरुते त्र कुत्सां ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेताः ॥
धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदाञ्च वृत्तम् ।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्वं क्षत्तुस्तथैवाऽस्य महात्मनोऽपि ।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः ? ॥ ३८—४० ॥

इतने पर भी भीष्म महाराज कहते है----

"सुभगे धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है। मैं परकीय द्रव्य का मान नहीं लगा सकता। और स्त्रियें पति के आधीन होती हैं, अतः, इस तेरे प्रश्न की विवेचना नहीं कर सकता।"

इस पतित काल में यह ही रह गया धर्म का अंश, जहां भीष्म सदृश प्रखर दृढ़ प्रतिज्ञ की भी यह भीरु बुद्धि धर्म से विमुख हो गयी और धर्म में संदेह करने लग गई।

इस द्यूत सभा के घोर अत्याचार मय दृश्य में उपस्थित व्यक्तियों के वचनों को भी सुनना चाहिये कि किस प्रकार वेलोग विचार करते थे। कौन नीच थे। और कौन उच्च थे। *

द्रौपदी भीष्म के वचनों को सुनकर रोकर बोली—"राजाने सभा में चतुर अनाड़ी दुष्ट धोखेबाज जुआरियों से बिना कुछ किये ही किस प्रकार सब कुछ हार दिया। दुष्ट भाव वाले सभी जुआरियों ने मिलकर इसे जीत लिया है खैर ये सब अपने पुत्र और पुत्रबधुओं के मालिक कुरु लोग बैठे है ये मेरे प्रश्न का उत्तर दें।"

इस प्रकार करुणा पूर्वक रोती हुई अपने कृपण पतियों को देखती हुई को दुःशासन ने कटु वचन कहे और उस रजस्वला को इस प्रकार नग्न होती हुई तथा कष्ट पाती हुई को देखकर भीम बोला---

जूएखोरों के घर में भी दास, दासियें, वेश्याएं होती हैं पर वे उन्हें भी कभी दया में आकर दाव पर नहीं धरते हैं। जितना धन विदेश से आये राजाओं और राजपुत्रों ने दिया था सो तो हार ही दिया। तिस पर मुझे जरा भी क्रोध नहीं है पर यह एक बड़ा अनर्थ है कि द्रोपदी को भी दाव पर रखा जाता है। ये बिचारी लघुवयस्का बालिका पाण्डवों के पास आकर भी कौरवों द्वारा इ-

(९) सभा पर्व, अ० ६६,

भीष्म उवाच,

न धर्म सौक्ष्म्यात्, सुभगे विवेक्तुं शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं, स्त्रियश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥ ४६ ॥

तना कष्ट पारही है । इसी के लिये हे राजन् तुझ पर ये क्रोध करता हूं । लाओ भड़कती हुई आग, तेरी दोनों भुजें जला दूं ।''

अर्जुन ने भीम को शान्त करते हुवे कहा—''देखो तुमने पहले ऐसी कटुवाणी कभी नहीं कही । देखना कहीं दूसरे हमारे धर्म गौरव को नष्ट हुआ न देखें । राजाने तो बुलाये जाने पर क्षात्र धर्म को स्थिर रखा है इसी में हमारा भी बड़ा मान है ।

इसी प्रकार विकर्ण बोले—'हे राजा लोगो, याज्ञसैनी द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दो—भीष्म और धृतराष्ट्र, इन दोनों बूढ़ों ने कुछ नहीं कहा महामति विदुर और सब के आचार्य्य द्रोण और कृप, इन्होंने भी कुछ उत्तर नहीं दिया तो ये दिगन्तों से आये राजा ही काम क्रोध को छोड़ कर यथामति कहें ।

इस पर फिर एक बार जोर देकर विकर्ण बोला—'राजाओं के चार व्यसन होते हैं । मृगया, शराब, जूआ, व्यभिचार । इन में पड़ कर आदमी धर्म को छोड़ देता है । सो राजा युधिष्ठिर ने भी जुए में फंस कर द्रौपदी को दांव पर रख दिया है । द्रौपदी पांचों पाण्डवों का बराबर भाग है । परन्तु पाण्डव स्वयं पहले हार चुके हैं; फिर द्रौपदी को दाव पर धरा है । इस सब को विचारने से प्रतीत होता है कि द्रौपदी हारी नहीं है ।'

यह सुन कर सब लोगों ने विकर्ण की प्रशंसा और दुर्योधन की निन्दा की ।

इस पर गुस्से से भरा कर्ण बोला—''हे विकर्ण क्योंकि द्रौपदी के प्रश्न उठाने पर भी पाण्डव कुछ नहीं बोले इस से यह धर्मानुकूल द्रौपदी जीती गई है । तू तो बचपन होने से सभा में चपलता दिखाता है । जब युधिष्ठिर ने सभा में सब कुछ पण पर धर दिया, तब सब कुछ के बीच में द्रौपदी भी आ गयी । इस से द्रौपदी धर्मानुकूल जीती गई है । पाण्डव भी मान रहे हैं । और यह द्रौपदी आधी नंगी, जो सभा में लायी गई है, इस बारे में यह उत्तर है; सुन, देवताओं ने स्त्रियों का एक पति स्थिर किया है और इस के पांच पति हैं, इस लिये ये वेश्या है । सो इस सभा में खींच लाना भी कोई बुरा नहीं चाहे इसने कुछ पहना हो या

नंगी हो। अब तो जो भी इन पाण्डवों का धन होगा और ये द्रौपदी और ये पाण्डव भी सब कुछ दुर्योधन ने जीत लिया है।'

इस पर दु:शासन और भी जोर से द्रौपदी को नंगी करने लगा।

द्रौपदी ने कृष्ण का स्मरण किया और मुंह छिपा २ कर रोने लगी।

इस पर क्रोध से भीम ने सब के बीच में प्रतिज्ञा की कि—'मैं जबतक दुष्ट दु:शासन की छाती का खून बलात्कार फाड़ कर न पीऊंगा तबतक मैं अपने पितामहों के मार्ग पर चलने वाला न होऊंगा।

दु:शासन उपस्थित सज्जनों के धिक्कारों और फटकारों को सुनता हुआ लज्जा से बैठगया।

तिसपर विदुर बोले—

'देखो द्रौपदी तो प्रश्न करके रो रही है, तुम उत्तर दो, देखो, धर्म का नाश होता है। दुखित, जिस पर अन्याय होता है, वह न्याय के लिये जलती आग की तरह सभा में आता है और सभ्य उसे धर्म से शान्त किया करते हैं। जो इस प्रश्न का उत्तर न देगा, असत्यभाषण का आधा पाप उसे लगता है। सभा में आकर भी प्रश्न का उत्तर न देने से तो पूरा अधर्म होता है।

इसपर फिर द्रौपदी बोली—

'दु:शासन दुष्ट के अत्याचार से मैं वृद्धों को नमस्कार भी न कर पाई थी सो अब नमस्कार करती हूं।'

इतने पर दु:शासन ने एक बार और उठ कर द्रौपदी को खींचा और अत्याचार किया।

द्रौपदी चीख कर बोली—

'जो मैं कभी एक बार स्वयम्बर में बाहर आई थी, और कभी भी बाहर नहीं आई थी, सो मैं सभा में देखी गई हूं'

'जो पहले घर में रहती हुई तीव्र बात से भी न छूती थी, आज इस दुरात्मा से धर्षित मुझे देखकर भी सब पाण्डव सह रहे हैं। ये सब कुरु लोग भी काल की काया पलट को सह रहे हैं। अपनी पुत्रवधू को ऐसा कष्ट पाते देखकर भी चुप हैं। और इस से दीनता अधिक क्या होगी, कि मैं सती स्त्री हूं और सभा में ऐसे

लोट रही हूं। अरे, राजाओं का धर्म कहां गया। सती साध्वी स्त्री को सभा में नहीं लाते थे ऐसा सुना जाता था। वह प्राचीन सनातन धर्म अब कौरवों का नष्ट हो गया। कहां मैं पाण्डवों की स्त्री, और द्रुपद की कन्या, वासुदेव की सखी; कहां ये राजाओं की सभा। मुझ, महाराजा युधिष्ठिर की क्षत्रियवंशा, समान वर्ण भार्या को दासी कहो, चाहे कुछ कहो; मैं तो यही कहूंगी, कि ये कमीना दुःशासन कौरवों के यश पर कलंक लगाने वाला, मुझे कष्ट देता है। मैं इसे देर तक नहीं सह सकती। चाहे हारी मानो, चाहे, जीती मानो; मैं तो तुम्हारे से उत्तर मांगती हूं; जैसा फैसला होगा करूंगी।

† इस पर पितामह भीष्म बोले

हे कल्याणि **धर्म की परम सूक्ष्म गति है। बड़े विज्ञ महात्मा भी इसको नहीं जान सकते।** बलवान् मनुष्य जिसको धर्म मानता है आपत्ति के समय वह भी नष्ट होजाता है। **तेरे इस प्रश्न को धर्म के सूक्ष्म होने और गहन होने से और इस काम के बड़े भारी होने से विवेक नहीं करसकता। थोड़ी ही देर में इस कुल का नाश होगा। सभी लोभ मोह वश हुवे हुए ये कुरु लोग कुलीन होकर भी व्यसनो में फं-**

महा०, सभा०, अ० ६७,
उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमागतिः।
लोके न शक्यते ज्ञातु मपि विज्ञैर्महात्मभिः॥ १४॥
न विवेक्तुञ्च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात्
सूक्ष्मत्वाद् गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात्॥ १६॥
नूनमन्तः कुलस्यास्य भविता न चिरादिव।
तथाहि कुरवः सर्वे लोभमोहपरायणाः॥ १७॥
कुलेषु जाताः कल्याणि व्यसनै राहता भृशम्।
धर्म्यान्मार्गान्न च्यवन्ते येषां नस्त्वं वधूस्थिता॥ १८॥
उपपन्नञ्च पाञ्चालि! तवेदं वृत्तमीदृशम्।
यत्कृच्छ्रमपि सम्प्राप्ता धर्म मेवाऽन्ववेक्षसे॥ १९॥
एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः।
शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः॥ २०॥
युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन्प्रमाण मिति मे मतिः।
अजितां वा जितां वेति स्वयं व्याहर्त्तु मर्हति॥ २१॥

सकर धर्म युक्त मार्ग से नहीं डिगते जिनकी कि तू वधू है। तेरा इस प्रकार दृढ़ शील भी ठीक ही है कि इतने कष्ट में पड़ कर भी धर्म की ओर देख रही है। **ये सब द्रोणाचार्यादि धर्म को जानने वाले बूढ़े सूने शरीर से मरे हुवे मुर्दों की न्यायीं नीचे मुख किये बैठे हैं।** युधिष्ठिर ही इस प्रश्न का ठीक उत्तर देंगे। तुम हारी हो या नहीं इस प्रश्न का वही उत्तर दे सं

भीष्म के इस वचन को सुन कर द्रौपदी रोने लगी। और सब चुप थे। दुर्योधन ऊंचे से बोला —

हे याज्ञ सेनि! यह प्रश्न इन पांचों पाण्डवों पर ही रहने दे। वही कहेंगे। सब के बीच में सारे भाई युधिष्ठिर को तुझे देने में असमर्थ मानलें और युधिष्ठिर को झूठा करदें तो तेरा दास भाव छूट जायगा। या धर्म में स्थित धर्मराज ही अपने को समर्थ या असमर्थ कुछ एक मानलें तो वैसा ही तुम भी करलेना। तुमारे अल्पभाग्य पतियों को देखकर सब गुरु लोग भी तुम्हारे दुःख से दुखित, कुछ नहीं कहते।

दुर्योधन की सब चण्डाल चौकड़ी ने इस का अनुमोदन किया।

इस प्रकार द्रौपदी के चीर हरण का भीषण दृश्य समाप्त होता है।

इस को देखकर पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि उससमय बड़े २ नामी गुरु ब्राह्मण धर्मज्ञों का क्या मान रहगया था और अधर्म के सामने ये किस प्रकार निसत्व या निर्वीर्य मूढ सदृश थे। और पापी लोग भी कितने निर्लज्ज तथा उद्धत और नीच होगये थे।

अब दूसरा दृश्य देखिये।

सच्चे ब्राह्मणों का अनादर

इधर रामायण के समय की राजसभा में ब्राह्मण, वेदज्ञ, भगवान् विश्वामित्र का उपस्थित होना, और राजा दशरथ से उसके दोनों पुत्रों का मांग लेना। राजा दशरथ इन्कार करता है परन्तु वसिष्ठ विरोध करता है और कहता है-

'तू इक्ष्वाकुओं के वंश में पैदा हुआ है, साक्षात् धर्म का दूसरा रूप है, तू धृतियुक्त व्रतपाल श्री वाला है तुझे धर्म न छोड़ना चाहिये। हे राघव तेरी प्रसिद्धि धर्मात्मा

रूप तीनों लोकों में विख्यात है अपने धर्म को पहचान। अधर्म तुम नहीं कर सकते* ।" "यह प्रतिज्ञा कर के कि मैं वचन करूंगा, यदि तुम अपना वचन पूरा नहीं करते तो इष्टापूर्त धर्म के नाश का पाप होगा अतः राम को महर्षि विश्वामित्र के साथ जाने दो† ।"

ऐसा आदेश वसिष्ठ का सुन कर राजा दशरथ ने तत्क्षण मोह को छोड़ कर अपने दोनों पुत्र विश्वामित्र के साथ कर दिये+ ।

दर्शनीय आदर्श यह है कि ऋषि मुनि महात्मा समाज के श्रेष्ठ भाग ब्राह्मणों का इस आदर्श काल में कितना मान था। ब्राह्मण के वचन को राजा तक टाल नहीं सकता था। परन्तु महाभारत काल का भी एक दृश्य देखिये।

द्रौपदी का चीर हरण देख कर विदुर भीष्म द्रोणादि महा पुरुषों के वचनों को तुच्छ समझा गया और दुर्योधन तथा कर्ण से अधम पुरुषों तक ने महात्माओं का अपमान किया।

महिला-समाज की शिक्षा का अभाव

(६) स्त्रियों की शिक्षा की भी अवस्था इस समय में कुछ उच्च न थी। आचार व्यवहार की दृष्टि से भी स्त्री समाज में घृणित व नीच कुरीतियें चल पड़ी थीं। तुलना करने से प्रतीत होता है कि कहां रामायण के समय की राज कन्याएं प्रति दिन प्रातः

रामायण—बा० का०, २१ सर्ग,

* **इक्ष्वाकूणां कुले जातः, साक्षाद् धर्म इवापरः ।**
धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान्, न धर्मं हातुमर्हसि ॥ ६ ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व, नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥ ७ ॥

† **प्रतिश्रुत्य करिष्येति, उक्तं वाक्य मकुर्वतः ।**
इष्टापूर्तवधो भूया त्तस्माद्रामं विसर्जय ॥ ८ ॥

रामायण, आदि०—२२ स०

+ **तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् ।**
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ ३ ॥

सायं हवन करतीं थीं और सद्धर्म का सेवन करती थीं और कहां दूसरी ओर महाभारत में निर्लज्जता से नाचतीं तथा मद्यादि का सेवन तक करतीं थीं।

कोप गृह में उदासीना माता केकयी तथा वरपाशबद्ध पिता दशरथ से वन गमन की अनुज्ञा लेकर श्रीराम जिस समय अपनी माता कौशल्या के गृह में प्रवेश करते हैं, तो उन्होंने अपनी माता को अग्नि में हवन करते हुए पाया* । अहो ! धर्म तथा नित्य कर्म परायणा माताएं धन्य हैं जिन के पुत्र संसार के दीपक हो गये।

इधर दूसरी ओर का दृश्य देखिए;

खाण्डवदाह के पूर्व कृष्ण और अर्जुन कुन्ती और युधिष्ठिर जल विहार की आज्ञा लेकर जाते हैं और स्त्रियों के साथ जल क्रीडा करते हैं। इस में स्त्रियं मत्त हो २ कर हंसती और शराब पीतीं हैं + । इन में भी सुभद्रा और द्रौपदी दोनों प्रसिद्ध कुल देवियां अधिक मदमत्त थीं † ।

सामाजिक उच्चता और नीचता

(७) प्राचीन काल में समाज इतना शुद्ध और पाप से रहित था कि राजा अपने राज्य में कह सकता था कि मेरा राज्य सर्वथा पाप से शून्य है यही आदर्श का लक्षण है।

छान्दोग्य में केकय प्रदेश के राजा अश्वपति के विषय में एक स्थान पर इस प्रकार वर्णन आया है।

"प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, और बुडिल ये पांचों महाविद्वान ब्रह्म को जानने के लिये केकयाधिप अश्वपति महाराज के पास आये। राजाने उन विद्वानों की

---

* रामायण, अयोध्या ०, २० सर्गः, १६ श्लो०,

प्रविष्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥ १६ ॥

+ महाभारत, आदि पर्व, २२४ अ०,

काश्चित्प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथा पराः।
जहसुश्च परा नार्यः पपु श्चान्या वरासवम् ॥ २४ ॥

† महा०, आदि०, २२४ अ०,

द्रौपदी च सुभद्रा च वासांस्याभरणानि च।
प्रायच्छत महाराज क्षीबा ते स्म मदोत्कटे ॥ २३ ॥

प्रथम अतिथि पूजा की । प्रातःकाल के समय ब्राह्मणों के प्रति उसने कहा, कि "मेरे नगर में न कोई चोर, न कोई घातक, न शराब पीने वाला है । और न यज्ञ को न करने वाला, न मूर्ख, न व्यभिचारी, तब व्यभिचारिणी तो किस प्रकार हो सकती है ।" ×

इसी प्रकार आप रामायण के समय की अयोध्या का वर्णन पढ़िये । वाल्मीकि भगवान लिखते हैं कि—

"महाराज दशरथ के आठों मन्त्री शुद्ध भाव से एकमत होकर विज्ञान से जब राज्य करते थे उस समय, पुर और राष्ट्रभर में झूठ बोलने वाला कोई न था' । *

'वहां न कोई दुष्ट था न परस्त्रीगामी, सारे का सारा राष्ट्र और पुर शान्ति युक्त था । इसी प्रकार उस पुरवर में प्रसन्न धर्मात्मा बहुत विद्वान अपने ही मात्र धन से संतुष्ट पुरुष रहते थे । किसी के पास न्यून धन न था । सब गृहस्थ पूर्ण गाय घोड़ों धन व धान्यों से युक्त थे । उस पुरी में कामी कदर्य क्रूर मूर्ख और नास्तिक पुरुष भी कहीं देखा नहीं जासकता था सब नरनारी धर्मशील और नियमानुकूल थे । शील और सदाचार से प्रसन्न महर्षियों के सदृश निर्मल थे।"

'यज्ञ न करने वाला शूद्र और चोर दुराचारी तथा व्यभिचारी भी आयोध्या में कोई न था । सब अपने २ कर्म परायण, इन्द्रियों का विजय करने वाले ब्राह्मण, दान और अध्ययन शील नियम से बद्ध थे । नास्तिक, झूठा, अल्प पठित, निन्दक, कमजोर, मूर्ख, छः अंगों को न जानने वाला, व्रत रहित, दीन, पागल, दुखित, कुरूप, दरिद्री और

× छान्दोग्य० अ० ५- ११

प्राचीनशाल औपमन्यवः, सत्ययज्ञः पौलुषि. रिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो, जनः, शार्कराक्ष्यो, बुडिल आश्वतराश्विः । ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः ते हैते ......तं हाऽभ्याऽऽजग्मुः ॥ ४ ॥ तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयांचकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो, न मद्यपो, नानाहिताग्नि. र्नाविद्वान्, न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः॥

* रामायण बालका०, सर्ग ७,

शुचीनामेक बुद्धीनां सर्वषां सम्प्रजानताम् ।
नासीत्पुरे वा, राष्ट्रे वा, मृषावादी नरः क्वचित् ॥ १४ ॥
कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद् राष्ट्रं, पुरवरं च तत् ॥ १५ ॥

राजद्रोही भी पुरुष अयोध्या भर में नहीं देखा जा सकता था। चारों वर्णों में देवता और अतिथि के पूजक, कृतज्ञ, दानी, शूरवीर, विक्रमयुक्त और दीर्घायु थे। सब लोग धर्म और सत्य का आश्रय किये हुवे थे*।"

अब इस सामाजिक आदर्श वर्णन की तुलना में महाभारत की समाज के वर्णन को भी सुनिये।

महाभारत के घोर युद्ध में अतुल बलशाली पितामह के शरशायी हो जाने पर, तथा एकमात्र धनुर्धर आचार्य भारद्वाज के भी शिरश्छेद हो चुकने पर, दुर्योधन की सेना का अधिपति अभिमानपरायण कर्ण, मद्र तथा पंचनद के राजा शल्य को अपना सारथी बनाकर समरांगण में अपने बाहुबल की तथा अस्त्र शस्त्र वैभव की बड़ाई करता हुआ, आगे बढ़रहा था। शल्य ने उसके अभिमान को घटाने के लिए कर्ण को छेड़ दिया। कर्ण ने क्रुद्ध होकर मद्र व पञ्चनद देश की पतित सामाजिक अवस्था को खोल खोल कर शल्य की निन्दा प्रारम्भ करदी। कर्ण बोला—

* रामायण, बालकाण्ड, ६ सर्ग,

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥ ६॥
नाल्प सन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बी योह्यसिद्धार्थो ऽगवाश्वधनधान्यवान्॥ ७॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्य मयोध्यायाँ ना विद्वाञ्च च नास्तिकः॥ ८॥
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः॥ ६॥
नानाहिताग्नि र्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चाऽवृत्तो न संकरः॥ १२॥
स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे॥ १३॥
नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः॥
नासूयको नचाऽशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित्॥ १४॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति ना व्रतो नाबहुश्रुतः॥
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन॥ १५॥
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाऽश्रीमान्नाऽप्यरूपवान्॥
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान्॥ १६॥

अबे मद्रनरेश, सुनो, धृतराष्ट्र के पास दूर २ देश के ब्राह्मण तेरे से शासित देश मद्र बाल्हीक आदिकों की इस तरह से निन्दा किया करते थे—शाकलनाम के नगर के पास आपगा नाम की नदी के किनारे जर्तिक नाम के वाहीक लोग निवास करते हैं, वे लोग धान और गुड़ की शराबों को पीकर लहसुन के साथ गाय के मांस के पूए और बड़े खाया करते हैं। वे शील से भ्रष्ट हैं। उनकी स्त्रियें नित्य हंसती तथा मत्त और नंगी होकर नाचती हैं। नगरों, घरों और नदी के किनारों पर गधे और ऊंटों के सदृश आवाजों वाले गीतों को गातीं, निर्लज्जता से मैथुन करतीं, और अवारा गर्द घूमा करती हैं। †

वहां की स्त्रियें शमी पीलु और करीर के जंगलों में घूमती हुई, मक्खन के साथ पूए, सत्तू खाती हुई, कांम के वश होकर, निर्लज्ज हो कर मार्ग में से जाते हुबे पथिकों के कपड़े खोस लेती हैं; ऐसे दुष्ट व्रात्य वाहीकों में ज्ञान वाला मनुष्य क्षण भर भी नहीं रह सकता उस ब्राह्मण ने सभा में व्यर्थ घूमने वाले वाहीकों का ऐसा वर्णन किया था। इन जैसों का तू राजा है। इन के भले बुरे का छठा भाग तुझे लेना पड़ता है। *

---

† **महाभारत, कर्णपर्व, ४४ अ०,**

इदन्तु मे त्वमेकाग्रः शृणु, मद्रजनाधिप।
सन्निधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥
तत्र वृद्धैः पुरावृत्ताः कथाःकश्चिद् द्विजोत्तमः।
बाल्हीकदेशान्. मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
शाकलं नाम नगरं आपगा नाम निम्नगा।
जर्त्तिका नाम वाह्लीकास्तेषां वृत्तं सुनिश्चितम् ॥ १० ॥
धाना गौडासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह।
अपूपमांसवाटाना माशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥
हसन्त्यथ च नृत्यन्ति, स्त्रियो मत्ता विवाससः।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥
मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः।
अनावृते मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वदा ॥ १३ ॥

महाभारत कर्ण—४४ अध्याय
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु।
अपूपान् शक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्त्यो मथितान्वितान् ॥ २० ॥

इसी प्रकार हे शल्य शाकलदेश के वासी आबाल वृद्ध सब मिल कर शराब पी-कर मत वाले हुवे हुए, हल्ला गुल्ला मचाते हुवे गाया करते हैं कि जिसने सूअर कूकड़ गाय गधा ऊंट और भेड़ का मांस नहीं खाया उन का जन्म विफल है। ऐसे अनाचारियों में धर्म कैसे रह सकता है* ।"

उसी ब्राह्मण ने कहा था कि वे लोग काठ के कठोतों, और मिट्टी के बर्त्तनों में, जिन में जूंठन लगी रहती है, और जिन्हें कुत्ते चाटते रहते हो, ऐसे बर्त्तनों में भी विना घृणा के खा लिया करते हैं। भेड़ ऊंट और गधी का दूध पीते हैं और सड़ा सड़ा कर खाते हैं। वे दुष्ट, पुत्रों का संकर करते तथा सर्व तरह के अच्छे बुरे अन्न खाजाते हैं। वे आरट्ट नाम के वाहीक सब को छोडने योग्य हैं‡।

पथिषु प्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान्।
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः ॥ २१ ॥

एवं शीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु।
कश्चेतनावान् निवसेन्मुहूर्त्तमपि मानवः ॥ २२ ॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ताः वाहीका मोघचारिणः।
येषां षड्भागहर्त्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ॥ २३ ॥

* वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम्।
ऐडञ्च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥

इति गायन्ति ये मत्ता सीधुना शाकलाश्च ये।
सबालवृद्धाः क्रन्दन्त स्तेषु धर्मः कथं भवेत्।

‡ महाभारत, कर्ण०, ४४ अ०,

तेषां प्रणष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः।
ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृण्मयेषु च भुञ्जते।

सक्तुवाट्या वलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः।
आविकञ्चौष्ट्रकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥

तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च।
पुत्रसंकरिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥
आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता ॥

और भी कि वहां के गिरे हुवे ब्राह्मण प्रजापति के साथ के होते हुवे भी गिरे हुवे हैं। उन के पास वेद नहीं, ज्ञान नहीं, यज्ञ नहीं, वे तो पतित व्रात्यों के भी दास हैं।*

इस के उत्तर में कौरवों के वृद्ध मामा मद्रदेशपति शल्य भी कुछ उपरोक्त आक्षेप का उत्तर न देकर, खिन्न चित्त हो कर अंग देश पर आक्षेप करते हुए बोले—

"हे कर्ण! जिस अंग देश के तुम राजा हो वहां भी लोग आतुरों को आपत्ति में ही निर्दयता से त्याग देते हैं और अपनी भार्या और बेटों तक को बेच देते हैं।" महारथों की गिनती करते हुए भीष्मपितामह ने जो तुम को कहा था उस के अनुसार अपने दोषों को भी जान कर तुम अधिक क्रोध मत करो‡।"

एवं परस्पर की प्रजाओं का वर्णन श्रवणमात्र से ही उस समय की सामाजिक पतित अवस्था का पता लग जाता है। इसी लिये महाभारतकार ने किसी स्थान पर भी ऐसा दावा नहीं किया, जिस प्रकार का हमने रामायण तथा उपनिषद् के उल्लेखों से दर्शाया है।

विवाह सम्बन्धी कुरीतिएं

(८) और भी यदि विस्तार से देखा जाय तो यह अधः पतन न केवल बाह्यक्षेत्र में ही सीमित था परन्तु इस अवनति का मूल गृह २ में गड़ गया था।

विवाह ८ प्रकार के, शास्त्रकारों ने वर्णित किये हैं जिन में गान्धर्व राक्षस आसुर तथा पैशाच ये निन्दित समझे जाते हैं। निन्दित प्रकारों का ही आश्रयण महाभारत काल में हमें क्षत्र जाति में प्रसृत प्रतीत होता है। निन्दित प्रकार यदि नीच अपठित

* ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः।
वेदा न तेषां वेद्यञ्च यज्ञं यजनमेव च॥
व्रात्यानां दासमीयानामित्यादि.........।

‡ महाभारत—कर्ण अ० ४५

आतुराणां परित्यागः सदारसुतविक्रयः,
अङ्गेषु वर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान्॥ १॥
रथातिरथसंख्यायां यत्त्वा भीष्मस्तदाब्रवीत्।
तान् विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः॥ २।

व अशिक्षित जनों में पाया जाय तो ऐसा आश्चर्य-जनक तथा विचारणीय नहीं परन्तु जब यह कुप्रथा समाज के विद्वान शिक्षित भाग में फैल गई हो तो देश की वास्तव में गौरव हानि है। महाभारत में बड़े २ विद्वान क्षात्रिय भी इस व्यसन से मुक्त न थे। भीष्म सदृश ज्ञानी वीर सत्यप्रतिज्ञ तक ने अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये अम्बा, अम्बालिको दोनों काशिराज की पुत्रियों को हरलिया यद्यपि अम्बा ने शाल्वराज को अपना पति पहले वरा था+। इसी प्रकार अर्जुन का सुभद्रा हरण, कृष्ण का रुक्मिणी हरण, दुर्योधन का द्रौपदी-चीर-हरण, तथा भीम का राक्षसी, परिणय, और अर्जुन का नाना राजकन्याओं से गांधर्व सम्बन्ध आदि अनेकशः उदाहरण हैं।

परन्तु आदर्श कालों में आर्यजाति में ऐसा दुराचारमय काण्ड इस से पूर्व दृष्टि-गोचर नहीं होता। आदर्शकाल में तो योग्य पति को गृहपति लोग आदर से घर में लाकर कन्या का विवाह करते थे जिस प्रकार कि दशरथ ने विभण्डक ऋषि को शान्ता नाम कन्या विवाहार्थ दी (वा० रा०, बाल०, स० ११, ३०,)।

अभक्ष्य भोजन

(९) अन्य अवनातियों के साथ २ भोजनादिक व्यवहार भी सात्विक पद से तामस पद पर आगया था। प्राचीन काल में राम तो वनवास जाते समय प्रतिज्ञा करते हैं कि "मैं मुनि वृत्ति से मासादि आहार का त्याग कर कन्द मूल फल का सेवन कर जीवन यात्रा करूंगा *।" इधर दूसरी तरफ सेनाशिविर में बैठे भीमसेन के लिये व्याध लोग मांस के टोकरों के

+ महाभारत, आदि०, १०२ अ०,

एवं विजित्य, ताः कन्याः भीष्मः प्रहरतां वरः।
प्रययौ हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः॥ ४७॥
आनिन्ये स महाबाहुः भ्रातुः प्रियचिकीर्षया॥
ताः सर्वगुणसम्पन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे॥ ५२॥
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः॥ ५३॥
भ्रातु र्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे॥ ५४॥

* रामायण, अयोध्या का०, २० सर्ग,

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलै र्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्॥

टोकरे उठा के लाया करते थे । *

काम तृष्णा | (१०) इसी प्रकार जिह्वालोभ की न्यायीं कामतृष्णा भी किसी अंश में न्यून न थी, दुर्योधन की सेनाओं के साथ अन्तःपुर और वेश्या-मण्डल भी चला करता था । +

एक पत्नी के बहुपति | (११) इसी प्रकार देखते २ गिरावटों का हम कहा तक वर्णन करें । फिर भी इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम प्रत्यक्षतः एक ज्वलन्त अधोगति की ओर अवश्य ध्यान दिलाना चाहते हैं ।

भारतीय कतिपय पौराणिक स्मृतिकारों ने यद्यपि एक पति के बहुत स्त्रियों का विधान अवश्य किया है परन्तु एक पत्नी के बहुत से पति होने का विधान उन्होंने भी कहीं नहीं किया । क्योंकि इस प्रकार होना वेश्यावृत्ति के सिवाय और क्या है । परन्तु महाभारत के समय में यह रीति भी चल गई थी ।

जिस समय द्रौपदी को विवाह कर अर्जुन लाया था तो कुंती ने सलाह दी थी कि यह द्रौपदी भी भोजन के तुल्य ही पांचों की पत्नी रहेगी।

प्राचीन उदाहरणों के देते हुए, युधिष्ठर द्रुपद की प्रार्थना पर इस प्रकार समर्थन करते हैं ."हे द्रुपदेन्द्र । मेरी माता ने पहले ही कहा था कि द्रौपदी हम पांचों की ही पत्नी रहेगी । हमारी यही प्रतिज्ञा है कि रत्न भोजनादिक में सब का सम भाग होगा। यह प्रतिज्ञा हम नहीं छोड़ सकते । इस लिये द्रौपदी हमारी सबकीही धर्मपत्नी होगी; अतः क्रमशः पांचों का ‡ पाणिग्रहण हो जाना चाहिये" ।

---

* महाभारत, शल्य पर्व, ३० अ०,

ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः
मांसभारानुपाजह्रुः भक्त्या परमया विभो ॥ २३ ॥
एव मुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टाः धनार्थिनः
मांसभारानुपादाय:प्रययुः शिविरं प्रति ॥ ३४ ॥

\+ महाभारत, उद्योग० १७६अ०,

वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः ॥ १७ ॥

‡ महाभारत, आदि०, १९७,

सर्वेषां महिषी राजन्द्रौपदी नो भविष्यति ।
एवं प्रव्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशांपते ॥ २३ ॥
असङ्गाप्यभिविष्टो वै भीमसेनश्च पाण्डवः ॥

युधिष्ठिर के ये विरुद्ध से वचन सुन कर द्रुपद महाराज बोले—

"यह कार्य मुझ को अधर्म्म प्रतीत होता है। लोक-वेद दोनों से विरुद्ध है। बहुत से पतियों की एक पत्नी नहीं हुआ करती। इस प्रकार का धर्म पहले महात्माओं ने भी कभी नहीं आचरण किया। अधर्माचरण तो विद्वान लोगों को करना ही नहीं चाहिये। मैं ऐसी क्रिया करने में कभी भी तय्यार नहीं हूं।" +

पिता की वाणी सुन कर पुत्र धृष्टद्युम्न ने कहा कि—

"सदाचारी हो कर बड़ा भाई छोटे की पत्नी से गमन कैसे कर सकता है। धर्म बहुत सूक्ष्म है, इस कारण उसकी गति नहीं ज्ञात होती। और अधर्म धर्म का निर्णय भी नहीं हो सकता। *

तिसपर युधिष्ठिर फिर कहते हैं—

मेरी वाणी ने कभी झूठ नहीं बोला, और मति अधर्म में नहीं जाती। मेरा मन भी यही कहता है कि इस में अधर्म किसी प्रकार भी नहीं है। पुराण में भी सुना जाता है कि जटिला नाम गौतम ऋषि की कन्या ने सात ऋषियों को अपना पति चुना। इसी प्रकार वार्क्षी मुनिकन्या ने भी

पार्थेन विजिता चैषा रत्नभूता सुता तव ॥ २४ ॥
एष नः समयो राजन् रत्नस्य सह भोजनम् ॥
न च तं हन्तुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥ २५ ॥
सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति ।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां ज्वलने गृह्णातु नः करान् ॥ २६ ॥

+ महा भारत, आदि०, १७६ अ०

द्रुपद उवाच
एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित् ॥ २७ ॥
लोकवेदविरुद्धस्त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी ॥ २८ ॥

* आदि०, १९८ अ०,

द्रुपद उवाः—
अधर्मोऽयं मममतो विरुद्धो लोक वेदयोः ।
न चैका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥
न चाप्याचरितं पूर्वैरयं धर्मो महात्मभिः
नचाप्यधर्मो विद्वद्भिश्चरितव्यः कथञ्चन ॥ ८ ॥
ततोऽहं नकरोम्येवं व्यवसायं क्रियां प्रति
धर्मः सदैव सन्दिग्धः प्रतिभाति हिमेत्वयम् ॥ ९ ॥

प्रचेता नामक दश भाइयों को पति बरा था। हे धर्मज्ञसत्तम राजन् गुरुवचन ही धर्मानुकूल होता है। सब गुरुओं का गुरु माता है। माता ने भी भिक्षान्न के सदृश बांटकर भोग करने का ही उपदेश किया है।"

इस प्रकार पंचपतित्व को पुष्ट किया गया है।

परन्तु क्या धर्म को जानने वाले ऐसी अवस्था में आदर्श-धर्म का अनुसरण नहीं कर सकते? नीच मर्यादाओं का अनुकरण करना ही अधःपतन का ज्वलन्त प्रमाण है।

यह बहुपतित्व की मर्यादा यहां तक ही नहीं रही; बल्कि कृष्ण ने युद्ध के पूर्व कर्ण को अपने पक्ष में करने के लिए ये प्रलोभन भी दिया था कि द्रौपदी भी तेरे बांट में आजायगी। ×

इस प्रकार विवाहमर्यादा का भी कितना नीच तथा घृणित स्वरूप समाज के प्रतिष्ठित भाग तक में फैला हुआ था।

---

* महा० आदि० १९८ अ०

धृष्टद्युम्न उवाचः—

यवीयसः कथं भार्यां ज्येष्ठो भ्राता द्विजर्षभ
ब्रह्मन् समभिवर्त्तेत सद्वृत्तः संस्तपोधन ॥ १० ॥
न तु धर्मस्य सूक्ष्मत्वाद् गतिं विद्मः कथंचन
अधर्मो धर्म इति वा व्यवसायो न शक्यते ॥ ११ ॥
नमे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः
वर्त्तते हि मनो मेच नैषोऽधर्मः कथञ्चन ॥ १३ ॥
श्रूयते हि पुराणे पि जटिलानाम गौतमी
ऋषी नध्यासित वती सप्तधर्मभृतां वरा ॥ १४ ॥
तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः
सङ्गताऽभूद्दशभ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥ १५ ॥
गुरोर्हि वचनं प्राहु धर्म्मं धर्मज्ञसत्तम
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः ॥ १६ ॥
सा चाप्युक्तवती वाचं भैक्ष्यवद् भुज्यतामिति।
तस्मादेतदहं मन्ये परं धर्मं द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

× महाभारत, उद्योग पर्व, १३९अ०,

षष्ठे त्वाञ्च तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥१५॥

दयानन्द की सम्मति

(१२) इसी प्रकार की भ्रष्टाचार तथा पतिताऽवस्था को देख कर ही उन्नीसवीं शताब्दी के संशोधक, परिव्राट्, जगद्-गुरु; भगवान् स्वामी दयानन्द जी भी अपने मान्य सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में कहते हैं—

"इस विगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र (१०००) वर्ष से प्रवृत्त हुवे थे; क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ आलस्य प्रमाद ईर्षा द्वेश के अंकुर उगे थे; वे बढ़ते २ वृद्ध हो गये, जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त्त में अविद्या फैल कर परस्पर में लड़ने झगड़ने लगे।"

ऋषि के इन वचनों की सत्यता और भी स्पष्ट तथा व्यापिनी प्रतीत होती है जब कि हम महाभारत को और भी खोल २ कर देखते हैं। और कुरीतियों के मूलों का तथा परिणामों का अन्वेषण करते हैं।

इस प्रकार हमने महाभारत के समय की सामाजिक अधःपतित अवस्था का यथा सम्भव स्पष्ट चित्र दिखाने का पर्याप्त यत्न किया है। अगले अध्याय में धार्मिक सिद्धान्त तथा कर्मकाण्ड की अवस्था का प्रदर्शन स्पष्ट और विस्तार से करने का प्रयत्न किया जायगा।

इस से पाठकों को यह भी स्पष्ट हो जायगा कि पौराणिक बिगड़े हुए सिद्धान्तों का मूलाधार भी महाभारत में गड़ा हुआ है।

-:o:-

द्वितीय-अध्याय

धार्मिक सिद्धान्त

महाभारत के काल से भारतवर्ष के अधःपतन को दर्शाने के लिए हमने पाठकों के समक्ष प्रथम अध्याय में पर्याप्त प्रमाण संग्रह किए हैं। इस द्वितीय अध्याय में हमारा प्रयत्न यह है कि शास्त्रीय सिद्धान्तों से पौराणिक सिद्धान्तों की सामान्य तुलना करते हुवे महाभारत में उनका मूल दिखाया जावे। परमात्मा के राज्य में स्वतः स्वतन्त्र होकर मनुष्य कर्म सिद्धान्त का आश्रय लेकर उन्नति कर सकता है। परन्तु इसके विरुद्ध भाग्य का आश्रयण करके आलसी और पराश्रय दास सा होकर अवनति की ओर स्वतः ही जायगा। पुराणों में भाग्य का सिद्धान्त स्थान २ पर पुष्ट किया गया है जिसका सविस्तर वर्णन हम पौराणिक भाग में दिखाएंगे। परन्तु इस हीन सिद्धान्त का प्रारम्भ महाभारत से ही प्रारम्भ हो गया था। इसी प्रकार मूर्त्ति-पूजा, तीर्थ पूजा, शकुनों का मानना, ठगी और धूर्त्तता से पतियों को धोखा देना, शूद्रों को घृणा करना, साधारण व्यवहार में मांस मद्य का निषेवण करना, देवताओं की पूजा में नृशंस बलियें देनी, आदि पौराणिक नाना सिद्धान्त मूल रूपेण महाभारत के समय में भी प्राप्त होती हैं। इन पर ही कुछ प्रकाश-डालने का इस अध्याय में प्रयत्न है।

कर्म सिद्धान्त व भाग्य

(१) कर्म सिद्धान्त तथा भाग्य—

मनु महाराज ने उपदेश किया है कि "कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रणश्यति" अर्थात् कर्म से ही जन्तु उत्पन्न होता और कर्मों से ही वह नाश हो जाता है।

आपस्तम्ब मुनि कहते हैं—

"धर्म चर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं २ वर्ण मापद्यते"
"अधर्मचर्य्यया पूर्वो २ वर्णो जघन्यं २ वर्ण मापद्यते"

अर्थात्—धर्मानुकूल वर्ताव करने से नीच वर्ण उच्च वर्ण हो सकता है और अधर्माचरण से उच्च वर्ण नीच हो जाता है।

इसी प्रकार वेद भगवान् कहते हैं—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छत ँ समाः"।
"एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे"

यजुर्वेद, ४०. अ०,

सत्कर्मों को करता हुआ ही पुरुष सौ वर्ष जीने की इच्छा करे इससे दूसरा कोई मार्ग नहीं है। कर्म आत्मा में लिप्त नहीं होता है।

प्राचीन उन्नत काल की ये उपरोक्त शिक्षायें थी, परन्तु काल के विपर्यय से कर्म सिद्धान्त शिथिल होगया और भाग्य पर लोग जीने लगे।

आलस्य और परवशता का राज्य भी भाग्य के सिद्धान्त का प्रतिफलित परिणाम है। महाभारत में भी भाग्य का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। युधिष्ठिर सदृश धर्म के नेता भी इस भाग्य चक्र में फंसे हुवे थे।

दुर्योधन का सेवक प्रातिकामी युधिष्ठिर के पास जूए के लिए निमन्त्रण देने आया है और कहता है—

महाराज, सम्पूर्ण सभा लगी हुई हैं, जूए के पासे खड़े कर लिए गए हैं। अयि पाण्डव चलो, द्यूत क्रीड़ा करो यही तुम्हारे पितासम धृतराष्ट्र की आज्ञा है।

तिस पर युधिष्ठिर महाराज बोले—

विधाता की आज्ञा से सब प्राणी शुभ और अशुभ प्राप्त करते हैं इन शुभाशुभ का परिहार नहीं हो सकता। यदि जूआ खेलना ही हैं तो जूए में आया हुआ निमन्त्रण भी विधाता या भाग्य की आज्ञा से यह अवश्य सब का नाश करने वाला है। यद्यपि मैं ये जानता हूं, परन्तु इसका उल्लंघन करने का साहस मैं नहीं कर सकता हूं।' *
इस पर कथा कहते हुए वैशम्पायन मुनि कहते हैं कि—

राम जानता था कि स्वर्ण का बना हुआ जीव नहीं होता है यह जानता हुआ भी वह स्वर्णमृग के लोभ में पड़ गया। जिनका नाश समीप ही होता है उन की बुद्धियें उलटी होजाती हैं, इस प्रकार कहता हुआ युधिष्ठिर शकुनि के बल

*** महाभारत, सभापर्व, ७५ अध्याय,**

धातुर्नियोगाद्भूतानि प्राप्नुवन्तिशुभाशुभम्।
न निवृत्तिस्तयोरस्ति देवितव्यं पुनर्यदि ॥ ३ ॥
अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात् स्थविरस्य च।
जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे ॥ ४ ॥

को जानता हुआ पृथा का पुत्र फिर भी जूए में चला गया। सम्पूर्ण महारथ उस सभा में प्रविष्ट हुए, वे सब ही अपने मित्रों के हृदयों को कष्ट देते थे। वे फिर बड़े शौक से दैव के मारे हुए सर्व लोगों के विनाश के लिये जूआ खेलने में प्रवृत्त हुये।

दैव का सिद्धान्त ऐसे समय वैशम्पायन से विद्वान और युधिष्ठिर से धर्मज्ञ के मुख से सुन कर बड़ा आश्चर्य होता है। ‡

(२) इसी की स्पष्टता के लिए एक और निदर्शन लीजिए। वन में घूमते २ तृषित अपने भ्राताओं के लिए जल लाने को भीमसेन उस तालाब पर पहुंच गये जहां सप्तर्षियों के शाप से अधो-लोक में पतित नहुष अजगर की योनि में शाप का फल भोग रहे थे। भीमसेन ने अजगर की सम्पूर्ण कथा सुनकर कहा कि—

हे महा-सर्प मैं क्रोध नहीं करता और नाहीं अपनी निन्दा करता हूं। क्योंकि मनुष्य को भावि और अभावि सुख दुख के आने और हट जाने पर मन को खिन्न न करना चाहिए। कोई भी दैव को अपने पुरुषार्थ से धोखा नहीं दे सकता, मैं दैव को ही परम वस्तु मानता हूं पुरुषार्थ तो निरर्थक है। दैव के इस आघात से ही भुजों में बल होते हुवे भी मैं ऐसी बुरी अवस्था में निष्कारण पड़ा हूं।" *

मूर्तिपूजा

[२] मूर्तिपूजा—

वेद भगवान शिक्षा देते हैं—

‡ **महाभारत, सभा पर्व, ७५ अध्याय।**

विविशुस्ते सभां तान्तु पुनरेव महारथाः।
व्यथयन्ति स्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभ ॥ ७ ॥
अथोपजोषमासीनाः पुनर्द्यूतप्रवृत्तये
सर्वलोकविनाशाय, दैवेनोपनिपीड़िता ॥ ८ ॥

महाभारत, वन०, अ० १५१

यस्माद्भावि भाविवो मनुष्यः सुखदुःखयोः।
आगमे यदिवाऽपाये न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ २६ ॥
दैवे पुरुषकारेण को वञ्चयितु मर्हति।
दैवमे व परं मन्ये पुरुषार्थो निरर्थकः ॥ २७ ॥
पश्य दैवोपघाताद्धि भुजवीर्य व्यपाश्रयम्।
इमामवस्था सम्प्राप्त मनिमित्तमिहाद्य माम् ॥ २८ ॥

'उसकी कोई भी प्रतिमा नहीं होसकती जिस परम आत्मा का नाम और यश महान है* । उस की महिमा इतनी महान है और वह परम-पुरुष इतना महान है कि सम्पूर्ण भूत इस के एक पाद हैं, शेष तीन पाद द्यौलोक में हैं+ ।

ऐसे महान परमात्मा की पुराण के कर्त्ताओं ने मन्दिरों में प्रतिमाओं की स्थापना की है । यह धार्मिक गिरावट भी महाभारत में मूल पकड़ गई है ।

वन पर्व में बृहदश्व नल की कथा सुनाते हुए कहते हैं कि, 'विदर्भ नरेश के घर में राजा नल का बड़ा सन्मान हुआ । और सम्पूर्ण नगर में हर्षध्वनि होरही थी। नगर निवासियों ने दर दर पर राज मार्गों को नाना प्रकार के फूलों और फुलमालाओं से सजा रक्खा था। **सारे मन्दिर व देवालयों की पूजा की गई**—और राजा ऋतुपर्ण को भी पता लग गया कि बाहुक के वेश में राजा नल आ-गया ।‡

तीर्थ — [३] इसी प्रकार तीर्थों का भी वर्णन महाभारत में बहुत आया है ।

वन पर्व में भीष्मपुलस्त्य संवाद के ८०· अध्याय से ८५ अध्याय तक भारतवर्ष के सब तीर्थादि पवित्र स्थान २६२ गिनाये हैं, पुण्य नदियें ३८ गिनाई

* **यजुर्वेद—अ० ३२. ३.**
  न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद् यशः ।

+ **यजुर्वेद अ० ३१, मं ३,**
  एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
  पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि ॥

‡ **महाभारत, वनपर्व०, अ० ७७,**
  तामर्हणां नलो राजा प्रतिगृह्य यथाविधि ॥ ४ ॥
  परिचर्यां स्वकान्तस्मै यथावत् प्रत्यवेदयत् ।
  ततो बभूव नगरे सुमहान् हर्षजो ध्वनिः ॥
  सिक्ताः सुमृष्टपुष्पाढ्याः राजमार्गाः स्वलंकृताः ।
  द्वारि द्वारि च पौराणां पुष्पभङ्गोपकल्पिताः ॥ ७ ॥
  अर्चितानि च सर्वाणि देवताऽयतनानि च ।
  ऋतुपर्णोऽपि शुश्राव बाहुकच्छद्मिनं नलम् ॥ ८ ॥

गई हैं, और संगम स्थान ७ गिनाये गये हैं। इसी प्रकार पवित्र तालाब १५, पर्वत ६, पवित्रवट ७ आश्रम और केदार मिलाकर १३, वापी ४, कुंए ४, कुण्ड ३, और वन ७, गिनाये हैं। इन सब स्थानों का होना कोई अधः पतन का सूचक नहीं; क्योंकि प्रायः बहुत से स्थान प्राचीन इतिहास तथा वहां के ऐतिहासिक पुरुषाओं और देवताओं से सम्बद्ध हैं, परन्तु अज्ञान और अधोगति का लक्षण यह पाया जाता है कि प्रत्येक तीर्थ नदी, या संगम पर स्नान का बड़ा अद्भुत तथा लोकोत्तर फल और माहात्म्य दर्शाया गया है। * जिसकी अत्युक्ति की मात्रा पुराणों की अत्युक्ति से किसी अंश में कम नहीं है। इन तीर्थों के वर्णन व महात्म्य सुनने तथा पढ़ने से ये तो अवश्य प्रतीत होता है कि महाभारत गृन्थ के समकाल में लोगों में अन्ध विश्वास की मात्रा तथा अन्धी भक्ति का भाव बहुत ही बढ़ गया था।

शकुन

[४] इन सब अज्ञान से पूर्ण विश्वासों के साथ साथ ही दूसरे प्रकार के अन्ध-विश्वासों की भी न्यूनता न थी। जहां देवता और तीर्थों पर ऐसा अन्ध-विश्वास जमा सा प्रतीत होता है, जैसा कि आजकल के लोगों का पीर पैगम्बरों की कबरों पर है। वहां इसी तरह की और भी तुच्छ वस्तुओं पर अन्धविश्वास था। शकुनों को मानना भी महाभारत के समय से प्रारम्भ होगया था।

युधिष्ठिर महाराज १२ वरस वनवास के पण में बन्धे हुवे वन में घूमते २ द्वैतवन में प्रविष्ठ हुए। एक बार तृषार्त्त हुए पाचों भाई और द्रौपदी एक स्थान पर बैठ गये। बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन जल लाने को गये। वहां नहुष सर्प का रूप धारण किये हुए पड़े थे। भीम की प्रतीक्षा करते हुये युधिष्ठिरादिकों को चिन्ता हुई कि क्या आपत्ति भीम पर आगई कि वह अभीतक भी लौट कर नहीं आये। तिसपर युधिष्ठिर को इस प्रकार के शकुन दीखे जिन्हें देखकर युधिष्ठिर बहुत घबरागये और घोर अनिष्ट उत्पातों को सोचने लगगये। "उनके आश्रम के दक्षिण में खड़ी गीदड़ी रोती थी, एक आंख और एक पंख वाली बटेरी खिन्न चित्त होकर सूर्य की ओर रुधिर को वमन करती थी। कंकरीदार धूल ती-

*** महाभारत, वन पर्व, ८० अध्याय से अ० ८५ तक भीष्म पुलस्त्य संवाद।**

क्षण बात से उड़ने लगी, मृग और नाना पक्षी बायीं ओर से शब्द करते हुए गुज़रते थे, पीछे से कौवा जाओ जाओ की ध्वनि बोलता था।, दायीं भुजा बार २ फड़कती थी, बायां हृदय और चरण भी फड़कता था, और अनिष्टकारी वाम नयन भी फड़कने लगा, और इस प्रकार धमराज युधिष्ठिर भी बहुत भय-भीत होकर द्रौपदी से प्रश्न पूछने लगे।" *

जादूटोना | (५) इस प्रकार अज्ञान या अन्ध विश्वास के अतिरिक्त स्त्री समाज तथा मनुष्य समाज दोनों में जादूटोना आदि का प्रचार भी होगया था। स्त्रियें अपने पतियों को वश करने के लिए इन्द्र जाल या माया का प्रयोग करतीं थीं। इस प्रकार की कुप्रथा जनसमाज में फैलना एक नीच अवस्था को जतलाता है।

सत्यभामा द्रौपदी से पूछती है—

"हे प्रिय दर्शने ! द्रौपदी पांचो पाण्डव तुम्हारे वश में रहते हैं। और तुम्हारे मुख की ओर देखते रहते हैं। मुझे ठीक २ बताओ कि वास्तविक बात क्या है। क्या कोई व्रत व तप है, या स्नान मन्त्र या औषधि है; या विद्या बल या मूल बल [जादू-

* **महाभारत, वनपर्व, अ० १७६,**

युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो बभूवाऽस्वस्थ चेतनः।
अनिष्टदर्शनान् घोरानुत्पातान् परिचिन्तयन् ॥ ४० ॥
दारुणं ह्यशिवं नादं शिवा दक्षिणतः स्थिता।
दीप्तायां दिशि वित्रस्ता रौति तस्याश्रमस्य ह ॥ ४१ ॥
एकपक्षाक्षिचरणा वर्त्तिका घोरदर्शना।
रक्तं वमन्ती ददृशे प्रत्यादित्यमभास्वरा ॥ ४२ ॥
प्रववौ चानिलो रूक्षश्चण्ड शर्करकर्षणः।
अपसव्यानि सर्वाणि मृगपक्षिरुतानि च ॥ ४३ ॥
पृष्ठतो वायसः कृष्णो याहि याहीति शंसति।
मुहुर्मुहुः स्फुरति च दक्षिणोऽस्य भुजस्तदा ॥ ४४ ॥
हृदयं चरण श्चापि वामो ऽस्य परिवर्त्तते।
सव्यस्याक्ष्णो विकारश्चाऽप्यनिष्टः समपद्यत ॥ ४५ ॥
धर्मराजोऽपि मेधावी मन्यमानो महद् भयम्।
द्रौपदीं परिपप्रच्छ क्व भीम इति भारतः ॥ ४६ ॥

टोना] है, या कोई जप, होम या उपचार है, जिस से तुम इन पांचों को वश करती हो। मुझे भी बताओ जिस से कृष्ण मेरे वश होजाय। *

ऐसा सुनकर द्रौपदी कहती है—

"अयि सत्यभामा, तुम दुष्ट स्त्रियों का आचार मुझ से पूछती हो, असज्जनों के मार्ग का वर्णन कैसे किया जासकता है। तुम्हें ऐसा प्रश्न और संशय ही न करना चाहिये। तुम तो कृष्ण की प्रियतमा रानी हो। जब भी पति ये जान लेता है कि उसकी स्त्री कोई मन्त्र यन्त्र साधन करती है, तो वह सहसा घर में बैठे सांप से मानो बड़ा ही उद्विग्न हो जाता है। उद्विग्नता से शांति और सुख कैसे हो सकता है। मंत्रादिकों से पति कभी वश नहीं होता। शत्रु प्रयुक्त रोगकारक अभिचार और जन्त्र मंत्रों से दुष्ट स्त्रियें अपने पतिको मारने की इच्छा से छल से विष दे दिया करती हैं। पुरुष जिह्वा या त्वचासे भी यदि भोग करता है, तो दुष्ट स्त्रियें उसे विष दे कर मार देती हैं। इन स्त्रियों ने ही अपने पतियों को जलोदरी, कोढ़ी, बुड्ढा, नपुंसक, मूढ़, बहरा और अन्धा कर दिया है। ये सब अपने पतियों को त्याग करने वाली पाप का अनुगमन करने वाली पापिन होती हैं।"‡

* महाभा०, बन०, २३३ अ०,

तव वश्या हि सततं पाण्डवाः प्रिय दर्शने ॥ ६ ॥
व्रतचर्या तपो वाऽस्ति स्नानमन्त्रौषधानि वा।
विद्यावीर्यं मूलवीर्यं जपहोमागदास्तथा ॥७ ॥
मामद्याचक्ष्व पाञ्चालि यशस्यं भगदैवतम्।
येन कृष्णो भवेन्नित्यं मम कृष्णो वशानुगः ॥ ८

‡ महाभारत, वनपर्व, २३२ अ०,

पतिव्रता महाभागा द्रौपदी प्रत्युवाच ताम् ॥ ९ ॥
असत्स्त्रीणां समाचारं सत्ये, मामनुपृच्छसि।
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनु कीर्त्तनम् ॥ १० ॥
अनुप्रश्नः संशयो वा नैतत् त्वय्युपपद्यते।
तथा ह्युपेता बुद्ध्या त्वं कृष्णस्य महिषी प्रिया ॥ ११ ॥
यदैव भर्त्ता जानीयात् मन्त्रमूलपरां स्त्रियम्।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद् वेश्मगतादिव ॥ १२ ॥
उद्विग्नस्य कुतः शान्ति, रशान्तस्य कुतः सुखम्।
नजातु वशगो भर्त्ता स्त्रियाः स्यामन्त्रकर्मणा ॥ १३ ॥
अमित्रप्रहितां श्चापि गदान् परमदारुणान्।
मूलप्रचारैर्हि विषं प्रयच्छन्ति जिघांसवः ॥ १४ ॥

इस उद्धरण से हमें दिखाना केवल यही है कि उस समय ऐसी दुष्टाभार्या भी थीं, जो द्रौपदी के वचन के अनुसार जन्त्र मन्त्र जादू टोना आदि का अभिचार अपने पतियों पर किया करती थीं। विशेषतः सत्यभामा सी कुलांगना का इस प्रकार का प्रश्न विशेष आश्चर्य जनक है, कि ऐसी २ चिन्ताएं इतने उच्च कुलों में भी हुआ करती थीं।

पारस्परिक घृणा

(६) उस समय की समाज में घर २ की फूट के साथ साथ जन सामाज भर में परस्पर घृणा का भाव भी बहुत था।

कहां रामायण काल में निषादाधिपति गुह और रामचन्द्र का मिलाप तथा सम्पूर्ण अयोध्यावासियों का परस्पर प्रेम व्यवहार; उसी प्रकार शबरीके हाथों से प्रेम से राम का बदरी फलों का ग्रहण, तथा भोजन, आदर्श है। दूसरी ओर महाभारत काल में परस्पर घृणा का भाव बड़े विकट रूप में विद्यमान है।

कर्ण से बीर, बलशालि को भी इस घृणा का पात्र होना पड़ा था। रथकार का नाम का वंशमात्र उस के जीवन भर में कलंक सा लगा रहा है। दूसरा उस समय विद्या का क्षेत्र भी इस घृणा के कारण संकुचित होगया था। नीच वर्ण वालों के लिये विद्या का द्वार बन्द हो गया था।

महाराजा युधिष्ठिर भीष्मपितामह से पूछते हैं—'हे पितामह मित्रता व सौहार्द से यदि कोई नीच जाति से उत्पन्न पुरुष को उपदेश दे तो उसे कोई दोष होता है कि नहीं ? यह बात आप मुझे ठीक २ बतलाइये क्योंकि धर्म की अत्यन्त सूक्ष्म गति है जहां कि मनुष्य प्रायः मुग्ध हो जाते हैं।

भीष्म बोले कि—

"मैं तुम्हें यथा क्रम सब कुछ कह दूंगा जैसा कि प्राचीन काल में उपदेश

जिह्वया यानि पुरुषस्त्वचा वाप्युपसेवते।
तत्र चूर्णानि दत्तानि हन्युः क्षिप्रमसंशयम् ॥ १५ ॥
जलोदरसमायुक्ताः श्वित्रिणः पलितास्तथा।
अपुमांसः कृताः स्त्रीभिः जडान्धबधिरास्तथा ॥ १६ ॥
पापानुगास्तु पापास्ता पतीनुपसृजन्त्युत ॥ १७ ॥

करते हुये ऋषियों के बारे में मैंने सुना है। हीन जाति पुरुष को कभी उपदेश नहीं करना चाहिये। ऐसे उपाध्याय को बहुत दोष लगता है।'

इस पर पितामह एक शूद्र भक्त की कथा सुनाते हैं कि एक शूद्र ऋषियों की सेवा करता था। पर वे उसे विद्या नहीं देते थे। अन्त में उस शूद्र ने भी तपस्वी धर्मात्माओं का अनुकरण करके धर्माचार, तपस्या तथा अतिथि आदि की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी। एक बार उसने अपने घर पर एक ऋषि को पितृ श्राद्ध के लिये बुलाया। ऋषि ने स्वीकार कर लिया। तिसपर शूद्र ने बड़े आदर से ऋषि को अर्घ्यपाद्यासनादि दिया और श्राद्धादि कर्म समाप्त कराया। काल वश दोनों की मृत्यु हुई। अगले जन्म में शूद्र तो उन्नत हो कर राज पुत्र बना और ऋषि अपने भाग्य से उस राजपुत्र का पुरोहित बना। बस इस लिए शूद्र को शिक्षा न देनी चाहिए, क्योंकि ऐसा नीचा देखना पड़ता है। *

पाठक महाशय देखते हैं कि किस प्रकार के विचित्र तथा युक्ति शून्य दृष्टान्तों से शूद्रों पर घृणा तथा द्वेष का भाव जमाया गया है। इस से यह भी प्रतीत होता है कि उस काल में पुरोहितों को राजा से नीच समझता था। परन्तु प्राचीन काल में पुरोहित वसिष्ठादिकों की प्रतिष्ठा से उस प्रकार का भान नहीं होता। जहां परमात्मा के राज्य में वह शूद्र जाति को छोड़ क्षत्र जाति को पासका वहा मनुष्यद्वेष के संसार में जन्मान्तर में शूद्रता का टीका न मिटा सका। ऐसी भी क्या घृणा जो जन्मान्तरों तक भी द्वेष का कारण बने।

नर बलियें

(७) महाभारत के समय में एक विचित्र अज्ञान तथा असभ्यता का दृश्य दीखता है जिसको देखकर रोमाञ्च हो जाता है।

* महाभारत, अनुशासन०, १० अ०

युधिष्ठिर उवाचः—

मित्रसौहार्दयोगेन उपदेशं करोति यः।
जात्यावरस्य राजर्षे दोषस्तस्य भवेन्नवा ॥ १ ॥

भीष्म उवाचः—

उपदेशो न कर्त्तव्यो जातिहीनस्य कस्य चित्।
उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य भाष्यते ॥

भारतवर्ष में पौराणिक माया से अच्छादित भारतवासी अन्धे धर्माभासों में फंसे हुए माता काली और चण्डी के आगे सहस्त्रों व लक्षों निष्पाप विचारे निस्सहाय जीवों का घात करके वलि चढ़ाते हैं। उसी प्रकार महाभारत काल में रुद्र देवता के आगे भी नरबलि तक का भोग चढ़ाया जाया करता था। यह नृशंस आचार भी धर्म के पवित्र मार्ग में पैर जमा चुका था। ऐसी नृशंस वलि का विधान वर्त्तमान में भी तान्त्रिक ग्रन्थों में बहुत मिल सकता है।

वृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध के दरबार में महाराजा श्रीकृष्ण भीम और अर्जुन दोनों प्रथम पुत्रों को लेकर विजय करने के लिए पहुंचे। उनके प्रति जरासन्ध बोला——

"मैंने तुम से कभी द्वेष नहीं किया, न तुम्हारे विरुद्ध कभी बिगाड़ किया है, तिस पर भी मुझ अनपराध को शत्रु किस हेतु से मानते हो।"

यह सुन कर कृष्ण बोले——

"जरासन्ध तुम ने सर्व लोक-निवासी राजाओं को कैद कर रक्खा है, इतना बड़ा अपराध कर के भी तुम अपने को निरपराध कहते हो। साधु सरल-स्वभाव राजाओं को भी बड़ा राजा किस प्रकार विना कारण मार सकता है। तैंने इन सब को रुद्र का उपहार करने का विचार कर रक्खा है। यह तुम्हारा किया महा-पाप हम पर भी लगता है। हम धर्म पर आचरण करते हुये यहां पर भी धर्म की रक्षा कर सकते हैं। मनुष्यों की वलि देना किसी ने भी नहीं देखा है। अब तुम नर-वलि से शंकर देव को क्यों तुष्ट करना चाहते हो। तुम्हारे सदृश अन्य कौन वृथामति होगा जो अपने ही वर्ण वालों को वलि का पशु बनावेगा. * ।"

* **महाभारत, सभा०, २२ अ०**

जरासन्ध उ०:——
न स्मरामि कदा वैरं कृतं युष्माभिरच्युत।
चिन्तयंश्च न पश्यामि भवतां प्रति वैकृतम्॥ १॥
वैकृते वाऽसति कथं मन्यध्वं मामनागसम्।
अरिं वै ब्रूत हे विप्राः सतां समय एष हि॥ २॥
कृष्ण उ०:——
त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकवासिनः।
तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम्॥ ८॥

इस पर जरासन्ध ने फिर यही उत्तर दिया कि मैंने इन सब राजाओं को जीता है और अब मैं देवता की वलि के लिये इन को ले आया हूं। अब मैं कैसे छोड़ दूं। क्षत्रिय का यह धर्म है कि शत्रु को जीत कर उन पर यथेच्छाचार कर सकता है ‡।

इस क्रूरता की कथा के साथ ही साथ कृष्ण के वचन से यह झलकता है कि नरवलि तो होनी ही होगी। अब इस से आगे हम पशुवलि का दृश्य भी पाठकों के सामने विस्तार से विवेचना पूर्वक आगामि अध्यायों में दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

यज्ञों में पशुवलि करना महाभारत के काल में कितना प्रचालित था और उसके विरुद्ध कितना आन्दोलन तात्कालिक विद्वान करते थे यह भी दिखाने का प्रयत्न किया जायगा। साथ ही इसके खानपान में मांस का कितना प्रचार था यह भी समीक्षा पूवक विवेचन किया जायगा।

इस अध्याय में धार्मिक सिद्धान्तों का आदर्श वैदिक सिद्धान्तों से कितना विभिन्न होगया है। भाग्य का मानना मूर्ति और तीर्थों में अन्धविश्वास करना, शकुनों पर भरोसा करना, पति पत्नी में छल कपट का व्यवहार, तथा देवताओं के सामने नरवलि तक की प्रथाओं का प्रचार, महाभात के समय से होना प्रारम्भ होगया था; यह सब यथासम्भव विस्तार तथा स्पष्टता से दिखाया गया है।

राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपतिसत्तम।
इह राज्ञः सन्निगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥ ९॥
अस्मांस्तदेन उपगच्छेत् कृतं वार्हद्रथ त्वया।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः॥ १०॥
मनुष्याणां समालम्भो नच दृष्टः कदाचन।
तत् कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शङ्करम्॥ ११॥
सवर्णो हि सवर्णानां पशुसंज्ञां करिष्यसि।
कोन्य एवं यथा हि त्वं जरासन्ध वृथामतिः॥ १२॥

‡ **जरा० उ०—**
क्षत्रियस्यैतदेवाहुर्धर्मं कृष्णोपजीवनम्।
विक्रम्य वशमानीय कामतो यत्समाचरेत्॥ २८॥
देवतार्थमुपाहृत्य राज्ञः कृष्ण कथं भयात्।
अहमद्य विमुच्येयं क्षात्रं व्रतमनुस्मरन्॥ २९॥

——०——

तृतीय-अध्याय

वर्ण-व्यवस्था

प्रथम प्रतिपादित अध्यायों में साधारण सामाजिक दशा तथा धार्मिक सिद्धान्त के विषय में कहा गया था। इस अध्याय में महाभारत कालीन, वर्णव्यवस्था का निर्णय महाभारत से करेंगे।

पौराणिकों ने जाति से वर्णव्यवस्था स्वीकार कर के बड़ी अनुदारता दिखाई है। जिस के प्रत्यक्ष दुष्परिणाम भारत पर द्वेष तथा अज्ञान फैले हुये हैं। इस का प्रारम्भ भी वास्तव में महाभारत के काल से ही हो गया था।

बचन और क्रिया में विरोध

(१) यद्यपि महाभारत के ग्रन्थ में बड़े उदार विचारों की विशेष कर वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में, उपलब्धि होती है, परंतु साथ ही ऐसा भी प्रतीत होता है कि व्यवहार में इतनी उदारता नहीं थी।

जन्म से वर्ण विभाग मानना या जन्म से मनुष्य का मान निकालना, प्रायः महाभारत के बहुत से दृश्यों में मिलता है। उस समय के ब्राह्मण विद्वानों तक ने भी अपने से इतर वर्ण वालों को विद्या आदि दान देने में बहुत संकोच तथा घृणा करना प्रारम्भ कर दिया था।

द्रोण और एक लव्य

उदाहरणार्थ द्रोणाचार्य ने निषादराज हिरण्यधनुष के पुत्र एक लव्य नामक किरात को धनुः शिक्षा सिखाने से निषेध कर दिया था *।

इसी प्रकार रामाचार्य ने क्षत्रियों को भी धनुर्वेदादि की शिक्षा न देने का दृढ़ प्रण कर लिया था।

---

* **महा०, आदि, १३४,**

ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम च॥ ३१॥
न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन्।
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञ स्तेषामेवाऽन्ववेक्षया॥ ३२॥

इसी लिये कर्ण को ब्राह्मण का रूपधारण कर छल कपट से धनुर्वेद पढ़ना पड़ा था। तिस पर भी अचानक एक घटना से उसकी पोल खुल जाने से राम ने कर्ण को शाप तक दे दिया था।

सूतपुत्र कर्ण और परीक्षा रंगस्थल

[२] सब से ज्वलन्त उदाहरण इस प्रकरण में महारथ कर्ण का है। यह इतना विद्वान्, बलशाली, अप्रतिम, महारथ होता हुआ भी अपने को सूतपुत्र कहलाने से न रोक सका। सारी जनता इस ही कारण से इस महारथ के विरोध करने को तय्यार थी।

जिस समय युधिष्ठिर दुर्योधनादि सब राजपुत्र श्री द्रोणाचार्य की शिक्षा की परीक्षा देने के लिये रंगस्थल में उतरे थे, और सभी वीरों ने अपने २ बल तथा शिक्षा के अनुरूप धनुर्विद्या का परिचय दिया था। उस समय अर्जुन के नाना शस्त्रास्त्र कलाकौशल को देख कर कर्ण भी कवच धारण कर, धनुष बाण, तलवार आदि से सुशोभित होकर, अपने कृत्यों को दिखाने के अभिप्राय से आये और प्रतिज्ञा की कि अर्जुन के सदृश मैं भी शस्त्रास्त्र कौशल दिखाऊंगा।

उस समय अर्जुन ने ललकार कर कहा कि:—"तू बिना बुलाये युद्ध में आता है और बिना बुलाये बोलता है, इस से तेरा सिर काट कर तुझे ऐसा करने वालों के लोक में पहुंचा देता हूं।"

इस पर कर्ण ने भी कहा—

"यह रंगस्थल सब के लिये बराबर है। सब लोग बल वीर्य्य-शाली हैं और धर्म भी उनके बल का अनुगामी है। तेरे थोथे बाणों से यहां क्या होगा। अभी तेरा सिर तेरे गुरु के सामने काट देता हूं।" इस पर द्रोणाचार्य्य की आज्ञा से अर्जुन लड़ने को तय्यार हो गया।

दोनों वीरपुंगव रंगस्थल में लड़ने को तय्यार थे। और वीरकर्म करने की प्रतीक्षा में थे इस अवसर पर कृपाचार्य बोले—

"यह अर्जुन पाण्डुराजा का पुत्र, कुरुवंश में पैदा हुआ, कुन्ती का छोटा पुत्र, हे कर्ण! तेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करेगा। हे महाबाहो! तुम भी अपनी माता पिता व कुल का परिचय दो और कहो कि तुम किन राजाओं के वंश में से हो। तब

इस सब बातों को जानकर ये निर्णय होगा कि पार्थ अर्जुन तुम से युद्ध करेगा वा नहीं । जिन के आचार और कुलहीन होते हैं उन से राज पुत्र युद्ध नहीं किया करते । +

कृपाचार्य के इस प्रकार के अवज्ञा-जनक वचन सुन कर कर्ण लज्जित हो गया ।

दुर्योधन ने उसी समय कर्ण को अंगराज्य पर अभिषिक्त कर दिया । तिसपर भी आक्षेप पूर्वक पाण्डवों ने विचार किया कि यह तो सूत पुत्र है । भीमसेन बोला—

"हे सूत पुत्र तुझे अर्जुन के हाथ से प्राण-वध कराना शोभा नहीं देता । तू शीघ्र ही अपने कुल के योग्य अश्वों को हांकने के लिये कशा हाथ में ले ले । अंग देश का राज्य भी तुझे भोगने का अधिकार नहीं हैं, जिस प्रकार यज्ञ में कुत्ते को पुरोडाश-हवि के लेने का अधिकार नहीं हैं ।" * यह वाक्य सुन कर कर्ण सूर्य को देख कर अत्यन्त लज्जित हुआ ।

\+ महाभारत० आदि०—१३८ अ०

तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्वन्द्व युद्ध समाचारे कुशलः सर्व धर्मवित् ॥ ३० ॥
अयं पृथायास्तनयः कनीयान् पाण्डुनन्दनः :
कौरवो भवता सार्द्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥ ३१॥
त्वमप्ये वं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् ।
कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणः ॥ ३२ ॥
ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा नवा ।
वृथा कुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः ॥ ३३ ॥

—:o:—

* महाभारत, आदिपर्व, अ० १३६,

तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति सञ्चिन्त्य पाण्डवाः ।
भीमसेनस्तदा वाक्य मब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ५ ॥
न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् ।
कुलस्य सदृशं सूत प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६ ॥
अङ्गराज्यं ततो नार्ह स्युपभोक्तुं नराधम ।
श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाऽध्वरे ॥ ७ ॥

इतने ही से स्पष्ट है कि जन्म भी उस जमाने में एक घृणा का विषय था। महाभारत साहित्य में वास्तव में वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त गुण-कर्मस्वभाव से ही निर्णय किया गया है जो आगे दिखाया जायगा परन्तु प्रथम यही देखना समुचित है कि वर्णव्यवस्था के—धर्म शास्त्रों के आधार पर, गुण-कर्मानुसार होते हुये भी उस समय का व्यावहारिक संसार जन्म से व्यवस्था करने लग गया था।

कर्ण और द्रौपदी स्वयंम्बर

(३) दूसरा इस प्रकरण में ज्वलन्त उदाहरण कर्ण का ही स्वयम्बर के समय का अपमान है। द्रौपदी-स्वयम्बर के समय जब सब शस्त्रधारी लोग अपने २ बल तथा विद्या की परीक्षा कर चुके, तो कर्ण महाबली भी धनुर्बाण हाथ में लेकर लक्ष्य वेध करने को उद्यत हुवे; तिस पर द्रौपदी बोली:—

"मैं सूत को नहीं वरती हूं।" †

इस पर भी कर्ण सब विद्या व बल के वैभव होते हुए भी अपनी कुलहीनता पर लज्जित होकर शस्त्र त्यागने को बाधित हुए।

जन्महीनता ही विदुर का बहुत से स्थानों पर अपमान का कारण भी हुआ है, जिस से महाभारत के विज्ञ पाठक अच्छी तरह से परिचित हैं।

अब हम महाभारत के आधार पर निर्णीत वर्ण-व्यवस्था का समीचीन रीति से प्रतिपादन करते हैं। पाठक स्वयं देखेंगे कि कितना आदर्श विचार था और कितना हीन आचार तथा व्यवहार था।

सर्प-युधिष्ठर सवाद ब्राह्मण का लक्षण

(४) ब्राह्मण और शूद्र का स्पष्ट निर्णय महाभारत में, वनपर्व में, सर्प युधिष्ठिर संवाद में बड़ी विचार शैली से किया है

राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई को नहुष सर्प ने बांध लिया है। तिसपर युधिष्ठिर महाराज स्वयं इस स्थान पर आते हैं और किसी प्रकार से उसे प्रसन्न करके अपने भाई की रक्षा करना चाहते हैं।

---

† महाभारत, आदि पर्व, अ० १८६.
दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्य मुच्चै र्जगाद "नाऽहं वरयामि सूतम्" ॥ २३ ॥

सर्प ने अपना परिचय देते हुये कहा कि मैं अगस्त्य मुनि के शाप से यहां सर्प रूप में गिर गया हूं, मैं भूखा हूं, मेरा आहार तुम्हारा भाई ही होगा। तिस पर महाराजा ने बहुत पूछा और विनय की। सर्प ने कहा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तो तुम्हारा भाई छोड़ा जासकता है।

सर्प बोले—हे राजन् ब्राह्मण कौन होता है। और सम्पूर्ण जगत् में जानने योग्य वस्तु क्या है। यही तुम मुझे बतलाओ मैं तुम्हारी लोकोत्तर मति का तुम्हारे वाक्यों से पता लगाऊंगा। (‡)

युधिष्ठिर का उत्तर दर्शनीय है, महाराज उत्तर देते हैं—

सत्याचरण दान देना, क्षमा करना, शील का रखना, क्रूरता न करना, तप का आचरण, करना और अशुद्ध वस्तुओं से घृणा करना, ये बातें जिस स्थान में देखी जावें, हे महा सर्प! वही ब्राह्मण स्मृतिकारों ने कहा है।

पुनः सर्प प्रश्न करते हैं—

हे राजन्! चारों वर्णों के लिए सत्य और ब्रह्म ही प्रमाण भूत है; परन्तु शूद्रों में भी सत्य बोलना, दान देना, क्रोधादि का न करना, क्रूरता परित्याग, बुरी घृणित वस्तुओं से घृणा करना, ये सब शुभ-गुण पाये जाते हैं।

युधिष्ठिर समाधान करने लगे:—

शूद्र में जो चिन्ह होता है, वह द्विज में नहीं होता है। वर्त्तमान में भी जिस को शूद्र कहा जाता है, वह शूद्र नहीं और जिस को ब्राह्मण कहते हैं, वह ब्राह्मण नहीं। परन्तु जिस स्थान पर पूर्वोक्त वृत्त शील व आचार पाया जाय वही ब्राह्मण होता है। और जिस स्थान पर यह वृत्त वा शील न हो उस को शूद्र कहना चाहिये।"

इस पर फिर सर्प शंका करते हैं:—

(‡) महाभारत, वनपर्व०, १८० अ०,

सर्प—युधिष्ठिर-संवादः—

सर्प उ०—ब्राह्मणः को भवेद् राजन्, वेद्यं किञ्च युधिष्ठिर।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यै रनुमिमीमहे॥ २०॥
युधि० उ०, सत्यं, दानं, क्षमा, शील मा नृशंस्यं, तपो, घृणा।
दृश्यन्ते, यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः॥ २१॥

हे राजन् यदि शील से ही तुम्हारे मत में ब्राह्मण निश्चय किया जाता है तो आयुष्मन्! जब तक कृति या कर्म न होंगे तब तक जाति तो सर्वथा व्यर्थ ही है। *

युधिष्ठिर बोले:—

हे महासर्प हे महामते मनुष्य ही एक जाति है वर्णों के संकर हो जाने से जाति की परीक्षा करना बहुत कठिन है। सदा से ही लोग सब ही प्रकार की स्त्रियों में सब ही प्रकार के पुरुष अपनी सन्तानोत्पत्ति करते हैं। और सब का ही वाणी बोलना, मैथुन करना, जन्म लेना, और मृत्यु को प्राप्त होना, बराबर है।

---

* सर्प उवाचः—चातुर्वर्ण्यं प्रमाणञ्च सत्यञ्च ब्रह्म चैव हि।
शूद्रेष्वपि च सत्यञ्च दानमक्रोध एव च ॥ २३ ॥
आनृशंस्य महिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उ०—शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥ २५ ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रै तन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥

सर्पउवाचः—यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः।
वृथा जातिस्तदायुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते ॥ ३० ॥

यु० ष्ठि० उ०—जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥ ३१ ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ् मैथुन मथो जन्म मरणञ्च समं नृणाम् ॥ ३२ ॥
इदमार्षं प्रमाणञ्च ये यजामह इत्यपि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्वदर्शिनः ॥ ३३ ॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसः जातकर्म विधीयते।
तदाऽस्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ ३४ ॥
तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते।
तस्मिन्नेवं मतिद्वैधे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥
कृतकृत्याः पुनः वर्णाः यदि वृत्तं न विद्यते ॥
संकरस्तत्र नागेन्द्र बलवान् प्रसमीक्षितः ॥ ३६ ॥
यत्रेदानीं महासर्प संस्कृतं वृत्तमिष्यते।
तं ब्राह्मण महं पूर्वं मुक्तवान् भुजगोत्तम ॥ ३७ ॥

ऋषियों का भी प्रमाण है कि:—"तुल्य पञ्चजन मिलकर यज्ञ करते हैं।" इस से शील ही को प्रधान मानना योग्य है। इस प्रकार का तत्वदर्शी लोगों का मत है। नाभि के बढ़ने से पूर्व २ ही मनुष्य का जात कर्म संस्कार किया जाता है। बाद उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य होता है। जब तक वेद में इस मनुष्य का जन्म नहीं होता तब तक वह शूद्र के तुल्य ही है।

इसी प्रकार मतभेद देखकर मनुमहाराज ने कहा यदि वृत्त न हो तो सब वर्ण चौपट हो जाते हैं। उन्हों में भी संकर बहुत प्रबलता से हुआ २ है अतः जहाँ संस्कारयुक्त सद् शील दीखता है "उसको मैं ही सब से प्रथम ब्राह्मण कहूंगा।"

युधिष्ठिर को विदा करने के समय भी उपसंहार करते हुवे सर्पराज बोले—

सत्य, दान, तप, अहिंसा, दम और धर्मपरायणता मनुष्यों को बनाने वाले हैं और जाति और कुल कुछ भी साधक नहीं होते हैं। †

कितने स्पष्ट शब्दों में वास्तविक ब्रह्मण के गुण तथा लक्षण युधिष्ठिर ने कहे हैं। ऐसे ही भाव प्रायः बड़े २ कुलीन व्यक्तियों के मुख से यत्र तत्र बड़ी उदारता के साथ निकले हैं।

दुर्योधन द्वारा कर्ण के पक्ष का समर्थन

(५) इसी प्रकार जब भीमसेन ने कर्ण को रंगभूमि-शाला में सूतपुत्र कहकर पुकारा था उसी समय प्रत्युत्तर में दुर्योधन के शब्द तथा कर्ण के अपने बचन भी सुनने योग्य हैं।

पूर्वोक्त कृपाचार्य के सापमान प्रश्न के उत्तर में दुर्योधन बोले:—

"हे आचार्य तीन प्रकार की योनि होती हैं, जिन से राजाओं के शास्त्र का निर्णय होता है, प्रथम सत्कुलीनता, द्वितीय शूरता, तृतीय सेना का शासन करना। यदि

† महाभारत, बनपर्व, १८१ अ०,

सत्यं दमस्तपो दानमहिंसा धर्म नित्यता।
साधकानि सदा पुंसां न जातिर्न कुलं नृप॥ ४२॥

कर्ण के राजा न होने से कर्ण से अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता, तो लो यह मैंने कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया *"

इसी प्रकार पूर्वोक्त भीमसेन के अपमान जनक वचनों के उत्तर में दुर्योधन ने कहाः—

"हे वृकोदर इस प्रकार का कहना तेरा सर्वथा ठीक नहीं है। क्षत्रियों की मुख्य वस्तु बल ही होती है, इस लिये अर्जुन को अवश्य युद्ध में आना चाहिये। शूर लोगों और नदियों का उत्पत्तिस्थान बड़ी कठिनता से ज्ञात होता है। चराचर को व्याप्त करने वाली अग्नि भी जल से उत्पन्न होती है। दानवों को मारने वाले वज्र की भी रचना दधीचि की हड्डियों से हुई थी। क्षत्रियों की सन्तान होकर भी वे ब्राह्मण प्रसिद्ध हुवे जिस प्रकार विश्वामित्रादिकों ने अविनश्वर ब्राह्मणता को पालिया। हमारा आचार्य द्रोणाचार्य, जो शस्त्रधारियों में से सब से श्रेष्ठ है एक कलश से पैदा हुवा है। गौतम के वंश में से सरकण्डों में गौतम पैदा हुवे। हे पाण्डवो तुम्हारा भी जन्म कैसे हुवा था, यह भी मैंने जान लिया है। सोचो तो सही, कि सूर्य के सदृश प्रकाश वाले कवचधारी शस्त्रास्त्र सज्जित वीर सदृश सिंह को क्या कोई मृग पैदा कर सकता है। ‡"

* महाभारत आदि० १२८ अ०,

आचार्य त्रिविधा योनिः, राज्ञां शास्त्रविनिश्चये।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥ ३५ ॥
यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाऽराज्ञा योद्धुमिच्छति।
तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥ ३६ ॥

‡ वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम्।
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ॥ १० ॥
शूराणाञ्च नदीनाञ्च दुर्विदाः प्रभवाः किल।
सलिलादुत्थितो वन्हि येन व्याप्तं चराचरम् ॥ ११ ॥
दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम्।
आग्नेयः कृत्तिका पुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि ॥ १२ ॥
श्रूयते भगवान् देवः सर्वगुह्यमयो गुहः।
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाताः ब्राह्मणा स्ते च ते श्रुताः ॥ १३ ॥
विश्वामित्र प्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम्।
आचार्यः कलशज्जातो द्रोणः शस्त्र भृतां वरः ॥ १४ ॥

दुर्योधन के इन्हीं शब्दों से कैसा स्पष्ट है कि इस समय जन्म के कारण घृणा केवल द्वेष तथा स्पर्धा से हो रही थी। दुर्योधन के स्पष्ट शब्द भी इस बात के साक्षी हैं कि प्रायः व्यवहार में भी बहुत स्थानों पर गुणकर्म अनुसार ही वर्ण-व्यवस्था सम्मत थी। परन्तु काल पर्याय से उस पर अब आचरण सर्वथा हटता जारहा था।

भृगु भारद्वाज संवाद, वर्णोत्पत्ति और व्यवस्था

(६) इसी वर्ण-व्यवस्था की समस्या को सरल करने के लिये महाभारत का भृगु भारद्वाज का संवाद भी बड़ा आवश्यक है।

जिज्ञासु भारद्वाज की जिज्ञासा को शमन करते हुवे सृष्टि विषयक प्रकरण में भृगु महाराज कहते हैं—

"सब से प्रथम ब्रह्मा ने अपने तेज से ही सूर्यसदृश चमकने वाले ब्राह्मण प्रजापतियों का ही निर्माण किया। तब सत्य, धर्म, तप, ब्रह्म, आचार और शौचको स्वर्ग की प्राप्ति के लिये बनाया। तदनन्तर देवदानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, सर्प, यक्ष, राक्षस, नाग, मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य भूतसंघों के वर्णों को भी ब्रह्मा ने निर्माण किया। ब्राह्मणों का श्वेत, तथा क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला और शूद्रों का काला रंग बनाया।" *

गौतमस्यान्ववाये च शरस्तम्बाच्च गोतमः।
भवतश्चय यथाजन्म तदप्या गर्मितं मया॥ १५॥

सकुण्डलं सकवचं सर्वलक्षण लक्षितम्।
कथमादित्यसदृशं मृगो व्याघ्रं जनिष्यति॥ १६॥

*** महाभारत—शान्ति० अ० १८८।**

असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्।
आत्म तेजोऽभि निर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान्॥ १॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम।
येचान्ये भूतसंघानां वर्णास्तांश्चापि निर्ममे॥ ४॥

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥ ५॥

भारद्वाज महाराज पूछते हैं— *

"हे मुने ! किस कर्म से ब्राह्मण किस से क्षत्रिय किससे वैश्य और किससे शूद्र होते हैं यह बात बताइये !"

भृगु बोले—

"जो जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत हो, शुद्ध हो, वेद पठन से सम्पन्न हो, शमदमादि छहों कर्मों में स्थित हो, शुद्धाचार युक्त, अवशिष्ट यज्ञ-शेष (विघस) का भोजन करने वाला हो, गुरु का प्रिय हो, नित्य वृतसम्पन्न, सत्य-परायण हो, वही ब्राह्मण होता है।"

"जहां सत्य, दान, अद्रोह, दया, लज्जा, दुष्ट वस्तुओं से घृणा, और तप देखा जाय वह ब्राह्मण कहलाता है। वेदाध्ययन के साथ जो क्षत्र व वीरता के कार्यों को करे, दान करने तथा कर आदि लेने में रत हो, वह क्षत्रिय कहाता है।"

"जो पशुओं के वास्ते कार्य में प्रवृत्त हो, कृषि द्वारा धन ग्रहण करे, शुद्ध वेदाध्ययन करता रहे, वो वैश्य कहलाता है।"

"जो सब कुछ बिना विवेक के खाजाय, सब प्रकार के कार्य करने में प्रवृत हो जाय, वेद का त्याग करदे, और आचार से हीन हो, वही शूद्र कहलाता है।"

भारद्वाज प्रश्न करते हैं —

चारों वर्णों के वर्ण यदि केवल वर्ण अर्थात् रंगों से ही भिन्न २ होते हैं इस प्रकार से तो सभी वर्णों में वर्ण संकर दिखाई देता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिन्ता, शोक, भूख तथा श्रमादि सभी को होते हैं तो फिर वर्ण कैसे भिन्न २ हो जाता है।

* महाभारत शान्ति० १८९ ॥

भारद्वाज उवाच—

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद् ब्रूहि वदतां वर ॥ १ ॥

भृगुरुवाच—

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः।
शौचाचारस्थितः सम्यग् विघसाशी गुरुप्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते॥

पसीना, मूत्र, शौच, कफ, पित्तादि भी सब के होता है तो फिर किस प्रकार वर्ण भिन्न २ हो जाता है । चर और अचर दोनों की ही असंख्य जातियें हैं नाना प्रकार वर्ण [रंग] वाले उनका वर्ण निश्चय किस प्रकार होता है ।

भृगु महाराज उत्तर देते हैं—

वर्णों में परस्पर कुछ भी विशेष नहीं यह सब ब्रह्ममय-जगत् है । पहले ब्रह्मा ने सृष्टि बनायी फिर अपने कर्मों के अनुसार वर्ण होगये । काम और भोग विलास को प्रेम करने वाले, तीक्ष्ण स्वभाव वाले, क्रोध युक्त, साहसी, अपने धर्म को छोड़ कर लाल रंग शरीर वाले द्विज ही क्षत्रिय बन गये ।

भारद्वाज उवाच—

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते ।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्ण संकरः ॥ ६ ॥
कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः ।
सर्वेषां न प्रभवति ? कस्माद् वर्णो विभज्यते ॥ ७ ॥
स्वेद-मूत्र-पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् ।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद् वर्णो विभज्यते ॥ ८ ॥
जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः ।
तेषां विविध-वर्णानां कुतो वर्ण-विनिश्चयः ॥ ९ ॥

भृगुरुवाच—न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्तस्वधर्माः रक्ताङ्गाः ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजाः वैश्यतां गताः ॥ १२ ॥
हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टाः ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १४ ॥
इत्येतैः कर्म भिर्व्यस्ताः द्विजा वर्णान्तरं गताः ।
धर्मो यज्ञः क्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १५ ॥
इत्येते चतुरो(?) वर्णाः येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमास्तथा । ॥ १६ ॥
ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः ।
तेषां बहुविधा स्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ॥ १७ ॥
पिशाचा राक्षसाः प्रेताः विविधा म्लेच्छ जातयः ॥ १८ ॥

(?) चिन्हितं चिन्त्यम् । अथवा आर्षः प्रयोगः

जिन्हों ने अपनी जीवन वृत्ति गौओं और खेती बाड़ी से की और पीले रंग के थे, वे अपने कर्म को न करके द्विजलोग वैश्य बन गये। हिंसा व झूठ के प्यारे लोभी सब कार्यों से जीवन यात्रा करने वाले कृष्ण रंग के शुद्धि से रहित होते हुवे द्विज ही शूद्र बनगये। इसप्रकार कर्मों द्वारा पृथक् २ हुवे द्विज लोग नाना वर्णों में विभक्त होगये।

धर्म और यज्ञ का अनुष्ठान कभी भी रोका नहीं है इस हेतु से ब्रह्मा ने ये चारों वर्ण बनाये थे, जिनके लिये वेदमयी वाणी का उपदेश किया था। परन्तु लोभ के वश होकर अज्ञान में फंस गये। ब्रह्मशास्त्र अर्थात् वेद में निष्ठ हुवे ब्राह्मण होते हैं। उन का तप नष्ट नहीं होता है। जो लोग वेद को नहीं जानते हैं वे अद्विज हैं। उन्हीं की बहुत प्रकार की पिशाच, राक्षस, प्रेतादि, नाना म्लेच्छादि जातियें हैं।

शूद्र में जो चिन्ह होता है वह द्विजों में नहीं होता शूद्र (जिसे लोग शूद्र समझते हैं) शूद्र नहीं होता इसी प्रकार (लोग जिसे ब्राह्मण समझते हैं) वह ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं। परन्तु शौचाचार से सदा युक्त होना, सदाचार से समन्वित होना, प्राणियों में दया होना, बस यही द्विजातियों का लक्षण है।

भीष्म और राम क्षत्रिय का लक्षण

(७) इसी गुण कर्म के सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर भीष्म पितामह जामदग्न्य राम से युद्ध करने के पहले कहते हैं:—

सत्यं दान मथाद्रोह आनृशंस्यं तपो घृणा
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ४ ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन सङ्गतः ।
दानादानरति र्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृश्या दानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति सञ्ज्ञितः ॥ ६ ॥
सर्वभक्षरतिः नित्यं सर्वकर्मं करो ऽशुचिः ।
त्यक्त वेदस्त्व नाचारः सवै शुद्र इति स्मृतः ॥ ७ ॥
शूद्रे त्वेतद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
नवै शूद्रोभवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥ ८ ॥
शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम् ॥ १८ ॥

"हे राम तुम ने प्रहार करने में क्षत्र धर्म का आश्रयण किया है क्योंकि शस्त्र धारण करने से ही ब्राह्मण क्षत्रिय होजाता है।"*

भीष्म युधिष्ठिर संवाद, वर्णपरिवर्तन

(८) इसी प्रकार भीष्मपितामह से महाराज युधिष्ठिर प्रश्न करते हैं। हे महाराज आपने ब्राह्मणता को बड़ा दुष्प्राप्य कहा है। विश्वामित्र ने भी पहले काल में ब्राह्मणता प्राप्त की थी। वीतहव्य नाम के राजा ने भी ब्राह्मणता को प्राप्त किया था। हे पितामह वह किस कर्म से ब्राह्मणता पागये वर से या तप से ये सब आप विस्तार पूर्वक कहिये।

इस युधिष्ठिर के प्रश्न से भी स्पष्ट यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मणता पाना कर्मों से ही हो सकता है। ‡

यक्ष युधिष्ठिर संवाद ब्राह्मण वर्ण का निर्णय

(९) इसी व्यवस्था को देने वाला यक्ष युधिष्ठिर संवाद भी कभी भूलना न चाहिये। †

यक्ष युधिष्ठिर से पूछते हैं:—

---

* महाभारत उद्योगपर्व १८० अ० —

प्रहारे क्षत्र-धर्मस्य यं त्वं राम समाश्रितः।
ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥२५॥

‡ महाभारत अनुशासन० ३० अ० —

विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २ ॥
वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः ॥ ३ ॥

† महाभारत, वन०, यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद, ३१२ अ०—

यक्ष उ०—

राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम् ॥ १०५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥ १०६ ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ १०७ ॥

"हे राजन् ब्राह्मणता किस प्रकार प्राप्त होती है क्या कुल से, शील से, स्वाध्याय से या गुरु से पढ़ने से ? यह ठीक निश्चय से मुझे बतलाइये।"

इस पर युधिष्ठिर बोले—

हे प्रियवत्स! न कुल, न स्वाध्याय और न ही गुरु मुख से अध्ययन, द्विजत्व में कारण होते हैं। परन्तु एक मात्र शील या वृत्त ही कारण होता है। इस में कोई संशय नहीं। वृत्त की रक्षा विशेष कर ब्राह्मण को बड़े प्रयत्न से करनी चाहिये। जिसका वृत्त नष्ट नहीं हुआ वह नष्ट नहीं होता, परन्तु जिसका शील नष्ट होजाता है वह नष्ट होजाता है।

पढ़ने वाले व पढ़ाने वाले, और भी जो शास्त्रों की चिन्ता करते हैं, वे सब व्यसन में पड़े हुवे मूर्ख होते हैं। परन्तु जो क्रियावान् धर्मतत्पर हो वही पण्डित होता है। चारों वेदों का ज्ञाता भी यदि दुराचारी है, तो वह शूद्र से अधिक नहीं परन्तु जो अग्निहोत्र नियम से करनेवाला इन्द्रियों को दमन करने वाला होता है वही ब्राह्मण कहा जाता है।

भीष्म का राज धर्मोपदेश सब वर्णों को चार आश्रमों का अधिकार

(१०) इसी प्रकार राजधर्मों का उपदेश करते हुवे भीष्मपितामह राजधर्म प्रकरण में कहते हैं कि "चारों वर्ण चारों आश्रमों का सेवन कर सकते हैं। वह शूद्र जिसने सेवा खूब की है और गृहस्थ करके सन्तानोत्पत्ति भी करली है और जिसको राजा ने आज्ञा दे दी है चाहे शेष थोड़ा काल भी है यदि वह दश धर्म के लक्षणों पर आचरण करता है तो उसके लिये सब आश्रमों का विधान है। परन्तु वह भिक्षा ग्रहण करते हुवे गृहस्थी को आशीर्वाद न देवे। उसी प्रकार हे राजेन्द्र युधिष्ठर अपने २ धर्मों पर चलते हुवे वैश्य और क्षत्रियों का भी अधिकार है। अपना कार्य समाप्त करके वृद्धावस्था में राजा के लिये भी उचित सेवा करके राजा की आज्ञा से आश्रम ग्रहण कर सकता है।"

पठका पाठका श्चैव ये चान्ये शास्त्र चिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डितः॥ १०८॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः न शूद्रादतिरिच्यते।
योग्नि होत्र परो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ १०९॥

"धर्मपूर्वक वेदों को पढ़कर तथा राज शास्त्रों को जानकर सन्तानादि कर्म करके, सोम का सेवन करके, प्रजाओं का पालनादि करके, राजसूयादि यज्ञ करके, प्रशस्त क्षत्रिय को राज्य देकर, वह भी अन्य आश्रम को ले सकता है।"*

पाठक अपने आप परिणाम निकाल सकते हैं किस प्रकार गुण कर्मानुसार प्राचीन महाभारत काल में भी वर्णाश्रम व्यवस्था का निर्धारण था।

इसी प्रकार राजधर्म का ही उपदेश देते हुवे पितामह अन्यत्र कहते हैं कि—

"तीनों विद्याओं को जानने वाले ब्राह्मणों की जो गति है और जो उन ब्राह्मणों के आश्रमादि बतलाये हैं वही सब कर्म ब्राह्मण के लिये मुख्य हैं। परन्तु जो ब्राह्मण उसको त्याग करके अन्यथा आचरण करे उसका शूद्र की तरह शस्त्र से बध किया जाना चाहिये।" †

* महाभारत शान्ति० ६३ अ०

शुश्रूषोः कृतकार्यस्य कृतसन्तान कर्मणः।
अभ्यनुज्ञातराजस्य शूद्रस्य जगतीपते ॥ १२ ॥
अल्पान्तरगतस्यापि दशधर्म गतस्यवा।
आश्रमाः विहिताः सर्वे वर्जयित्वा निराशिषम् ॥ १३ ॥
भैक्षचर्यां ततः प्राप्तः तस्य सद्धर्मचारिणः।
तथा वैश्यस्य राजेन्द्र राज पुत्रस्य चैव हि ॥ १४ ॥
कृत कृत्यो वयोतीतो राज्ञः कृतपरिश्रमः।
वैश्यो गच्छेद नुज्ञातो नृपेणाश्रम संश्रयम् ॥ १५ ॥
वेदानधीत्य धर्माणि राजशास्त्राणि चानघ।
सन्तानादीनि कर्माणि कृत्वा सोमं निषेव्य च ॥ १६ ॥
पालयित्वा प्रजाः सर्वाः धर्मेण वदतां वर।
राजसूयाश्वमेधादीन् मखानन्यांस्तथैव च ॥ १७ ॥
स्थापयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पांडव।
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ ॥ १८ ॥
अन्तकाले च सम्प्राप्ते य इच्छेदाश्रमान्तरम्।
सोऽनुपूर्वादाश्रमाद् राजन् गत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

† महाभारत शान्ति० ६५ अ०—

त्रैविद्यानां या गतिर्ब्राह्मणानां,
ये चैवोक्ताश्चाश्रमा ब्राह्मणानाम् ॥
एतत्कर्म ब्राह्मणस्याहुरग्र्यम्
अन्यः कुर्वन् शूद्रवच्छस्त्रवध्यः ॥ ८ ॥

इन सभी प्रकरणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन महाभारत काल में वर्णव्यवस्था का निर्णय अवश्य गुण कर्म स्वभाव से ही मुख्यतया किया जाता था। जन्म को ध्यान में रखकर किया गया विचार महाभारत में बहुत ही न्यून उपलब्ध होता है।

वर्णव्यवस्था प्रकरण को दृष्टि रखकर जहां तक हमने अनुशीलन किया है ऐसा ही प्रतीत होता है कि उस समय वर्णव्यवस्था मानी गुणकर्म से जाती थी। परन्तु जनता की अवस्था नीच होने से कतिपय स्थानों पर व्यवहार क्षेत्र में जन्म को भी बड़ा मान दिया गया है।

एवं हम वर्णव्यवस्था विषयक व्यवस्था भी यथाशक्ति करके इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

अगले अध्याय में पाठकों के लिए यज्ञ में पशुहिंसा तथा समांस भोजन के बारे में महाभारत का अनुशीलन करेंगे। इस से पौराणिक पशु बलि तथा श्राद्धादिकों और व्यवहार में मांस भोजन किस प्रकार प्रचलित हुआ और कितने अंश में युक्तियुक्त तथा युक्ति विरुद्ध और अज्ञान प्रवृत्त है इसका निर्णय स्वतः होजायगा।

इति तृतीय-अध्याय

चतुर्थ अध्याय

मांस भोजन तथा यज्ञ में पशु-हिंसा

पाश्चात्य विद्वानों की आलोचना से ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषियों का भोजन मांस भी था। प्रायः बहुत से पशुओं का मांस खाने का विधान स्मृतिकार तथा धर्म सूत्रकारों ने किया है। इसी प्रकार यज्ञों में बलिये भी पशुओं की दी जाती थी। परन्तु वास्तविक अनुशीलन बताता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में मांस खाया सर्वथा ही नहीं जाता था। इसी प्रकार यज्ञ में भी पशु बध का करना भी सर्वथा ही नहीं था।

यह ठीक है कि महाभारत के काल तक यह सब प्रचलित हो गया था। मांस साधारण भोजन भी बन चुका था। इसी प्रकार सहस्रों की संख्या में यज्ञ में पशुओं का घात भी होता ही था। परन्तु महाभारत ही की साक्षियें यह कहती हैं कि प्राचीन काल में यह बुरी रीतयें प्रचलित न थीं।

इस अध्याय में मांस भोजन के विषय में तथा यज्ञ में पशुहिंसा और यज्ञ के बारे में विस्तार से कहा जायगा? फिर पाठक स्वयं परिणाम निकाल सकेंगे कि प्राचीन आदर्श क्या था। और तत्पश्चात् गिरते २ महाभारत के काल तक समाज की क्या अवस्था होगयी थी। सब से प्रथम हम पशुवध तथा मांस के भोजन के बारे में लिखते हैं।

(१) मांस भोजनः—

भीम केलिए मांस के टोकरे

महाभारत के समय मांस का भोजन बड़ी खुली प्रकार से प्रचलित था कि जैसा कि इतिहास से प्रतीत होता है। भीमसेन के लिये सेना शिविर में व्याध लोग मांस के टोकरे के टोकरे भर के लाया करते थे। ‡

‡ महा० शल्य० ३० अ०—

ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः।
मांसभारानुपाजह्रुः भक्त्या परमया मुदा॥ २१॥
एवमुक्त्वा तु ते व्याधा सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति॥ २४॥

रन्तिदेव की रसोई में मांसभोज

(२) इसी प्रकार दूसरा उदाहरण रन्तिदेव का है । रन्तिदेव बड़ा नामी दानी तथा यज्ञ करने वाला राजा प्रसिद्ध हुवा है । यह प्रसिद्ध है कि इसके यज्ञ करने में तत्पर होने पर गांव और जंगल दोनों स्थानों के पशुओं का इसने बड़ी मात्रा में बध किया । इतना कि उन पशुओं के चर्म समूह से चर्मण्वती नाम की नदी निकल गयी ।

यह बहुत दानी था सहस्रों स्वर्ण मुद्रा यह ब्राह्मणों को दान देता था । यज्ञ में आगत अतिथियों को खूब भोजन देता था । महाभारत में इसके विषय में वर्णन है कि इसके सूद ऊंचे स्वर से कहते थे 'कि दाल आदि से युक्त भोजन को खूब खावो । आज मांस नहीं है जैसा पहले होता था ।'

'इसमें जैसा पहले होता था' इससे प्रतीत होता है कि भोजन में मांस भी पहले था परन्तु अब नहीं । *

मांसभोज की मर्यादा

(३) मांस भोजन के इतने प्रचलित होजाने पर भी उस समय एक मर्यादा अवश्य थी । वह विधान की थी । अर्थात् मेध्य पशु को खाना पाप नहीं समझा जाता था इस भक्ष्या-भक्ष्य प्रकरण को अत्यन्त स्पष्ट करने के लिये हम 'भीष्म-युधिष्ठिर-संवाद' पाठकों के सामने रखना चाहते हैं । *

* महा० शान्ति० २९ अ०—

उपातिष्ठंश्च पशवः स्वयं तं संशित-व्रतम् ।
ग्रामारण्या महात्मानं रन्तिदेवं यशस्विनम् ॥ १२२ ॥
महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात्सुस्रुवे यतः,
ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी ॥ १२३ ॥
सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसन् गृहे ।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशतिः ॥ १२७ ॥
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्ट मणिकुण्डलाः ।
सूपभूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा ॥ १२८ ॥

* महा० अनुशासन० ११४ अ० युधिष्ठिर भीष्म संवादः—

यु० उ०, ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते ।
अहिंसा लक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्य दर्शनात् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर महाराज प्रश्न करते हैं—

"हे पितामह, ऋषि लोग ब्राह्मण लोग और देव सभी अहिंसा नामक धर्म की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि वेद में भी अहिंसा का विधान है। आप ये बतलायें कि मन, वाणी और कर्म से हिंसा करता हुवा मनुष्य दुःख से मुक्त किस प्रकार हो।"

भीष्म युधिष्ठिर संवाद
मांसनिषेध और मर्यादा

(४) इस पर भीष्म महाराज उत्तर देते हैं—

"वेद को जानने वालों ने तीन इन्द्रिय बतलाई हैं जिन में दोष रहता है। मन, वाणी और स्वाद। इसी लिये बुद्धिमान तपस्वी जन मांस नहीं खाते हैं मांस के खाने में ये २ दोष जानो। जो मूर्ख मोह के वश होकर अपने बेटे के मांस के सदृश दूसरे के मांस को खाता है वह बहुत ही अधम, नीच होता है।"

यहां ही स्पष्ट हो जाता है कि वेद के जानने वालों की सम्मति में मांस का सर्वथा निषेध है। परन्तु महाभारत काल में मांस खाया जाता था।

इसी प्रकार युधिष्ठिर महाराज फिर प्रश्न करते हैं— *

कर्मणा मनुजः कुर्वन् हिंसा पार्थिव सत्तम।
वाचा च मनसा चैव कथंदुःखात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

भीष्म उ०:—

त्रिकरणं सुनिर्दिष्टि श्रूयते ब्रह्मवादिभिः
मनोवाचि तथास्वादे दोसाहलेषु प्रतिष्ठिताः ॥ ६ ॥
नभक्षयन्त्यतो मांसं तपो युक्ता मनीषिणः
दोषां स्तु भक्षणे राजन् मांसस्येह निबोध मे ॥ १० ॥
पुत्रमांसोपमं राजन् स्वदते यो ऽविचक्षणः।
मांसं मोहसमाविष्टः पुरुषः सोधमः स्मृतः ॥ ११ ॥

* महा०, अनुशासन०, ११४ अ०,

यु० उ०,
अहिंसा परमो धर्मः इत्युक्तं बहुशस्त्वया।
श्राद्धेषु च भवानाह पितरो मांसकांक्षिणः ॥ १ ॥
मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा।
अहत्वा च कुतो मांस मेवमेतद्विरुध्यते ॥ २ ॥
जातो नः संशयो धर्मो मांसस्य परिवर्जने।
दोषो भक्षयतः कः स्यात् कश्चाऽभक्षयतो गुणः ॥ ३ ॥

"हे पितामह आपने बहुत वार कहा कि अहिंसा परमधर्म है और आपने यह भी कहा कि श्राद्धों में पितर मांस के लोभी होते हैं। पहले आपने श्राद्धविधि नाना प्रकार के मांस से होती बताई थी बिना पशु घात किये मांस कहां से आसकता है ? इस लिये मांस के छोड़ने में हमें बहुत संशय है। खाते हुवे आदमी को क्या दोष लगता है और मांस न खाते आदमी को क्या लाभ होता है। इसी प्रकार जो आप मारकर खावें या दूसरे का मारा हुवा खावें या दूसरे के लिये कोई मारे हुवे को उस से खरीद करके खावें तो उनको क्या दोष वा लाभ है। आप इसको ठीक २ कहिये मैं इस सनातन से चले आये धर्म का निश्चय करना चाहता हूं।"

इस प्रश्न को सुन पितामह बोलेः—

"हे राजन् मांस के न खाने से जो धर्म होता है उस को सुनो। उस की उत्तम विधि को भी ठीक २ सुनो! रूप सुन्दर अंगों का टेढ़ा मेढा न होना, आयु, बुद्धि, सत्व और बल और सहन शक्ति, इन की इच्छा करने वाले महात्माओं ने हिंसा का निषेध किया है। इसी विषय में, हे कुरुनन्दन! ऋषियों का भी परस्पर संवाद बहुत वार हुवा है; उनका भी जो मत हुवा वह भी सुनो। जो व्रत धारण करके प्रति मास अश्वमेध याग करे वह पुण्य मद्य और मांस को

हत्वा भक्षयतो वापि परेणापि हतस्य वा।
हन्याद्वा यः परस्यार्थे क्रीत्वावा भक्षयेन्नरः ॥ ४ ॥
एतदिच्छामि तत्वेन कथ्यमानं त्वयाऽनघ।
निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम् ॥ ५ ॥

भीष्म उवाचः—

मांसस्याभक्षणाद् राजन् योऽधर्मः कुरुनन्दन।
तन्मे शृणु यथातत्वं यथाऽस्य विधिरुत्तमः ॥ ७ ॥
रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिसत्वं बलंस्मृतिम् ॥
प्राप्तुकामैर्नरै हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः ॥ ८ ॥
ऋषीणामत्र संवादो बहुशः कुरुनन्दन ॥
बभूवतेषांन्तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः।
वर्जयेन्मधु मांसञ्च सममेतद् युधिष्ठिर ॥१०॥
सप्तर्षयो बाल खिल्यास्तथैव चमरीचिपाः।
अमांसभक्षणं राजन् प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥

छोड़ देने वाले को भी होता है । सातों ऋषि वालखिल्य ऋषि और मराचिप ऋषियों ने भी मांस के न खाने की बड़ी प्रशंसा की है । स्वयंभू के पुत्र मनु भी कहते हैं कि जो न मांस खाये और न किसी का घात करे वह सब प्राणियों का मित्र है । जो मनुष्य मांस को छोड़ देता है उसका अपमान नहीं होता सब उसपर विश्वास करते हैं सज्जन लोग उस से प्रेम करते हैं । नारदमुनी कहते हैं कि जो अपने मांस को दूसरे के मांस से बढ़ाना चाहता है वह अवश्य दुःखित होता है । बृहस्पति महाराज कहते हैं कि मधु और मांस के छोड़ देने से मनुष्य दान भी देता है यज्ञ भी करता और तपस्वी भी हो जाता है। सब वेद भी उतना फल न करें सब यज्ञ भी उतना फल न दें जितना फल मांस खाकर फिर छोड़ देने से हो जाता है ।"

"मांस के स्वाद लग जाने पर यह सब प्राणियों को अभयदान कराने वाले मांस त्याग के पवित्र व्रत का धारण करना बहुत दुष्कर है । सब प्राणियों को जिस ने अभय दक्षिणा दी है इस में सन्देह नहीं कि वह सब के प्राणों का देने वाला है । इस से हे महाराज मांस भक्षण का त्याग करना धर्म का सब से श्रेष्ठ आश्रय है ।

नभक्षयति यो मांसं नचहन्यान्न घातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायम्भुवो ऽब्रवीत् ॥ १२ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
साधूनां सम्मतोनित्यं भवेन्मांस विवर्जनात् ॥ १३ ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नारदः प्राहधर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥ १४ ॥
ददाति यजतेचापि तपस्वी च भवत्यपि ।
मधुमांसनिवृत्येति प्राह चैवं वृहस्पतिः ॥ १५ ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
यो भक्षयति मांसानि पश्चादपि निवर्त्तते ॥ १८ ॥
दुष्करं हि रसज्ञाने मांसस्य परि वर्जनम् ।
चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभय प्रदम् ॥ १६ ॥
सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभय दक्षिणाम् ।
दाताभवति लोकस्य प्राणानां नात्रसंशयः ॥ २० ॥
तस्माद् विद्धिमहाराज मांसस्य परिवर्जनम् ।
धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्यच ॥ २४ ॥

स्वर्ग और सुख का भी यही आश्रय है। अहिंसा ही परम धर्म है अहिंसा ही महान् तप है। अहिंसा ही सत्य है जिस से धर्म प्रवृत्त होता है। मांस तृण, काठ व पत्थरों से पैदा नहीं होता, प्रत्युत पशु को मारा ही जाता है, इससे मांस भक्षण में महापाप है।"

"स्वाहा और स्वधा और अमृत को खाने वाले देव सात्विक हैं। क्रव्य को खाने वाले जीभ के स्वाद के वश हुये राजस होते हैं।"*

‡"यदि खाने वाला कोई न हो, तो मारने वाला भी कोई न हो। मारने वाला केवल खाने वाले के लिये मारता है, इस से मांस सर्वथा अभक्ष्य है। इस प्रकार से हिंसा को दूर किया जा सकता है। क्योंकि मृगों आदि की हिंसा खाने वाले के लिये ही है। मांस ही हिंसकों की आयुको हड़प कर जाता है। इस लिये जो अपना हित चाहते हैं वह मांस को छोड़ दें। भयानक प्राणिघातकों का कोई रक्षक नहीं होता। वे शेर चीतों के सदृश प्राणियों को बहुत उद्विग्न किया करते हैं। मनुष्य लोभ या बुद्धि मूढता से अपने बल और वीर्य को बढ़ाने के लिये, या पापों के संसर्ग से अधर्म में प्रवृत्त होने के लिये मांस खाते हैं। अपने मांस को जो पराये मांस से बढ़ाना चाहते हैं उनके

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्त्तते ॥ २४ ॥

नहि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद् वापि जायते।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ २६ ॥

स्वाहा स्वधामृतभुजो देवाः सत्वार्जवप्रियाः।
क्रव्यादान् राजसान् विद्धि जिह्वारस परायणान् ॥ २७ ॥

यदि चेत् खादको नस्यान्न तदा घातको भवेत्।
घातकः खादकार्थाय यद् घातयति वै नरः ॥ ३ ॥
अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्त्तते।
खादकार्थ-मतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्त्तते ॥ १२ ॥
यस्माद् ग्रसति चैवायु हिंसकानां महाद्युते।
तस्माद् विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद् हितमात्मनः ॥ ३३ ॥
त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः।
उद्वेजनीयाः भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ॥ ३४ ॥
लोभाद् वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थ मेव च।
संसर्गाद्वाथ पापानां अधर्मे रुचिता नृणाम् ॥ ३५ ॥

घर में कभी चैन नहीं होती, और उसे नीची योनियों में जाना पड़ता है । महर्षि लोगों ने कहा है कि मांस का न खाना धन और यश को, आयु और स्वर्ग को देने वाला तथा कल्याण का बड़ा भारी आश्रय है । मैंने पहले ये सुना है, कि मार्कण्डेय मुनि मांस के ये दोष बताया करते थे जो आदमी जीने की इच्छा करने वाले प्राणियों का मांस खाना चाहे–मारे हुवों का हो, चाहे स्वयं मृतों का हो, वह खाने वाला मारने वाले के बराबर होता है । खरीदने वाला अपने धन से उसकी हिंसा करता है । खाने वाला उपयोग से हिंसा करता है मारने वाला मारने और बांधने से हिंसा करता है । न खाता हुआ भी जो बुरे भाव से, मारने वाले का अनुमोदन करता है, वह भी पाप से लिप्त होता है ।

सोना दान करने और गौ दान करने और भूमि दान करने से भी अधिक फल मांस भक्षण न करने से होता है ।*

इतने तक तो मांस के सर्वथा विरोध में ही भीष्म पितामह बोलते रहे । परन्तु अब दिशा बदलती है । और मांस भक्षण के लिए अब अवसर निर्णय किये जारहे हैं । अर्थात पूर्वोक्त मर्यादा का क्रम बंधने लगा है ।

स्वमांसं पर मांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
उद्विग्नवासो वसति यत्र तत्राभिजायते ॥ ३६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
मांसस्या भक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३७ ॥

इदन्तु खलुकौन्तेय श्रुतमासीत्पुरा मया ।
मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांस भक्षणे ॥ ३८ ॥

यो वै खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम् ।
हतानां वा मृतानां यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३९ ॥

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो बधः ॥ ४० ॥

अखादन्नुमोदंश्च भावदोषेण मानवः ।
योऽनुमोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते ॥ ४१ ॥

* हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः ।
मांसस्याऽभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः ॥ ४२ ॥

अपवादः

(५) भीष्म कहते है:— *

वह मांस जिसको प्रोक्षण से शुद्ध न किया हो ऐसे वृथा मांस को शास्त्र निषिद्ध समझ कर न खावे ।

इसी प्रकरण में फिर वही बात कही है—†

यह एक और विधि—शास्त्र के बनाये प्रमाण—को कहता हूं, यह अति पुरानी है, ऋषियों ने भी इस को माना है, वेदों में भी यही निश्चित है। धर्म प्रवृत्ति स्वरूप है। जो हवि मन्त्रों से संस्कृत प्रोक्षित और अभ्युक्षित है, इसी प्रकार से श्राद्ध क्रियाओं में वेदोक्त प्रमाण से निश्चित है, इस से अतिरिक्त वृथा मांस को मनु भी अभक्ष्य कहते हैं।

प्रथम तो मनुष्य शास्त्र से निषिद्ध मासको न खाये इसी से भी भीष्म का मन सन्तुष्ट नहीं होता। तिस पर फिर मांस के निषेध करते हुवे मांस परित्याग की प्रशंसा करने लगते हैं परन्तु फिर क्षत्रियों को ध्यान में रख कर वसु राजा और ऋषियों के परस्पर संवाद का निर्णय बताते हैं।

[७] पूर्व काल में ऋषियों ने चैदिराज वसु राजा से अपना संशय पूछा कि—×

महाभा०, अनुशासन०, ११५ अ०,

प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मण काम्यया ।
अल्पदोषमिदं ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥

इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं विधि निर्मितम् ।
पुराण मृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठितम् ॥ ५० ॥
प्रवृत्ति लक्षणो धर्मो वेदेषु परिनिष्ठितः ॥ ५१ ॥
हविर्यत्संस्कृतैर्मन्त्रप्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि ।
वेदोक्तेन प्रमाणेन पितृणां प्रक्रियासु च ॥ ५२ ॥
अतोऽन्यथा वृथा मांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् ॥ ५३ ॥
विधिहीनो नरः पूर्वं मांसं राजन्न भक्षयेत् ॥ ५४ ॥

ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।
अभक्ष्यमिति मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥ ५७ ॥
आकाशादवनीं प्राप्तः ततः स पृथिवीपतिः ।
एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ ५८ ॥

'अभक्ष्य मांस भक्ष्य क्यों कहा गया ? ' तिसपर वसु आकाश से उतर कर पृथ्वीपर आये और बोले कि "अगस्त्य ने अपने तपसे सर्वदैवत्य अरण्य के पशुओं को प्रोक्षित कर के मेध्य कर दिया। इस से मांस के उपयोग से देवता और पितरों की क्रियाएं भ्रष्ट और पाप जनक नहीं होती, प्रत्युत न्यायानुकूल पितर भी मांस से तृप्त हो कर प्रसन्न होते हैं।"

फिर तिस पर भी आगे मांस के वर्जन के बड़े माहात्म्य गाये हैं कि—†

शुक्लपक्ष में मांस के न सेवन करने से धर्म होता है वर्षा के चौमासे तक मास त्याग से आयु, यश, बल और ख्याति बढ़ती है। एक मास तक मांस न खाने से सब दुःख व रोग दूर रहते हैं। एक मास या पक्ष तक भी मांस न खाने से ब्रह्मलोक मिलता है, इत्यादि।

आगे नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु आदि पचास बड़े राजाओं का नाम लेकर उन में अन्यों को साथ जोड़ कर कहा कि इन्होंने प्राचीन काल में मांस सर्वथा नहीं खाया। वे सब स्वर्ग और ब्रह्म लोक में बैठे हैं। *

इसी प्रकार मद्य और मांस दोनों की ही निन्दा की है।

प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना।
आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः ॥ ५९ ॥
क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः
प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ॥ ६० ॥

† कौमुदे तु विशेषेण शुक्ल पक्षे नराधिप।
वर्जयेन्मधु मांसानि धर्मो ह्यत्र विशिष्यते ॥ ६३ ॥
चतुरो वार्षिकान्मासान् यो मांसं परिवर्जयेत्।
चत्वारि भद्राण्या प्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ६४ ॥
अथवा मासमेकं वै सर्वमांसान्यभक्षयन्।
अतीत्य सर्वदुःखानि सुखजीवेन्निरामिषः ॥ ६५ ॥
वर्जयन्तिहिमांसानि मासशः पक्षशोऽपिवा।
तेषांहिंसा निवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ ६६ ॥

* (देखो महा०, अनु० ११५, अ० ६८—७७०)

क्षत्रियों में मृगया और मांस भोजन

(५) इस के अतिरिक्त अगले ही अध्याय में भी युधिष्ठिर की शंका निवृत्ति नहीं होती और वह फिर प्रश्न करता है—*

"इस लोक में ये लोग क्रूर मांस के बड़े लोभी हैं नाना प्रकार के भक्ष्यों को छोड़ कर राक्षसों की तरह मांस खाते हैं। अपूप [पूए] और नानाप्रकार के शाक तथा मिष्टान्नों और रस व्यञ्जनों को इतना पसन्द नहीं करते, जितना मांस को। यहां विचार करते हुवे मेरी मति भी मुग्ध होजाती है। यही मानना पड़ता है कि मांस रससे बढ़िया कोई रस भी नहीं। फिर यही सुनना चाहता हूं, कि मांस के खाने में क्या हानियें और न खाने में क्या गुण हैं।"

इस पर पितामह उत्तर देते हैं—

"हे भारत, यह बात ठीक है, कि मांस रस से बढ़िया दुनिया भर में कोई चीज़ नहीं है। दुर्बल और निर्वीर्य क्षय रोग वाले और दुःखित व्यभिचारी और रास्ता चल के थके हुवों के लिए मांस से अच्छी कोई चीज नहीं। यह प्राणों को बढ़ाता है और बहुत शीघ्र पुष्टि करता है। हे परन्तप, मांस से अधिक भक्ष्य भी कोई नहीं। पर मांस के त्याग में भी बहुत गुण हैं। अपने मांस को जो दूसरे के मांस

* महा० अनु० ६ अ०

मु० उ० इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांस गृद्धिनः।
विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षोगणा इव ॥ १ ॥
अपूपान् विविधाकारान् शाकानि विविधानि च।
खाण्डवान्रसयोगा न तथेच्छन्ति यथा मिषम् ॥ २ ॥
तत्र मे बुद्धिरत्रैव विमर्शे परिमुह्यते।
नमन्ये रसतः किञ्चिन्मांसतो ऽस्तीति किञ्चन ॥ ३॥

भी० उ०—एवमेत न्महाबाहो यथा वदसि भारत।
न मांसात् परमं किञ्चिद् रसतो विद्यते भुवि ॥ ७॥
क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्यधर्मरतात्मनाम्।
अध्वना कर्षितानाञ्च न मांसाद्विद्यते परम् ॥ ८ ॥
सद्यो वर्धयति प्राणान् पुष्टिमग्र्यं दधातिच ॥ ९ ॥
नभक्ष्योऽभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परन्तप ॥
विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन, ॥ १० ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥

से बढ़ाना चाहता है, उस से अधिक नीच तथा क्रूर दूसरा आदमी नहीं है । प्राणों से अधिक प्यारी वस्तु संसार में नहीं है, इस लिये प्रत्येक को अपने आत्माओं के सदृश दूसरों पर दया करनी चाहिये । मांस की उत्पत्ति भी शुक्र से ही होती है । इसके खाने में बड़ा दोष और छोड़ने में बड़ा लाभ है ।

मर्यादा

इसके आगे फिर मर्यादा का क्रम प्रारम्भ होता है और भीष्मपितामह जैसे बुद्धिमान वेदवक्ता भी लालायित हो कर सब दया और घृणा को छोड़ कर शास्त्रों पर मांस विधि का आरोप करके कहते हैं ।*

"वेदानुकूल विधि से यदि मांस खाया जाय तो कोई दोष नहीं क्योंकि यज्ञ के लिये पशु रचे गये हैं । इस प्रकार की श्रुति अर्थात् वेद वाक्य सुना जाता है । इस विधि के अतिरिक्त मांस खाना राक्षस विधि कहलाती है । क्षत्रियों के लिये भी एक शास्त्रीय आज्ञा है वह भी सुनो अपने बाहुबल से उपार्जित व प्राप्त मांस का खाना भी कोई दोष जनक नहीं हैं जंगल में रहने वाले पशु सर्व देवताओं के होते हैं उनको प्राचीन काल में अपने तप से अगस्त्यमुनि ने सब को प्रोक्षित किया था इसी से मृगया का बड़ा मान है । आत्मपरित्याग के अतिरिक्त मृगया कोई दूसरी वस्तु नहीं है । समान पद पर आकर मृग वा प्राणी का घात किया जाता है । इस लिए सब राजर्षि मृगया करने जाते हैं । उन को कोई पाप नहीं होता है और विद्वानों ने भी इसे पाप नहीं जाना ।"

नास्तित्तद्वुद्रतरस्तस्मात् स नृशंसतरो नरः ॥ ११ ॥
नहि प्राणात्प्रियतरं लोके किमपि विद्यते ।
तस्माद्दयां नरः कुर्यात् यथात्मनि तथाऽपरे ॥ १२ ॥
शुक्राच्च तात सम्भूतिर्मांसस्येह न संशयः ।
भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते ॥ १३ ॥

महा० अनु०—११६ अ०

विधिना वेद दृष्टेन तद् भुक्त्वेह न दुष्यति ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४ ॥
*अतोऽन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते ।
क्षत्रियाणां च यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥ १५ ।
वीर्येणोपार्जितं मांसं यथाभुञ्जन्न दुष्यति ॥

इसके साथ ही इसके आगे एक दम फिर दया का प्रकरण और अहिंसा धर्म की अनुपम प्रशंसा प्रारम्भ हो गयी है। ‡ इस क्रम को देख कर हम कतिपय परिणामों पर पहुंचते हैं। प्रथम या तो पितामह इतने मूर्ख थे कि वे अपनी बातों में पूर्वा पर विरोध नहीं समझ सकते थे। दूसरा यह मध्य का मर्यादा सदृश अपवाद प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। क्योंकि इसका पूर्वा पर से कोई संबंध नहीं है इसी प्रकार प्रथम अध्याय में प्रदर्शित अपवाद या मर्यादा का हम इन्हीं वाक्यों की पूर्वा पर संगति से आपको प्रक्षिप्त सिद्ध करके दिखावेंगे। परन्तु अभी इस विषय को नहीं छेड़ेंगे। यज्ञ प्रकरण में इसका पूरा परिहार किया जायगा।

ब्राह्मण व्याध संवाद हिंसा का विस्तार

(६) महाभारत के समय में कितना मांस का प्रचार था इस बात को पुष्ट करने वाली अन्तरिय साक्षी हम पाठकों के सामने एक और रखते हैं।

मार्कण्डेय मुनि युधिष्ठिर को धर्म्म-व्याध और धर्म्म जिज्ञासु कौशिक नाम के ब्राह्मण का संवाद उपाख्यान सुनाते हैं।

उस में धर्म्म-व्याध बड़ा धर्मात्मा, जाति का व्याध था। परन्तु वह भाग्य-वश आजीविका के लिये मांस बेच कर परिवार पालता था। एक गृहणी के वचन से प्रेरित कौशिक ब्राह्मण इसी धर्म्म-व्याध से धर्म्म की शिक्षा लेने के लिये आया। बाजार में महा-मांस बेचते धर्म व्याध को देख कर तथा उसकी सरल अविच्छिन्न धर्म कथा को सुन कर ब्राह्मण ने उस से मांसादि विक्रय-रूपी घोर कर्म का कारण पूछा इस पर धर्म व्याध ने पितृ पितामह का पेशाही कारण बताया। परन्तु अहिंसा का उत्तर देते समय धर्म-व्याध बोला——

अरण्याः सर्व दैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिताः मृगाः।
अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यते॥ १६॥
अतोराजर्षयः सर्वे मृगयां यान्ति भारत।
नहि लिप्यन्ति पापेन नचैतत्पातकं विदुः॥ १८॥
नह्यतः सदृशं किञ्चिद् इहलोके परत्र च।
यत् सर्वेष्विह भूतेषु दयाकौरव नन्दन॥ १६॥
अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः।
यद् हिंसात्मकं कर्म तत्कुर्या दात्मवान्नरः॥ २०॥

"देवता अतिथि और भृत्यों के और पितरों के तर्पण के लिये ओषधियें, लताएं, मृग और पक्षी और पशु ये सब लोक-भर के खाद्य भूत पदार्थ हैं, ऐसी भी एक श्रुति है। पहले जमाने में रन्तिदेव राजा की पाक शाला में दो हज़ार पशु प्रति-दिन घात किये जाते थे और २००० गौओं का भी घात होता था। मांस के साथ अन्न देते हुवे रन्तिदेव का बड़ा अतुल यश हो गया था। वेद में भी विधान है कि चौमासे में पशु मारे जाते हैं और अग्नियें भी मांस की इच्छा करती है। ब्राह्मण लोग तो यज्ञों में भी पशु का घात करते हैं। वे पशु भी मन्त्रों से पवित्र होकर स्वर्ग में चले जाते हैं। हे ब्राह्मण यदि अग्नि भी मांस की अभिलाषा न करता तो मांस को कोई भी न खाता। मुनियों ने भी मांस का शास्त्रों में विधान कर ही दिया है। देवता पितर आदि को तृप्त कर के यथा विधि तथा, श्राद्ध मांस खाने से कोई दोष नहीं है। श्रुति के अनुसार भी इस प्रकार मांस भक्षण करने वाला निरामिष भोजी कहलाता है। झूठ और सच का निर्णय कर के यहां भी शास्त्र ही प्रमाण माना जाता है। शापग्रस्त सौदास राजा ने तो मनुष्यों का भक्षण भी किया था। इसी प्रकार भी यह अपना धर्म समझ के मांस विक्रय नहीं छोड़ सकता। *

---

* महा० वन २०७ अ०—

देवतातिथि भृत्यानां पितृणाञ्चापि पूजनम्।
ओषध्यो वीरुधश्चापि पशवो मृगपक्षिणः॥
अन्नाद्यभूता लोकस्य इत्यपि श्रूयते श्रुतिः॥६॥
राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज।
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा॥ ८॥
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तदा।
समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः॥ ९॥
अतुला कीर्त्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम।
चातुर्मास्ये च पशवो वध्यन्त इति नित्यशः॥ १०॥
अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपि श्रूयते श्रुतिः।
यज्ञेषु पशवो ब्रह्मन् वध्यन्ते सततं द्विजैः॥ ॥
संस्कृताः किल मंत्रैश्च तेऽपि स्वर्गमवाप्नुवन्।
यदि नैवाग्नयो ब्रह्मन् मांसकामा भवन् पुरा॥ १२॥
भक्ष्यं नैवाभवन् मांसं कस्यचिद्विजसत्तम॥
अत्रापि विधिरुक्तश्च मुनिभिर्मांस भक्षणे॥ १३॥

इसी बात की पुष्टि में धर्म व्याध इसके पश्चात् लौकिक कृष्यादि कर्म तथा बीजादिभक्षण में जीव को सर्वत्र मानकर हिंसा का व्यावहारिक क्षेत्र में विस्तार दिखाता है और लोगों के भोजन के बारे में कहता है:—

"पशुओं पर अत्यचार करके लोग पशुओं को मारते हैं और खाते हैं इसी प्रकार वृक्ष और ओषधियों को काटते हैं। वृक्षों और फलों और जल में भी अनेक जीव होते हैं वहां क्यों हिंसा नहीं प्रतीत होती है।"×

इस प्रकार के धर्म व्याध और कौशिक ब्राह्मण के संवाद में एक बात बड़ी चित्ताकर्षक प्रतीत होती है वह यह कि धर्म व्याध कहता है कि यदि अग्नियें मांस की अभिलाषा न करती तो कोई भी मांस न खाता। अर्थात् मनुष्यों की प्रवृत्ति यज्ञ में मांस हवि करने के बाद हुई प्रतीत होती है। यज्ञ मे मांस कब से प्रवृत्त हुआ इसी का निर्णय करना अब मुख्य विचारणीय स्थल प्रतीत होता है।

ऋषि शक्र संवाद
यज्ञ में हिंसा का निशेध

(७) मांस भोजन तथा हिंसा के बारे में तुलाधार तथा जाजलि के संवाद पर भी पाठकों को एक सूक्ष्म दृष्टि डालनी चाहिये। धर्म के सूक्ष्म तत्व बताते हुये तुलाधार बोले:

देवतानाञ्चपितॄणाञ्च भुङ्क्ते दत्त्वापि यः सदा।
यथा विधि यथा श्राद्धं न प्रदुष्यति भक्षणात्।
अमांसाशी भवत्येव मित्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४ ॥
सत्यानृते विनिश्चित्य अत्रापि विधिरुच्यते ॥ १५ ॥
सौदासेन तदाराज्ञा मनुषा भक्षिता द्विज ॥ १६ ॥
शापाभिभूतेन भृश मत्र किं प्रतिपद्यते।
स्वधर्म इति कृत्वा तु न त्यजामि द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

× महा० वन २०७ अ०

अभ्याक्रम्य पशूंश्चापि घ्नन्ति वै भक्षयन्ति च।
वृक्षांस्तथा पशूंश्चापि छिन्दन्ति पुरुषा द्विज ॥ २६

* महाभारत २६१ अ०

ये च छिन्दन्ति वृषणान् ये च भिन्दन्ति मस्तकान्।
वहन्ति महतो भारान् बध्नन्ति दमयन्ति च ॥ ३८ ॥

जो लोग क्रूरता से पशुओं के अण्डकोष काट देते हैं और माथे फोड़ देते हैं या अधिक भार लाद देते हैं या प्राणियों का बध कर के खाजाते हैं उनकी निन्दा क्यों नहीं की जाती, अच्छी तरह से पले बैलों को लोग लाद कर ऐसे स्थानों पर ले जाते हैं जहां उन्हें मच्छरादि बहुत काटते तथा चीचड़ आदि बहुत तंग करते है। भार को ढोते २ पशुओं को भी बहुत कष्ट होता है। **और फिर गौवें तो अघ्न्या कहलाती हैं, इनका बध तो किसी को भी न करना चाहिये। वे बड़ा भारी पाप करते हैं जो बैल को या गाय को यज्ञ में बलि देते हैं। यही ऋषियों ने आकर नहुष से कहा था कि 'गौ को हत्या करने वाला अपनी माता और बैल को मारने वाला अपने पिता प्रजापति का घात करता है।** हे नहुष तू ने ऐसा पाप कर के बड़ा दुष्ट कार्य किया है तेरे कारण हमें बड़ा कष्ट होगा, इसके बदले में १०१ रोग ऋषियों ने प्राणियों पर डाल दिये। और भ्रूणहत्या करने वाले नहुष को कहा कि 'हम तेरे यज्ञ में हवन नहीं करेंगे।' यह कह कर सब तत्वदर्शी ऋषियों ने इस प्रकार के हिंसाजनक अमंगल घोर आचारों का परिहार तप से किया था।

मांस और पितृश्राद्ध— [८] मांस भक्षण के बारे में इतना प्रायः सर्वसाधारण क्रम पता लग गया है कि देवता पितर अतिथि आदि की तृप्ति के अनन्तर मांस खाना कोई पाप जनक न समझा जाता था। इस पितृ श्राद्ध में मांस विधायक महाभारत अनुशासन पर्व में एक अध्याय सम्पूर्ण है।×

हत्वा सत्वानि खादन्ति तान् कथं न विगर्हसे ॥ ३९ ॥
वाहसंपीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिना परे।
न मन्ये भ्रूणहत्यापि विशिष्टा तेन कर्मणा ॥ ४६ ॥
अघ्न्या इति गवां नाम कथं ता हन्तुमर्हति।
महच्चकारा कुशलं वृषं गांवालभेत्तुयः ॥ ॥ ४८ ॥
ऋषयो यतयो ह्येतन्नहुषे प्रत्यवेदयन्।
गां मातरञ्चाप्यवधीर्वृषभञ्च प्रजापतिम् ॥ ४९ ॥
अकार्यं नहुषाकार्षीर्लप्स्यामस्त्वत्कृते व्यथाम्।
शतञ्चैकञ्च रोगाणां सर्वभूतेष्वपातयन् ॥ ५० ॥
ऋषयस्ते महाभागाः प्रजास्वेव हि जाजले।
भ्रूणहं नहुषं त्वाहुर्न तेहोष्यामहे हविः ॥ ५१ ॥

× महाभारत अनुशासनपर्व ८८ अध्याय सम्पूर्ण।

यज्ञ में पशु हिंसा:--

अब हम भोजन प्रकरण को समाप्त करके यज्ञ प्रकरण पर आते हैं ।

(९) प्राचीन काल का यज्ञ का क्या स्वरूप होता था क्या उसमें पशुओं का घात होता था कि नहीं इस बात का निर्णय सहसा नहीं हो सकता । पूर्वोक्त जितने प्रकरण आये हैं उन सब मे यज्ञ में मांस 'यज्ञ में पशु हिंसा' यज्ञ में हीन कर्म आदि को भी दोष नहीं ऐसा ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । और इसी आधार पर अन्य मर्यादाएं भी शिथिलि की गयी हैं । अवश्य इनका हम मूल ढूंढना चाहते हैं । महाभारत में इतना तो आप स्पष्टतया देख चुके कि मांस भोजन की भी यज्ञ और विधि के प्रोक्षण के सिवाय अन्यत्र कहीं आज्ञा नहीं तिस पर आरण्य पशु मास के लिए अगस्त्य मुनि के तप से सर्व देवता के पशुओं को पवित्र मानकर **क्षत्रियों में** मृगया तथा मांस भक्षण चला । अब महाभारत में जाजलि और तुलाधार के संवाद में भी इसी बात के दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि मांस लोलुप ब्राह्मणों ने अहिंसा से युक्त अपने पवित्र यज्ञ को छोड़ कर हिंसा से भरे क्षात्र यज्ञ को ले लिया था।

तुलाधार जाजलि संवाद:-ब्रह्मयज्ञ का त्याग, और क्षात्र यज्ञ स्वीकार

[१०] तुलाधार ने कृषि को वर्णन करते हुए बताया था कि इसमें भी पशुओं को कष्ट होता है इसे भी न करना चाहिए तिसपर जाजलि पूछता है

कृषि से तो अन्न पैदा होता है पशुओं और औषधियों से मनुष्य जीते हैं और उन्हीं से यज्ञ किया जाता है । यदि वाणिज्य और कृषि को निन्दित समझ कर छोड दें तो लोक ही उत्सन्न हो जाय । ऐसी नास्तिकता की क्यों बात कहते हो ।

इस पर तुलाधार कहने लगा । *

मैं यज्ञ की निन्दा नहीं करता हूं क्योंकि यज्ञ को जानने वाला यज्ञवित् बड़ा दुर्लभ है । ब्राह्मण यज्ञ और उन यज्ञों को जानने वाले विद्वानों को मैं नमस्कार करता हूं । ब्राह्मण लोगों ने अपने यज्ञ को छोड़ कर क्षत्रियों के यज्ञ को ले लिया

* **महाभारत, शान्ति० २६२ अ०**
न यज्ञञ्च विनिन्दामि यज्ञवित्तु सुदुर्लभः ॥ ४ ॥
नमो ब्राह्मण यज्ञाय ये च यज्ञविदो जनाः
स्वयज्ञं ब्राह्मणाः हित्वा क्षात्र यज्ञमिहास्थिताः ॥ ५ ॥

है । लोभी आंख के अन्धे गांठ के पूरे नास्तिकों ने वेद के सिद्धान्तों को न जान कर झूठ की तरह सत्याभास चलाया है। सात्विक लोग न स्वर्ग की इच्छा करते और न यश और धन की, परन्तु सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करते हुए हिंसा न करते हुए फल फूल औषधि और वनस्पतियों को यज्ञ का साधन मानते हैं । लोभी ऋत्विज् लोग स्वर्गादि फल की आकांक्षा करते हुवे इन से यज्ञ नहीं करते । इसीलिए ये लोभी ऋत्विग् पापी लोगों का यज्ञ कराया करते हैं । और सज्जनों का नहीं ।

भीष्म की संमति व्रीहिमय पशु

[११] इस से तुलाधार की सम्मति में वास्तविक यज्ञ की विधि में हिंसा का सर्वथा लेश नहीं है । अब भीष्म पितामह की सम्मति को भी लीजिये । प्रोक्षित मांस के खाने में दोष न बताता हुवा भीष्म पितामह भी कहता है— *

',पुराने जमाने में व्रीहि अर्थात् धान्य का पशु बनाया जाता था । जिस से पुण्यलोकों को जाने वाले यज्ञकर्त्ता यज्ञ किया करते थे । अब कहिये क्या बात ठीक मानी जाय । हम समझते हैं कि भीष्म का दया और अहिंसा का पोषण भी यही बात सिद्ध करता है न कि प्रोक्षितमांस भोजन । इस से उपरोक्त या तो प्रक्षिप्त हैं या भीष्म के उन्मादालाप हैं ।

लुब्धैर्वित्तपरै ब्रह्मन्नास्तिकैः सम्प्रवर्त्तितम्
वेद वादान विज्ञाय सत्याभासमिवानृतम् ॥ ६ ॥
नैव ते (सात्विकाः) स्वर्गमिच्छन्ति नयजन्ते यशोधनैः ।
सतां वर्त्मानुवर्त्तन्तो यजन्ते त्वविहिंसया ॥ २५ ॥
वनस्पतीनोषधींश्च फलमूलानि तेविदुः ।
नचैतान् ऋत्विजो लुब्धाः याजयन्तिफलार्थिनः ॥ २६ ॥
तस्मात्तान् ऋत्विजो लुब्धाः याजयाजयन्त्यशुभान्नरान् ॥ २८ ॥

* **महा०, अनुशासन, ११५ अ०**
य इच्छेत्पुरुषो ह्यन्त मात्मानं निरुपद्रवम् ।
सवर्जयेत मांसानि प्राणिना मिह सर्वशः ॥ ५५ ॥
श्रूयते हिपुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।
येनाऽयजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ ५६ ॥

राजा विचख्नु का वृत्तान्त, मनु की सम्मति, और प्राचीन यज्ञ-हवि और धूर्त चक्र

(१२) अब हम महाभारत-कार की दृष्टि में मनु-महाराज की सम्मति का उद्धरण करते हैं।

भीष्म पितामह यज्ञ की समस्या को सरल करने के विचार से राजा विचख्नु का वृत्तान्त सुनाते हैं:—×

यज्ञ भूमि में पशुबन्धन स्थान में राजा विचख्नु ने देखा कि बैल का कन्धा कट गया है और आस पास खड़ी गौएं भी भाएं २ आर्तनाद करती हैं यह देख कर विचख्नु को दया आयी और बोला:—

"सब लोकों में गौवों के लिये सुख हो। बस तब से यह गौवों पर आशीर्वाद "गोभ्यः स्वस्ति अस्तु" लोक में हिंसा के जारी हो जाने से चल पड़ा है। मर्यादा को तोड़ने वाले अज्ञानी नास्तिक संशयात्मक मूढ़ धोखेबाज़ लोगों ने छिप २ कर ये हिंसा फैलाई है। धर्मात्मा मनुमहाराज ने तो सब कार्यों में अहिंसा का उपदेश दिया था। बाहर वेदी में भी लोग अपने स्वार्थ से पशुओं का घात करते हैं। इस लिये धर्म को जानने वाले को प्रमाण के आधार पर कार्य करना चाहिये सर्व धर्मों से बड़ा अहिंसा धर्म ही है। यदि यज्ञ और वृक्ष और यूपों को आड़ में रखकर लोग वृथा मांस भक्षण करते हैं, तो यह धर्म सर्वथा निकृष्ट है। शराब पीना, मत्स्य खाना, मद-

× महा० शान्ति० २६४ अ०

छिन्नं स्थूणं वृषंदृष्ट्वा-विलापं च गवां भृशम्।
गोग्रहे यज्ञवाटस्य प्रेक्षमाणः स पार्थिवः॥ २॥
स्वस्ति गोभ्योऽस्तु लोकेषु ततो निर्वचनं कृतम्।
हिंसायां हिप्रवृत्तायामाशीरेषातु कल्पिता॥ ३॥
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैः हिंसासमनुवर्णिता॥ ४॥
सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद् विहिंसन्ति, वहिर्वेद्यां पशून्नराः॥ ५॥
तस्मात् प्रमाणतः कार्यो धर्मः सूक्ष्मो विजानता।
अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता॥ ६॥
उपोश्य संशितोभूत्वा हित्वावेदकृताः श्रुतीः।
आचार इत्यनाचारः कृपणाः फलहैतवः॥ ७॥

कारी वस्तु पीना, मांस खाना, खेंचा हुआ आसव पीना, किसरा भात खाना, यह सब धूर्तों का चलाया हुआ चक्र है। यह सब धूर्तों ने चलाया है वेदों में यह कहीं विधान नहीं है। अपने मान मद लोभ चपलता और चटोरे पने से यह घड़ा गया है।"

ब्राह्मण लोग तो सब यज्ञों में व्यापक विष्णु की ही भावना करते हैं। और खीर पुष्पादिकों से भी विष्णु का यज्ञ किया जाता है ऐसा स्मृतिकार लोगों का मत है। वेदों ने जिन वृक्षों को यज्ञ के योग्य बतलाया है और जो कुछ भी प्रोक्षणादिक से शुद्ध किया है वह शुद्ध भाव और महानुभावता से किया गया देवों के योग्य ही है।"

इस प्रकार पाठक जन देख सकते हैं कितना अहिंसा का पक्ष तथा यज्ञों में हिंसा का प्रतिरोध है।

उपरोक्त में ही "हिंसायां हि प्रवृत्तायां" ऐसा आने से ही प्रतीत होता है कि प्रथम हिंसा न थी परन्तु बाद को चल पड़ी।

ऋषि देवता संवाद, मांस के विरुद्ध आर्षसिद्धांत. यज्ञों में बीजमय हवि।

(१३) अब और सुनिये कि महाभारत कार के मत में ऋषियों का क्या सिद्धान्त है। इस बात की समस्या को हल करने के लिए महाभारत में ऋषियों और देवताओं का संवाद ध्यान देने योग्य है।

महाराज वसु अपने पुण्यों के बल पर स्वर्ग लोक में निवास करते थे। परन्तु ऋषियों के शाप से वे पाताल में गिर पड़े।

यव्वियज्ञांश्चवृक्षाश्च यूपांश्चोद्दिश्य मानवाः।
वृथा मांसानि खादन्ति नैषधर्मः प्रशस्यते॥ ८॥
सुरा मत्स्यो मधुमांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं चक्रं नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥ ९॥
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्॥
विष्णु मेवाऽभिजानन्ति सर्व यज्ञेषु ब्राह्मणाः॥ १०॥
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम्।
यज्ञियाश्चैव ये वृक्षावेदेषु परिकल्पिताः॥ ११॥
यच्चापि किञ्चित्कर्त्तव्य मन्यच्चोक्षैः सुसंस्कृतम्।
महत्सत्वैः शुद्ध भावैः सर्वं देवार्हमेव तत्॥ १२॥

युधिष्ठर महाराज पूछते हैं कि हे पितामह बताइये कि वसु महाराज इतने परम भक्त होते हुये भी पाताल में कैसे गिर पड़े।

भीष्म बोले—*

इस विषय में एक बड़ा पुराना इतिहास लोग कहा करते हैं। ऋषियों और देवताओं का संवाद हुआ। देवता लोग ऋषियों को कहते थे कि 'अज' से यज्ञ करना चाहिये वह 'अज' भी बकरा ही समझना चाहिये। और कोई किसी प्रकार का पशु नहीं। इसी प्रकार का स्थिर सिद्धान्त है।

ऋषियों ने कहा—यज्ञों में तो बीजों से यज्ञ करना चाहिये इसी प्रकार वेद की श्रुति है। अज भी बीजों का नाम है। छाग या बकरा तुम नहीं मार सकते हो। हे देव लोगो जहां पशु मारा जाता हो वह सज्जनों का धर्म नहीं है यह तो श्रेष्ठ सत्य युग है। इस में पशु किस प्रकार मारा जा सकता है।

इस प्रकार जब ऋषि और देव लोग झगड़ा कर रहे थे, मार्ग से आते हुये वहां वसु राजा भी आ निकले। अन्तरिक्ष मार्ग से जाते हुये वसु को ऋषियों ने

---

* महाभारत, शान्ति० ३३७ अ०

भीष्म उवाचः—
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ऋषीणाञ्चैव संवादं त्रिदशनांञ्च भारत ॥ २ ॥
अजेन यष्टव्यमिति प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान्।
स च च्छागोऽप्यजो ज्ञेयो नान्यः पशुरिति स्थितिः ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—
बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ ४ ॥
नैष धर्मः सतां देवाः यत्र वध्येत वै पशुः।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः ॥ ५ ॥

भी० उ०—तेषां संवदतामेव मृषीणां विबुधैः सह।
मार्गागतो नृपश्रेष्ठ स्तं देशं प्राप्तवान् वसुः।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान् समग्रबलवाहनः ॥ ६ ॥
तंदृष्ट्वा सहसा यान्तं वसुं ते त्वन्तरीक्षगम्।
ऊचु द्विजातयो देवानेष च्छेत्स्यति संशयम् ॥ ७ ॥

कहा, यह महाराज हमारा संशय हटा देगा। इस ने बहुत यज्ञ किये हैं दान दिये और सब से श्रेष्ठ और सब प्राणियों का प्यारा है। इस लिये यह कभी झूठ न कहेगा। इस प्रकार की सलाह कर के ऋषि और देव दोनों पुत्त वसु के पास आकर पूछने लगे।

हे राजन्! यज्ञ किस वस्तु से करना चाहिये, अज से या औषधियों से? इस हमारे संशय को आप हटावें आप ही हमारे प्रमाण भूत हैं।

राजा देवता और ऋषियों की तरफ अंजलि बांधकर हाथ जोड़ कर पूछने लगे—

"किसकी क्या अभिलाषा है।"

ऋषि बोले—

"धान्य बीजों से यज्ञ करना चाहिए। हे महाराज ऐसा हमारा पक्ष है। देवताओं को तो पशु ही अभिमत है।"

"वसुने भी देवताओं का मत जानकर पक्षपात से 'अज नाम बकरे से ही यज्ञ करना चाहिए' इस प्रकार का वचन कहा। यह सुनकर सूर्य समान तेज वाले ऋषि लोग कुपित होकर बोले कि तू ने देवताओं का पक्ष लेलिया है इस से तू स्वर्ग

यज्वा दानपतिः श्रेष्ठः सर्वभूतहितप्रियः।
कथंस्विदन्यथा ब्रूयां देष वाक्यं महान् वसुः ॥ ८ ॥
एवं ते संविदं कृत्वा विबुधा ऋषयस्तथा।
अपृच्छन्सहसाऽभ्येत्य वसु राजानमन्तिकात् ॥ ९ ॥
भोराजन, केन यष्टव्यमजेनाहोस्विदोषधैः ॥
एतन्नः संशयंछिन्धि प्रमाणं नो भवान् मतः ॥ १० ॥
स तान् कृताञ्जलिभूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः।
कस्य वै को मतः कामो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥

ऋषयऊचुः—

धान्यै र्यष्टव्यमित्येष पक्षोऽस्माकं नराधिप
देवानान्तु पशुः पक्षो मतो राजन् वदस्व नः ॥ १२ ॥

भी० ऊ०—देवानान्तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात्।
छागेनाजेन यष्टव्य मेवमुक्तं दवचस्तदा।
कुपितास्ते तदा सर्वे मुनयः सूर्य वर्चसः ॥ १३ ॥

से गिर पड़, आज से तू आकाश में कभी न चल सकेगा। हमारे शाप से आज तू पृथ्वी को भेदकर उसमें घुस जायगा। तिस पर वह आकाश से गिर पड़ा और पृथ्वी में प्रवेश कर गया।"

बस इस प्रकार वसु की अशास्त्रीय उक्तिका मर्म भी ज्ञात होता है। और आर्यसिद्धान्त का सच्चा स्वरूप स्वतः प्रतीत होता है और किसी प्रकार की शंका नहीं रहती कि वैदिक सिद्धान्त क्या है, और उस पर धूर्त्तों ने किस प्रकार की माया फैलाई है।

"पूर्वोक्त कथा में प्रतिपादित पक्षपाती मध्यस्थ वसु के बारे में एक और कथा का उल्लेख यज्ञ ही की समस्या को सरल करने के लिए महाभारतकारने अश्वमेध पर्व के अन्त में उद्धृत किया है। प्रथम कथा में ऋषियों और देवताओं का संवाद था परन्तु यहां ऋषियों और इन्द्र का संवाद है।

ऋसि और इन्द्र संवाद युधिष्ठिर अश्वमेध की निन्दा और आर्यसिद्धान्त यज्ञ में बीजमय हवि

(१४) महाराजा युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के अन्त में नकुल ने दान देते समय ब्राह्मणों के सामने युधिष्ठिर के यज्ञ की बड़ी तुच्छता दिखाई। तिसपर जनमेजय वैशम्पायन से पूछ बैठे कि नकुल ने युधिष्ठिर के महायज्ञ की निन्दा क्यों की।

वैशम्पायन बोले:—*

पहले जमाने में यज्ञ की जो विधि थी, वह ऐसी न थी जैसे आजकल करते हैं। पहले जमाने की विधि को सुनो। इन्द्र ने पहले जमाने में यज्ञ किया। जब सब

ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनं।
सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद् दिवःपत ॥ १४ ॥
अद्यप्रभृति ते राजन्नाकाशे विहता गतिः।
अस्मच्छापाभिघातेन महीं भित्वा प्रवेक्ष्यसि ॥ १५ ॥
ततस्तस्मिन्मुहूर्त्तेऽथ राजा परिचरैः सह।
अधो वै सम्बभूवाशु भूमेर्विवरगो नृप ॥ १६ ॥

*** महाभारत, अश्वमेध०, ९१ अ०**
वैशम्पायन उवाच—
यज्ञस्य विधिमग्र्यं वैफलञ्चापि नराधिप।
गदतः शृणु मे राजन् यथावदिह भारत ॥ ७ ॥

ऋत्विग् होता कार्य व्यग्र होकर आहुतियें दे रहे थे और देवता नियम पूर्वक आहुतियें ले रहे थे, तो पशुओं का आलम्भन का समय आया; तब ऋषियों को दया आई। दीन पशुओं को देखकर तपोधन ऋषि इन्द्र के पास आकर बोले:—

हे इन्द्र, यज्ञ करने का यह प्रकार अच्छा नहीं है। बड़े भारी धर्म की इच्छा करने वाले तेरा यहां बड़ा भारी अज्ञान है। वेद के अनुसार पशुओं का यज्ञ में घात नहीं होता है। ये जो भी तू कुछ करने लगा है यह सब धर्म का नाश करने वाला है। यह धर्मानुकूल यज्ञ नहीं है। हिंसा करना धर्म नहीं कहलाता। यदि तू चाहे तो ऋत्विग् लोग वेद के अनुसार ही यज्ञ करें तो उनको भी बड़ा धर्म होगा। तीन वर्ष के रखे हुये अन्न बीजों से हे सहस्राक्ष, यज्ञ करो। यह बड़ा भारी धर्म है इससे ही बड़े गुणों वाले फल की उत्पत्ति होगी।

अभिमान के अज्ञान वश हुवे इन्द्र ने तत्वदर्शी ऋषियों का कहना न मान कर विवाद करना शुरु कर दिया। विवाद बहुत बड़ा चला कि बीजों से यज्ञ किया जाय या पशुओं से। तत्व को जानने वाले ऋषि लोगों ने इस झगड़े से तंग आकर शक्र से सहमति कर के वसु महाराज को मध्यस्थ बनाकर उस से पूछा।

पुराशक्रस्य यजतः सर्व ऋचु महर्षयः ॥
ऋत्विक्षु कर्मव्यग्रेषु वितते यज्ञ कर्मणि ॥ ८ ॥
आलम्भ समये तस्मिन् गृहीतेषु पशुष्वथ।
महर्षयो महाराज बभूवुः कृपयान्विताः ॥ ११ ॥
ततो दीनान् पशून् दृष्ट्वा ऋषयस्ते तपोधनः।
ऊचुः शक्रं समागम्य नायं यज्ञविधिः शुभः ॥ १२ ॥
अपरिज्ञान मेतत्ते महान्तं धर्म मिच्छतः।
नहि यज्ञे पशु गणाः विधि दृष्टाः पुरन्दर ॥ १३ ॥
धर्मोपघातकस्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो।
नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
आगमेनैव ते यज्ञं कुर्वन्तु यदि चेच्छसि।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्तेषु महान्भवेत् ॥ १५ ॥
यज बीजैः सहस्राक्ष त्रिवर्ष परमोषितैः।
एष धर्मो महान् शक्र महागुणफलोदयः ॥ १६ ॥
शतक्रतुस्तुत द्वाक्य मृषि भिस्तत्वदर्शिभिः।
उक्तं न प्रति जग्राह मानान्मोह वशंगतः ॥ १७ ॥

महाभाग यज्ञों के विषय में शास्त्र क्या कहता है। क्या पशुओं से यज्ञ करना चाहिये या बीजों और रसों से।

वसु ने ये सुनकर बिना विचारे ही युक्ति प्रयुक्ति की प्रबलता और निर्बलता को न देख कर अज्ञानी की तरह कह दिया; 'जो वस्तु संगृहीत हों उन्हीं से यज्ञ कर लेना चाहिये'।

" इस प्रकार झूंठा उत्तर देकर रसातल में चला गया इस लिये जनमेजय एक बिद्वान् को भी संदिग्ध बात पर सहसा कोई बात नहीं कहनी चाहिये।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां भी आर्य तथा वैदिक सिद्धान्त यज्ञों में पशु हिंसा का कितनी प्रबलता से विरोध कर रहा है। इसी की पुष्टि में हम पाठकों के समक्ष एक आर्य यज्ञ का साक्षात् निदर्शन भी रखना चाहते हैं।

अगस्त्य का यज्ञ हिंसाशून्य यज्ञ

(१९) यह महाभारत में ही वर्णित अगस्त्य मुनि के किये यज्ञ का वर्णन है।

जनमेजय बोले——

सब यज्ञों में किस प्रकार निश्चय हो तिसपर वैशम्पायन बोले——* यहां भी एक पुराना इतिहास कहा जाता है। पुराने जामाने में महातेजा

तेषां विवादः सुमहान् शक्रयज्ञे तपस्विनां।
अङ्गमैः स्थावरैर्वाऽपि यष्टव्यमिति भारत॥ १८॥
तेतु खिन्ना विवादेन ऋषयस्तत्वदर्शिनः।
तदा सन्धाय शक्रेण पप्रच्छुर्नृपतिं वसुम्॥ १९॥
महाभाग कथं यज्ञेष्वागमो नृपसत्तम।
यष्टव्यं पशुभिर्मुख्यै रथो बीजै रसैरिति॥ २०॥
तत् श्रुत्वा तु वसुस्तेषा मविचार्य बलाबलम्।
यथो पनीतैर्य ष्टव्यमिति प्रोवाच पार्थिवः॥ २१॥
एवमुक्त्वा स नृपतिः प्रविवेश रसातलम्।
उक्त्वाथ वितथं प्रश्नं चेदीनामीश्वरः प्रभुः॥ २२
तस्मान्न वाच्यं ह्येकेन बहुज्ञेना ऽपिसंशये॥ २३॥

* **महाभारत० अश्वमेध० ९२ अ०**
पुरागस्त्यो महातेजा दीक्षां द्वादश वार्षिकीम्।
प्रविवेश महाराज, सर्वभूतहिते रतः॥ ५॥
तमग्निकल्पा होतारः आसन् सत्रे महात्मनः।

अगस्त्यने १२ वर्ष की दीक्षा ग्रहण की उसके अग्नि के सदृश तेज वाले होता थे । बड़े २ महात्मा फलमूल कन्दादि आहार करने वाले, तथा केवल सूर्य मरीचि से शक्ति ग्रहण करने वाले ऋषि, यति, तपस्वी, जितेन्द्रिय उस में एकत्रित हुवे ।

अगस्त्य ने यथाशक्ति जितना अन्न इकट्ठा किया था उसी से यज्ञ किया। जो भी कुछ हुआ सब उस सत्र के योग्य ही था इसी प्रकार अनेक मुनियों ने बड़े २ क्रतु किये। अगस्त्य ने अन्न का बड़ा दान किया परन्तु १२ वर्ष तक वृष्टि न हुई । तिस पर सब को चिन्ता हुई । × अगस्त्य बोले यदि वर्षा न होगी तो चिन्ता यज्ञ करूंगा । फिर भी न होगी तो स्पर्श यज्ञ करूंगा । फिर भी न होगी तो अत्यन्त कष्ट साध्य यज्ञों को भी प्रयत्न से करूंगा। मैंने यह बहुत वर्षों से इकट्ठा किया हुवा बीजमय यज्ञ किया है सो बीजों द्वारा ही सब का हित करूंगा इस में कुछ भी विघ्न नहीं होगा। मेरा यज्ञ विफल नहीं हो सकता । या तो इन्द्र बरसेगा या इन्द्र ही नहीं रहेगा । यदि इन्द्र नहीं बरसेगा तो मैं स्वयं इन्द्र होजाऊंगा । और प्रजाओं को जीवन दूंगा। सब भोजन वैसे के वैसे ही होंगे । और भी विशेषताएं होंगी । इसी प्रकार तप के बल से सब कुछ

मूलाहाराः फलाहाराः साश्म कुट्टाः मरीचिपाः ॥ ६ ॥
उपातिष्ठन्त तं यज्ञं यजन्तस्ते महर्षयः ॥ ९ ॥
यथाशक्त्याभगवतातदन्नं समुपार्जितम् ।
तस्मिन्सत्रेतु यद्वृत्तं तद्योग्यं च तदाभवत् ॥ १० ॥

× चिन्तायज्ञं करिष्यामि विधिरेष सनातनः ।
यदिद्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः ॥ १८ ॥
स्पर्श यज्ञं करिष्यामि विधिरेष सनातनः ।
यदिद्वादश० ... ... ॥ १९ ॥
व्यायामेनाहरिष्यामि यज्ञानन्यानति व्रतान् ।
बीजयज्ञो मयायं वै बहुवर्षसमाचितः ॥ २० ॥
बीजैर्हितं करिष्यामि नात्र विघ्नो भविष्यति ।
नेदं सत्रं वृथाकर्तुं शक्यं मम कथं चन ॥ २१ ॥ इत्यादि-
भवतः सम्यगिष्टातु बुद्धि हिंसाविवर्जिता ॥ ३३ ॥
एतामहिंसां यज्ञेषु ब्रूयास्त्वं सततं प्रभो ।
प्रीतास्ततो भविष्यामो वयन्तु द्विजसत्तम ॥ ३४ ॥

अगस्त्य ने उपस्थित कर दिया। ऋषियों ने प्रसन्न हो कर सत्र की समाप्ति पर बर मांगा कि हम चतुर्थाश्रम को आश्रयण करते हैं और वेद के अनुकूल तप करते हैं। आपने यह यज्ञ हिंसा से शून्य किया है। इसी अहिंसा का यज्ञों में आगे भी तुम उपदेश करो तो हम बहुत प्रसन्न होंगे।

पाठक अब देखिए यज्ञ करने की आर्ष प्रणाली कितनी पवित्र है और कितनी आदर्श है। इसी को ऋषि लोग वेदानुकूल तथा शास्त्रानुसंगत मानते चले आए हैं। इसी बात को महाभारतकार भी मुक्त कण्ठ से स्थान २ पर तथा प्रकरण २ पर उद्घोषित करते हैं।

इस उद्धरण में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि इस में स्पर्शयज्ञ उसी यज्ञ के लिए आया प्रतीत होता है जिस के लिए आलम्भ यज्ञ आता है जिसको देख कर मांस लोलुप ऋत्विग् तथा भोले सनातनी लोग पशुघात परक अर्थ किया करते हैं।

यदि अभी भी कोई संशय शेष है तो अभी भारतान्तर्गत और प्रमाण संग्रह किये जाते हैं। नारद ने उञ्छ वृत्ति ऋषि यज्ञ का वर्णन किया है।

ऋषि के यज्ञ में धर्म-मृग कृत परीक्षा

(१६) उञ्छ वृत्ति ऋषि ने बीजों से यज्ञ किया। एक समीप वासी हरिण ने हठ से उसके यज्ञ में आकर अपनी आहुति देने की प्रार्थना की। और कहा कि, हे ऋषे मेरी आहुति देदो तुम को बड़ा स्वर्ग होगा। बड़े विमान और गन्धर्व और अप्सराएं तुम्हारे वश होंगी। यह प्रलोभन देख कर ऋषि का मन हिंसा की तरफ प्रवृत्त हुवा। इस प्रकार से धर्म ने मृग के रूप में बन में वास कर के ऋषि की परीक्षा ली और सिखाया कि यह यज्ञ का प्रकार नहीं है। *

इस प्रकार मृग हिंसा को मन में करने वाले ऋषि का क्षणभर में सम्पूर्ण तप नष्ट हो गया। इस लिये हिंसा यज्ञ में विहित नहीं है।"

* **महा० शान्ति० २७१ अ०**

सतु धर्मो मृगो भूत्वा बहुवर्षोषितो वने।
तस्य निष्कृतिमाधत्त नह्यसौयज्ञ संविधिः॥ १७॥
तस्य तेनानु भावेन मृगहिंसात्मनस्तदा
तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद् हिंसा न यज्ञिया॥ १८॥

हमें आशा है कि हम अब पर्याप्त उद्धरण महाभारत से इस बात की पुष्टि में दे चुके कि वास्तव में न तो वेदों और शास्त्रों की दृष्टि से और न प्राचीन ऋषियों की ही दृष्टि से यज्ञ में पशु वध होता था। अब आप यही शंका करेंगे कि यदि यज्ञों में पशु—इकट्ठे किये जाते थे तो क्यों? क्या मारने के लिये नहीं?

यज्ञ में पशु संग्रह दान—प्रदर्शनी

(१६) हमारी सम्मति में 'नहीं'। प्राचीन काल के यज्ञों का वर्णन तो पढ़िये किसी स्थान पर भी पशुबध का नाम नहीं आता। सब पशु धन हिरण्यादि सच्चरित्र माननीय ब्राह्मणों को दान देदिया जाता था। ये इतना धन धान्य संग्रह और "पशु संग्रह दान के लिये, ऋत्विजों की दक्षिणा के लिये, और यज्ञों में बड़ी २ अद्भुत प्रदर्शनियों के लिये किया जाता था। न्यून से न्यून महाभारत का पारायण हमें इसी परिणाम तक पहुंचाता है।

अब हम इसी बात की पुष्टि में महाभारत के उद्धरण लिखेंगे।

महाभारतकार ये मानता था कि ओषधियें पशु वृक्ष लताएं, घी, दूध दहि हवि, भूमि दिशाएं श्रद्धा काल ऋचाएं यजुः साम यजमान अग्नि ये १७ अंग यज्ञ के होते हैं। और यज्ञ ही सबका मूल है *॥

[प्र०] तो यह पशु क्या सिवाय मारने और भी किसी काम में आ सकते हैं। [उ०] हां [प्र०] किस कार्य में [उ०] यज्ञ में स्पर्श विधि को पूरा करने के लिये, दक्षिणा में विद्वान् ब्राह्मणों तथा ऋषि मुनियों को दान देने के लिये, तीसरा सर्व साधारणों के मनोरञ्जन के लिये प्रदर्शिनी या अद्भुतालय बनाने के लिये। [प्र०] ऐसा तो हमने कभी देखा नहीं। [उ०] देखा तो तब हो जब कभी आर्य-यज्ञ में गये हो या प्राचीन राजर्षियों का इतिहास पढ़ा होवे। सुनो, महाभारतकार स्वयं कितने राजाओं को गिनाते हैं कि उन्होंने अनन्त धन-राशि तथा अन्न राशि और पशु राशि का संग्रह किया और सम्पूर्ण ब्राह्मणों को दान दे दिया।

---

* महा० शान्ति० २६ ७ अ०

ओषध्यः पशवो वृक्षा वीरुदाज्यं पयो दधि।
हविर्भूमिर्दिशः श्रद्धाकालश्चैतानि द्वादश॥ २५॥
ऋचो यजूंषि सामानि यजमानश्चषोडश॥
अग्निश्चैषा गृहपतिः ससप्तदशउच्यते॥ २६॥
अङ्गान्येतानि यज्ञस्य यज्ञो मूलमिति श्रुतिः (२७)

(१) श्वित्य राजा के पुत्र सृञ्जय के पुत्र सुवर्णष्ठीवी ने अपने सब यज्ञ-गृह तथा यज्ञवेदि आदि सुवर्ण की बनायीं। सब ब्राह्मणों ने आकर यथेच्छ अन्न खाया। दूध दही शहद और नाना प्रकार के खान पान वस्त्र अलंकरणादि सब अभीष्ट वस्तुएं इस के यज्ञ में वेद को जानने वाले ब्राह्मणों को प्राप्त होती थीं। उसने सब शयन आसन यान सुवर्ण की राशियें और अभिमत धन ब्राह्मणों को यथेच्छ दान दिया।*

(२) सुहोत्र नाम राजा ने धर्म से देवों की पूजा की, बाणों से शत्रुओं का जय किया और अपने गुणों से प्रजा को वश किया। उस के राज में ऊपर से भी सोना बरसता था। स्वयं बिना घोड़ों के चलने वाली सोने की गाड़ियें, सोने के बने मगरमच्छ कैकड़े मच्छियें बहुत सी शिल्प थी। उस ने हजारों बौने कुबड़े नाके मकर और कछुए सोने के बनवाये जिनको देखकर सब आश्चर्य करते थे। परन्तु यह सब धन यज्ञ करने के समय दान देदिया ×

(३) पौरव राजा ने सैकड़ों सफेद घोड़े यज्ञ के लिए छोड़े इसके अश्वमेधों में विद्वानों की गिनती ही न थी। यज्ञ में इसने दक्षिणा में दस हजार हाथी जो और इतनी ही

* महा० द्रोण पर्व ५५ अ०

प्रशवाटस्य सौवर्णाः सर्वेचासन् परिच्छदाः।
यस्यसर्वं तदाह्यन्नं मनोऽभिप्रायगं शुचि॥
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वेचान्नार्थिनो द्विजाः।
पयोदधि घृतं क्षौद्रम्भक्ष्यंभोज्यञ्च शोभनम्॥
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च।
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान् वेदपारगान्॥

× महा० द्रोण० ५६ अ०

यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान्।
हैरण्यास्तत्रवाहिन्यः स्वैरिण्यो ह्यभवन्पुरा॥
ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्चविविधान् बहून्।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि नक्राश्चक्रोषसम्मिताः॥
सहस्रं वामनान् कुब्जान् नक्रान्मकरकच्छपान्
सौवर्णान् विहितान्दृष्ट्वा ततो ऽस्मयत वैतदा॥
तत्सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्योह्य मन्यत॥

सुन्दर स्त्रियें, ध्वज और पता का से जड़े हुवे सोने के हजारों रथ घरों, खेतों, सैकड़ों गौओं के साथ, बड़े २ घुड़ चढ़े सर्दार सैकड़ों की तादाद में, गौवों के नौकर हज़ारों, दान दिये। गाथा कहने वाले कहते हैं कि इसने यज्ञ में सोने के सींग वाली, चांदी के खुरों वाली गौवें भेड़ें बकरियें और बहुत सी दासी दास गधे ऊंट रत्नों और अन्नों के पहाड़ यज्ञ में दक्षिणा के रूप में प्रदान किये।*

[४] उशीनर देश का राजा शिवि भी बड़ा प्रतापशाली हुआ। इस राजा ने नाना प्रकार की पृथिवी ब्राह्मणों को दान दी। और सैकड़ों हाथी घोड़े पशु धान्य गाय और बकरे भी साथ ही दान किए। जितनी बरसते बादल की धारायें हों जितने रात को आकाश में तारे हों जितने गंगा की रेत के कण हों और जितने समुद्र में रत्न हो बस उतनी गाय आदि शु ब्राह्मणों को दान दिये।

ब्राह्मणों को नाना प्रकार के भोजन मिलते थे, दूध दही के बड़े २ तालाब लग गए थे। दूध की नदिए थी सफेद अनाज के पहाड़ थे। ये आज्ञा थी नहाओ खाओ पीओ और मौज उड़ाओ। †

---

* महा० द्रोण० ५७ अ०

तस्याश्वमेधे राजर्षे देशाद्देशात्समेयुषाम्।
शिक्षाक्षर विधिज्ञानांनासी त्संख्या विपश्चिताम् ॥
यज्ञे यज्ञे यथा कालं दक्षिणां सोऽत्याकालयत्।
द्विपादशसहास्राख्या प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा।
यःसहस्रं सहस्राणं कन्या हेम विभूषिताः ॥
धूर्याश्चाश्वगणारूढा सगृहक्षेत्रगोशताः ॥
शतं शतसहस्राणि स्वर्ण मालीमहात्मानाम्।
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत् ॥
तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदोजनाः।
हैम शृङ्गयोरौप्यखुराः सवत्साःकांस्यदोहना ॥
दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादा जावकं बहु।
रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥
तस्मिन्संवितते यज्ञे दक्षिणामत्य कालयत् ॥

† महा० द्रोण० ५८ अ०

निरर्गलैर्बहुफलै निष्ककोटि सहस्रदः ॥
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैः मगैर्गोऽजाविभिस्तदा ॥

(५) भगीरथ राजा ने भी सुवर्ण से भूषित सहस्रों कन्याओं का दान किया, राज पुत्रों का दान किया रथ दान दिये। एक रथ के साथ सौ २ हाथी, और हज़ार २ घोड़े, प्रति अश्व सौ २ गौवें, और उनके पीछे भेड़ बकरियें थी सो सब इतनी मात्राओं में दक्षिणा में दान देदी। (*)

(६) मान्धाता राजा ने मीलों लम्बे, योजनों ऊंचे सोने के मच्छ बनवाये, भोजनों के पर्वत खड़े किये, घी के तालाव, दाल के तालाब दहि की झाग जिन में तैर रही थी शहद की नदियें, दूध की धारायें, शरवत के ताल बनवाये, और सब ब्राह्मणों को दान देदिया। **

हम अंक देदे कर कहां तक वर्णन करें और उद्धरण देदे कर कितनी संख्या गिनाएं ये सब इस प्रकरण में नाभाग अम्बरीष जय ययाति आदि १६+ राजाओं का वर्णन है जिन में सिवाय रान्तिदेव† के और किसी ने भी मांस का उपयोग नहीं किया न यज्ञ में और न खाने में।

इसी से प्रतीत होता है कि ये सब पशुमय संग्रह दान के लिए होता था। यही प्रकरण महाभात में कई स्थान पर छेड़ा गया हैं। भेद केवल विस्तार संक्षेपमात्र का है।

इसी प्रकार यज्ञ में दान प्रकरण शान्ति पर्व के प्रारम्भ में भी युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिये छेड़ा गया है। इस में भी १९ राजाओं को गिनाया गया है। फिर भी पाठकों को मनोरञ्जक के लिए यहां कतिपय निदर्शन संक्षेप से लिखे जाते हैं बृहद्रथ राजा ने १०,०००,००० सफेद घोड़े १०,०००,००० कन्याएं १०,०००,००० गज १००,०००,००० सुवर्ण मालाओं से मण्डित बैल और इतनी ही गाएं दान दीं।

बिविधां पृथिवी पुण्यां शिविर्ब्राह्मणसात्करोत्।
यावत्योवर्षतोधारा यावत्योदिवितारकाः॥
तावतीरददद्गावः शिविरौशनरोऽध्वरे।

*** महा० द्रोण० ६० अ० १—५**
**** ,, ,, ६२ अ० ११—१८**
+ ,, ,, ५६ अ० से अ० ७० तक
† ,, ,, अ० ६७ १५—१८

दुष्यन्त के पुत्र भरत ने यमुना किनारे ३०० घोड़े बांधे। २० सरस्वति के के गंगा के और इसने कण्व को १००० हाथी दान दिए। इत्यादि *

इस प्रकार पाठकों ने देख लिया कि प्राचीन राजपिवर्ग यज्ञों में किस प्रकार पशुओं का, भूमियों का, और धनों का दान किया करते थे। इसी दान पुण्य को कमाने के लिए उन के पशु काम आते थे।

यहां तक कि प्राचीन पाली साहित्य में भी खास गौतम बुद्ध भी मानते हैं वाजपेय अश्वमेध नरमेध तथा शम्याप्राशन या सोमयाग आदि पांच महायज्ञ प्राचीन काल में हुवे करते थे जिन में पशुघात सर्वथा भी नहीं होता था। पशुघात पीछे से मांस लोलुपों ने अपने लोभ के वश से नृशंसता से मिला लिया है।

युधिष्ठिर का अश्वमेध दान—और पशु वध और प्रदर्शनी

(१७) कहां तो प्राचीनों के ये आदर्श थे अब कहां महाभारत का जमाना आया। और काया पलटी। अब युधिष्ठिर के अश्वमेध का हाल सुनिये। और वहां भी कहां तक तो प्राचीन आदर्श तथा प्रथा का अनुसरण है कहां तक नया पशु बध भी हूवा।

अश्वमेधयज्ञ के लिये यज्ञस्थान तथा यज्ञ में आने वाले अतिथियों का पूरा प्रबन्ध शिल्पियों ने बनाकर तय्यार कर दिया। यज्ञ प्रारम्भ होने पर बड़े वाचस्पति तार्किक परस्पर शास्त्र चर्चा करते थे राजा के यज्ञ के दर्शन के लिये आये। कहीं तोरण, कहीं सोने के बने थम्भे, पलंग, पीढ़े और विहार स्थानों का दर्शन किया। लोग जत्थों में आने लगे। सोने के थाल परातें कड़ाहे आदि सब कुछ देखा। यूपादि भी शास्त्र के अनुसार बन गये थे। परन्तु सब आश्चर्यकर मनोरञ्जक यह चिड़िया खाना था जिस में स्थल और जल दोनों स्थानों के पशु दूर २ से लाये गये थे गौवें भैंसे और बूढ़ी औरतें पानी के जानवर जंगली शिकारी जानवर जंगली पक्षी इसी प्रकार जेरज और अण्डज स्वेदज और उद्भिजादि बनस्पति पर्वत और तराई और दल दलों की पैदा हुवी वस्तुएं और प्राणि सब वहां देखा गया।*

(*) महा० शान्ति—अ०२६, ३१-३४ व—४४—४६—

* महा० अश्व—८५ अ०

स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन प्रभो।
सर्वानेव समानीतानपश्यं स्तत्र ते नृपाः॥ ३२॥

यज्ञ के स्थान को देख कर सभी आश्चर्य में पड़ गये। हम पाठकों से पूछ सकते हैं कि इतने प्रकार के नाना जीव जन्तुओं का संग्रह सिवाय प्रदर्शनी के और किस लिये हो सकता है। हमें यह सब संग्रह प्रदर्शनी के लिये ही प्रतीत होता है। क्योंकि भावी यज्ञ में इन के मारने का कोई प्रकरण नहीं आता। स्वेदज और जरायुज पशुओं का मारना किस कार्य का। श्वापद शिकारी जानवरों का इकट्ठा करना किस लिये। इसी तरह बूढ़ी २ औरतों को रखने का क्या तात्पर्य हो सकता है? यह सब महाराजा युधिष्ठिर की प्रदर्शनी के प्रयोजन को सिद्ध करती हैं।

इन के अतिरिक्त अब आलम्भन प्रकरण में पशु का वध भी होता है।

यूप में ३०० पशु बांधे गये और उन को अपने २ देवता पर बलि किया गया। * और उन के बाद अश्व का आलम्भन भी श्रोत्रियों ने किया।×

एक स्थान पर तो यहां तक लिख दिया कि पशुओं का वध होने लगा तब लोगों को इस क्रिया का अन्त ही नहीं दीखा। †

इसी से प्रतीत होजाता है कि यद्यपि महाभारत के समय का साहित्य यज्ञ में हिंसा का समर्थन नहीं करता जैसा कि हमने पहले सिद्ध किया था। पर तथापि

गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च
औदकानि च सत्वानि श्वापदानि वयांसि च॥ ३३॥
पर्वतानूपजातानि स्वेद जान्युद्भिदानि च
जरा युजाण्डजातानि भूतानि ददृशुश्चते॥ ३४॥
एवं प्रमुदितं सर्वं पशुगोधनधान्यतः।
यज्ञवाटं नृपं दृष्ट्वा परं विस्मयमागताः॥ ३५॥

* महा० अश्व० ८८ अ०।
यूपेषु नियता चासीत्पशूनां त्रिशती तथा।
अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौन्तेयस्य महात्मनः॥ ३५॥

× महा० अश्व० ८६ अ०
श्रपयित्वा पशूनन्यान् विधिवद्द्विजसत्तमाः।
तं तुरङ्गं यथा शास्त्रमालभन्तद्विजातयः॥ १॥

† अश्व० ८६ अ०
पशूनां वध्यतांश्चैव नान्तं ददृशिरे जनाः॥ ४०॥

व्यवहार में उस प्रकार नहीं दीखता क्योंकि लोगों के आचार व्यवहार और रीति नीति सभी अवनति का रूप दिखा रहीं थीं।

यज्ञ में पशु हिंसा का तो एक तरफ नरबलि तक भी देवताओं पर चढ़ना शुरू होगया था। जैसा कि पहले अध्याय में हम दिखा आये हैं। जब नर हिंसा भी पाप नहीं गिना जाता था तब यज्ञ में हिंसा की तो गणना ही क्या थी। परन्तु फिर भी आर्यसिद्धान्त और वैदिक शिक्षा को दबी जबान से स्वीकार करने वाले भीष्मपितामह से ज्ञानी पुरुष ही यह साक्षी देते थे कि प्राचीन काल में यज्ञ वास्तव में अध्वर अर्थात् हिंसा शून्य कार्य होता था।

अब हम महाभारत की पर्याप्त समालोचना कर चुके और प्रायः सब पौराणिक सिद्धान्तों का आधार दिखा चुके हैं। और महाभारत काल की पर्याप्त समालोचना भी धार्मिक रूप से कर चुके हैं। अब इसके अनन्तर पौराणिक साहित्य की आलोचना करेंगे

पंचम अध्याय

वैदिक-देवता

गत अध्यायों में पुराणों के सिद्धान्तों का मूल दर्शाते हुवे यह दिखाया जा चुका है कि पुराणों की उत्पत्ति होने से पूर्व भारतवर्ष की क्या दशा थी। उस से पूर्व लिखे गये साहित्य महाभारत और पुराण में किस रूप से पौराणिक सिद्धान्तों का प्रक्रम बंध गया था। अब हम पुराण के देवता वाद के विषय में बहुदेवता-वाद के सिद्धान्त की ओर पाठकों का चित आकर्षण करना चाहते हैं। इस के पहले कि सहसा पुराणों के अभिमत देवताओं के वर्णन में प्रवृत्त हो जांय अपनी शैली के अनुसार ये दिखाना आवश्यक है कि इस सिद्धान्त के फैलने के पहले प्राचीन साहित्य में क्या सिद्धान्त निश्चय किया गया है।

सब से मान्य तथा प्राचीन साहित्य जो कि भारत वर्ष के सम्पूर्ण प्रकार की साहित्य शाखाओं का मूल है वेद भगवान है। वैदिक देवतावाद की आलोचना के बाद यदि हम पौराणिक देवताओं की आलोचना करेंगे तो पाठकों की दृष्टि में पुराणों का बहु देवता वाद तथा तद्विषयक आमूल शिखर स्पष्ट हो जायगा इस लिये प्रथम वैदिक आदर्श का स्पष्ट करना ही सब से अधिक मुख्य है और हम इसी ओर अपना अनुशीलन प्रारम्भ करते हैं।

—:०:—

वेदों में एकेश्वर पूजा:—

पाश्चात्य अनुशीलकों ने वैदिक साहित्य पर अनुशीलन करते हुवे अपना बड़ा प्रकोप दिखाया है। वे वैदिकसभ्यता को सभ्यता का सब से प्रथम पग तथा जांगलिक अवस्था का समय स्वीकार करते हैं। उनका यह स्थिर सिद्धान्त है कि वेदों में अन्य जंगली जातियों के धार्मिक विचारों के सदृश बहुदेवतावाद है और प्राकृतिक दृश्यों को देखकर सहसा आश्चर्य से उठे हुवे भावों से प्रतिपदार्थ देवता मान लेने से सहस्रों देवताओं की सृष्टि हुई है। और इसी आधार पर अग्नि आदि देवता की पूजा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में जगह २ मिलती है। एके-

श्वरवाद तो सर्वथा नहीं मिलता। अस्तु हम पाश्चात्यों की इस घोर अनभिज्ञता के विषय में क्या कहें परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि पाश्चात्य लोग वास्तव में भारतीय साहित्य को समझने में सर्वथा अशक्त हैं।

वैदिक आदर्श शिक्षा एकेश्वर पूजा ही है इसी आदर्श सिद्धान्त के आधार पर विकासवादियों की क्रमिक विचार उन्नति के सिद्धान्त का सहसा भंग हो जाता है। इस बात को प्रमाणित करने के लिये प्रथम वेद भगवान् ब्राह्मण तथा स्मृतिकार और पुराणों तक के प्रमाण देकर फिर पाश्चात्य बिचारकों की भी सम्मतियें दिखाने का प्रयत्न किया जायगा जिस से, यह भी स्पष्ट विदित होजायगा कि पाश्चात्य मोक्षमूलरादि संदश पंडित भी बहुदेव पूजा को सिद्धान्त बताते हुये भी वेद में एक देवता के सिद्धान्त को मानने में बाधित हुवे हैं। और कतिपय विद्वान तो वेद को दैवी शक्ति की ओर से प्रादुर्भाव अर्थात् वेद को ईश्वरीयज्ञान-मानने में भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं करते। +

प्रथम हम वैदिक मन्त्रों से एक देवता की पूजा को प्रमाणित करते हैं:—

(१) "उसी देवता को इन्द्र (ऐश्वर्यशाली) मित्र [मरण सेबचाने वाला] वरुण [पाप से निवारक] अग्नि [कुमार्ग से अच्छे मार्ग पर लाने वाला] कहते हैं। वही सुपर्ण [अच्छी मति वाला] गरुत्मान् [महान आत्मा] है।

वह परमात्मा एक है उस एक को ही प्रायः बुद्धिमान लोग बहुत प्रकार से कहते हैं उसी को अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि नामों से पुकारा जाता है"।*

कितनी स्पष्टता से एक देवता का ऋग्वेद में ही सब से प्रथम प्रतिपादन किया है।

विश्वकर्मा परमात्मा के विषय में वेद भगवान् कहते हैं—विश्वकर्मा जिसके आधार पर सब कर्म हैं उस के नाना प्रकार के अनन्त मन हैं वह वस्तुतः महान् है, सबको

+ Philip's Teaching of Vadas.

* ऋ० वे० १ म०, १६४ सू०,४६ मं०।

इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहु धावदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

धारण करने वाला सब सृष्टि का रचने वाला, परम और सब कुछ देखने वाला, जिस में सातो गतिशील जगत् के प्राणभूत ऋषियों के स्वरूप इष्ट अर्थात् क्रिया से विद्यमान है। उन सातो ऋषियों से भी अतिक्रमण करके पर एक (आत्मा) को ऋषि लोग बताते हैं।*

[३] जो हमारा पिता पालन करने वाला, जनिता पैदा करने वाला और जो सकल ज्योतिर्मय भुवनों को जानता है और जो सब देवों के नाम को धारण करने वाला है उसी परमात्मा के विषय में सब उत्पन्न होने हारे जन (भुवन–प्राणि) जानने की इच्छा करते हैं। ¶

[४] जो ईश्वर द्यौलोक से भी परे है इस पृथिवीलोक से भी परे है। और जो सब देवताओं से परे है और असुरों से परे है और गुहा [गुप्त स्थान या अन्तरिक्ष] में वर्तमान है वह देव कौन है जिस को सम्पूर्ण संसार के गर्भ स्वरूप में आपः ने धारण किया है जिस में सब देवताओं ने अपने को एक स्थान पर देखा— ×

पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए वेदभगवान् कहते हैं:—

(५) उसी विश्वकर्मा को सब **आपः** ने अपने गर्भ में धारण किया जहां कि सब देव समान रूप से एक साथ गति करते हैं उसी अज कभी भी न पैदा होने वाले के नाभिस्थान में एक (अण्डाकृतिगर्भ—) अर्पित [स्थापित] है जिस (परमात्मा) में सम्पूर्ण भुवन स्थित हैं।" §

---

* **ऋग्. १० मं०, सू० ८२, २मं०**
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एक माहुः॥

¶ **ऋग्. १० मं०, ८२ सू, ३मं०—**
योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

× **ऋग् १० मं०, ८२ सू, ५मं०**
परो दिवा पर एना पृथिव्याः परो देवे भि रसुरै र्यदस्ति।
कंस्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे॥५

§ **ऋ० १०, ८२, ६०।**
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थुः॥

(इस मन्त्र में और इस से पूर्व के मंत्र में भी आपःशब्द से सर्वकर्म लिये जाते हैं और देवता से ऐश्वर्य युक्त या जोतिर्मय गतिमान् पिण्ड गृहीत हैं। इस से परमात्मा का प्रतिपादन है)।

इस की स्पष्टता के लिये अगली ही ऋगु लीजिये।

[६] "जिसने इन सब भूतों को उत्पन्न किया है और जो सब तुम्हारे अन्दर भी विद्यमान है उसको तुम लोग नहीं जानते। क्योंकि तुम नीहार या धुन्ध सदृश स्वरूप अज्ञान से ढके हुये हो और [कभी किसी को और कभी अपने को ही ईश्वर मानकर] बातें बनाते हो। तुम केवल प्राणमात्र की तृप्ति करते हो। अर्थात् [प्राणमात्र धारण के लिये प्रयत्न करते हो] और [यज्ञादिकों में] केवल उक्थ मात्र का पाठ करने वाले हो। तुम उस परमात्मा को नहीं जानते हो।" +

सायण ने इस मंत्र से अपने को ब्रह्ममानने वाले वेदान्तियों का भी खण्डन किया है।

विश्व कर्मा ही की स्तुति में वेद भगवान् उसको द्यौ और पृथिवी का भी धारण करने वाला चराचर में एक मात्र व्यापक प्रतिपादन करते हैं।

"हे विश्वकर्मों के करने वाले परमात्मन् तुम हवि से (संसार को अपने अन्दर धारण करनें से] सब से महान् हो [सहिअत्ता चराचरम्] [हूदानादनयोः] तुम ही द्यौ और पृथिवी को स्वयं यज्ञ करते हो अर्थात् उनमें व्याप्त रहते हो। तुम्हारे विषय में सभी लोग मुग्ध हैं। हे परमात्मन् तुम्ही हमारे धनों के भण्डार हो और तुम्ही सब के प्रेरण करने हारे विद्वान् हो।"*

इस प्रकार सर्वव्यापी को परमेश्वर का स्वरूप बताया गया है! इसी प्रकार वेद भगवान् परमात्मा को सृष्टि संहारक तथा विधाता बताने के लिये उसी परमात्मा का वर्णन करते हैं।

+ ऋ० १०,८२ सू० ७।
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माक मन्तरा बभूव।
नीहारेण प्रावृताः जल्प्या चासुतृप उक्थशास श्चरन्ति॥

* ऋ० १०, सू० ८१। ६।
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवी मुत द्याम्।
मुह्यन्त्यन्ये अभितो जनास इहाऽस्माकं मघवा सूरिरस्तु॥

[८] "जो इन सब भुवनों को अपने अन्दर हवन करता हुआ, [प्रलयकाल में] सकल चराचरा को देखता हुआ, ऋषि, और सबका धारण करने वाला होता हमारा पालन करने वाला है, वह ही अपनी इच्छा से सकल गतिमान संसार की कामना करता हुआ अन्य सब वस्तुओं के अन्दर अन्तर्यामी हो कर व्याप्त हो रहा है।" ¶

इसी बात को प्रश्नोत्तर रूप में भी वेद भगवान् कहते हैं :—

(९) वह कौनसा बन है या वह कौनसा वृक्ष है जिन मे से द्यौलोक और पृथिवी लोक को घड़ कर बनाया गया है। विद्वान् लोगो तुम स्वयं अपने मन से उसके विषय में प्रश्न करो कि जो सब भुवनों को धारण करता हुआ शासन करता है। ×

(१०) उस परमात्मा के सब ओर आखें हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर बाहु हैं और सब ओर पैर हैं। वह अपने बाहुओं से सम्पूर्ण द्यौलोक को प्रेरित करता है। और गमनशील पादों द्वारा पृथिवी लोक को प्रेरण करता है और सब लोकों को पैदा करता है वह परम देव एक ही है। *

इसी प्रकार से हमें वेद का अनुशीलन करते हुवे अनेक मंत्र एकमात्र परमात्मा को ही देव बताते हुवे वैदिक एक देवता को सिद्ध करते हैं। पाठकों को निश्चय कराने तथा बुद्धिविशद करने तथा पाश्चात्यों के सिद्धान्त की स्थापना को निर्मूलकरने के लिये और भी लिखे जाते हैं :—

(११) वह परमात्मा हंस (गमनशील सर्वत्र व्यापक) है। वह द्यौलोक में शान्तिस्वरूप है। वह अन्तरिक्ष संचारी सबके जीवन का आधार वसु है। वह

¶ ऋ० १०, ८१, १०,
य इमा विश्वाभुवनानि जुह्वद् ऋषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविण मिच्छ मानः प्रथमच्छदवरां आविवेश॥

× ऋग्० १०, ८१,४।
किंस्विद्वनं, कउस वृक्ष आस, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।

* ऋग्० १०, ८१, ३.
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यं धमतिसं पतत्रै द्यावाभूमीजनयन्देव एकः॥

सब देवताओं का होता आदान करने वाला वेदि में बैठने वाला अग्निस्वरूप है। वह ही अतिथि सर्वत्र व्यापक तथा पूजनीय है। वह सब के घरों में भी अग्नि के रूप में दृश्यमान है। वह मनुष्यों में भी वैश्वानररूप से प्रकटित है। वही सर्वावर वरणीय आकाश मंडल में सूर्यादि द्युतिमान रूप में प्रकाशित है। वही ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान रूप में ऋषियों के हृदय में रहता है। वह ही व्योम आकाश में भी व्यापक है पानी में भी वह प्रादुर्भूत है, किरणों में भी उसका प्रादुर्भाव है। सब सत्य वस्तुओं में उसका आविष्कार है और वह स्वयं ऋत ज्ञान स्वरूप है। ×

इस मन्त्र पर सायन ने बड़ा ज़ोर लगाया है और उस परमात्मा के हीं सब देवताओं को स्वरूप माना तथा श्रुति वचनों से सिद्ध किया है उपनिषदों में भी यह मन्त्र ब्रह्मपरक है। उपरोक्त प्रकार से भी परमात्मा की व्यापकता और सर्वत्र शक्तिमत्ता का कितना परिचय दिया है।

इसी प्रकार इस व्यापक विष्णु—जिसको पौराणिकों ने शेष नाग पर समुद्र में सुलाया और जो नाभि कमल आदि से विचित्र रूप का कल्पित है—को वेद भगवान् ने व्यापक परमेश्वर ही प्रति पादन किया है।

(१२) व्यापक परमात्मा के परमपद (ज्ञान या स्वरूप) को सदा विद्वान् लोग देखते हैं। वह परम ज्ञान द्यौलोक में चक्षु या शास्त्र की न्यायी हैं।*

(१३) स्तुति करने वाले प्रमादरहित विद्वान् ब्राह्मण उसी विष्णु के परमपद को (अपने योग बल से) प्रकाश रूप में देखते हैं। §

एक ही परमात्मा का विद्वानों के पास से ज्ञान हो सकता है इस बात को वेद भगवान् बताते हैं।

× हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। ऋतसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥
ऋ० ४, ४१, १४।

सायनस्तु:—यश्च सर्व प्राणि हृदि चिद्रूपः स्थितः। परमात्मा यश्च निरस्तसमस्तोपाधिकं परं ब्रह्म तत्सर्वमेकमेव प्रतिपाद्यते।

* तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
ऋ० १, २२, १६।

§ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदम्॥
ऋ० १, २२, २०।

[१४] देवता के तत्वों के जानने वाला मैं क्रान्तदर्शी विद्वानों के प्रति अज्ञान होने के कारण ज्ञान सम्पादन करने के लिए प्रश्न करता हूं। छहों लोकों को जिसने थामा हुआ है वही परमात्मा अनादि के रूप में कौनसी एक मात्र वस्तु है।¶

जीव और अज परमात्मा को पृथक् प्रतिपादन करते हैं।

[१५] दो साथ रहने वाले सुन्दर पंखों वाले पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेते हैं। एक को तो अपने किए का फल भोगना पड़ता है। दूसरा फल भोग न करता हुआ ही स्वतः प्रकाशमान रूप हो रहा है। ‡

इसमें भी एक ही परमात्मा है।

इसके साथ ही के मन्त्र में वेद कहता है।

[१६] जहां पक्षिभूत जीव अमृत के भाग को ज्ञान पूर्वक सदा प्राप्त होते हैं। वह सब का स्वामी सकल भुवन का रक्षक धीर परमात्मा परिपक्व बुद्धि मेरे में प्रवेश करे अर्थात् ज्ञान दे। +

(१७) हे अग्ने तू सज्जनों पर सुखों की वर्षा करने वाला इन्द्र है तू ही सब से अधिगीयमान और नमस्कार करने योग्य विष्णु है। हे ब्रह्मणस्पते धन ऐश्वर्य को जानने वाला तू ही ब्रह्मा है। हे सबके विधारक अग्ने तू बहुत प्रकार की बुद्धि से जाना जाता है। *

[१८] सम्पूर्ण कार्यों के धारण करने वाला हे अग्ने तू ही राजा वरुण है तू ही शत्रु तथा दुष्ट भावों का नाश करने वाला स्तुति के योग्य मित्र है। स-

¶ अचि कित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मनेन विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि अजस्य रूपे किमपि स्विदेकः॥
ऋ० १, १६४, ६।

‡ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्न्य अभिचाकशीति॥
ऋ० १, १६४, २०

+ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपा स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥
ऋ० १, १६४, २१।

* त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्त्तः सचसे पुरन्ध्या॥
ऋ० मं० २, सू० १, ३ मं०।

सज्जनों के रक्षा करने हारा और तू ही अर्यमा है। तेरा ही दान सदा व्यापक है। और सम्यग् प्रकार से साधु सज्जनों के उपयोग के लिए है। तू ही अंश नाम का देव भी है तू ही हमारे यज्ञ में फलों के देने वाला है। ×

(१९) हे अग्ने परमेश्वर ! तू ही सेवा या तपश्चर्या करते आदमी को वीर्य संयुक्त द्रव्य देने वाला त्वष्टा है। तेरी ही सब स्तुतियें की जाती हैं। हे मित्र के सदृश तेज वाले तू ही हमारा एकमात्र बन्धु है। तू ही हे अग्ने शीघ्र प्रेरणा करने वाला अच्छे मन्त्रादि देता है तू ही सब मनुष्यों का बल भूत है ¶

(२०) तू ही बड़ेभारी द्यौलोक से हमारे शत्रुओं का नाश करने वाला असुर है। और पाप निवारण करने वाला तथा दुष्टों का रुलाने वाला तू रुद्र है। तू ही मरुतों का बल है। तूही सब अन्नादिक वस्तुओं का मालिक है। तू ही वस्तुतः वायु सदृश वेग गामी अरुण अश्वों से गति करने व कराने वाला सब के लिये सुख का निवास स्थान है। तू ही पूषा सब को पुष्टि देने हारा हमारे यजमान की स्वयं रक्षा करता है।*

(२१) हे अग्ने तू ही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का दान देने वाला सुशोभित होता है। सब रमणीय पदार्थों का धारण करने वाला, तू ही सब नरों का पति होता हुआ, सब धनों का मालिक होता हुआ भग [भजनीय] देव है। तू ही पालक है। यजमान और गृहस्थी भी घर में तेरा ही सेवक है।§

× त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रत स्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पति र्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देवभाजयुः॥
ऋ० २, १, ४।

¶ त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वया शुहेमाररिषे स्वश्व्यं त्वं नराशंसोऽसि पुरूवसुः॥
ऋ०, २, १, ५।

* त्वमग्नेरुद्रो असुरो महोदिव स्त्वंशर्धो मारुतंपृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणै र्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना॥
ऋ०, २, १, ६।

§ त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि॥
त्वंभगो नृपते वस्व ईशिषे त्वंपायुः दमे यस्ते विधत्।
ऋ० २, १, ७.

इन उपरोक्त मन्त्रों में अग्नि में ही सब देवताओं को माना है। और सब देवताओं को पृथग् २ न मान कर वेद भगवान् एकेश्वर पूजा का ही उपदेश करते हैं।

इसी प्रकार और देव नामों को भी लेवें:—

[२२] हे शत्रुओं का नाशक वरुण तू सभी का राजा है, क्या देव और क्या मनुष्य। तू हमें सौ वर्ष जीने के लिये और ज्ञान प्राप्त करने के लिए दे। प्राचीन विद्वानों ने अच्छी प्रकार सौ बरस की आयु को धारण किया है। हम भी धारण करें।*

[२३] तू देव है, तू त्वष्टा है, तू सविता है, तू विश्वरूप है, तू नाना प्रकार से प्रजा को उत्पन्न कर के प्रजा का पालन करता है। ये सब गतिशील भुवन जिस के आधीन है, ऐसा तू देवताओं में भी सब पापका नाश करने हारा एक मात्र महादेव है। ×

[२४] तू ही इन विशाल परस्पर संमिलित द्यावा पृथिवी को गति देता है। हे इन्द्र तेरे ही तेज से ये अच्छी तरह से व्याप्त हैं। सब ऐश्वर्यों को और तेजों को धारण करने हारा तू ही वीर सुना जाता है और देवों में से पाप का नाश करने हारा तू ही एक मात्र महादेव है। ÷

[२५] हे देव तुम विश्व को धारण और पालन करते हुवे हित-सज्जनों के मित्र सदृश राजा योद्धा के सदृश इस पृथ्वी के समीप निवास करते हो। अग्रगण्य और गृह में रहने वाले सद्गृहस्थ ये सब तेरे ही वीर हैं तू ही सब देवों में एक मात्र महादेव है। +

---

* त्वं विश्वेषां वरुणाऽसि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे श्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥

× देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥
ऋ० मं०३ सू० ५५ मं १९॥

+ मही समैरच्चम्वा समीची उभे तेऽस्य वसुना न्यृष्टे।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥

+ इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया, उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥
ऋ० मं०३ सू० ५५, मं० २०, २१॥

(२६) हे अग्ने तू ही वरुण रूप से प्रादुर्भूत होता है और तू ही जब दीप्त और प्रकाशित होता है तो मित्र होजाता है। तेरे में ही सब देवों की स्थिति है। हे सहसस्पुत्र तू ही मनुष्य मात्र गृहस्थी यजमान के लिए इन्द्र स्वरूप है।*

(२७) कन्याओं के लिए हे अग्ने तू ही अर्यमा और हे स्वधा को धारण करने वाले तेरा ही नाम गुह्य वैश्वानर है। तुझ को ही मित्र के सदृश इच्छा पूर्वक आधान कर के गाय के घृत से यज्ञ करते हैं। और तू ही गृहस्थ के स्त्री पुरुषों को समान चित्त बनाता है। ||

(२८) तेरी ही शोभा के लिए अग्ने मरुत वायुएं जलों का धारण करती हैं, जिस से हे रुद्र तुम्हारा रमणीय और अद्भुत स्वरूप प्रादुर्भूत होता है। इसी से व्यापन शील विष्णु के मध्यम पद का की स्थिति है। इसी से सब वाणियों के गुह्यनाम ओ३म् की तुम रक्षा करते हो।¶

[२९] हे सब कुछ इच्छा पूर्वक देखने वाले देव! तुम्हारी ही शोभा से ये सब देव नानारूप धारण करते हुवे अमृत का स्पर्श करते व भोग करते हैं। होम को निष्पादन करने वाले अग्नि के पास मनुष्य बैठते हैं। फलकी आकांक्षा करने वाले यजमान के लिये आयु की सम्भावना करते हुवे ऋत्विग् लोग हवि डालते हैं।+

[३०] मित्र परमात्मा जिसकी सब स्तुति करते हैं वही सब दुष्ट पुरुषों को कष्ट देता है। मित्र ही इस पृथिवी लोक और द्यु लोक धारण करने वाला है कर्म करने

* त्वमग्ने वरुण जायसे त्वंमित्रो भवसियत्समिद्धः।
त्वेविश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषेमर्त्याय ॥ १ ॥

|| त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभि र्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ २ ॥

¶ तवश्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्रयत्ते जनिम चारुचित्रम्
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

ऋ० मं ५, सू० ३,—१—३;

+ तवश्रिया सुदृशो देव देवा पुरूदधाना अमृतं सपन्तः
होतारमग्निं मनुषोनिषेदु र्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥

ऋ० ५, ३, ४,

वाले पुरुषों को वह सदा देखता है। इसी मित्र के लिये घृत युक्त हवि को दो।×

[३१] पांचो जन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, विट्, शूद्र, निषाद:) उसी बल से युक्त मित्र को आश्रय लेते हैं वही सब देवताओं को स्वतः धारण करता है। +

[३२] यह मित्र सब के नमस्कार करने योग्य और सेवा करने योग्य है। यह सब को प्रकाशित करने वाला तथा शोभन बल युक्त सब को पैदा करने वाला है ऐसे ही यज्ञ में स्तवन करने योग्य की शुभमति तथा शुभमानस संकल्प में मग्न होवें।*

(३३) इस वरुण परमात्मा में ही इन द्यु लोक और छः ६ प्रकार धारण करने वाली भूमियां स्थित हैं ऐसा वरुण राजा सब का बन्दनीय स्तुति के योग्य है। उसी के अन्तरिक्ष लोक में सुवर्ण के सदृश चमकने वाले, निराश्रय लटके हुये एक सूर्य मण्डल को बनाया है।+

(३४) सोम परमात्मा (सबके प्रेरणा करने तथा पैदा करने वाला) पवित्र करने तथा हम सबों की बुद्धियों को पैदा करने वाला है, वही द्यौ लोक को पैदा करता है, वही सूर्य को पैदा करता है, वही इन्द्र को पैदा करता है, वही विष्णु वेष्टन करने वाली वायु को पैदा करता है। ॥

(३५) वही देवताओ में ब्रह्मा है, वही कवियों में ऋषि है, वही मृगादि पशुओं में महिष के सदृश है, वही पक्षियों में श्येन के तुल्य है, वही शास्त्रों में

× मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः मित्रो दाधार पृथिवी मुतद्याम्।
मित्रः कृष्टीः अनिमिषा अभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवत् जुहोत।
ऋ० ३, ५६, १.॥

+ मित्राय पंच येमिरे अभिष्टिशवसे।
स देवान् विश्वान् बिभर्त्ति॥ ऋ० ३, ५६, ८.॥

* अयं मित्रोनमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रोऽजनिष्टवेधाः।
तस्य वयं सुमतौयज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
ऋ० ३, ५६, ४॥

+ तिस्रो द्यावोनिहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः। गृत्सो राजा वरुणश्चक्रपतं दिविप्रेण हिरण्यं शुभे कम्
ऋ० ७, ८७, ५॥

॥ सोमः पवतेजनितामतीनां जनितादिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्ने र्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

खड्ग के तुल्य है ऐसा सोम शब्द करता हुआ सब पवित्र वस्तुओं के अति क्रमण कर जाता है ।*

परमात्मा को वर्णन करने की यही रूपक शैली गीता में भी 'विभूति योग दिखाते हुवे भगवान् व्यास ने १० अध्याय में आश्रय लिया है ।+

(३६) सविता (संसार भर को पैदा करने तथा प्रेरणा करने वाला ही) पीछे है, सविताही आगे है, सविता ही ऊपर है, सविता ही नीचे है। सविता ही हमारी अभिलषित वस्तुओं को पैदा करे । सविता ही हमे दीर्घ आयु देवे ।÷

(३७) ब्रह्मणस्पतिने सब देवताओं को अन्य कारण से बनाया जिस प्रकार लोहार अपनी फुकनी आदि से वस्तुएं तय्यार करता है । ×

(३८) हिरण्यमय [तेजोमय] सकल प्रकाशमानलोकों को गर्भ में धारण करने वाला सब से प्रथम था वह ही सब उत्पन्न शील जगत का पति था। उसी ने इस पृथिवी लोक और द्यौ लोक को धारण किया है उस अज्ञात स्वरूप उस प्रजा पति के लिए हम स्तुतियों से हवि देते हैं । ‡

(३९) जो आत्माओं का निमित्तरूप से देने वाला बलको देने वाला है जिस की सम्पूर्ण लोक उपासना करना है और देव (विद्वान्) लोग भी जिसकी आज्ञा का पालन करते हैं । ‖

* ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनां ऋषिर्विप्राणां महिषोमृगाणां ।
श्येनोगृद्ध्राणां स्वधितिर्वनानां पवित्रमत्येतिरेभन् ॥
ऋ, म० ९, सू० ९६, ५· ६ ॥

\+ वेदानां सामवेदोऽस्मी इत्यादि० ॥

÷ सविता पश्चात्सविता पुरस्ता त्सवितो तरात्सविना अधस्तात् ।
सवितानः सुवतु सर्वतार्ति सविता नोरासतां दीर्घ मायुः ॥
ऋ० १०, ३६ १४ ॥

× ब्रह्मण स्पतिरेता सं कर्मा रइवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेसतः सदजायत । ऋ० १०, ७२, २, ॥

‡ हिरण्यगर्भः सम वर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवी मुतद्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥
ऋ० १०, १२१, १—१० ॥

‖ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासतेप्रशिषं यस्य देवाः
यस्य छाया ऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥२॥

(४०) अमृत और मृत्यु दोनों जिस की छाया स्वरूप हैं ऐसे अज्ञेय देवता को हम हवि से स्तुति करते हैं।

जो प्राण धारण करने वाले और गति करने हारे जगत का अपनी महिमा से या महत्ता से एक मात्र राजा है। जो दो पैर वाले मनुष्यों और चार पैर वाले पशुओं में सामर्थ्य वाला है। उस देवता के लिए हम स्तुतियों से हविर्विधान करते हैं।+

(४१) जिसके बड़े ऊंचे हिम को धारण करने वाले पर्वत महिमा स्वरूप हैं और जिस की महिमा ऋषि लोग नदियों के साथ महासमुद्र को बताते हैं। जिसकी ये दिशाएं और प्रदिशाएं बाहुरूप है उस अज्ञेय देवता की हम स्तुति करते हैं।*

[४२] जिसने द्यौ लोक और घनीभूत पृथिवी को प्रवृद्ध किया है और जिसने स्वर्गलोक और आदित्य लोक का स्तम्भन किया है। और जिसने अन्तरिक्ष में रजस (Nebulea) को बनाया उस अज्ञात देवता की हम स्तुति करते हैं। ×

[४३] लोको की रक्षा के लिए थमे हुवी द्यौ और पृथिवी लोक बुद्धिपूर्व जिस देव को साक्षात करते हैं और प्रकाशित होते हैं और जिस के आधार पर सूर्य उदित हो कर प्रकाशित होता है ऐसे देवता की स्तुती करते हैं। ‡

(४४) बृहदाकार वाली अग्न्यादि सकल पदार्थों को उत्पन्न कर के गर्भ को धारण करने वाली आपःने सब विश्व को व्याप्त किया तब वह देव परमात्मा एक मात्र सब देवतों का प्राणभूत बना ऐसे परमात्मा की हम स्तुति करते हैं। ॥

+ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतोबभूव।
य ईशे ऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

* यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमे प्रदिशोयस्य बाहु कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

× येन द्यौरुग्रापृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकः।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ ५ ॥

‡ यंक्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।
ऋ०, मं० १०, सू० १२१,—४. ॥ ६ ॥

॥ आपोहयद् बृहती विश्वमायन् गर्भंदधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततोदेवानांसमवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

(४५) जिस ने अपनी महिमा से प्रपञ्च रूप से बढ़ते प्रजापति (हिरण्य-गर्भ) का धारण करती हुवी तथा यज्ञ इस रूप परिवर्तन शील प्रपञ्च को पैदा करती हुवी आपः को देखा जो देवताओं में सब के उपर महा देव है उस के लिए हम स्तुतियें करते हैं। *

(४६) जिस ने इस पृथिवी को बनाया और जिस ने सब सत्य नियमों को धारण करने वाले द्यौलोक का निर्माण किया और जिसने आंल्हादकारक अपः को पैदा किया उस देवता की हम स्तुतियें करते हैं। वह हमें नाश न करें ।+

(४७) हे प्रजापते तेरे से अतिरिक्त इन सब पैदा हुवे गति मान विश्वों को परितः व्यापक करने वाला और कोई नहीं है जिन २ अभिलाषाओं से हे परमात्मन हम स्तुति करते हैं वे अभिलाषाएं पूर्ण हों और हम धनैश्वर्यादि के पति (पालक) हों। ‡

बड़ी प्रबलता से एकेश्वरवाद का प्रतिपादक यह १० मन्त्रों का (३८—४८) पूर्ण हिरण्यगर्भ सूक्त हमने पाठकों के सामने धर दिया। अब हम दूसरा सूक्त वागम्भृणीय भी यहां उद्धृत करते हैं इस सूक्त में परमात्मा अपनी वाणि से अपनी महीमा की ऋषियों को चित्त में वाग्रूपेण प्रेरणा करते हैं:—

इस के प्रतिपादन के पहले पाठक वागम्भणी शब्द के तात्पर्य पर ध्यान दें। अहमेव वसे भरामि बिभर्मि वा इति आम्भणी परमात्मा ऋषिः। तस्यादुःहिता वाग्। अर्थात मैं ही सब को धारण तथा पोषण करता हूं ऐसे मुझ परमात्मा की वाणी यही वागम्भणी का शब्दार्थ है।

वह वाक् कहती है:—

(४८) मैं ही रुद्र और वसुओं के साथ उन के रूप में हो कर रहती हूं।

* यश्चिदापो महिनापर्यपश्य द्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

\+ मानोहिंसीज्जनितायः पृथिव्याः यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चा पश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

‡ प्रजापतेनत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

मैं ही आदित्य और विश्वे देवों के साथ रहती हूं मैं ही मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूं और मै ही अश्वियों को और मैं ही इन्द्र और अग्नि को भी।*

[४९] मैं ही सब पशुओं के नाश करने वाले सोम को धारण करने वाली हूं। मैं ही त्वष्टा को पूषा को और भग देवता को भी धारण करती हूं। मैं ही स्तुति करने वाले यजमान के लिए द्रविण देती हूं। जो यजमान सोमरस को निकालता तथा देवताओं को हवि देता है। ×

[५०] मैं ही सब जगत् पर राष्ट्री राज करने वाली हूं और सब धनों को दान करने वाली हूं मैं ही ब्रह्म के ज्ञान करने हारी ज्ञान मयी हूं और इसी लिए यज्ञ करने वालों में सब से प्रथम हूं।‡

उसी मुझ को देव लोगों (विद्वानों) ने बहुत प्रकार से स्थिति शील या मुझे बहुत रूपों में कल्पना वा विधान किया है। मैं ही सब भूत प्राणियों में प्रविष्ट हूं।

(५१) मेरे द्वारा ही फल भोक्ता जीव फल भोक्ता है नाना प्रकार के रूप देखता है, प्राण लेता हैं, और सुनता भी है। मुझे न जानने व मानने वाले नाश को प्राप्त होजाते हैं। हे विश्रुत विद्वान् मैं तुझ को श्रद्धा योग्य वचन कहती हूं तू उसे सुन।+

[५२] देवताओं और मनुष्यों से सेवित मैं स्वयं ही व्यक्त भाषण करती हूं।

* अहंरुद्रे भिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहंमित्रा वरुणो भाविभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥
ऋ० म० १२५, १—८॥

× अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामिद्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥ २॥

‡ अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमायज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥ ३॥

\+ मयासो अन्नमत्ति यो विपश्यति यःप्राणिति यईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुतं श्रद्धि वं ते वदामि॥ ४॥

मेरी कामना के अनुसार ही मैं पुरुष को उग्र बना देती हूं उसी को ब्रह्मा उसी को ऋषि और बुद्धिमान भी कामनानुसार बनाती हूं। ()

[९३] मैं ही ब्रह्म [ब्राह्मणों] व [वेदों] से द्वेष करने वाले हिंसक को नाश करने के लिए रुद्र का धनुष जीवा से युक्त करती हूं। मैं ही प्राणि मात्र के लिए संग्राम को करती हूं। मैं ही सम्पूर्ण द्यावा पृथिवी में अन्तर्यामितया आविष्ट हूं।+

[९४] मेरी परमात्मा के मूर्धाभूत पिता द्यौ को पैदा करती हूं। समुद्रभूत परमात्मा में ही मेरा मूलभूत कारण है। उसी के द्वारा सब भुवनों में अवस्थित हूं। मैं ही उस द्यौ लोक में भी अपने कारण भूत देहद्वारा व्याप्त हूं।*

[९५] मैं ही गतिशील सकल भुवनों को प्रारम्भ करती हुयी वात रहित स्थान में गति करती हूं। मैं इस द्यौलोक का भी परकारण तथा पृथिवी का भी परकारण हूं। अपनी महत्ता से ही मैं इतनी हूं।÷

इस प्रकार परमात्मा और उसकी शक्ति वाग् का वर्णन भी वेद मंत्रों में कितनी स्पष्टता से वर्णित है जिस से एकेश्वर पूजा का सिद्धान्त ही वास्तव में वेदों में सिखाया गया है स्पष्ट प्रसिद्ध है।

() अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

+ अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥६॥

* अहंसुवे पितरमस्य मूर्धन् ममयोनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥

+ अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना संबभूव ॥ ८ ॥

हमने ऋग्वेद के ऊपर उल्लिखित मन्त्रों से स्पष्टतया प्रतिपादन कर दिया कि कितनी प्रबलता से वेदों में एकेश्वरवाद है। इसी बात की पुष्टि में हम पाठकों को ये विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इसी प्रकार अन्य वेदों में एकेश्वर विधायक मन्त्रों की कमी नहीं है।

प्रथम यजुर्वेद को लीजिये:—

[१] अग्नि प्रिय स्थानों पर अवस्थित लोकों की भी कामनाओं और अभिलाषाओं को पूरा करता है। भूत और भविष्यत् का एक मात्र सम्राट रूप से शोभित है। + यजु० १२—११७।

[२] उस स्थावर और जंगम संसार के पालन करने वाले पति की अपनी रक्षा के लिये स्तुति करते हैं जो कि संकल्पों से प्रसन्न होता है। वहां पूषा हमारे धनों की वृद्धी करने वाला हो वही रक्षा करने और पवित्र करने वाला हमारा कल्याणकारी हो ×

(३) द्यौ अदिति है अन्तरिक्ष भी अदिति है। वही अदितिमाता और पिता और वही पुत्र है। विश्वेदेव भी अदिति हैं, पंच जन भी अदिति हैं, पैदा हुवी वस्तु तथा पैदा होने का कारण भी अदिति ही है। *

[४] यह सब पुरुष ही है जो भी कुछ भूत या भविष्यत् है। वही अमृत का भी मालिक है और वह अमृत रूप अन्न से ही पैदा होने वाले जीव हैं उनका भी मालिक है। ※

\+ अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य।
सम्राडेको विराजति॥ यजुः० १२; ११७

× तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियं जिन्वमवसे
हूमहे वयम्। पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये
यजुः०—२५,१८

* अदितिर्द्यौ रदितिरन्तरिक्षं आदिति र्माता स
पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदि-
ति र्जातमदिति र्जनित्वम्॥ यजः० २५, २३

※ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतंयच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ यजुः० ३१,२

ऋग्वेद में वर्णित त्रिपाद विष्णु का ही यह सब दूसरा रूपान्तर है।

[५] इस महा पुरुष परमात्मा की इतनी अगाधमहिमा है और इसी लिए वह परम पुरुष सब से बड़ा है कि इस के एक पाद में तो सम्पूर्ण भूत सर्ग है और इस अमृतमय ब्रह्म के तीन पाद द्यौ लोक में हैं। +

(६) त्रिपाद पुरुष इस भूत सर्ग से ऊपर गया हुवा है। और एक पाद यहां है। फिर भी सब चर और अचर में व्याप्त है। ×

(७) उन सब से स्तुत्य यज्ञस्वरूप परमात्मा से महदाकार आज्य हुआ और फिर वायव्य और आरण्य ग्राम्य सब प्रकार के पश्वादि प्राणि हुवे। +

(८) उसी यज्ञ से ऋग् साम छन्द और यजु भी उत्पन्न हुवे। *

(९) जिस पुरुष को विद्वानों ने नानाप्रकार से कल्पना कर के विधान किया है उस का मुख क्या है उस की बाहू क्या है उस की ऊरू और चरण क्या हैं। †

(१०) उस महानपुरुष को जानता है जिस का स्वरूपआदित्य के सदृश तेजोमय है। वह तम अन्धार से परे है उसी का ज्ञान करके मृत्यु को तरा जाता है और कोई अन्य गमन का रास्ता नहीं है। ‡

(११) वह प्रजापति है जो स्वयं पैदा न होता हुआ भी हिरण्यगर्भ में बहुत प्रकार से जगत्प्रपञ्च के रूप में अपनी शक्ति से प्रादुर्भूत होता है। उस

+ एता वानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्याविश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि ॥ यजुः ३१, ३

× त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः। ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ यजुः ३१० ४०

+ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशूंस्ताश्चक्रे वायव्या नारण्याः ग्राम्याश्च ये ॥ यजुः– ३१, ६.

* तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानिजज्ञिरे। छन्दांसिजज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ यजुः ३१,७,

† यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखंकिमस्यासीत् किंबाहू किमूरू पादावुच्येते। यजु,–३१, १०.

‡ वेदाहमेतंपुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय ॥
यजु० ३१. १८.

की योनी अर्थात् आधार स्थान को धीर विद्वान् लोग देखते हैं। जिस में कि सब विश्व भुवन स्थित हैं। *

(१२) वही सब देवताओं को तपाता है वही सब देवों के प्रथम स्थित था। वही सब देवों के पहले विद्यमान् तथा प्रणीत हुआ था। उस ब्रह्म से पैदा होने वाली कान्ति को हम नमस्कार करते हैं। ×

(१२ [ख])उसी ब्रह्मकान्ति को देव लोग भी प्रादुर्भाव करते हुवे पहले यह बोले कि उस परब्रह्म को जो जानता है हम उस के वश में हैं। +

'इस प्रकार श्री भगवान् वेद' ने ब्रह्म की गीति गायी है। और बहुदेवतावाद का सर्वथा निराकरण कर परब्रह्म का स्वरूप तथा उसी की महानता का प्रतिपादन किया है। आगे अगले अध्याय में इसी को और भी स्पष्ट किया है।

(१३) वही अग्नि है वही आदित्य है वही चन्द्रमा है वही शुक्र है वही आपः है वही प्रजापति है। *

(१४) उसी प्रकाशमान् तेजोमय पुरुष से क्षणादि काल भी उत्पन्न हुवे कोई भी उसको न ऊंचे न नीचे न बीच में ग्रहण कर सका अर्थात यह अपरिमिति और अनन्त है। ×

[१५] उसकी कोई प्रतिमा नहीं जिसका नाम और यश महान् है। इसी की स्तुति हिरण्यगर्भ सूक्त और मामाहिंसीत् सूक्त और तस्मान्न जात यह सूक्त स्तुति करते हैं। ॥

---

* प्रजापतिश्चरतिगर्भे ऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
यजुः-३१. १९

× योदेवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वोयोदेवेभ्यो जातो नमोरुचाय ब्राह्मये ॥ यजुः-३१, २१

\+ (ख) रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तद ब्रुवन्।
यस्त्वेवंब्राह्मणो विद्यात्तस्वदेवाः असन् वशे ॥ यजुः ३१, ११,

* तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेवशुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजु० ३२, १.

× सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि। नैनमूर्ध्वं नतिर्यञ्चं नमध्येपरिजग्रभत् ॥ यजुः ३२, २,।

॥ नतस्यप्रतिमा ऽस्ति यस्यनाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मामाहिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥ यजुः ३२,३.

[१६] वही देव सब दिशा प्रदिशाओं में पहले हुवा यही गर्भ के अन्दर भी है। वही पहले प्रादुर्भाव हुवा यही आग भी प्रादुर्भाव होगा। हे जनो वह सर्वतोमुख सर्वतोव्याप्त पुरुष है। ×

[१७] जिस से पहले कुछ भी पैदा नहीं हुवा था और फिर सम्पूर्ण विश्वभुवन जिस से पैदा हुवे वह षोडश कलायुक्त (उपनिषत् प्रतिप्रादित) ब्रह्म. प्रजा के साथ रत हुवा हुवा तीनों अग्नियों को प्राप्त होता है। +

[१८] वेदान्त के रहस्य को जानने वाला पण्डित हो जिसको गुहा में प्रविष्ट नित्यरूप देखता है। जिस में कि सम्पूर्ण विश्व एक स्थान पर रखा हुआ प्रतीत होता है उसी में यह सब कुछ व्याप्त है और सब में व्यापक विभु प्रजाओं में सर्वतो भद्रेण ओत प्रोत है। *

[१९] ब्रह्म विद्या को जानने वाला विद्वान् उस अमृतमय पुरुष का वर्णन करता है कि वह नाना प्रकार से विश्व को धारण करने वाला गुहामें स्थित है। इस अमृतमय ब्रह्म के तीनपाद इस गुहामें हैं। जो उन तीन पादों को जानता है वह पिता का पिता है। *

[२०] उसी ने सर्व भूतों को व्याप्त कर के; सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त करके, सब दिशा और प्रदिशाओं को व्याप्त करके, सब से प्रथम पैदा हुवी वाणि को पैदा करके ऋत नामसत्य के स्वरूप में अपने स्वरूप को एक कर लिया। ॥

[२१] द्यौ और पृथिवी में व्याप्त हो कर लोक दिशाएं जौर स्वःलोक में

× एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोह जातः सउगर्भे अन्तः
सएव जातः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ्जना स्तिष्ठति सर्वतो मुखः
यजुः ३२, ८७,

\+ यस्माज्जातं नपरा किंचनैव यआवभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजाप्रतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोड़षी ॥
यजुः ३२,५,

* वेनस्तत्पश्यन्तिहितंगुहा सद् यत्रविश्वं भवत्येक नीड़म्।
तस्मिन्निदंसंच विचैतिसर्वं सओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥
यजुः ३२,.६,

* प्रतद्वोचेदमृतंनु विद्वान् गन्धर्वोधाम विभृतं गुहासत्।
त्रीणिपदानि निहिता गुहास्य यस्तानिवेद सपितुः पितासत्।
यजुः ३२, ६,

॥ परीत्य भूतानिपरीत्यलोकान् परीत्यसर्वाः प्रदिशोदिशश्च।
उपस्थायप्रथमजामृतस्य त्मनाऽत्मानमभिसंविवेश ॥
यजुः ३२, ११,

व्याप्त हो कर ऋतनाम यज्ञ के तन्तु को भी समाप्त कर के वह अपना स्वरूप जिस प्रकार का दिखाता है वही वह है और वैसा ही था। ×

[२२] सब लक्ष्मी तथा सम्पत्तियें जिस स्वतः स्थित परमात्मा को भूषित करती हैं और जो सब में व्याप्त होता हुवा अपनी ही कान्ति से युक्त सर्वत्र व्याप्त रहता है। उस प्राण दाता विज्ञानयुक्त सुखों के वर्षा करने वाले का बड़ा भारी नाम है। वही विश्वरूप अमृत जीवों में भी व्यापक है। +

(२३) ब्राह्मणस्पति ऐसे उक्त मन्त्र (ओ३म्) का उच्चारण करता है जिस में इन्द्र वरुण मित्र और अर्यमा सब देव अपना २ स्थान बनाते हैं। *

(२४) वही देव देवताओं का गर्भ है मतियों का पिता और प्रजाओं का पति है। और साविता देव से युक्त है वह सूर्य रूप से ही स्वयं प्रकाशमान है। ※

(२५) वह स्वयं अग्नि स्वरूप अग्नि से युक्त होकर सविता देवता से युक्त सूर्य द्वारा दीप्त होता है। ||

(२६) वही द्यौ लोक का धारण करने वाला है और तप से प्रकाशित है पृथिवी का धारण करने वाला है। वह मरण धर्म से रहित तप से प्रादुर्भूत देवों का भी देव है। सब देवों के संगम वाली वाणी हमें दान करो। ×

(२७) मैंने ऐसे रक्षक को साक्षात् किया। जो कि कभी भी स्वयं अपने नियम से नहीं टलता और सब मार्गों के इधर और उधर सर्वत्र व्यापक है। वही

× परिद्यावा पृथिवी सद्यइत्वा परिलोकान् परिदिशः परिस्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विवृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्।
यः ३२ १२,

+ आतिष्ठन्तं परिविश्वे अभूषन् श्रियोवसानश्चरति स्वरोचिः
महत्तद् वृष्णो असुरस्य नाम विश्वरूपो भुवनानितस्थौ॥
यजुः ३३, २२

* प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थम्। यस्मिन्निन्द्रो
वरुणामित्रोऽर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥ यजुः ३४, ५७॥

※ गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्
संदेवो देवेन सवित्रागत संदेवेन सवित्रा संसूर्येण रोचिष्ट॥
यजुः ३७; १४॥

|| समग्निरग्नि नागत सं देवेन सवित्रा संसूर्येण रोचिष्ट।
यजु० ३७, १५,

× धर्त्ता दिवो विभातितपसस्पृथिव्यां धर्त्ता दिवो देवानाममर्त्य
स्तपोजाऽधाचमस्मे नियच्छ देवायुवम्॥ यजुः ३७; १६॥

सब दिशाओं और प्रदिशाओं में भी व्याप्त होता हुआ सब भुवनों में सत्तारूपेण विद्यमान है। +

[२८] हे सब भुवनों के मालिक, हे सब चित्रों के मालिक, हे सब वाणियों के मालिक, तेरी हम स्तुति करते हैं। *

[२९] वही सर्वत्र व्याप्त है वह शुक्र स्वरूप है। वही काय रहित व्रण रहित स्नायु आदिकों से रहित शुद्ध पाप से रहित ब्रह्म है। वही क्रान्त दर्शी मनीषी सर्वत्र व्याप्त स्वयम्भू है जिस ने अनन्त काल से इन सब पदार्थों को यथानुकूल रचा है। ×

[३०] जगत् में जो कुछ भी गमनशील वस्तु है उस सब में ईश परमात्मा व्यापक है। उसी परमात्मा के दिये धन को भोग करो किसी अन्य के धन पर लालच मत करो। ॥

इस प्रकार पाठकगण हमने यजुर्वेद में से भी एकेश्वर पूजा का प्रतिपादन कितनी स्पष्टता से उद्धृत कर किया। इन मन्त्रों में परमात्मा को ही सब जगत् कर्त्ता सब जगत् का अधिष्ठाता सर्वाधार सर्व नियन्ता तथा सब देवों का एक मात्र आश्रय पातिपादन किया है। अब अवशिष्ट वेदों को भी लीजिये।

अथर्व वेद में पुरुष सूक्त सम्पूर्ण वैसा ही है जैसा कि पूर्वोक्त दो वेदों में है। अन्य भी बहुत ऋचाएं पूर्वोक्त वेदों में आयी हैं। अतः यहां उन ऋचाओं के अतिरिक्त ऋचाएं विशदता के लिए लिखी जाती हैं।

(१) जो दिव्यगन्धर्व भुवनों का पालक पति है। वही एक नमस्कार करने और स्तुति करने योग्य है। हे देव उसी तेरी उपासना को मैं वेद से करता

+ अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः॥ यजुः ३७, १७॥

* विश्वासांभुवांपते विश्वस्यमनसस्पते विश्वस्य।
वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते (त्वां स्तुमः)॥ यजुः ३७; १८॥

× सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषीपरिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वती-
भ्यःसमाभ्यः॥ यजुः ४०; ८॥

॥ ईशावास्य मिदं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥ यजुः ४०, १॥

हूं तुम को ही नमस्कार है द्यो लोक में तुम्हारा ही वास है। ×

(२) जो विद्वान् ज्ञानमय इस संसार का बन्धु और सब देवताओं का उत्पन्न करने वाला है। उसी ब्रह्म ने वेद द्वारा मध्य से धारण किया है। नीचे से भी धारण किया और ऊंचे से भी इस प्रकार वह प्रकृति सर्वत्र स्थित है। +

(३) उसी से द्यौ और पृथिवी और गति में स्थित दोनों के मध्य [क्षिम] अन्तरिक्ष को रमा है वह वास्तव में महान् है जिस ने महान् द्यौ के स्थान को थौव पार्थिवरज को भी थामा है। *

(४) एक सकल को वहन करने वाले ने पृथिवी को धारण किया है उसी ने द्यौको धारण किया उसी ने महान् आकाश को धारण किया है। उसी ने छहों दिशाओं को धारण किया है वही सब भुवन में व्याप्त है। ॥

(५) इन सब लोंको को वह न करता हुआ अधिष्ठाता अत्यन्त समीप से सब कुछ देखता है जो मनुष्य अपने को चोरी करता हुआ समझता है उस को देव लोग जानते हैं। ÷

(६) जो मनुष्य बैठता है जाता है धूर्तता करता है जो पापकरता है। और जो कुछ दो एक स्थान पर बैठकर सलाह भी करते है उस सब को वरुण राजा तीसरा होकर जानता है। ‡

× दिव्योगन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एवनमस्यो पविक्ष्वीड्यः।
सत्वायौमि ब्रह्मणा दिव्यदेवनमस्ते दिविते सधस्थम्।
अथर्व० २, २, १.

\+ सहिदिवः सपृथिव्या ऋतस्था महीक्षेमंरोदसी अस्काभायत्।
महान् मही अस्कभायत् विजातोद्यांसद्मयार्थिवरजरजः ॥
अथर्व० ४, १, ४

* प्रयोजज्ञे विद्वानस्य बन्धु र्विश्वादेवानांजनिमाविवक्ति
ब्रह्मब्रह्मणउज्जभारमध्यान्नी चैरुच्चैः स्वधाअभिप्रतस्थौ।
अथर्व० ४, १, ३

॥ अनड्वानुदाधार पृथिवीमुतधामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वंभुवनमाविवेश।
अथर्व० ४, ११, १.

÷ बृहन्नेषा मधिष्ठाता अन्तिकादिवपश्यति
यस्तायन्मन्यतचरन्त्सर्वं देवाइदं विदुः ॥ अथर्व० ४, १६, १,

‡ यस्तिष्ठतिचरति यश्चवञ्चति योनिलायं चरति यःप्रतङ्कम्।
द्वौसंनिषद्यमन्त्रयेते राजातद्वेद वरुण स्तृतीयः ॥
अथर्व ४, १६, २

(७) यह भूमि वरुण राजाकी है और यह दूर तक फैली हुई द्यौ भी वरुण की है। और समुद्र दोनों वरुण के पार्श्व द्वय है और वही महान् व्यापक वरुण इस छोटे से जल बिन्दु में भी छिपा हुआ है। §

(८) जो व्यक्ति द्यौलोकके से भी परे चला जाय वह भी वरुण राजा से बच कर नहीं जासकता है। हजारों आखों वाले वरुण के दूत घूमते हैं और भूमि और द्यौ लोक से परे भी उसको देख लेते हैं। ×

(९) द्यौ लाक और पृथिवी लोक इन दोनो के मध्य और इन दोनों से परे जो भी कुछ है वह सब कुछ राजा वरुण देखता है। उस ने मनुष्यों के आखों के झपकन तक भी गिन रखे हैं। *

[१०] जिस ने सम्पूर्ण पृथिवी को धारण किया और सकल ओजःस्वरूप अन्तरिक्ष को रस से व्याप्त किया है, और जिस ने अपनी महत्ता से द्यौ को स्तम्भित किया है, उस ओदन से मैं मृत्यु को तरता हूं। ‡

यह सम्पूर्ण सूक्त उसी सर्वाधार के गुण गाता है।

[११] जहां से सूर्य उदित होता है और जहां सूर्य अस्त होता है उसी को मैं सब से महान् मानता हूं उस से अधिक कोई नहीं है। ॥

[१२] तू ही स्त्री है, तू ही पुमान है, तू ही कुमार है, और तू ही कुमारी

---

§ उतेयं भूमि र्वरुणस्य राज्ञउतासौद्यौ र्बृहती दूरे अन्ता।
उतौ समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदकेनिलीनः॥
अथर्व० ४, १६, ३,

× उतयोधामातिसर्पात् परस्तान्नसमुच्यतै वरुणस्यराज्ञः।
दिवस्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षाअतिपश्यन्तिभूमिम्॥
अथर्व० ४, १६ ४,

* सर्वं तद्राजा वरुणोविचष्टे यदन्तरारोदसी यत्परस्तात्।
संख्याताअस्यनिमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नमिनोतितानि।
४, १६, ५,

‡ योदाधारपृथिवीं विश्वमोजसं योअन्तरिक्ष मपृणाद्रसेन।
योऽस्तम्नाद् दिवभूर्ध्वा महिम्ना तेनौदनेनातितराणि मृत्युम्
अथर्व० ४, ३५, ३,

॥ यतः सूर्य उदेति अस्तं यत्र चगच्छति
तदेवमन्येऽहं ज्येष्ठं तदुना त्येति किं चन। अथर्व० १०, ८, १६

है, तू ही वृद्ध होकर दण्ड लेकर भ्रमण करता है, तू ही प्रादुर्भूत होकर विश्वतो मुख है। +

[१३] और तू ही इन सब का पिता है और तू इन सब का पुत्र है तू ही इन सब से बड़ा और तू ही सब से छोटा है। तू एक मात्र देव मनों में प्रविष्ट है तू ही सब से प्रथम गर्भ में पैदा होता है। ‡

(१४) जाना हुआ भी उस विद्यमान देव को नहीं छोड़ सकता है और नाहीं वह देख सकता है। उस देव के कार्य को देख, नाहीं नष्ट होता है और न जीर्ण होता है। ×

[१५] अपूर्व देव से प्रेरित वाणियें सब सत्य सत्य भाषण करती हैं। और इस प्रकार भाषण करती हुई जहां जाती हैं वही महान् परम ब्रह्म है। †

[१६] जिस में देव लोग और मनुष्य लोग नाभी में अरों की तरह जड़े हुवे हैं उसी अपः के फूल को पूछता हूं जिस में वही ब्रह्म अत्यन्त शोभा से स्थित है। §

[१७] एक मात्र इस पृथिवी में निवास करता है वही एक अन्तरिक्ष में व्याप्त है। और जो इस द्यौ को भी धारण किये हुवे है उसी के आश्रय से अन्य दिशाओं की रक्षा करते हैं। ॥

\+ त्वंस्त्री त्वं पुमानसि त्वंकुमारउत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसित्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥
अथर्व० १०, ८ २७.

‡ उतैषां पितोतवापुत्रएषा मुतेषांज्येष्ठ उतवाकनिष्ठः।
एकोह देवोमनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः सउ गर्भेऽन्तः ॥
अथर्व० १०,८, २८,

× अन्ति सन्तं नजहाति अन्ति सन्तं नपश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं नममार नजीर्यति। अथर्व० १०, ८, ३२,

† अपूर्वेणेषितावाच स्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तियत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ अथर्वा १०, ८, ३३ ॥

§ यत्रदेवाश्च मनुष्याश्चारानाभाविवश्रिताः। अपां त्वापुष्पं
पृच्छामि तत्रतन्मायायाहितम् ॥ अथर्व० १०, ८, ३४।

॥ इमामेषां पृथिवीवस्ते एका ऽन्तरिक्षं पर्यको बभूव।
दिवमेषां ददतेयो विधर्ता विश्वाआशाः प्रतिरक्षन्त्ये के ॥
अथर्व०—१०, ८,, ३६

[१८] जो उस विस्तृत सूत्र को जानले जिस में कि ये सब प्रजाएं पिरोई हुवी हैं। जो इस सूत्र के भी सूत्र को जानले वही महत् ब्रह्म को जानता है। ×

[१९ मैंने उस सूत्र को जान लिया जिस में कि सब प्रजाएं पिरोई हुवी है। सूत्र के सूत्र को भी मैंने जाना मैंने उस महत् ब्रह्मको भी जान लिया है। +

[२०] जिस के मध्य में द्यौ और पृथिवी हैं और जिसमें अग्नि सम्पूर्ण संसार कि जलाता हुवा व्याप रहा है और सब देवता जिस में एक पति के आधीन थे मातरिश्वा उस समय कहां था। ‡

[२१] आपः में मातरिश्वा था सब देव भी सलिल में प्रविष्ट थे सम्पूर्ण को पवित्र करता हुवा और धारण करता हुवा वह सर्वत्र व्याप्त महान् सब को उठाता हुवा स्थिर था। §

इस सारे सूक्त से ही श्वेताश्वेतर उपनिषद में भी परब्रह्म का प्रति पादन किया है।

[२२] प्राण को नमस्कार है जिस के वश में ये सब कुछ है और सबका ईश्वर है जिस में सब प्रतिष्ठित हैं। ‖

× योविद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य योविद्यात् सविद्याद् ब्राह्मणं महत्। अथर्व १०,८,३७.

\+ वेदाहं सु विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत्॥ अथर्व १०, ८, ३८,

‡ यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन् मातरिश्वा॥
अथर्व० १०,८, ३९, ।

§ अप्स्वासीन् मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाःसलिलान्यासन्
बृहन् हतस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आविवेश।
अथर्व १०,८,४० ॥

‖ प्राणायनमो यस्य सर्वमिदंवशे।
योभूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ अथर्व ११,४,१,

[२३] वही धाता है वही विधर्ता है वही वायु और वही गगन है,

वही अर्यमा है, वही वरुण है, वही रुद्र और महादेव है ।

वही अग्नि वही सूर्य और वही महामय है ।

उसी का यह मारुतगण है। इसी देव ने रश्मियों से गगन को व्याप्त किया है। वही आवृत हुवा हुवा महेन्द्र स्वरूप है । उसी के ये नव कोष नव प्रकार से रक्खे हैं। वही सर्व प्रजाओं को देखता है जो कि प्राण लेते हैं और जो नहीं लेते ।

उसी को "सहः" ऐसा विद्वानों ने जाना है। वह एक रूप से व्याप्त है और एक ही है । ये सब देवता इसी देवता में एक रूप हो जाते हैं ।

(२४) वह देव दूसरा नहीं, तीसरा नहीं, चतुर्थ भी नहीं कहा जाता; पांचवा नहीं, छटा नहीं, सातवां नहीं, कहा जाता; आठवां नहीं, नवमा नहीं, दसवां नहीं, कहा जाता । वह सभी कुछ देखता है जो कि प्राण लेते हैं और जो नहीं। यही सहः रूप जाना गया है वह एक है एक ही सत्ता वाला है और एक ही है । सब देवता इस में एक रूप हो जाते हैं । ×

(+) सधाता सविधर्त्ता सवायुर्नभउच्छ्रितः ॥ ३ ॥
सोर्यमा सवरुणः सरुद्रः समहादेवः ॥ ४ ॥
सो अग्नि सउसूर्य सउएव महायषः ॥ ५ ॥
रश्मिभिर्नभ आवृतम् महेन्द्रएत्यावृत, ॥ ७ ॥
तस्ये मेनवकोशः विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥
सप्रजाभ्यो विपश्यति यच्च प्राणितियच्चन ॥ ११ ॥
तमिदं निगतं सहःसएषएक एकवृदेकएव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एक वृतो भवन्ति ॥ अथर्व १३,४,२-५,१०-१३.

(×) न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठःसप्तमो नाप्युच्यते ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ १८ ॥
ससर्वस्मैविपश्यति यच्चप्राणिति यच्चन ॥१९॥
तमिदंनिगतंसहः सएव एक एक वृदे कएव ॥ २० ॥
सर्वेअस्मिन् देवा एक वृतो भवन्ति ॥ २१ ॥
अथर्व० १३, ४, १६-२१

(२९) इन के अतिरिक्त काल को भी परमात्मा मानकर अथर्व वेद ने उसी भगवान् एक मात्र परमेश्वर ईशान की स्तुति गायी है । इसी प्रकार अन्य भी देख लें । *

इन अथर्व के सूक्तों के अतिरिक्त और भी पाठकों को अपने ध्यान में रखने चाहियें ।

अथर्व० ८, १०, १.
" ८, ६, मं० १-५, मं० २४,२५,
" ६, १, मं० १-७,
" ६. ४, मं० १-३.
" ६, ५, मं० ७ १०.
" १०, २. मं० १ ३३.
" १०, ७, मं० १-४४.
" १०, ८, मं० १-४४.
" ११-३, मं०-१-७ २०-३१-४६-५६
" ११-४, मं० १-२६.
" १३, ३, १-६. इत्यादि

अथर्व वेद से अनेक प्रमाण उद्धृत किये जासकते हैं। निदर्शनार्थ पूर्वोक्त उदाहरण पर्याप्त हैं शेष उदाहरण भी इस के अगले अध्याय में उपनिषत् प्रकरण में आजायंगे । फिर स्मृति प्रकरण तथा भाष्य प्रकरण में धारण अनुशीलन कर के हम पुराणों के बहुदेवतावाद को स्पर्श करेंगे।

(*) अथर्व० १७, ५३, १-१
" १६, ५४, १-५, अथर्व० १०, ८, ११-१

षष्ठ अध्याय

एक-ईश्वर-प्रतिपादन

ब्राह्मण-ग्रन्थ-

गत अध्याय में हमने पाठकों को यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि ईश्वर एक है वही सर्वजगत् का रचयिता नियन्ता तथा धारण करने हारा है। अब इसी बात को पुष्ट करने के लिए आगे के व्याख्यान भूत साहित्य का भी अनुशीलन करना चाहिये और देखना चाहिए किस अंशतक संस्कृत साहित्य बहुदेवता के पक्ष का तिरस्कार तथा एकेश्वर वाद का उपादान करता है। इस से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जायगी कि पौराणिक साहित्य के बहुदेवतावाद का कोई मूल नहीं। और जो मूल भी है वह कितना अदृढ़ और निःसार है।

इस प्रकरण में हम ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद् और सूत्रग्रन्थ और स्मृतियों के प्रमाण संग्रह करेंगे, और उसके बाद भाष्यकारों का संक्षेप से मत दिखा कर योरोपीयन विद्वान् जो कि बड़ी दृढ़ता से यह मानते है कि वेद में ही बहुदेवतावाद का विधान है—उन्ही के सिद्धान्तों का खण्डन उन्ही के लेखों से और उन्ही के उद्धरणों से करेंगे और इस प्रकार सार्वजनिक सम्मति के उल्लेख-पूर्वक एकेश्वर की प्रतिष्ठा करके फिर पौराणिक बहुदेवतावाद को निर्मूल सिद्ध किया जायगा।

ब्राह्मणग्रन्थ:—

ऐतरेय ब्राह्मण (आरण्यक) अक्षर ब्रह्म का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं।

(*) जो अक्षर पांच प्रकार का होकर हमारे दृष्टि गोचर होता है। योग करने वाले अश्व के सदृश युक्त हुवे सूर्य चन्द्रादिक जिस से लगाये गए इस चराचर चक्र को चला रहे हैं जिसमें कि सत्य का सत्य स्वरूप ब्रह्म स्थित होता है उसी परमात्मा में सब देवता एक रूप हो जाते हैं। (१)

(*) तदेते श्लोकाः ३,

यदक्षरं पञ्चविधं समेति युजोयुक्ता अभियत्सं वहन्ति।
सत्यस्य सत्यमनु यत्र युज्यते देवास्तत्र सर्व एकी भवन्ति॥
ऐतरेयारण्यक अ० ३, ख० ८.॥

(२) 'आत्मा ही इस संसार में सब से पहले था और कार्यभूत रूपात्मक जगत्स्वरूप कुछ भी न था। उसने विचार किया कि लोकों का निर्माण करूं इस पर उसने लोकों को बनाया। [२]

इस प्रकरण में ऐतरेयोपनिषद् में लिखित प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। कृष्ण यजुर्वेद का आरण्यक ब्राह्मण तैत्तिरीय भी कितनी स्पष्टता से ब्रह्म का प्रतिपादन करता है।

(१) वह अक्षर जो कभी विकाश को प्राप्त नहीं होता और सब आकाशादि भूतों का बनाने वाला है। उसी अक्षर की सब देव उपासना करते हैं, ।(१]

[२] "यह पहले आपः या सलिल ही थे। उन आप में पुष्कर पर्ण में एक मात्र प्रजापति प्रादुर्भूत हुवा। उसके मन में संकल्प हुवा कि यह सर्ग रचूं। यहां भी जगत् का कर्त्ता एक प्रजापति ही स्थिर है। [२]

[३] महदाकार बृहद्रूप आपः ने ही गर्भ धारण किया और वृद्धिशील गर्भ [दक्ष] धारण करके हिरण्य गर्भ प्रजापति को पैदा किया था। उसी से ये सृष्टियें उत्पन्न हुईं थीं। यह सब कुछ आपः से ही हुआ। इस मे यह सब ब्रह्म है। यह स्वयंभू है। [३]

---

(२) आत्मावाइदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चन मिषत्। सईक्षत लोकान्नु सृजा इति सइमांल्लोकान सृजत।

(१) यदक्षरं भूतकृतम्। विश्वेदेवा उपासते।
तैत्तरीयारण्यक प्रपा० १, अनु०,६.

(२) आपोवाइदमासन्सलिलमेव। स प्रजापति रेकः पुष्करपर्णे समभवत्।
तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत इदं सृजेयमिति।
तैत्तरीयारण्यक प्रपा० १, अनु० २३, १,

(३) आपोहयद् बृहतीर्गर्भमायन्। दक्षं दधानाजनयन्तीः स्वयंभूम। ततइमेऽध्य सृजन्त सर्गाः। अद्भ्यो वा इदं समभूत्।
तस्मादिदं सर्वं ब्रह्मस्वयम्भिवति।
तैत्तरीयारण्यक० प्रपा० १, अनु० २३, ८, ॥

(४] इस से वह सब शिथिल अस्थिर के सदृश था परन्तु वह जगत् गमनशील प्रजापति ही था स्वयं अपने से रचकर उस से व्याप्त होगया था। इसी लिए वेद मन्त्र में कहा है कि:——*

[५] लोकों को बनाकर भूतों [पञ्च भूतों] को बनाकर और सब दिशा तथा प्रदिशाओं को भी बना कर चराचर में सब से प्रथम प्रादुर्भूत प्रजापति स्वतः अपने कार्य भूत जगत् में व्याप्त हुआ। [×]

इस कृष्ण शाखा के आरण्यक भाग में एक स्थल पर परमात्मा को एक ग्राह स्वरूप माना है और आलंकारिक वर्णन इस प्रकार किया है।

[६] "जिस देवता को नमस्कार करते हैं उसका शिरोभाग धर्म है, ब्रह्म ही उत्तर ठोड़ी है, नीचली ठोड़ी यज्ञ है विष्णु हृदय है, संवत्सर प्रजनन पुंभाग है, दोनों अश्वि देवता पूर्व पाद, अत्रि मध्य भाग है, मित्र और वरुण पिछले पैर हैं, अग्नि पूंछ की पहली पोरी है और अगली पोरियां इन्द्र और प्रजापति और चौथी पोरी अभय है। वही दिव्य शक्तिशाली शिशु मार रूप परब्रह्म है।" [=]

(*) तस्मादिदं सर्वं शिथिलमिवाऽध्रुवमिवाभवत्।
प्रजापतिर्वाभवत्। आत्मनात्मानं विधाय। तदनुप्राविशत्।
तदेषाऽभ्यनुक्ताः—

×• विधाय लोकान् विधायभूतानि। विधाय सर्वाः प्रदिशोदिशश्च।
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य। आत्मनात्मानमभिसंविवेशेति।
तैत्तरीयारण्यक प्रपा० १, अनु०, २४, ८, ९,

(=) यस्मैनमस्तच्छिरो धर्मोमूर्धानं, ब्रह्मोत्तराहनु र्यज्ञोऽधरा,
विष्णु हृदयं, संवत्सरः प्रजननम् अश्विनौ पूर्वपादौ, अत्रिर्मध्यं, मित्रावरुणावपरपादौ, अग्निऽपुच्छस्य प्रथमंकाण्डं ततः इन्द्रः, ततः प्रजापति रभयं चतुर्थं इति सवांएष दिव्यः।

[७] इसी शिशु मार का और भी वर्णन किया है। हे परमात्मन् तुम ध्रुव हो, तुम आकाश के निवास स्थान, हो, तुम ही भूतों के अधिपति हो, तुम सब भूतों में श्रेष्ठ हो, तुम्हारा सब भूत आश्रय लेते हैं तुम्हें नमस्कार है। तुम शिशुकुमार रूप परब्रह्म को नमस्कार है। *

दश होत्री मन्त्र द्वारा भी परमात्मा का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादन किया है।

[८] मैं मंत्र के अर्थों के जानने वाला स्वयं प्रकाशमान और अन्यों को भी प्रकाशित करने वाले ज्ञान स्वरूप परमात्मा के स्वरूप को जानता हूं। वही इन्द्र ऐश्वर्यशील परमात्मा का स्वरूप दश रूप से सकल संसार में व्याप्त है। ब्रह्माण्ड सृष्टि के प्रथम विद्यमान सलिलमय समुद्र में भी मनोवृत्ति [संकल्प=काम] द्वारा जो परमात्मा गति देता है। इस प्रकार के दश होतृरूप परमात्मा को ब्रह्मा [आदि ऋषि] ने जाना। वही सब उत्पन्न हुए प्राणि मात्र के अन्दर प्रविष्ट होकर सब का शासन करने वाला है। वह एक है पर नाना प्रकार से विचरण करता है। सैकड़ों शुक्र [तेजोमय नक्षत्रादि लोक भी जहां एक हो जाते हैं, जहां सब वेद ऋगादि भी एक हो जाते हैं। सब होता भी जहां एक हो जाते हैं वहां सब मनुष्यों के मन में भी व्याप्त आत्मा है। सब का अंतर्यामी तथा शासक और सब का आत्मा है। सब प्रजाएं जिसमें एक हो जाती हैं, चारों होता भी जहां समान पद पर आ जाते हैं वह ऐसा सबके चित्तों में व्याप्त तथा मानस प्रत्यक्ष से जानने योग्य ब्रह्मस्वरूप सब लोगों का आत्मा अर्थात् परमात्मा है। [×]

(*) शाक्वरः शिशुमार स्त्वंह। ध्रुवस्त्वमसि ध्रुवस्य क्षित मसि त्वं भूतानामधिपतिरसि त्वं भूतानां श्रेष्ठोऽसि त्वां भूता—न्युपपर्यावर्त्तन्ते नमस्ते नमः सर्वं तेनमो नमः शिशिमाराय नमोनमः। तैत्तरीयारण्यक २ प्रपा०, १९ अनु०, ६,

(×) सुवर्णं धर्मं परिवेद वेनम्। इन्द्रस्यात्मानं दशधा चरन्तम्। अन्तः समुद्रे मनसा चरन्तम् ब्रह्माऽन्वविन्दद् दश होतारमर्णे। अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां। एकः सन् बहुधा विचारः। शतं शुक्राणियत्रैकं भवन्ति। सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति। समानसीन आत्मा जनानाम्। अन्तः प्रविष्टः शास्ता। जनानां सर्वात्मा। सर्वाः प्रजा यत्रैकं भवन्ति। चतुर्होतारो यत्र संपदंगच्छन्ति देवैः। समानसीन आत्मा जनानाम्। तैत्ति० आर० प्रपा० ३, अनु०, ११

[९] ब्रह्मा ने ऐश्वर्यशाली इन्द्र परमात्मा को इस प्रकार प्रत्यक्ष किया। वही परमात्मा अग्नि स्वरूप जगत् की प्रतिष्ठा या आधार है। और द्यौ का भी आत्मा और सब के पैदा करने वाला सविता और विद्वानों का भी गुरु बृहस्पति है। चतुर्होता रूप चारों दिशा तथा प्रदिशों में भी व्याप्त वाणी का सर्वस्व वेद रूप वाणी उसका भी सारभूत है।" "वही सब के अन्दर व्याप्त इस भूत सर्ग को बनाने वाला सबके रूपों को नाना प्रकार से बनाने वाला त्वष्टारूप और सर्वज्ञ है वही अमृत का प्राण स्वरूप और यज्ञ स्वरूप है। चारों होताओं का आत्मा है। इस प्रकार विद्वान् पारदृश्वा ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया। ×

इसी प्रकार ब्राह्मणकारने परमात्मा के स्वरूपको बताने के लिए चतुर्होतृहृदय षड् होतृहृदय तथा सप्त होतृहृदय बताते हुए भी उसी परमात्मा को इस प्रकार वर्णन किया है।

(१०) वह देवों को बन्धु है। सब के (हृदयमय) गुहाओं में स्थित है। (क) +

वह सब को आवरण करने द्वारा सैकड़ों लाखों विश्वों को जानता है। इस सब ब्रह्माण्ड को आवरणकर्ता है। वह देवताओं के लिये अमृत तथा प्रजाओं का आयु है। (ख)

(×) ब्रह्मेन्द्रमग्निं जगतः, प्रतिष्ठाम्। दिव आत्मानं।
सवितारं बृहस्पतिम्। चतुर्होतारं प्रदिशोऽनु।
क्लृप्तं वाचो वीर्यं तपसाऽन्वविन्दत्॥
अन्तः प्रविष्टं कर्त्तारमेतम्। त्वष्टारं रूपाणि
विकुर्वन्तं विपश्चितम्। अमृतस्य प्राणं यज्ञमेतम्।
चतुर्होतॄणामात्मानं कवयो निचिक्युः।
तैत्ति० आर० प्रपा० ३, अनु० ११,॥

+ (क) "........देवानां बन्धुं निहितं गुहासु........"

(ख) "शतं नियुतं परिवेद विश्वा विश्वावारम विश्व मिदं वृणाति।
.........................अमृतं देवानामायुः प्रजानाम्॥"

वही हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्ड कोश में भुवनों को धारण करने वाला स्वयं खण्डित न होता हुआ सब लोकों को निरन्तर देखता है। हिरण्यगर्भ अण्ड कोशही जिसका बल है। वही सब को आवरण करने वाला प्राण है। (ग)

वही परमात्मा इन्द्र जगत का राजा है। (घ)

ब्रह्म परमात्मा ने ही ज्ञान द्वारा अपना रूप प्रकाशित किया। वही आकाशरूपी सारिर, (ङ) (८) समुद्र (आकाश) के बीच में चलते हुवे सूर्य का धारण करता है।

इसी प्रकार परमात्मा की अपार महिमा को प्रतिपादन करते हुवे महान आत्मा को सब का आधार माना है।

पुरुष सूक्त जो अन्य वेदों में भी आया है इस स्थल में भी वैसा का वैसा ही उपलब्ध है ÷

(११) हव्य को वहन करने वाली अग्नि को तुम ही प्रदीप्त करते हो तुम ही प्रजाओं के पालन पोषण करने हारे मातरिश्वा हो। तू ही यज्ञ है तू ही सोम है सब देवता तेरी ही स्तुति करते हैं, तू ही एक है, और बहुतों में प्रविष्ट है, तुझे मेरा नमस्कार है मैं तुमारी स्तुति करता हूं। *

(१२) ब्रह्माने ही यह पृथिवी धारण की है बड़ा भारी अन्तरिक्ष भी ब्रह्माने ही धारण किया है द्युलोक और देवताओं के सहित पृथिवी को भी उसी परब्रह्मने धारण किया है। +

(ग) य आण्डकोशे भुवनं बिभर्त्ति। अनिर्भिण्णाः सन्नथ लोकान् विचष्टे। यस्याऽण्डकोशं शुष्ममाहुः प्राणमुल्वम्। ...."

(घ) "इन्द्रो राजा जगतो यईशे"।

(ङ) "ब्रह्मापतद्ब्रह्मणाउज्जभार अर्कं श्चोतन्तं सरिरस्य मध्ये........."

* तैत्तरीयारण्यक० प्रपा० ३, अनु० १२॥

त्वमग्निं हव्यवाहं समिन्त्से त्वं भर्त्ता मातरिश्वा जनानाम्।
त्वं यज्ञ स्त्वमुवेवासिसोमः तवदेवाहवमायन्ति सर्वे।
त्वमेकोऽसि बहूननु प्रविष्टः नमस्तेऽस्तु हवोनराधि!

तैत्तिरीयारण्यक०, प्रपा० ३, अनु० १४, २, ३॥

\+ धारिते यं पृथिवी ब्रह्मणामही धारितमेनेममहदन्तरिक्षम्।
दिवन्दाधार पृथिवीं सदेवाम्। तैत्तिरीआरण्यक०, प्रपा० ४, अनु० ४२,५॥

(१३) यमने ही पृथिवी को धारण किया है। यमने ही इस विश्व जगत् को धारण किया। वायु से रक्षित प्राणधारी यह सब संसार सब यम ही है। (×)

इस के साथ ही क्रमागत तैत्तिरीयारण्यक का एक भाग भूत उपनिषद् भाग का भी यहां ही उल्लेख करते हैं।

(१४) ब्रह्म को जानने वाला परमब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होता है। इसी आत्मा से यह आकाश उत्पन्न हुआ है आकाश से वायु, वायु से अग्नि। अग्नि से आप। आप से पृथिवी। पृथिवी से औषधियें। औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष'। (*)

इसी प्रकार से भूत सर्ग के रचने हारे एक ही परमात्मा का प्रतिपादन है।

इसी प्रकार तैत्तरीयोपनिषद् भृगुवरुण संवाद है। उस में ब्रह्म के जिज्ञासु पुत्र भृगु को उसके पिता वरुण इस प्रकार उपदेश देते हैं।

(१५) "जिससे ये सब भूत पैदा होते हैं जिससे पैदा होकर जीते हैं जिस में फिर नाश होकर चले जाते हैं। उसी को तुम जानने की इच्छा करो। वही ब्रह्म है। (*)

यही सब प्रकरण तैत्तरीयोपनिषद् में भी आया है।

[१६] जिस से पर और अपर उत्कृष्ट वस्तु कोई नहीं है। इस से अधिक सूक्ष्म और महान् भी कोई नहीं। वही द्युलोक में वृक्ष की तरह स्तब्ध निश्चल हुवा हुआ एक परमात्मा है। उसी पुरुष ने यह सारा संसार पूर्ण किया है। [†]

× यमोदाधार पृथिवीं यैमो विश्वमिदं जगत्।
यमाय सर्व मित्तस्थे यद्प्राणद्वायुरक्षितम्॥
तैत्तिरीयारण्यक० प्रपा० ६, अनु० ४, २॥

* ओ३म् ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्। तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।............।
तैत्तीरीयारण्यक० प्रपा० ८, अनु० २॥

* तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति॥
तैत्तीरीयारण्यक०, प्रपा० ६, अनु० १॥

† यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्षइव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥
तै० आ०, प्र० १० अनु० १०॥

[१७] जो विश्व का पति है । आत्माओं का ईश्वर है । नित्य मंगलमय और अखण्डित व नियम से अचलित है । ऐसे नारायण पर-अयन को विश्व आराधना करता है । +

तैत्तरीयारण्यक में अभी बहुत से उद्धरण उस एक ब्रह्मस्वरूप परमात्मा के प्रतिपादक शेष हैं । परन्तु वे सभी पूर्व प्रतिपादित ऋग् यजुरादि वेद मन्त्रों से अतिरिक्त नहीं हैं । अतः उनका उल्लेख यहां नहीं किया जाएगा ।

अब हम संक्षेपतः उपनिषदों से कतिपय उद्धरण उठाते हैं, जिनसे यह भी स्पष्ट हो जाए कि वैदिकज्ञान का शिरो भाग हमें किस सिद्धान्त का उपदेश करता है ।

ईशा वास्य के प्रमाण हम यजुर्वेद के प्रकरण में उद्‌धृत कर आये हैं [देखो पृ. केन ने ,किमेतद्यक्षमिति के प्रकरण से ब्रह्म को अल्प शक्ति वाला तथा एक और अन्य सब वायु अग्नि आदि देवताओं से भी परे स्थिर किया है ।

काठक—

[१] वह सूक्ष्म होने के कारण बहुत दुष्करता से देखा जाता है गूढ़ और सब में व्याप्त है गुहा या अन्तरिक्ष में स्थित और (गह्वर) सब प्राणियों के हृदय में व्याप्त है । वह पुराण अर्थात पुरातन है उस देव को अध्यात्म योग अर्थात बाह्य विषयों से चित्त को हटाकर समाहित हो कर किए योग से उसका ज्ञान करके धीर पुरुष हर्ष और शोक को छोड़ देता है । ×

(२) यही सब भूतों में गूढ़ है, आत्मा रूप है, और चाक्षुरादि साधनों से नहीं दीखता है । परन्तु सूक्ष्म दर्शी लोग इस को तीक्ष्ण बुद्धि से साक्षात्कार करते है । *

+ पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।
नारायणं महाज्ञं विश्वात्मानं परायणम्॥
तद्विश्वमुपजीवति इति पूर्वतः सम्बन्धः)
(तै० आ० प्र० १०, अ० १३ ॥

× काठक०, अ० २, वल्ली २, १२
तं दुर्दर्शं गूढमनु प्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति ॥१२॥
काठक०, अ० १, वल्ली ३, १२ ॥
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मान प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

[३) यह जो सोतों में जागता है। पुरुष है। और अपनी इच्छा के अनुकूल जगत की सृष्टि करता है।-वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते हैं। उसी में सब लोक आश्रित हैं। उस से कोई भी नहीं बढता। ‡

[४] जिस प्रकार अग्नि भुवन भर में व्याप्त है और वस्तु वस्तु के साथ भिन्न २ रूप में दीखता है। उसी प्रकार वह सर्वान्तर्यामी सब के अन्दर व्याप्त होता हुवा, बाहर और अन्दर प्रति वस्तु भिन्न २ प्रतीत होता है। +

[५) एक ही सब संसार को वश करने वाला सब भूतों में व्याप्त एक ही रूप को नाना प्रकार से जो रचता है उसको जो अपने आत्मा में स्थित हुवे को धीर लोक साक्षात् करते हैं उन्हीं को निरन्तर शाश्वत सुख होता है औरों को नहीं। ÷

(६) वह अनित्यों में नित्य है चेतनों में चेतन है और बहुतों की कामनाओं को अकेलाही पूर्ण करता है। उस आत्मा में स्थित पुरुष को जो देख लेते हैं उन्हीं को निरन्तर शान्ति होती है। अन्यों को नहीं ? *

[७] न वहां सूर्य्य चमकता है न चांद न तारे और न ये विद्युत यह अग्नि तो कहां से ? । उसी प्रकाशित होते होने वाले के आधार पर ये सब प्रकाशित होते हैं उसी की दीप्ति से यह सब-कुछ स्थावर जंगम प्रकाशित होते हैं। ×

‡ काठक०, अ० २, वल्ली २, ८
य एषसुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषं निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिंल्लोकाः श्रिताः
सर्वेतदुनात्येति कश्चन। एतद्वैतत् ॥ ८॥

\+ काठक०, अ० २, वल्ली० २.
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो वहिश्च ॥ ६ ॥

÷ काठक, अ० २, वल्ली० ३, १२।
एको वशी सर्वभूतारन्तरात्मा एकंरूपं वहुधायः करोति।
तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं-
नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

* नित्योनित्यानां चेतन श्चेतनानामेको बहूनां-
योविदधाति कामान्। तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति।
धीरा, स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

× नतत्रसूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति
कुतो यमग्निः। तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्यभासा।
सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

(८) इसी के भय से अग्नि तप्त होती है इसी के भय से सूर्य भी तप्त होता है । भय से ही इन्द्र वायु और पांचवां मृत्यु भागता है ।

छान्दोग्य में भी उसी ब्रह्म को चतुष्कल प्रतिपादन करते हुवे बताया है ।

(९) हे सौम्य तुझे ब्रह्म के पाद का उपदेश करता हूं । 'कहिए भगवन्'; अग्नि ने जाबाल सत्य काम को उपदेश किया । 'पृथिवी कला, अन्तरिक्ष कला, समुद्र कला, द्यौ कला, इन चार कलाओं से ब्रह्म चतुष्कल है । यही ब्रह्म अनन्तवान् नाम से कहा जाता है' । ×

इनमें भी पृथिवी देव अन्तरिक्ष देव समुद्र (वरुण) द्यौ देव ये सब ब्रह्म में अन्तर्गत हो जाते हैं ।

उसी महान् विश्व व्यापक एक मात्र विराट् रूप को छान्दोग्य इस प्रकार उपपादन करती है ।

(१०) 'इस आत्मा वैश्वानर का शिर ही सुतेज चक्षु रूप, विश्वरूप, प्राण जिसमें नाना प्रकार के मार्ग हैं और प्रायः देह में उत्कृष्ट भाग है । वस्ति या मध्य भाग ही रयि है । पाद ही पृथिवी हैं । उरः वेदी है बर्हि धान्य लोम' हैं । गार्हपत्य हृदय है । अन्वाहार्यपचन मन है आहवनीयाग्नि मुख है' । यहां भी सब उपास्य वस्तुएं एक ही व्यष्टि रूप से न रख कर समष्टि रूपेण ब्रह्म में ग्रथित हैं । ÷

उसी ब्रह्म की अद्वितीयता को भी उपनिषत् इन शब्दों में बतलाती है ।

[११] 'सत ही हे सौम्य पहले एक और अद्वितीय था । कोई इस विषय

× छान्दोग्योप० अ० ४, खं० ६, ३ ।
ब्रह्मणः सौम्यते पादं ब्रवाणीति । ब्रवीतुमे भगवानिति ।
तस्मै हो वाच पृथिवी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः
कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ऽनन्त वान्नाम ॥ ३ ॥

÷ छान्दोग्योप०, ५ अ०, १८ खं०, २, ।
तस्यह वाएतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षु-
र्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा ऽऽत्मा संदेहो बहुलो वस्ति
रेवरयिः पृथिव्येव पादा उर एव वेदिर्लोमानि बर्हि र्हृदयं
गार्हपत्योमनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

में कहते हैं कि असत [अव्यक्त] ही पहले था वह भी एक और अद्वितीय था। उस असत् [अव्यक्त] से सत् [व्यक्त] प्रादुर्भूत हुआ। हे सौम्य ऐसा कैसे हो सकता है कि असत् से सत होवे। इस लिए, हे सौम्य, सत ही तो पहिले एक और अद्वितीय था, +

इसी बात को और भी स्पष्ट करके दिखलाने के लिए वृहदारण्यककार इस प्रकार ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।

[१२] यह 'ब्रह्म पहले एक ही था। वह एक होता हुआ नाना रूप में नहीं था। उसने श्रेयो रूप बनाया क्षत्र रूप इसने जितने क्षत्र देवता हैं इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ईशान इनको रचा। इस से भी उस के विभूति मय रूप नहीं बने। उस ने वैश्य को बनाया। इस पर सब गण देव रचे गये वसु, रुद्र, आदित्य विश्वे देव और मरुत ये रचे गये। *

इस पर भी वह न रह सका उसने शूद्र वर्ण रचा पूषा देवता भी रचा गया। फिर भी अपनी विभूति को व्यक्त करने के लिए धर्मो की रचना की। (२७)

इस वृहदारण्यक के प्रकरण से तो स्पष्ट ही एकेश्वर और अन्य देवता उसकी

\+ छान्दोग्योप०, ६ अ०, ख० २, १, २,
सदेव सौम्येदमग्र आसीदेक मेवा द्वितीयम्।
तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयम् तस्मा
दसतः सज्जायेत ॥ १ ॥
कुतस्तु खलु सौम्यैवं स्यात् इति हो वाच।
कथमसतः सज्जायेतेति सदेव सोम्येद मग्रआसीदेकमेवा
द्वितीयम्।

* वृहदारण्यक०, अ० १, ब्रा० ४, ११—१३ ॥
ब्रह्मवाइद मग्र आसीदेकं मेवा द्वितीयम् तदेक सन्नव्यभवत्।
तच्छ्रेयोरूप मत्यसृजत् क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणि
इन्द्रोवरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्योयमो मृत्युरीशान इति ॥ ११ ॥
सनैव व्यभवत्। स विशम सृजत् यान्येतानि देवजातानि गणश
आख्यायन्ते वसवोरुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ १२ ॥
सनैव व्यभवत्। सशूद्रं वर्णम सृजत पूषणम् ॥ १३ ॥
सनैव व्यभवत् तच्छ्रेयोरूप मत्य सृजतधर्मं तदेतत् तस्य क्षत्रं
मित्यादि ॥ १४ ॥

विभूति मात्र ही व्यक्त रूप में प्रतीत होती है। इससे वैदिक देवताओं का पूर्ण व्याख्यान हो जाता है।

वही परमात्मा एक दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है।

(१३) 'जिस प्रकार अग्नि से छोटी २ चिनगारियें इधर उधर निकलती हैं इसी प्रकार इस आत्मा से सब प्राण सब लोक सब देव सब भूत निकलते हैं'। ॥

(१४) 'वही यह आत्मा सब भूतों का अधिपति सर्व (भूत) प्राणियों का राजा है जिस प्रकार रथ की नाभि और रथ की चक्रधारा में और लगे होते हैं उसी प्रकार इस आत्मा में सब प्राणि तथा पंच भूत सब देव सब लोक सब प्राण और सब जीवात्मा आश्रय लिए हुवे हैं'। *

आरुणि उद्दालक के पातंचल काप्य के प्रश्न में एक मात्र ब्रह्म को सकलाधार सूत्र प्रतिपादन करने के लिए उपनिषद् इस प्रकार कहती है।

(१५) [वह बोला हे गौतम वायु ही वह सूत्र है जिस सूत्र से यह लोक और परलोक और सब भूत गठे हुवे हैं,। ×

(१६) वही पृथिवी में स्थित है और पृथिवी के अन्दर व्याप्त है। जिस को पृथिवी नहीं जानती और पृथिवी जिसका शरीर है और जो पृथिवी को अन्दर व्याप्त होकर नियमन करता है यही वह आत्मा अन्तर्यामी और अमृत है। +

॥ यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिङ्गाः व्युच्चरन्त्येव मेवाऽस्मादात्मनः सर्वे प्राणा सर्वे लोकाः सर्वेदेवा सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति। बृहदारण्यक० अ० २, ब्रा० १,२०।

* सवा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां।
भूतानां राजा तद्यथा रथनाभौच रथनेमौ चाराः।
सर्वे समर्पिताः एव मेवास्मिन्नात्मनि।
सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः।
सर्व एत आत्मनः समर्पिताः॥ १५॥ बृ० आ०, अ० २, ब्रा० ५,।

× सहोवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं। वायुना वैगौतम सूत्रेणा यंच लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति बृहदा०, अ० ३, ब्रा० ७, २,।

\+ यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवी नवेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवी मन्तरोयमयत्येषतआ न्तर्याम्यमृतः। बृहदा०, अ० ३, ब्रा० ७, ३,।

इसी प्रकार वह अपः, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, आदित्य, दिशाएं, चन्द्र, तारे, आकाश, नभस और प्रकाश, सर्व भूत, प्राण, वाणि, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान, रेतः में भी विद्यमान् है। ये उसको नहीं जानते हैं, तथापि ये सब उसके शासन में हैं और उसी के द्वारा चल रहे हैं। वही अन्तर्यामी आत्मा और वही अमृत है। ÷

इस प्रकार उपनिषद जाते में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों दृष्टियों से आत्मा का स्वरूप बताते हुवे एक ही नियामक का वर्णन किया है।

इसी ब्रह्म के प्रतिपादन के लिए सकलाधार ब्रह्म का स्वरूप उपनिषत्कार याज्ञवल्क्य और गार्गी के संवाद से इस प्रकार दर्शाते हैं।

[१७] इसी अक्षर [ब्रह्म] के प्रशासन [अधिकार] में हेगार्गि ! सूर्य और चन्द्रमा स्थिर हैं। इसी अक्षर के प्रशासन में हेगार्गि द्यौ और पृथिवी भी विधृत स्थिर और नियमित है। हेगार्गि इसी अक्षर के शासन में निमेष मुहूर्त्त अहोरात्र अर्धमास ऋतु संवत्सर भी नियमित हैं। इसी अक्षर के शासन में श्वेत पर्वतों से प्राचीदिशा की नदी बहती है। अन्य २ दिशों में भी भिन्न २ नदियें बहती हैं ×

मुण्डकोपनिषद् में परा विद्या को बताते हुवे ऋषि कहते हैं कि—

[१८] परा वह विद्या है जिस से उस अक्षर [ब्रह्म] का ज्ञान होता है। वह अक्षर अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण, बिना नाक कान आखों का, बिना

÷ बृहदा०, अ० ३ ब्रा० ७, सम्पूर्ण

× एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठितः।
एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषामुहूर्त्ता अहोरात्राणि अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इतिविधृतास्तिष्ठन्ति।
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्यानद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः।
प्रतीच्योऽन्या या यावद्दिशमनु ॥ बृहद् ३०, । अ०३, ब्रा, ८,९

हाथ पैर वाला, नित्य, विभु, सर्वव्यापक, अत्यन्त सूक्ष्म, वही परमात्मा अव्यय और सम्पूर्ण भूतों का आदि कारण है जिसका साक्षात्कार धीर पुरुष करते हैं। ÷

[१९] अत्यन्त सन्निहित यह गुहा में व्याप्त महान् पद है जिसमें यह सब कुछ गतिमान् प्राणवान् क्रियावान् [संसार] जो भी कुछ देखते और जानते हैं। उसमें स्थित हैं जो दीप्तिमान् है अणु सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। जिस में लोक और लोकाधिपति तथा लोक निवासी सब स्थित हैं वही अक्षर ब्रह्म है, वही प्राण है, वही प्राणी और मन है। *

[२०] न चक्षु से उसका ग्रहण होता है न वाणी से वर्णन होता है और न अन्य देव (इन्द्रियें) इसका ग्रहण करते हैं। न तप और कर्म से भी जिस का ज्ञान होता है। ज्ञान की महिमा से विशुद्धान्तःकरण लेकर योगी उस निष्कल अखण्डनीय एक रस ब्रह्म को सतत चिन्तन करने से उसका दर्शन करता है। ×

(२१) १५ कलाएं और उनका आधार सब देव भी अपने कारणी भूत प्रति देवता में लय हुए हुवे कर्म और विज्ञानमय आत्मा ये सब पर अव्यय परमात्मा में एक हो जाते हैं। +

माण्डूक्य में भी इसी प्रकार ओंकार का प्रतिपादन किया है:—

÷ अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥
यत्तदद्रेश्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं
विभुं सर्वगतं, सुसूक्ष्मं, तदव्ययं, तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति
धीराः ॥ मुण्डकोप,—१ मु०, ख.१, ६

* आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम्।
अत्रैतत्समर्पितमेजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ ॥१॥
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिँल्लोकानिहिताः।
लोकिनश्च तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ २ ॥

मुण्डक०, मु० २, ख० २, १—२ ॥

× न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥
मुण्डक०, मु० ३, ख० १, ८ ॥

+ कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति ॥
मुण्डक०, मु० ३, ख० २, ७ ॥

(२२) ओ३म् यही अक्षर है यह सब कुछ भूत भविष्यद् है ।

अथर्ववेदीय श्वेताश्वतरोपनिषद् भी उसी एकमात्र परमदेव का निरूपण करती है।

(२३) जो एक आयतन वाला वरुण (सम्पूर्ण संसार को आवरण करने वाला) सामर्थ्य और शक्ति-युक्त रज्जुओं से सम्पूर्ण वश करने में समर्थ है, और अपनी शक्तियों से सभी लोकों का स्वामी है। वही इस संसार के उत्पन्न होने तथा स्थिर रहने में कारण है। जो इसको जानलेते हैं वे अमृत हो जाते हैं। *

(२४) रुद्र एक ही है, और दूसरा नहीं है, वही इन लोकों को अपनी शक्तियों से वश करता है। +

(२५) जो देवताओं का भी पैदा करने वाला सब का राजा रुद्र और महर्षि है, जिसने पहले हिरण्यगर्भ का निर्माण किया, वह हमें शुभ बुद्धि दे। ×

(२६) इस संसार से परे परब्रह्म महान्, ज्ञानमय, सर्व भूतों में अन्तर्यामी, सब भुवनों को एकमात्र परिवेष्टन करने वाला--जो ईश परमात्मा है उसका ज्ञान करके अमृत हो जाते हैं। *

(२७) जो देवों का राजा है, जिसमें सब लोक आश्रय लिये हैं, इस द्विपद-मनुष्य-संसार तथा चतुष्पद-पशु-संसार का मालिक है, उस देवता की स्तुति-पूर्वक पूजा करते हैं। ॥

(२८) वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अत्यन्त सूक्ष्म गर्भ वीज के बीच में नानाप्रकार के रूपों में विश्व को बनाने वाला है, उसने सारे भुवनों को आवृत किया है, उस शिव परमात्मा को जानकर नर अत्यन्त शान्ति को पाता है। ‡

* श्वेताश्वतर०, अ० ३, १ ॥
यएको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
यएवेक उद्भवे संभवेच यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

\+ एको हि रुद्रो न द्वितीयातस्थुर्यइमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ २ ॥

× यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपोरुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं सनोबुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ५ ॥

* ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं यथा निकाये सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥ ७ ॥

॥ यो देवानामधिपो यस्मिल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥
श्वेताश्व०, अ० ४, १३ ॥

‡ सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्यस्रष्टार मनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वाशिवंशान्तिमत्यन्तमेति ॥
श्वेताश्व०, अ० ४, १४ ॥

(२९) वह सब का आदि कारण है संयोगादि निमित्तों का भी कारण है। तीनों कालों से परे होता हुआ काल [खण्ड] रहित है। उस विश्वरूप सकल जात पदार्थों के पैदा करने वाले बन्दनीय स्वचित्त में स्थित देव की प्रथम उपासना करते हैं, और फिरः— ×

(३०) वह देवता जो वृक्ष, कालादि की आकृतियों से भी परे तथा इन से अन्य है, जिस से यह सकल जगत्प्रपञ्च परिवर्त्तित होता—और चल रहा है। उस धर्म का आश्रयभूत पाप के नाशक ऐश्वर्य के मालिक आत्मा में स्थित अमृत सकल तेजःस्वरूप ईश्वरों के परम महेश्वर, देवों के परम दैवत, पतियों के भी परम पति उस भुवनों के ईश्वर बन्दनीय देव का हम ज्ञान करते हैं। +

[३१] जो ऊर्णा नाभ (मकड़ी) के सदृश प्रधान या प्रकृति से पैदा हुए तन्तुओं से स्वभावतः ही अपने को ढांप लेता है वही एक मात्र देव अव्यय ब्रह्म परमात्मा हमें धारण करे। ‡

[३२] एक ही देव है जो सब प्राणि तथा भूतों में व्याप्त है वही सर्वव्यापी सर्व प्राणियों का अन्तरात्मा है। कर्मों का अध्यक्ष और सर्व भूतों का निवास स्थान सब के सदृश से देखने वाला चिन्मय केवल निर्गुण है। ÷

× आदिः ससंयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवंस्वचित्तस्थ मुपास्यपूर्वम्॥
श्वेताश्व०, अ० ६।५॥

+ सवृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्त्ततेयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम्॥ ६॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता द्विदामदेवं भुवनेशमीड्यम्॥ ७॥

‡ यस्तूर्णनाभइव तन्तुभिः प्रधानजैःस्वभावतः।
देवएकः स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्माव्ययम्॥
श्वेता०, ६।१०,

÷ एकोदेवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्त रात्मा।
कर्माध्यक्षःसर्वभूताधिवासः साक्षीचेता केवलोनिर्गुणश्च॥
श्वेता०, ६।११।

[३३] एक ही सब जगत् को वश करने वाला जो बहुत से निष्क्रियों जड़पदार्थों का तथा जगतों को भी वश करता है और जो एक ही बीज को नाना रूप से करता है जो धीर अपने आत्मा में स्थित उस देव का दर्शन करते हैं उन्हें ही निरन्तर काल तक सुख रहता है। ×

इसी प्रकार कैवल्योपनिषद् भी ब्रह्म के विषय में कहती है, वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र, वही अक्षर परम तथा स्वराट् है, वही विष्णु, वही प्राण, वही काल, और अग्नि और वही चन्द्रमा है, वही भव भूत भविष्यत् सनातन है उस को जान कर मृत्यु को ज्ञानी तर जाता है। अन्य कोई जाने का रास्ता नहीं है। +

अन्य शेष उपनिषदों का सम्पूर्ण मर्म तथा वक्तव्य उपरोक्त उपनिषद् ब्राह्मणों और वेद मन्त्रों में आगया है। अतः उनका उद्धरण न कर के हम अब कतिपय भाष्यकारों और दर्शनकारों के संक्षेप से वाक्योद्धरण करने के पूर्व मनु और बृहद्-देवता के उद्धरण देना चाहते हैं।

राजर्षि मनु ने उसी एक सर्वोत्पादक ब्रह्म से सकल सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया है।

" वह जो अव्यक्त कारण है जिसका स्वरूप सद् और असद् दोनों प्रकार का है उसी से बना पुरुष ब्रह्म इस प्रकार कहा जाता है।"

" उसी ने प्रथम सब के नामों को वेदों से पृथक २ किया "।

"उसी ने कर्मात्मा कर्मशील देवों को और प्राणियों को औसाध्य के गुणों को भी पैदा किया और सनातन यज्ञ का भी निर्माण किया।" *

× एकोवशी निष्क्रयाणां बहूना मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्
श्वेताश्व० अ. ६। १२।

+ स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥ ८॥
स एव सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यविपन्था विमुक्तये॥ ९॥
(कैवल्योपनिषद् प्रथम खण्ड)

* मनु०-अ०, श्लोक ११।
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।

इसी प्रकार मनु महाराज कहते हैं।

एक ही परब्रह्म को अग्नि, कोई मनु, कोई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई शाश्वत ब्रह्म कहते हैं। *

इसी प्रकार वैदिक देवताओं का निरूपण करते हुए बृहद्देवताकार ऋषि शौनक जी कहते हैं।

"कतिपय विद्वानों का मत है कि वर्तमान भूत और भविष्यत् जंगम और स्थावर इस सब का उत्पत्ति कारण सूर्य ही है।"

परन्तु "असत् (अव्यक्त) और सत् [व्यक्त] सब का आदि कारण प्रजापति है। वही प्रजापति त्यत् अक्षर अव्यय और वही शाश्वत ब्रह्मरूप है। वही देव अपने को इन प्रकार के रूप में रखकर लोकों में स्थित है।

सब देवताओं को अपने ही रश्मियों में लगाकर इन सब प्राणियों और लोकों में इन अग्निरूप में स्थित हुआ। उसी परमदेव को ऋषि लोग समादिनाम से पूजते हैं जिसको कि तीन नाम से कहा जाता है।

१म रूप में यह प्रति प्राणि के पेट २ में औदर अग्नि रूप में रहता है। इसी की अग्निहोत्रों में याज्ञिक लोग तीनों स्थानों में स्तुति करते हैं।

यहां यह पवमान अग्नि है, मध्यमाग्नि पावक है, अन्य लोक द्यौ ही सूर्य है जिसको शुचि कहते हैं। यह अग्नि स्वरूप में ऋषियों की स्तुतियों से पूजित हुआ है मध्यलोक में जातवेदारूप में, द्यौ लोक में वैश्वानर रूप में।

अपनी रश्मियों से रस को लेकर यही देवता वर्षा करता है अतः इन्द्र कहलाता है

तद्विसृष्टः सपुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११।
सर्वेषान्तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
वेदशब्देभ्यपवादौ पृथक् संस्थाश्चनिर्ममे ॥ २१ ॥
कर्मात्मनाञ्चदेवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानाञ्च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैव सनातनम् ॥

* एत मेके वदन्त्यग्निं मनु मन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्र मेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥
(मनुस्मृति अ० १२, १२३)

वही इस लोक में अग्निरूप, मध्य लोक में वायु, द्यौ लोक में सूर्य इन्द्र कहलाता है।

इन के ही, महात्म्य भेद से नाम भेद किया जाता है। उनकी यही विभूति है कि एक के बहुत नाम हैं परन्तु उन देवताओं के मन्त्रों में ही विद्वान् लोगों ने एक दूसरे का एक दूसरे से कारण बताया है। +

निरुक्तकार भी वैदिक देवताओं का निर्णय करते हुवे कहते हैं देवता के महाभाग्य से एक ही महात्मा बहुत प्रकार से स्तुत किया जाता है। अन्य देवता उस महान् देवता के एक एक अंग बन जाते हैं। ‡

+ भवद् भूतं भविष्यच्च जंगमस्थावरंचयत्।
अस्यैकं सूर्य मेवैकं प्रभवं प्रलयं विपदः॥
असतश्चसतश्चैव योनिरेषाप्रजापतिः।
त्यदक्षर आव्ययंच यश्चैतद् ब्रह्मशाश्वतम्॥
कृत्वैवहि त्रिधात्मानमेषुलोकेषुतिष्ठति।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषुरश्मिषु।
एतद्भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा।
ऋषयोगीभिरर्चन्ति यक्षितं नामभिस्त्रिभिः।
तिष्ठत्येव च भूतानां जठरे जठरे ज्वलन्॥
त्रिस्थानं श्चैनमर्चन्ति होत्रायां वृक्तबर्हिषः।
इहैव पवमानोग्नि र्मध्यमो ऽग्निस्तु पावकः॥
अमुष्मिन्नेषविप्रैस्तु लोकेऽग्निः शुचिरुच्यते।
इहाग्निभूतस्त्वृषिभिर्लो केस्तु त्रिभिरीडितः॥
जातवेदास्तु तोमध्ये स्तुतो वैश्वानरोदिवि।
रसान्रश्मिभिरादाय वायुनायं गतःसह॥
वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इतिसस्मृतः।
अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यमो वायुरेव च॥
सूर्योदिवीति विज्ञेयास्तिस्त्रएवेहदेवताः।
एतासामेव महात्म्यान्नामान्यत्वं विधीयते॥
तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रोपलक्षयेत्।
तासामियंविभूतिर्हि नामानि यदनेकशः॥
आहुस्तासां तु मन्त्रेषु कवयोऽन्योन्य योनिताम्।

बृहद्देवता, अ० १, श्लो० ६१–७१।

‡ माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एक स्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानिभवन्ति।

निरुक्त०, अ० ७, ख० ४, ८।

इन्द्रादि की रथकल्पना के बारे में निरुक्तकार कहते हैं।

कि उनकी आत्मा ही रथ, आत्मा ही घोड़ा, आत्मा ही शस्त्र, आत्मा ही वाणी, और आत्मा उस देव का सब कुछ बन जाता है। ×

निरुक्त के इसी प्रकरण पर भाष्य करते हुवे पण्डित दुर्गाचार्य अपनी ऋज्वार्थ व्याख्या में कहते हैं।

"अग्नि, इन्द्र, सूर्य इन को परस्पर की अपेक्षा से पृथक् माना जाता है। परन्तु एक ही देवता के रूप होने से भिन्नता नहीं है। जिसप्रकार घट और मिट्टी की। अंग अंग वाले से जुदा नहीं कहाते; क्यों एक ही साथ लिये जाते हैं। बिना अंगों को जाने प्रत्यंग नहीं बनते बिना अधिष्ठान की अपेक्षा किये प्रत्यधिष्ठान नहीं बनता। इस से अग्नि, इन्द्र, सूर्य इन सब के एक स्वरूप भूत परमात्मा के जातवेदा वायु आदि सब प्रत्यंग है। वही महान् आत्मा अग्नि, इन्द्र, सूर्यादि को अंग प्रत्यंग बना कर व्यूहरूप रचकर एक होता हुआ भी बहुत प्रकार से स्तुति किया जाता है। +

(१) सकल वेदों के भाष्य कर्त्ता सायन भी—ऋग्वेदभूमिका में **"तस्या-द्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे"** श्रुति प्रमाण द्वारा ऋग्वेद की सब से प्रथमता बताते हुए सर्व हुतः इस परमात्मा के विशेषण की उचितता बताते हुवे लिखते हैं कि यज्ञ अर्थात् यजनीय सर्व हुत अर्थात् सर्व से हूयमान परमात्मा से वेद पैदा हुवे। यद्यदि—

(६) **"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे० (ऋ० १०, १२१, १)"** पर प्रायः पाश्चात्य कहा करते हैं कि—**"कस्मै देवाय हविषा विधेम"** इससे प्रतीत होता है कि वेदों में अज्ञेय वाद है, परन्तु यह कहना सर्वथा अनर्गल है। इस रहस्य को खोलने के लिये सायन कहते हैं " **कस्मै** इस शब्द में (क) अनिर्ज्ञात-

× **आत्मैवेषां रथो भवत्यात्माऽश्व आत्माऽऽयुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य।**
निरुक्त०, अ० ७, ४, १५।

† **"अग्नीन्द्रसूर्याणां परस्परापेक्षमन्यत्वम्,**
अनन्यत्वं तु एकेन देवतात्मना महता सह, यथा घटादीनां मृदा।
नह्यंगिनमङ्गान्यतिरिच्यन्ते। भेदेनाग्रहणात्,
तस्मादग्नीन्द्र सूर्यात्मकस्य देवतात्मनोऽङ्गानि जातवेदो वायु भगप्रभृतीनि।
सह एव महात्मा अग्नीन्द्रसूर्याद्यङ्गप्रत्यङ्गभावेन व्यूहमनुभवन्
एकोऽपि सन् बहुधा स्तूयते।" (नि० व्या० ७, ४, ६.)

स्वरूप होने ही से प्रजापति का वाचक है। अथवा सृष्टि की कामना करता है सो भीक कहलाता है कम धातु से डप्रत्यय होने से । अथवा कसुख का वाचक है, सुखरूप होने से (क) परमात्मा का नाम है। या, इन्द्र ने प्रजापति से प्रश्न किया उत्तर में प्रजापति ने कहा था कि अपनी महत्ता हे इन्द्र तुझ को देकर मैं कौन अर्थात् किस रूप का रहूं। इस पर इन्द्र बोला यदि पूछते हो 'क' होजाऊं तो ऐसा ही होजाओ। इससे भी (क) यह प्रजापति का वाचक ही है।११ +

"ष इति" इस मन्त्र पर भाष्य करते लिखते हैं; " वह अज परब्रह्मरूप ही नाना विकार को प्राप्त होने वाले जगत् में कुछएक या एकात्मक है वह क्या है यह प्रश्न है। सब के प्रति सामान्य नाम मात्र एक रूप है यही उत्तर देने की इच्छा से यह प्रश्न कहा है। वह परमात्मा है ही ऐसी अन्य कोई श्रुति भी है"। *

(७) " इन्द्र मित्रं वरुणमग्नि माहुः। ऋ० म० १, १६४, २१ "

भाष्यकार सायन कहते हैं इस आदित्य को एक होते हुवे भी विप्र अर्थात् मेधावि लोग देवताओं के तत्व को जानने वाले बहुत प्रकार से कहते हैं अर्थात् भिन्न कारणों को ध्यान में रख कर इन्द्रादिरूप से कहते हैं क्योंकि अन्य स्थल में एक ही बड़ा आत्मा देवता वह सूर्य है, इस प्रकार कहा जाता है।

सूर्य की ब्रह्म से भिन्नता नहीं है। इसी से इसकी एकात्मकता ही है।१० X

×११ कस्मै अत्र किं शब्दः अविज्ञातिस्वरूपत्वात्प्रजापतौ वर्त्तते । यद्वासृष्ट्यार्थं कामयते इतिकः कमेर्डः प्रत्ययः । यद्वाकं सुखं । तद्रूपत्वात्क इत्युच्यते अथवा इन्द्रेण पृष्टः प्रजापतिः मदीयं महत्वं तुभ्यंप्रदाय अहं कः कीदृशः स्यामित्युक्तवान् स इन्द्रः प्रत्युच्येते यदिदं ब्रवीषि अहं कः स्यामितितदेव त्वं भवेति अतः कारणात् कइति प्रजापतिसयायते। इन्द्रो वृत्रं हत्वासर्वानितितीर्विजित्याब्रवीदित्यादि-ब्राह्मणमनुसन्धेयम् ।

* "तस्या अस्य परब्रह्मणोरूपे नानाविकारभाजि जगति किमपिस्विदेक मे-कात्मकनस्ति इति प्रश्नः। अविशेषमस्ति नाना मात्रमेकरूपमित्युतर-विवक्षया प्रश्नः अस्तीत्येवोपलब्धव्यमितिश्रुतेः ॥"

× " अमुमेवादित्यमेकमेव सन्तं वस्तुतो विप्रा मेधाविनो देवता तत्वविदो बहुधा वदन्ति तत्तत्कारणेनेन्द्राद्यात्मानं वदन्ति एकैव वा महानात्मा देवता ससूर्य इत्याचक्षते इत्युक्तत्वात्..........सूर्यस्यब्रह्मणोऽनन्य-त्वेन सार्वात्म्यमुक्तं भवति ॥" (सायन)

स्थान २ पर इन्द्रादि को यज्ञ में आहुतियें दी जाती हैं । तथापि परमेश्वर ही इन्द्रादिरूप से लिया जाता है । इसलिये सर्वहुत में कोई विरोध नहीं । +

(२) इसी प्रकार भूमिका में परमेश्वर की एकता को पुष्ट करने के लिये वाजसनेइयों का प्रमाण देते हैं:—

"तद्यदि दमाहुरमुञ्जायु यजेत्येकं देवम् । एतस्यैव सा विष्टि रुष्टिः रेष उह्येव सर्वेदेवा इति ॥" उस देवता का यज्ञ करो उस देवता को इस प्रकार भी उस परमात्मा में सब देवताओं का त्याग है । वही सर्व देवतामय है ।

इस पर सायन कहते हैं कि 'सब परमात्मा के नाम पर ही यज्ञ करते हैं । +

(३) **"देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः"** (देखो, पृ० १५) की व्याख्या करते हुए भाष्यकार सायन लिखते हैं—

"सविता सर्वान्तर्यामी होने से सबका प्रेरक है, विश्वरूप अर्थात् नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाला त्वष्टा नामक देव ने प्रजाओं को नाना रूप का बनाया ।" +

(४) सायन महाराज **"अचिकित्वाश्चिकितु षश्चिदत्र"** (ऋ० १, १६४, ६) इस वेद मन्त्र पर भाष्यकरते हुवे कहते हैं । इस मन्त्र में प्रश्नकर्त्ता ने उसी परमात्मा का प्रश्न किया है जो कि उपनिषदों में **"यएषोऽआदित्यो हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते"** इत्यादि श्रुतियों से प्रतिपादित है ।

अब उव्वट तथा महीधर दोनों भाष्यकारों ने यजुर्वेद के उद्धृत मन्त्रों का भाष्य करते हुवे उपनिषत्प्रतिपादित ब्रह्म का ही आश्रय लिया है ।

सायन ऋग्भाष्यभूमिका—

"सहस्र शीर्षा पुरुषइत्युक्तत्वात् परमेश्वराद् यज्ञाद् यजनीयात्पूजनीयात्सर्वहुतः सर्वैर्हूयमानात् । यद्यपीन्द्रादयस्तत्र तं हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः ।"

"तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते ।"

"सविता अन्तर्यामितयासर्वस्य प्रेरको विश्वरूपो नानाविधरूपस्त्वष्टा त्वष्टृनामकोदेवः प्रजा पुरुधा बहुधा जजान जनयति ।"

(मं० ३, ५५, १९)

इसी एकेश्वर के प्रतिपादन में उपनिषदों के उद्धरण आपने देख ही लिए अब भाष्यकारों का भी हमें यही सिद्धान्त प्रतीत होता है। जिस प्रकार कि निम्नलिखित छान्दोग्य पनिषद् भाग के भाष्य से प्रतीत होता है।

उप०—"ऋतुषु पंचविधं साम पोपासीत वसंतो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्।" [छान्दो० २. ४]

भाष्य०—वा सस्य सुख कारित्वाद् वसंतः पुरुषोत्तमः नीरादेर्ग्रहणाद् ग्रीषाः वर्षणा द्वष उच्यते। शंकरार्तातिषारत् प्राप्ता हेमन्तो हिमकारणाद् इति च।

निवास में सुख के देने वाला परमात्मा वसंत जलादि लेने तथा देने से ग्रीष्म वर्षा करने से वर्षा सुख तथा कल्याणकारी होने से शरत्, हिम करने से हेमन्त कहाता है।

इसी प्रकार:—

उप०—"पशुषु पंच विधं सामोपासीत अजाहिंकारो ऽवयः प्रस्तावः गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रति हारः पुरुषो निधनम्।" [छान्दो० २, ६]

भाष्य०—"पालनात्सुखरूप त्वात्पशुना पाजनादनः मुक्तस्तद्भवान्भवत्येव पशुषूपासको हरे रिति च। यज्ञेनाश्व नहेतुत्वादजस्थो भगवानजः अविस्थस्त्व विरेत्वात्कः ऊर्णा यां शीततो ऽवनात् गौश्चसद्गति हे तुत्वाद् गोस्थः स पुरुषोत्तमः। अश्वश्चैवाशुगंतृत्वात्पुरुषः पूर्त्ति हेतुत इति च।"

पालन करने से और सुख रूप होने से भगवान् ही पशु कहलाता है। पशु रूप में हरि का उपासक भी मुक्त होजाता है। यज्ञ में प्रजा का हेतु होने से और अज में भी व्याप्त होने अज कहलाता है सूर्य में विद्यमान होने से परमात्मा अवि कहलाता है तथा—ऊन से पशु शीत से बचता है सो पशु अवि कहाता है। सद्गति का कारण होने से परमात्मा में कहाता है सर्वत्र व्याप्त होने से अश्व और सर्व अवकाश को पूर्ण करने से पुरुष कहाता है।

स्वामी शंकराचार्य भी **"जगद् व्यापार वर्जं प्रकरणा दसन्निहित त्वाच्च"** **[ब्र० सू० ४, ४, १७]** पर भाष्य करते हुवे लिखते हैं:—

सगुण ब्रह्मो पासना से ऐश्वर्य प्राप्त हुवे हुवे मुक्त आत्मा जनों की पूर्ण ईश्वरता नहीं होती। यद्यपि अणि मादि अष्ट विध ऐश्वर्य अवश्य होजाता है परन्तु जगद्व्यापार तो नित्य सिद्ध परमात्मा का ही है। क्योंकि रस (जगत्सर्ग) में उस पर-

मात्मा का ही प्रकरण से ग्रहण होता है और अन्य मुक्तात्माओं का संसर्ग भी कोई नहीं। परमात्मा की ही जगद्व्यापार में प्रकरण से परिपाठ है नित्य शब्द भी उसी परमात्मा के साथ सम्बद्ध है। ब्रह्म के जिज्ञासा द्वारा भी अन्य मुक्तों को अणिमादैश्वर्य होता है। और क्योंकि उन आत्माओं के मन भी होता है अतः उन की एक मति न होने से कोई तो संसार की रक्षा करना चाहेगा। और कोई नाश की इच्छा करेगा इस प्रकार विरोध भी परस्पर रह सकता है। यदि किसी एक के संकल्प को अनुसरण करके सब का संकल्प हो जाता है इससे विरोध हट सकता है ऐसा कहे तो भी ठीक नहीं क्योंकि वहां परमेश्वर के संकल्प के अनुसार ही अन्यों का संकल्प होगा यह सिद्ध ही है।*

इस प्रकार भाष्यकारों ने भी कहीं अनेकेश्वर कल्पना को युक्त नहीं समझा। एक मात्र ईश्वर को ही आदर्श माना है।

इस के आगे हमारा विचार पाठकों के समक्ष वैदेशिक विद्वानों की सम्मतियों के दिखलाने का प्रयत्न होगा। क्योंकि वैदिक साहित्य सब से प्रबल व्याक्रम बहु देवतावाद विषयक विदेश के विद्वानों का ही है।

जगदुत्पत्त्यादिव्यापारं वर्जयित्वाऽन्यदणिमाद्यात्मकमैश्वर्यं मुक्तानां भवितु मर्हति। जगद्व्यापारस्तु नित्यसिद्धस्यैवेश्वरस्य। कुतः—तस्य तत्र प्रकृतत्वा दसन्निहितत्वाच्चेतरेषाम्। परएव ही श्वरो जगद्व्यापारेऽधिकृतः। तमेव प्रकृत्योत्पत्त्याद्युपदेशात्। नित्य शब्दनिबन्धनत्वाच्च। तदन्वेषणजिज्ञासापूर्वकं त्वितरेषा मणिमाद्यैश्वर्यं श्रूयते। तेना सन्निहितास्ते जगद्व्यापारे। समनस्कादेव चैतेषामनैक मत्ये कस्यचित् स्थित्यभिप्रायः कस्यचित्संहारभिप्रायः इत्येवं विरोधोपि कदाचित्स्यात्। अथ कदाचित्सं कल्पमन्वान्यस्य संकल्पः इत्य विरोध समर्थ्येत ततःपरमेश्वराकूतन्त्र त्वमेवेतरेषाम् मितिव्यवतिष्ठते॥

सप्तमाध्याय

एकेश्वर वाद

(३)

विदेशीय विद्वान

विदेशीय विद्वानों का बड़ा आग्रह है कि वैदिक साहित्य में अनेक देवता माने गये हैं। यद्यपि उनका यह कहना किसी प्रमाण तथा आधार से युक्त नहीं परन्तु फिर भी इसकी विवेचना करना आवश्यक है।

वैदिक एकेश्वरवाद को दिखाने के लिए यद्यपि वैदेशिक सम्मतियों का इतना अधिक मान नहीं तथापि विदेशीय विद्वानों की ही सम्मति को "बा को वाक्य प्रमाण" कहकर मानने वाले कदाचित भ्रम में न पड़ जाय इससे वैदेशिक सम्मतियों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इस अध्याय में इस बात का दिखाने का प्रयत्न किया जायगा कि वैदेशिक विद्वान यद्यपि बहु देवतावाद करके वैदिक सिद्धान्त को मानते हैं परन्तु इस आग्रह के साथ २ ही उनको एकेश्वरवाद के मानने में भी बाधित होना पड़ता है। ग्रीफिथ मैक्समूलर कोलब्रुक मेकडानल आदि पाश्चात्य सभी विद्वानों ने एकेश्वरवाद को भी माना ही है। जिसका प्रदर्शन हम क्रमशः उनके उद्धरणों से करते हैं।

वेद के मन्त्रों का अनुवाद करते हुवे महाशय ग्रीफिथ इस प्रकार अनुवाद करते हैं।

(१) हे अग्ने तू वरुण रूप में उत्पन्न होता है। और प्रदीप्त होकर मित्र होता है। हे बल पुत्र सब देव तुझ में केन्द्रित होते हैं। जो तुझे हवि देता है उस के लिये तू इन्द्र है। *

---

* त्वमग्ने वरुणो जायसेत्वं मित्रो भवति यत्समिद्धः
त्वे विश्वेसहसस्पुत्र देवास्त्व मिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥
(ऋ० ५, ३, १)

Thou at thy brith art **Varuna** अग्नि; when thou art
Kindled thou becomest **मित्र Mitra.**
In thee. Son of Stringth, all gods are centered. **Indra**
art thou to man who brings oblations.
(R.V. Griff Vol. I. P. 463)

(२) कन्याओं के सम्बन्ध में तू अर्यमा है हे स्वयं धारण करने वाले तेरा नाम रहस्य युक्त है (गुह्य) जिस समय तू पति और पत्नी को एक चित्त का बनाता है उस समय वे तुझे दूध की धाराओं से सींचते हैं । *

(३) मरुत देवता भी तेरी लक्ष्मी के लिए अपने सौन्दर्य को छिपाते हैं । हे रुद्र तेरी उत्पत्ति के जो अत्यन्त प्रकाश मान हैं होवे । विष्णु का जो सब से अधिक उच्च पद नियत है उससे ही तू गौओं के गुह्य की रक्षा करता है । ×

[४] तेरी स्तुति करने वाला तेरे बहुत से नाम रखता है जबकि तुम हे अच्छे स्वामिन इस [हवि को] पिता के सदृश स्वीकार करता है । हे अग्नि क्या तुम परमात्मा की शक्ति प्रसन्न होकर भव्य आशीष नहीं पाते जब कि वह तुझे बल युक्त करता है । +

* त्वमर्यमा भवसियत्कनीनां नामस्वधावन् गुह्यं बिभर्षि
अञ्जन्तिमित्रं सुधितं नगोभिः यद्दम्पती सममसाकृणोषि ।
(ऋ० ५, ३, २)

Aryama art thou as regardeth maidens: mysterious is thy name; 'Self Sustainer.
As a kind friend with stremas of milk they balm thee what time thou makest wifeand Lord one minded.
(R.V. Griff. Vol I. P. 463.)

× तवश्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्रयत्ते जनिमचारुचि भूम् ।
पदं य द्विष्णो रुपमं निधायतेन पासि गुह्यंनाम गोनाम् ॥
The maruts deck their beauty forthy glory, yea, Rudra for thy birth fair brightly coloured.
That which was fixed as Vishnus loftiest Station there with the Secret of the cows thou guardest.
ऋ० ५, ३, ३)

\+ भूरिनामवन्द मानोदधाति पितावसो यदित जोसयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्नि वनिते वा वृधान ॥
Adoring thee, he gives thee many a title, when thou, Good Lord acceptest this as fathor And death art Agni glad in strength of God head, gain splendid bliss when he hath waxen mighty ?
(ऋ० ५, ३, १०)

[५] वीरों में वीर है अग्नि तू ही इन्द्र है दृढ़ अन्न वाला तू ही विष्णु है तू ही स्तुति करने योग्य है। तू ब्राह्मण स्तुति और धन प्राप्त करने वाला ब्रह्म है। तू है धारण करने वाला अपनी बुद्धि से हमें विनय करते हैं।*

[६] हे अग्नि तू राजा वरुण है जिसके बनाये राजनियम दृढ़ रहते हैं। तू ही आश्चर्य जनक कार्य करने वाला मित्र है तू ही स्तुति करने योग्य है। वीरों का पति तू ही अर्यमा सब को धनी बनाते हुये हे प्रमात्मा तू धार्मिक सभा में (Acclesistcal council) में उदार अंश है। ‡

[७] तू रुद्र है। महान् अकाश का असुर है तू मरुत का बल है। तू भोजन का राजा है तू लाल हवाओं से चलता है। तेरे स्वर पर कुशल है। तू पूषण है और सब पूजकों की रक्षा करता है। ×

[८] मन और शारीरिक शक्ति से सम्पन्न विश्वकर्मा है। वही जगत का बनाने वाला तथा नाश करने वाला है। और सब से ऊंची विद्यमानता है।

---

* त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वंविष्णु रुरुगायो नमस्य,
त्वं ब्रह्मरयि विद् ब्रह्मणस्पते त्वंविधर्त्ता सुचसे पुरंध्या ॥

Hero of Heroes? Agni: thou art Indra, thou art Vishnu of the mighty stride, adorable.
Thou Brahmanaspati the Brahman finding wealth, thou OSustainer, with thy wisdon tendest us.

(ऋ० २, १, ३)

‡ त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रोभवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देवभाजयुः ॥

(ऋ० २, १, ४.)

Agni thou art Kind Varuna whose laws fast.;
As Mitra, Wonder Worker, thou must be implored.
Aryaman, heroes, Lord, art thou, enriching all and liberal Ansa in the synod, o-thou God:

× त्वमग्ने रुद्रो असुरो महोदिवस्त्वं सर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वंवातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वंपूषा विधतः पासि नुत्मना ॥

(ऋ० २, १, ६)

Rudra art thou, Asura of mighty heaven: thou art the maruts last thou art the Lord of food,
Thou goest with red winds: bliss hast thou in thine home. As Pushan thou thyself protectest worshippers.

उनकी वल्यिुकार समृद्ध पुष्टि प्रदरस में आनन्द करते हैं। जहां वे सात ऋषियों से परेएक और केवल एक ही का मान करते हैं। +

(९] पिता जिसने हम को बनाया है और जो संहर्ता है जो कि सब ग्रह कक्षाओं तथा सब विद्यमान वस्तुओं को जानता है।

वही केवल सब देवताओं के नामों को देने वाला है उसको सब अन्य वस्तुएं ज्ञान के लिये खोजती हैं। *

[१०] वह अपनी शक्ति से उत्पादक शक्ति को रखने वाले और पूजा को पैदा करने वाले पूरों को देखता है। वह देवों का देव है उस के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं। हम किस देव को अपने उपहारों से पूजें। ‡

+ विश्वकर्मा विमना अद्विहाय धाता विधाता परमोतसंदृके
तेषामिष्टा निसमिषः मदन्ति यत्रासप्त ऋषि पर एक माहुः।

Mighty in mind and Power is Vishwa Karman,
Maker Disposer and most lofty presence.
There offerings joy in rich Juice where they value
one, only one beyond the seven Rishis.

ऋ० १०, ८२, २,

* योनः पिताजमिता यो विधाता धामानिवेद भुवनानि विश्वा
यो देवानां ना मधा एक एव तसप्रश्नं भुवनाय अत्यन्या॥
(ऋ० १०, ८२, ३)

Father who made us, he who, as disposer, Knoweth all
races and all things existing.
Even he alone, the deities, name giver, him other beings
seek for information.

‡ यश्चिद्दापो महिना पर्यपश्य द्दसंदधाना जनयन्तीयज्ञम्।
योदेवोवधि देव एक आसीत कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥
(ऋ० १०, १२१, ८)

He in his might seraeyed the Floods. Conatining force
and generating worship. He is the God of gods and
none beside him. What god shall we adore with our
of ation ?

(११) हे प्रजापति तू इन सब उत्पन्न वस्तुओं को जानता है तेरे अतिरिक्त कोई और नहीं। जब हम तेरी पूजा करते हैं तब हमारे हृदय के मनोरथों को पूर्ण कर। सम्पत्तियों के खज़ाने हमारे पास हों। *

[१२] सब धनों के मालिक असुर ने आकाश को उठाया हुआ है उसने पृथिवी के वे लम्बे चौड़े परिमाण को मापा हुआ है।

वह सब से उच्च राजा [सम्राट्] सब जीवित जन्तुओं के अन्दर व्यापक है। ये सब वरुण के पवित्र कार्य हैं। ×

मिस्ट्रस मैनिंग अपनी प्राचीन तथा मध्य कालीन भारत (Ancient and mediaeval India) में भारतीय देवता के विषय में लिखते हैं:—

"पुरुष सूक्त में महान् परमात्मा का भाव प्राप्त होता है परमात्मा ने अपने को यज्ञ में बलि देकर संसार को उत्पन्न किया। +

---

* प्रजापते न्यत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानिपरिताबभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तुवयं स्याम पतयो रयीणाम
(ऋ० १०, ८२, ३)

Prajapati ! thou only correspondest all these created things and none besid thee. Grant us our hearts' desire. When we invoke thee may we have store of riches in possession.

× जस्तम्भा धमसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद् विश्वाभुवनानि सम्राट् विश्वेतानि वरुणस्य व्रतानि॥
(ऋ० १०, ७)

Lord of wealth, the Asur propped the Heavensa nd measured out the broad earth's wide expenses.
He king supre, me approached All living creatures all these are varuna's holy operations.

+ In the Following hymn known as the Purush—Sukt, we find again the same idea of suprene God, who prodnced the world by offering himself in sacrifice.
"Purnsha has a thousand heads................
......"ede" (यजु० अ० ३१) (ऋ० १०, ९०)

"सहस्त्र शीर्षा:पुरुष सहस्त्राक्षः इत्यादि (यजुः अ० ३१)
(ऋ० १०, ६०)

यही उपरोक्त महाशय अथर्ववेद के—

"ये पुरुष ब्रह्मविदु:; तेस्कम्भ मनुसंविदु:"

मन्त्र को देखकर अपनी सम्मति देते हैं स्कम्भ सब से उच्च देवता विषयक रहस्य है। (P. 43.)

महाशय मैक्समूलर जो वैनिक बहुदेवतावाद की बड़े आग्रह से मानते हैं वे भी यह मानने को वाधित हुये हैं कि:—

"यद्यपि वेद में ऐसे मन्त्र हैं जो कि परमात्मा की एकता को ऐसी निर्भयता से उद्घोषित करते हैं जिस प्रकार की इजील या कुरान की आयतें हैं। जैसा कि एक कवि (ऋषि] कहता है "वह जो एक है ऋषि उस का नाना प्रकार से नाम लेते हैं—वे उसे अग्नि यम मातरिश्वा कहते हैं।"अन्य कवि कहता है—"बुद्धिमान कविजन अपने शब्दों से उस का प्रतिपादन करते हैं जो सुन्दर पक्षों से युक्त नानाप्रकार से हैं। और हम हिरण्यगर्भ के वारे में भी सुनते हैं जिसके विषय में कवि कहता है—"प्रारम्भ में एक हिरण्य गर्भ उत्पन्न हुवा वही सब इस चराचर का पति था उसने आकाश और पृथिवी को स्थिर किया जो परमात्मा है जिसके प्रति हम वल्युपहार देते हैं। "कवि कहता है वह हिरण्यगर्भ ही के वक्त सवादेवताओं से उच्च महान् देव है [य, देवेस्वधिदेव एकभार्मात्] इतना प्रबल प्रतिपादन इञ्जलादि सभी से बढ़ जाता है।" *

महाशय कोल-बुक की अनुक्रमणिका के निम्नलिलिखित पंक्तियों को देखकर अपनी सम्मति देते हैं कि इन पंक्तियों को देखकर यह प्रतीत होता है कि प्राचीन हिन्दू-धर्म जिसका आधार भारतीय वेदों पर है स्वीकार करता है कि केवल एक मात्र परमात्मा है और वह जीव और उत्पादक पिता से पर्याप्त भिन्न है। ×

कोलबुक के अपने शब्दों का अर्थ अनुक्रमणिका का इस प्रकार है—

किसी मन्त्र का ऋषि वह है जिसका वह वचन है। और जो कुछ उस से प्रतिपादित है वही मंत्र का देवता है। मात्राओं का संस्था से छंद बनता है। ऋषि विशेष उद्देश्य को रखते हुवे देवताओं को छंदों द्वारा प्राप्त करते हैं।

---

* देखो What India can teach us पृष्ठ १४४।

× देखो Essays on the Religion and Philosophy of the Hindus. By H. H. Coletrove. पृष्ठ. १३।

तीन ही देवता हैं जिनके स्थान पृथिवी मध्यस्थान [अन्तरिक्ष और द्यौ] है उनके नाम भी क्रम से अग्नि वायु आदित्य हैं। वही गुह्य [व्याहृति] नाम के देवता नाना प्रकार से कहे जाते हैं। प्रजापति जो सब जीवों का स्वामी है वह इन तीनों का समुदाय रूप है। ओ३म् यह अक्षर प्रत्येक देवता का नाम है।

वह परमेष्ठी जो सब से उच्चस्थान पर स्थित है। यह नाम ब्रह्मा के और देव के साथ सम्बद्ध है। अन्य देवताओं कतिपयस्थानों से सम्बद्ध हैं वे तीन देवताओं के ही अंग-रूप हैं। क्योंकि वे ही भिन्न २ नाम से पुकारे तथा वर्णन किये जाते हैं। क्योंकि उनके कर्म भिन्न २ हैं। परन्तु वास्तव में एक ही देवता है महान् आत्मा। वही सब का आत्मा होने से सूर्य कहलाता है। यही ऋषि ने कहा। वही "सूर्य जंगम और स्थावर का आत्मा है" **"सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च"**। अन्य देवता उस के अंग हैं। यही वेद ने भी पस्पष्ट कहा है कि बुद्धिमान पुरुष उसे अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, इत्यादि कहते हैं। *

महाशय फिलिप वैदिक देवताओं पर लिखते हुवे अपने ग्रंथ (The teaching of the Vedas.") वेदों की शिक्षा में बताते हैं कि:— ×

* **देखो** Essays on the Rel. & Philo of the Hindus.
पृष्ठ १३.

उपरोक्त अनुवाद का मूल संस्कृत इस प्रकार है:—
"यस्य वाच्यम्, स ऋषि, यातेनोच्यते सादेवता।
यदक्षरपरिमाणम् तच्छन्दः।
अर्थेप्सव ऋषयो देवताश्च्छान्दो भिरभ्यधावन्।
"तिस्रएव देवताः क्षित्यन्तरिक्षद्यु स्थानाः अग्नि वायुः सूर्य इति।
एवं व्याहृतयः प्रोक्ताव्यस्तः समस्तानां प्रजापतिः।
ओंकारः सर्व दैवत्यः पारमेस्योवा दैवाया आध्यात्मिकाः।
तत्स्थाना अन्यास्तद् विभूतयः।
कर्म पृथक हि पृथगाभिधावाः स्तुतयोभवन्ति।
एकेववामहानात्मा देवता ससूर्य इत्याचक्षते।
सहिसर्वभूतात्मा। तदुक्तमृषिणा।
सूर्य आत्मा जगतस्थुपश्चेति।"
तद्विभूतयोऽन्या देवताः।
तदप्येतद् ऋषिणोक्तम्।
इन्द्रमित्रं वरुणमग्नि माहु रिति॥"

× The Teaching of the Vedas by Phillp **पृष्ठ ३१.**

द्यौ यह पिता है, पैदा करने वाला है, और इस महान् द्यौ ने ही इन्द्र को भी पैदा किया है ।*

वरुण के बारे में उपरोक्त विद्वान् कहता है †

वरुण यूनानियों का ओरेनस (Ouranos) और पारसियों का अहुरमज़दा (Ahurmazda) भी द्यौ के लिये दूसरा नाम है । यह वृञ् आच्छादने धातु से बना है, इसका धात्वर्थ आकाश है, जिसने सब को ढका हुआ है । वरुण सर्वगामी तथा महान् है, सब दिव्य आकाश का निवासस्थान है और सर्व का प्रथम उत्पत्ति-स्थान है (ऋ० ८, ४१, ९) । वरुण और ओरेनस के पद और पदार्थ की समता हमें इस परिणाम पर पहुंचाती है प्राचीन संहित आर्यों का सब से महान् देव वरुण था । और यदि वरुण अहुरमजदा तथा जुइसपेटर के गुणों की तुलना भी करेंगे तो हमें परमात्मा का बहुत कुछ सत्ता ज्ञान प्रतीत होता है, जो कि प्राचीन इन्डो योरोपीयन लोगों में पृथक् २ फैल जाने के पहले था । हमें स्पष्ट दीखता है कि वे परमात्मा को उत्पादक नियामक और संसार का सर्वोच्च पति तथा सर्वज्ञ आत्मा मानते हैं, जिसके धर्म की पराकाष्ठा न्याय और दया की परमोत्कृष्टता है । हम ये भी पाते हैं कि भावात्मक आत्मीय-स्वरूप पदार्थात्मक द्रव्यमय भाव से इतना सम्बद्ध है एक दूसरे से अलग नहीं किया जासकता । और दोनों का स्वरूप वरुण से स्पष्ट प्रतीत होता है । इससे वरुण का अर्थ आकाश और परमात्मा दोनों है । वरुण ही के विषय में उपरोक्त ग्रन्थकार वेद के मन्त्रों के आधार पर लिखता है कि— ⸸

वेदों में वरुण को बहुत बढ़ा के वर्णन किया है सूर्य उसकी आंख है, आकाश उसका चोला है और घरघराती वायु उस का प्राण है [ऋ० १, ११५, १] उस ने विस्तृत आकाश को अलग कर दिया, उस ने दीप्त और भव्य नक्षत्र मण्डल को थामा हुआ है तथा तारामय गगन और पृथिवी को पृथक् २ कर के भी विस्तृत किया है ।[ऋ० १, २५, १३][ऋ० ७, ८७, २][ऋ० ७, ८६, १] उसने सूर्य का भी विस्तृत मार्ग खोला हुआ है । और नदियों के बहने के लिये नहरें खोद रखी हैं (ऋ० १, २४, ८) (ऋ० २, २८, ४) वही सब का राजा है, अपने

---

* ऋ० ४, १७, ४ ।

† The Teachnig of The Vedas P. 32, 33, 34,

⸸ The Teaching of The Vedas P. 31,

बनाये जगत के नियम (व्रत) का धारण करने वाला है। उस के व्रत उसी पर पर्वतों के सदृश दृढ़ हैं और ध्रुव हैं। उन्हीं के आधार पर चन्द्रमा प्रकाशित होकर परिक्रमा करता है और तारे प्रातः लुप्त हो जाते हैं [ऋ० २, २८, ८] इत्यादि ।

उसी वरुण परमात्मा का स्वरूप अथर्व के वेद मन्त्रों के आधार पर उपरोक्त ग्रन्थकार बताता है कि— ×

चाहे मनुष्य स्थिर हो चाहे जाता हो या छिपता हो या सोता हो या जागता हो या जो कुछ दो आदमी बैठ कर आपस में गुप्त बात करें राजा वरुण उसे भी जानता है वह जो आकाश से भी परे चला जाय वह भी राजा वरुण से छूट कर नहीं भाग सकता, उसके दूत स्वर्ग से पृथ्वी लोक तक फैले हुये हैं, सहस्रों आंखों से वे पृथ्वीलोक को देख रहे हैं, राजा वरुण द्यौ और पृथिवी के मध्य भी देखता है और उन से परे भी क्या है उस ने मनुष्य के नयन निमेष भी गिने हुये हैं। द्यूतकार जिस प्रकार पासों को स्थिर करता है उसी प्रकार राजा वरुण भी सब कुछ स्थिर करता है। [अथर्व० ४, १६] ।"

"आचार संसार का भी वरुण अधिष्ठाता है मनुष्यों के चित्तों का वह स्वामी है। उसके बनाये नियमों को कोई भी उद्धतता से तोड़ नहीं सकता, उसके भयावह पाश मिथ्या भाषण करने वाले को सदा पकड़ने के लिये तय्यार रहते हैं परन्तु सत्य बोलने वाले को वह कुछ भी नहीं कहते (अथर्व० ४, १६, ६.) उसका क्रोध पापाचारियों पर बड़ा भयंकर है (ऋ० १, २५, २) (ऋ० ४, १, ४—५) इसके अतिरिक्त वह फिर भी पापियों पर दया करता है। और इसी लिये पाप के भार के नीचे दबा हुआ मनुष्य वरुण के पास जाने का साहस करता है और प्रार्थना करता है।", +

(१) "हे वरुण अब इस माटी के बने शरीर या घर मे फिर न भेज दया कर हे सर्वशक्तिमान् दया कर।" *

× The Teaching of the Vedas P. 34, 37, 38.
+ पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ ३६ ।
* ऋ० ८, मं० ८६ सूक्त सम्पूर्ण अनुवाद महोक्षमूलर ।
वेद मन्त्र इस प्रकार हैं:—
(१) मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्न हंगमं । मृलय सुक्षत्र मृलय ॥

[२] कहीं मैं इसी प्रकार मेघ खण्ड की न्याईं वायु से धक्के खाता न फिरूं हे सर्वशक्तिमान् दया कर दया कर।

[३] शक्ति न होने के कारण हे शक्तिशाली तेजोमय परमात्मा यदि मैंने पाप किया है दया कर सर्व शक्तिमान दया कर।

[४] यद्यपि मनुष्य पानी में खड़ा है तो भी उपासक को तृष्णा सताती है। हे सर्वशक्तिमान् दया कर दया कर।

[५] हे वरुण मनुष्य जब कभी दिव्य शक्ति के प्रति कोई विरोध करते हैं या कभी मूर्खता से किसी व्रत का भंग करते हैं हे परमात्मन् हमें उस अपराध का दण्ड न दो।*

उपरोक्त महाशय ही वैदिक देवता वरुण का विस्तार करते हुये महाशय महोक्षमूलर की सम्मति लिखते हैं कि—*

महोक्षमूलर फिर कहता है—

"कि हम जितना पीछे के जमाने की तरफ जाते हैं और जितना भी अधिक किसी धर्म के अत्यन्त प्राचीन रूप की परीक्षा करते हैं उतना ही अधिक मुझे विश्वास है कि हम देवता का स्वरूप जानेंगे।"

'यह बात भारतीय धर्मों के लिये सर्वथा सत्य है क्योंकि यही सब से पुराना है।'

इसी प्रकार महाशय फिलिप् इन्द्र देवता के बारे में लिखते हैं कि:—*

"पुराने ऋषियों ने इन्द्र की महिमा को पूर्ण तथा योग्य वाक्यों में पाने के लिये वेदों की भाषा का बहुत भाग इन्द्र पर लगाया है। वही सब

---

(२) यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः। मृला सुक्षत्र मृलय॥
(३) क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृला सुक्षत्र मृलय॥
(४) अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्। मृला सुक्षत्र मृलय॥
(५) यत्किञ्चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देवरीरिषः॥

* The Teaching of The Vedas (P. 40)
§ " " (P. 45, 46)

से महान् देव सब चीजों का बनाने वाला, [विश्वकर्मा] सब पहले उत्पन्न देवता तथा जन्तुओं में सब से अधिक बड़ा हुआ, साहस पूर्ण स्वतः शक्तिमान, पृथिवी, आकाश, सूर्य, चन्द्र और तारों का पैदा करने वाला, चर और अचर सब पदार्थों का स्वामी, देवों का नेता, पवित्र सभाओं का पति, प्रसन्नता देनें वाले सोमरस का स्वामी, अश्व, गाय और गृहों का भी पति है। वही सब से पहिला और ऐश्वर्य सम्पन्न देवता है। वही शक्ति शाली बुद्धिमान् सच्चा पवित्र अनाद्यनन्त गतिमान्, हर्ष पूर्ण, निर्भय यशोधन, सर्व विद्यानिधान, सर्व-जन-पति और सौ यज्ञ करने वाला शत-क्रतु है। वह भयावह देव, जिस की आज्ञा को कोई भी देवता उल्लंघन नहीं कर सकता है। वही गौ है, जो जीवन का रस पैदा करती है, वही अन्तरिक्ष का वृषभ है, वही है जो कि जीवन के श्वास की समाप्ति कर सकता है। जो कि रोग तथा अन्य सब दुःखदायी शत्रुओं को दूर भगा देता है। वही सर्वज्ञ तथा सर्वदा नित्य है। वही सर्व श्रुत सर्व साक्षी है [**विश्वं शृणोति पश्यति**]। वही न्यायकारी और दयालु भी है। वही दण्ड देता तथा क्षमा करता है वही स्तुतियों को सुनता है उसी में बिश्वास कर के वीर युद्ध में विजय लक्ष्मी पाता है। महिमा में सब वीरों से अधिक है उसके परिमाण के लिये पृथिवी और आकाश दोनों भी पर्याप्त नहीं हैं। वह पृथ्वी को अपना अंगरखा बनाता है, आकाश को वह परमात्मा हस्त-कवच की न्याईं धारण करता है।"

वही ग्रन्थकार महाशय फिलिप् अग्नि देवता के विषय में लिखते हैं:—×

"अग्नि 'देवता में देवताओं है' उसकी महत्ता आकाश से भी बढ़ जाती है। उसकी शक्ति से परे कोई नहीं, वह सब वस्तुओं को देखता है और मनुष्यों की सब गुह्य बातों को जानता है। वही सब का पति बुद्धिमान राजा, ऋषि, पिता, भ्राता, पुत्र और जनों का मित्र है। सब के साथ सदा रहने वाला, सब के घरों में रहने वाला, अन्धकार के असुरों से रात को भी सब की रक्षा करने वाला है।"

इस प्रकार प्रायः सभी देवताओं के वर्णनों को महाशय फिलिप ने अपनी पुस्तक में ऋषियों की कवित्व दृष्टि से उद्धृत किया है।

+ उपरोक्त पुस्तक, पृ० ५८।

इन से यह प्रतीत होता है कि कविता दृष्टि से सभी देवता पृथक् अपना नाम तथा वर्णन रखते हुये भी एक परमात्मा के रूप से पृथग् न थे।

इसके अनन्तर वही लेखक अब ऋषियों की दार्शनिक दृष्टि से परमात्मा का निरूपण करता है। और कहता है कि— +

"सभी मानुषीय मस्तिष्कों की ये प्रवृत्ति है कि वे विशेष से सामान्य की तरफ जाते हैं। इसी प्रवृत्ति से प्राचीन ऋषियों ने भी अपने देवताओं को तीन श्रेणियों में तथा तीन स्थानों में विभक्त किया और कतिपय स्थानों पर दो दो देवताओं का नाम भी इकट्ठा रखा गया। जैसे द्यावा पृथिवी मित्रा वरुण आदि। सब देवता भी एक नाम से 'विश्वेदेवाः' पुकारे जाने लगे और एक ही पद आगे रखने से वे इस परिणाम पर पहुंचे कि सब नाना देवता एक ही योनि से पैदा हुवे हैं और बहुत से नाना गुण इनके समान हैं। उन्हें प्रतीत हुआ कि इनका तत्त्व या आश्रय एक ही है नाना नहीं। यद्यपि उसके नाम नाना हैं। S 'वे ऋषि उसे इन्द्र (सूर्य) मित्र वरुण अग्नि के नाम से पुकारते हैं। वह शोभन पक्षों वाला एक गरुत्मान है, जो एक है, बुद्धिमान उसे बहुत से प्रकारों से कहते हैं। वे उसे अग्निमय मातरिश्वा कहते हैं।" और भी अनेक विद्वान उस शोभन पक्षों वाले पक्षी को, यद्यपि वह एक है, अपने शब्दों से बहुत प्रकार का बताते हैं।"

यही विचार ग्रीस [यूनान] के प्राचीन विद्वानों में पाया जाता है। क्लीयन्थस एक आयत में जीयस के प्रति कहता है "अमर देवताओं में सब से अधिक यशस्वीनाना नामों को धारण करने वाला सर्वशक्तिमान है जीयस तुझे सदा हम स्तुति करते हैं।"

मैक्सीस मसटेरियस कहता है "मनुष्य देवताओं में भिन्नता करते हैं। वे यह नहीं जानते कि सब देवताओं का एक ही नियम [व्रत] है एक ही जीवन है वही तरीके हैं न नाना है न विरोधी हैं। सभी शासक हैं सभी एक ही आयु के हैं। सभी हमारे हित चिन्तक हैं। सभी का वही मान तथा पद है। सब अमर हैं सबका एक स्वभाव है परनाम भिन्न २ हैं।

× उपरोक्त ग्रन्थ, पृ० ६६। ७०।

"यही विचार रोमका विचारक सैनि का भी कहता है सब उसी एक देवता के नाम उसकी भिन्न २ शक्तियों के वाचक हैं।" (Intel. Syst. Un. Vii P. 236.)"

इस प्रकार एक ऋषि तो स्पष्ट कह रहा है कि:—

ऋषियों ने परमात्मा को नहीं जाना उनकी सब स्तुति व्यर्थ वक वक है। [ऋ०, १०, ८२, ७] वह जो हमारा पिता और उत्पादक है और वह विधाता जो सब धर्मों और भुवनों को जानने हारा है उस के प्रति ही सब लोक अपनी गति करते हैं और वही सब प्रश्नों का उत्तर है [ऋ० १०, ८२, ३]।

वह जो पृथिवी और आकाश की सीमा से देवता और जीवों से भी परे जो कि सब से प्रथम गर्भ आप ने धरा था जिस में सब देवता एकत्रित थे। तुम उसको नही जानते हो, जिसने इन सब को पैदा किया। कुछ और तुम्हारे अन्दर है सूक्तों के कहने वाले भी एक प्रकार की धुन्ध में जारहे हैं और व्यर्थ जल्प से सन्तुष्ट नहीं हैं।'

इन सब प्रमाणों अनुशीलनों के पश्चात् उपरोक्त महाशय देवता सिद्धान्त पर सम्मति देते हैं कि:—+

एक देवता वाद के सब वेदों में सब से अधिक समीप पहुंच गया। सब से उच्च पद आर्य मस्तिष्कों ने पालिया था।

यज्ञों में तथा अन्य कर्म काण्डों में परमात्मा के स्वरूप को बताने वाले मंत्रों का स्वल्प तथा तुच्छ वस्तुओं पर विनियोग देखकर फिलिप् महाशय आश्चर्य से कह उठे कि वेद मन्त्रों को उपयोग लेने वाले वैदिक आर्य्य ऐसी भाषा का उपयोग करते थे जिसका अभिप्रायः वे स्वतः नहीं समझते थे। यह प्रत्यक्ष है। यदि वे पूर्ण २ तात्पर्य समझते होते तो अनन्त गुणों को सान्त तुच्छ वस्तु अग्नि-आदि पर जोड़ते हुवे अवश्य अन्योन्य के घात को अनुभव करते। भाषा में से प्राचीन वैदिक ऋषियों के गृह में शुद्ध पूजा का नाद गूंज रहा है। यह सब पूजा एक मात्र सच्चे परमात्मा पर लग सकती है। अन्य किसी वस्तु के साथ लगाने से सर्वथा यह निरर्थक है। यह तो एक देवता विषयक भाषा शैली है और एक देवतोपासना ही प्राचीन धर्म था।

+ उपरोक्तपुस्तक पृ० ७३॥

पण्डित एच. एच. विल्सन कहता है +

"के वेदों का मूलभूत सिद्धान्त एक देवता–वाद ही है। और पण्डित महोक्षमूलर अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं "वेदों में बहु–देवता–वाद से पहले एक देवता–वाद था। यद्यपि महान परमात्मा का विचार अन्त तक भी लुप्त नहीं हुवा परन्तु फिर भी अशुद्धि या मूल से छिप गया है। एक ही परमात्मा के लिये लिखे नाम बहुत से देवताओं के नामों में बदल गये। उन नामों के असली अभिप्राय तथा अर्थ जन साधारण के मति से लुप्त हो गये हैं।".

म० अडोल्फ पिक्टेट अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "Les Origines Indo Eeuroeecnnes." के दूसरे भाग में अपनी सम्मति प्रकाशित करता है कि अविभक्त आर्यों का धर्म थोड़ा बहुत निश्चय युक्त एक देवता वाद ही था।

दोनों महाशय पिक्टेट और मूलर ये मानते हैं कि वेदों में भी प्राचीन एक देवता वाद के चिन्ह उपलब्ध होते हैं। (× क)

वैदिक एकेश्वरवाद को प्रतिपादन करते हुवे H. H. विल्सन लिखते हैं—*

इस में कोई सन्देह नहीं कि वेदों का मूल सिद्धान्त एकेश्वर प्रतिपादन है। स्वतः श्रुति कहती है कि वास्तव में सत्य यह है कि केवल एक देव है, वही महान् आत्मा है उसी से सम्पूर्ण जगत पैदा होता है जो कि सकल संसार का पति है और जिसका संसार कार्य है, परमात्मा है, स्तुतियें भी वार वार उसी देवता की पूजा के लिये आती है।

"परमात्मा की पूजा करो परमात्मा के बल को जानो अन्य सर्व मार्ग त्याग-दो" और वेदान्त दर्शन कहता है "यह वेद में लिखा है कि महान् आत्मा परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई पूज्य नहीं बुद्धिमान विद्वानों ने उस को छोड़ और किसी की पूजा नहीं की।"

+ उपरोक्त पुस्तक पृ० १०७

(× क) " " १०७-८

* Works by H. H. Wilson, Vol II P. 51-52.

प्रो० मेक्समूलर अपनी "प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं। +

'यह एक रिवाज पड़ गया है कि जिस मन्त्र में देवता गुण स्वभाव तथा अमरपना दिखाया गया हो उनको सदा नवीन निर्मित कह दिया जाता है। इस से सारा दशवां मण्डल ऋग्वेद का अति आधुनिक माना जा रहा है।'

केवल इस लिये कि इस में बहुत से ऐसे मन्त्र तथा सूक्त हैं जिन की भाषा तथा ज्ञान उपनिदों की दार्शनिकविचारों से समता रखते हैं। परन्तु यह सर्वथा अशुद्ध है।

भारतवर्ष की आर्य्य सदश विचित्र जाति के प्राचीन साहित्य का प्राचीन तथा स्वतः उत्पन्न तथा पूर्व दशा योगसाहित्य है। इस विषय में किसी प्रकार की भी कल्पना करने में कुछ भी आलम्बन नहीं। वैदिक युग के साहित्य की समता पर कोई अन्य साहीत्य नहीं ठहरता। क्योंकि हमें वैदिक इस प्रकार के भाव मिल जाते हैं जो कि अन्य जातियों—यहूदि यूनानी रोमनों—के साहित्य में देख कर उनको नवीन कल्पना कह देते हैं। परन्तु हमारा कोइ अधिकार नहीं कि उन भावों को भारतीय मस्तिष्कों में भी इतना ही नवीन मान लिया जाय। माननीय मस्तिष्क रूपी उस गुप्त मण्डल के एक गूढ़ द्वार को वेद खोल देते हैं जिसमें से कि अन्य आर्य जातिएं इतिहास के प्रकाश में दृश्य होने से बहुत पहले गुजर चुकीं। वेदों का काल कुछ भी है। वास्तव में यह सत्ता क्षेत्र में सब से पुराना है। चाहे यह वेद संग्रह केवल ९० वर्ष पूर्व का ही क्यों न हो परन्तु यदि संसार के ऐसे भाग में जिसमें कि सर्व साधारण सभ्यता का स्पर्श मात्र भी न हुवा हो तब भी हम इसको होमर के जमाने से भी पुराना कहेंगे। क्योंकि इस समय वह माननीय विचार तथा अनुभव के प्राथमिक दृश्य को दिखाने वाला है।"

होमर के ग्रन्थों में जो नाम रूढ़ी तथा गाथिक हो गए हैं वे वेदों में व्यवहारिक रूप से प्रयुक हैं वे अब भी गुणवाचक शब्द हैं। नाम वाचक नहीं हैं। वे अभी व्यक्त हैं अपभ्रष्ट तथा अव्यक्त नहीं हुवे। वेद के उस प्राचीन जांगलिक जमाने की

+ "History of Ancient Sanskrit Literature by Professor Max Multer M. A. P. 287.

तुलना हम अफ्रीका के निग्रो या अमेरिका रेड इंडिनों से नहीं कर सकते। सात नदियों के द्वाबों के वासी आर्य लोग चाहे होमर के जमाने और यूनानियों और मूसा के जमाने के यहूदियों से कितनी भी नीची तथा घटिया सभ्यता के हों फिर भी उन जातियों से बहुत ही उच्च हैं और अज्ञान तमोवृत जांगलिक अवस्था की सीमा को पार कर चुके थे जब कि ये द्यौः और अन्य दिव्य प्राकृतिक देवताओं की उपासना करते थे।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि एक देवता के विचार को हम एक अत्यन्त आधुनिक सभ्यता की सीढ़ी समझा करते हैं जिस पर कि यूनानी मस्तिष्क बहु देवता के विश्वास की गहराइयों से चढ़ कर चिरकाल में पहुंचा था।

अरस्तु और अफलातून के शिष्यों ने सेंटपाल की अथेन्स में शिक्षायें सुनकर एक अज्ञात परमात्मा का निर्णय किया था परन्तु यही विचार क्रम भारत में था ऐसा हम कैसे कह सकते हैं। बहु देवता वाद की रचना जाल रूपी मेघों में एक देवता के भाव को चमकाने वाले सूक्तों को हम किन आधारों पर कह सकते हैं। सब देवों के देव तथा सर्वोच्च परमात्मा में विश्वास बहु देवता विश्वास की अपेक्षा चाहे परिणाम मात्र में आधुनिक प्रतीत होता है। परन्तु एक कवि उन्हीं भावों से जो कि उसे पिता की ओर खेंचते हैं प्रेरित हुवा हुवा परमात्मा की ओर खिंचा चला जाता है। वह अपनी साधारण प्रार्थना में एक बार ही --चाहे बिना विचार के भी हो-- कहता है **'हे पिता'** तो जिस दुर्गम निर्जन उजाड़ का दर्शन-विज्ञान-एक एक डग पार करता है उस की उस कवि ने सीमा भी पाली।

सेमेटिक जातियें जब कि समय २ पर बहु देवतावाद की तरफ खिसकती गयी भारत के रहने वाले आर्य एक देवतावाद की ओर बढ़े चले आये दोनों तरफ कोई क्रमशः परिवर्तन नहीं हुवा परन्तु वैयक्तिक अनुभवों तथा अलौकिक प्रभावों का परिणाम है। इसी लिए मेरी सम्मति में केवल एकेश्वरवाद के भावों का अथवा किसी दार्शनिक उच्च विचारों का आजाना मात्र ही आधुनिकता कोई प्रमाण नहीं हो सकता है।

परन्तु वेद के बहु देवतावाद के भी पहले एक देवता वाद था। बहु देवताओं के नामों की गणना गणना में ही एक अनन्त देवता का स्मरण भी इस तरह से फूट पड़ता है जैसे वह मेघ खण्डों में से घिरे आकाश का नीला भाग दीखा करता है।

दसवें मण्डल में एक सूक्त है जो कि ऐसे भावों से भरा है जिसको सुनकर बहुत कुछ दार्शनिक व आधुनिक काल का प्रक्षेप प्रतीत होगा। उसी में सब वस्तुओं की उत्पत्ति का वर्णन है और सब जगत् सत्ता की पूर्व दशा का वर्णन है।

ऋषि कहता है कि "उस समय सत् कुछ न था" कवि भी ग्रीस के प्राचीन इलियाटिक विचारक तथा हेगल के साहस के सदृश साहस से कहता है कि "असत् भी उस समय नहीं था" फिर—आकाश तथा खेचर चक्र की सत्ता का निषेध करता हुवा फिर भी अपरिमित असत को पूरा भाव न पाकर वह मुक्त कण्ठ से कहता है "वह क्या वस्तु है जिसने कि सत् को ढाप रक्खा है।" आगे चलकर और विचार के प्रवाह में पड़कर ऐसे दो प्रश्न उठाता है जिनका यूनानी और संस्कृत भाषा ही अनुसरण करती है वह कहता है:—"कौन किस का आश्रय था" इस अध्यात्म उच्च उत्फाल के अनन्तर भी भाव गर्भित विचार की वास्तविकताओं के प्रति झुकता है और संदेह के दूर करने की चेष्टा से कहता है—"क्या यह गम्भीर समुद्र का जल है। अर्णव है जिसने इन सब को ग्रसा हुवा था।" फिर उसका चित्त प्रकृति से हट कर मनुष्य संसार तथा मानव जीवन की ओर झुकता है वह कहता है कि—— "न मृत्यु है न अमृत है" इस के विचार में मृत्यु ही अमृत का प्रमाण हो गयी उस ने एक निषेध और कर दिया और कार्य सम्पूर्ण कर लिया कि "न अवकाश है न जीवन है, अन्त में न काल है, न रात और दिन में भेद है न सूर्य है, जिससे रात्रि की अपेक्षा से दिन को पहचाना जाय।" ये सब भाव अत्यन्त सरल शब्दों में लिपटे हुवे हैं। "**नराऽ्यन्ह आसीत्प्रकेतः**।" फिर वही अपना प्राग् वक्तव्य कहता है और "एक" अन्य किसी शब्द या विशेषण का उपयोग नहीं करता "एक स्वयं प्राणरहित को प्राण देता है। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु विद्यमान नहीं।" यह भाव कि 'अप्राणों को प्राण देता है।' यही सब से सुन्दर प्रयत्न है कि जिससे निष्पक्षपात हो कर भावों को स्पष्ट रूप से प्रकाशित किया गया है। ऋषि कवि कहता है एक ही प्राण लेता है और चेतन है यही केवल सत्ता से अविभाज्य को भोग करता है और उसका जीवन फिर भी किसी पर आश्रित नहीं है जैसा कि हमारे प्राणों का आधार वायु है। इस ने प्राण रहितों को प्राण दिया है।' ऐसे भावों पर भाषा लज्जित हो जाती है। परन्तु उस की लज्जा ही विजय की लाज है।

इस प्रकार मैक्समूलर महोदय अपने एक देवता के प्रतिपादन को सौन्दर्य भरे प्रबन्ध-भाग से पुष्ट करते हैं।

इसका मूल सूक्त निम्नलिखित है—

**"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥
नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरं किञ्चनास॥ २॥
तम आसीदित्यादि।" ऋ० १० मं०, सू० १२९, १—३।**

प्राचीन देवता के सिद्धान्त को लिखते हुवे सर विलियम जोन्स लिखते हैं—
"जब हिन्दू लोग परमात्मा को जगत् को बनाता हुआ कल्पना करते हैं तब उस देव को ब्रह्मा कहते हैं। यहां यह पुल्लिंग है। इसी प्रकार जब सब का संहारक तथा परिवर्तन करने वाला देखते हैं तब उसे सहस्त्रों नामों से पुकारते हैं जिन में मुख्य नाम शिव, ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, हरि हर, शम्भु, महादेव, महेश्वरादि हैं।"

लूइस जैकोलियट अपनी प्रसिद्ध पुस्तक बाइबल इन इण्डिया के प्रथम (संस्करण १८६८ ई०) में लिखते हैं कि—

"शुद्ध हिन्दू धर्म केवल एक मात्र ही देव को स्वीकार करता तथा प्रतिपादन करता है। इसी प्रकार वेद भी शिक्षा देते हैं।" *

जो स्वतः विद्यमान है और जो सब में व्यापक है क्योंकि सब उस में उस की (हिन्दू लोग) पूजा करते हैं। ÷

महाशय एब्बी डु वाईस कहते हैं—

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनके पुरुषा ब्राह्मण उसी परम-ब्रह्म की उपासना करते थे परन्तु समय के व्यतीत होने पर वे मूर्तिपूजा और भ्रमजाल में फंस गये और उनके दिये ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर से नयन मून्द कर आत्मा की आवाज को मार लिया।

*** सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति। काठकोपनिषद्।**

**÷ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
योलोकत्रयमा विश्यबिभर्त्यव्ययमीश्वरः॥ (गीता अ० १५, १७)**

सरमोनियर विलियमस् भी अपने ग्रन्थ (Hinduism) हिन्दू इज्म में स्वीकार करते हैं कि कतिपय सूक्त एक मात्र स्वयम् परमात्मा का साधारण सरल रूप भी वर्णित करते हैं। 'यद्यपि वह इसबात को दिखलाने में असमर्थ हैं कि विकास-सिद्धान्त की दृष्टि में जगत् में सब से पुराने गीत भी परमात्मा के रूप को उस से नवीनों की अपेक्षा अच्छी प्रकार से सिखलाता है।'

महाशय विलियम वार्ड अपनी 'हिन्दुओं के इतिहास साहित्य तथा मिथ्या कथा प्रवादों पर एक दृष्टि (A Veiw of the History, Litarature and Miythology of the Hindus) में सामवेद के कतिपय मन्त्रों का इस प्रकार अनुवाद करते हैं।

"असंख्य शिरों असंख्य आंखों और असंख्य पादों वाले ब्रह्म ने पृथ्वी और द्यौ को पूर्ण व्याप्त किया हुआ है। वही भूत है, वही भविष्यत् है, वही सब से पृथक् है, वही अपनी पृथक् अवस्था तीन रूपों में विद्यमान है और चौथा पाद संसार में है जिस प्रकार कि जीवनामृत वारि हो उसी विराट् पुरुष की उत्पत्ति है वही सब संसार की गति का निकास है।" ×

"ब्रह्म ही जीवन का जीवन है मति का मति चक्षु का चक्षु वही प्रकाशों का केन्द्र है वह बिना आंखों के भूत भव्य दोनों को देखता है बिना हाथों और विद्युत्त के वेग से अपने कार्य करता है बिना किसी उचित साधनों के वह प्रत्येक वस्तु सुन सकता तथा चख सकता है। वह एक बड़ा भारी कृषक होने से सम्पूर्ण पृथ्वी पर खेती बीजता है। पर्जन्य रूप में होकर बरसता है धान्यरूप होकर वह प्रजा को पालता है। उसकी शक्ति शीतल करने वाले जल में, ज्वलित अग्नि तथा तप्त सूर्य में, चान्द की शीतल किरणों में, माखन देने वाले दूध में प्रकाशित होती है। जब वह शरीर में बहता है वह मूल भूत अग्नि को स्थिर रखता है जब वह निकल जाता है तब शरीर ठण्डा हो जाता है। जिन्हों ने जीना होता है

× सहस्रशीर्षा: पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमिं सर्वतःस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलिम्॥ १॥
त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततोविश्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेअभि॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम्।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (यजु. अ. ३१)

उन के जीवनों की रक्षा करता है। जिनको गुप्त रहने की आवश्यकता है उनको वह छिपाए रखता है। वह सब संसार को देखता है वही वस्तुओं के नाप तथा रूप का बनाने वाला है और इस प्रकार उनका ज्ञान कराता है। वह जो उस में रक्षा की आशा करता है उसकी सब देवता पूजा करते हैं। इस प्रकार के भक्त के पापों को वह परमात्मा आग जिस प्रकार कपास के सूत्र को जला देती है उसी प्रकार नाश करदेता है। पवित्रात्मा के वह सदा निकट है। दुष्टों से वह सदा दूर है। वही सत्य का निकास है। मनुष्य को पूजा करने में सहायता करने के लिये उस ने स्वतः नामरूप और स्थान का निर्धारण किया है। वह जो उसी में आश्रय लेता है, वह पवित्रात्मा है। वह जो उस से पराङ्मुख है पापी है।"

इस प्रकार हम ने पाठकों को बड़ी स्पष्टता से पाश्चात्य विद्वान लेखकों की सम्मतियों के उद्धरणों से भी निश्चय कराने का प्रयत्न किया है कि वैदिक काल में देवता विषयक सिद्धान्त बहु-देवतावाद न हो कर एक देवतावाद ही है। ऐतिहासिक अन्वेषकों ने संसार भर की ज्ञात सभ्यताओं के ऐतिहासिक धर्मान्दोलनों से भी यही सिद्ध किया है कि प्राचीन समय में जहां कहीं भी पुराण अर्थात् मिथ्या कथावादों का प्रसार हुआ एक देवता-वाद का प्राधान्य रहा है। तथा उच्च श्रेणी के विद्वानों की प्रवृत्ति बहु-देवतावाद को सर्वथा त्याग कर एक देवतावाद की ही तरफ रही है।

नैल्सन'स एन्साइक्लोपीडिया (१८११) में हम पढ़ते हैं कि—

"सेमाइट लोगों में साधारणतः बेबिलोनिया के वासी बहुत ही धार्मिक थे और आप अपने पुरोहितों के शासन में ही थे। पुरोहितों द्वारा ही वे धर्म प्रचारार्थ द्रव्य तथा भेंटआदि दिया करते थे। उनका सब से प्राचीन देवता ईरा देव था जो कि समुद्रों का भी पति तथा अप्राप्य ज्ञान का धारण करने वाला जो सब वस्तुओं का पैदा करने वाला माना जाता था।"

इन्साइक्लो पीडियाब्रिटेनिका [११ वां संस्करण] में भी हम पढ़ते हैं कि प्राचीन बेबिलन के वासी बड़े पक्के एक देवता के उपासक थे जो कि (Iluth) इलथ नामी देवता की उपासना करते थे। (Vide Article on Reglion)

ततोविराड जायत विराजोऽधिपूरुषः
सजातोऽत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।

"महाशय रालिन्सन कहते हैं कि असीरिया के वासी **अनु बेलऔर हिया** इस त्रिमूर्त्ति के भक्त थे. । यह तीनों मूर्त्तियें पृथी जल और द्यौ के प्रतिनिधि थे । परन्तु साथ हीं वह यह भी कहता है कि यह प्राचीन विश्वास कुछ काल में अन्य कतिपय विश्वासो से जुड़ गया । हिया यद्यपि जन्म का प्रतिनिधि ही रहा । अनु और बेल अपने गुणादि छोड़ कर केवल बड़े २ देवता ही रह गए ।"

महाशय डेन अपनी 'Bibel myths and their Paralulh inother Religions.' "बाईबल तथा प्रवादों की अन्य धर्मों के साथ तुलना" नामक पुस्तक में अन्य ग्रन्थकारों की सम्मतियों को तुलनार्थ उद्धृत करते हैं ।

महाशय रेविल कहते हैं कि "त्रिमूर्त्ति का सिद्धान्त बड़ी ही स्पष्टता से अपना विरोध दिखला देता है । देवता तीन देवी रूपों में फट जाता है । और फिर भी तीनों रूप एक ही परमात्मा को बनाते हैं । जिनमें से प्रथम स्वयंभू है । और शेष दोनों ने अपनी सत्ता प्रथम से ही ली है । और फिर भी तीनों देव परस्पर समान पद हैं । प्रत्येक की अपनी २ विशेषता है और अपने २ गुण हैं और फिर भी वह तीनों स्वतः पूर्ण हैं । हमें कहना पड़ेगा, कि दो विरोधी वस्तुओं को देवता बनाया गया है ।"

इस उद्धरण पर महाशय डोन कहते हैं कि:—

"यह एक में तीन और तीन में एक का विचित्र सिद्धान्त ईसाई मत से दूसरे मतों में उत्पन्न हुवा है इसलिए इस सिद्धान्त को भी अन्य सिद्धान्तों की न्याई ही होना चाहिए । पूर्वीय निकासों से निकली हुई सभी कल्पनाओं में तीन के अंक को पवित्र माना है । देवता किसी प्रकार की त्रिमूर्ति है या आगामी विकास तीन में हो जाता है ।

यदि हम भारत पर दृष्टि डालें तो भारतीय ईश्वर वाद में बड़ी ही विचित्र बात यह मिलती है कि सब वस्तुओं का शासक त्रिदेव मूर्ति है । यह त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों देवों की बनी हुई है यह एक अच्छेद्य एक देवता है । यद्यपि ये हैं तीन रूप "जिस समय वह सर्व व्यापी अनन्त ब्रह्म केवल मात्र सत् स्वरूप अमूर्त्त असीम तीनों प्रकार गुणों से रहित निर्गुण—अपनी ही

क्रीड़ा के लिए संसार प्रपंच को पैदा करने लगता है तो वह अपना क्रिया. शील रूप धर लेता है और नपुंसकलिंग से पुल्लिंग हो कर ब्रह्मा कहलाता है। फिर अगले ही विकास में उसने अपने को दूसरे गुण सत्वउत्तमता को धारण करने की इच्छा की और विष्णु सब का रक्षक बना फिर तीसरे गुण तमः से तीसरा ईशान का रूप धारण किया यह सब का संहार करता है। यह त्रिमूर्ति का विकास जिसका वर्णन ब्राह्मण रूप प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है वेदों में भी खूब अच्छी तरह से अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि नाना प्रकारों से दिखाया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं कि यह त्रिमूर्त्ति वास्तव में पृथक् २ नहीं की जा सकती और नाही क्रिया में बांटी जासकती है। अत्यन्त रहस्य की बात है जिस की व्याख्या इस प्रकार की जाती है।

ब्रह्मा उत्पादक सत्ता, अज्ञेय, अपरिणत देवता, की प्रारम्भिक अवस्था का प्रतिनिधि है।

विष्णु रक्षक सत्ता—विकसित—अवस्था का प्रतिनिधि है।

शिव सर्व संहारक सत्ता, या संहार करके नये रूप बनाने की सत्ता का प्रतिनिधि है।

तीसरी देवता मूर्त्ति को आप संहारक कहें या पुनरुत्पादक कहें।

उपरोक्त तीनों देवता ही सब से प्रथम और सब से उच्च अनन्त सत्ता के रूप हैं और इनको अ उ म् इस रहस्य युक्त ओम् पद से प्रदर्शित किया जाता है। यही देवताओं की त्रिमूर्त्ति रूप हिन्दुओं की विशेषता है। प्रायः यही तीनों देव उत्पादक ब्रह्मा रक्षक विष्णु तथा संहारक महेश इन नामों से पुकारे जाते हैं। परन्तु इन भावों के परस्पर सम्मिश्र होने से उसका पूर्ण भाव सहसा ले लेना कठिन है। इन तीनों देवताओं का परस्पर सम्बन्ध भी स्पष्ट नहीं क्योंकि एक के गुण दूसरे से भी संक्रमण कर जाते हैं। जैसा कि रघुवंश में कालिदास कहते हैं।

"मान्यः स मे स्थावर जंगमानां सर्गस्थिति प्रत्यवहार हेतुः॥"

यह शिव मेरा मान्य है जो कि स्थावर जंगम चराचर की उत्पत्ति रक्षा तथा संहार करता है। एक उपासक इस निश्चय से वह एक देवता की उपासना करता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के प्रति इस प्रकार कहता है।

"हे त्रिदेव अब मुझे केवल एक ही देव ज्ञात होता है। सत्य २ बताओ कि तुम में से कौनसा सच्च देवता है मैं उसी के प्रति अपनी प्रार्थना उपासना करूं।"

इस पर तीनों देवताएं प्रगट हुवीं और बोलीं—

"हे उपासक सच्च जानो कि हमारे में परस्पर कोई भेद नहीं केवल ऊपर के नाम रूप भेद से भिन्न २ प्रतीत होती हैं। तीन रूपों के कारण तीन देवता प्रतीत होती हैं वास्तव में देवता एक है।

चीन और जापान के निवासी जिनकी अधिक संख्या बुद्धानुयायी है त्रिदेव मूर्तिमय परमेश्वरकी उपासना करते हैं।

उस को वे फो Fo के नाम से पुकारते हैं। त्रिमूर्ति के विषय में वे कहते हैं "त्रिमूर्तिमय शुद्धरमणीय मान्य फो Fo" यही त्रिमूर्ति उन के मन्दिरों में भी उसी प्रकार की मूर्त्ति से सूचित किया जाता है, जैसा कि भारत के पैगोडाओं में ईश्वर के बारे में वे कहते हैं, कि "**फो** एक है पर उस के तीन रूप हैं।

नेवरेटा (Neveretta) अपने चीन के वर्णन में लिखते हैं:—

फो के अनुयायी सनो नामक दूसरी मूर्त्ति की भी पूजा करते हैं। य समोपाओ तीन देवों को बनी हैं। ये जिसे पवित्र त्रिदेवता समझा जाता है वही है जो कि मेड्रिड के त्रिदेवोपासक पुजारियों के सब से ऊंचे मंदिर में है। चीनी लोग अवश्य मेड्रिड् की मूर्त्ति को देख कर कह उठेंगे कि यहां भी समोपाओ की मूर्त्ति की पूजा होती है।

महाशय फेबर (Faber) अपनी "काफिरी मूर्त्ति पूजा की उत्पत्ति" "Origin of Heathen Idolatary नाम की पुस्तक में कहते हैं।

"**फो** नाम से बुद्ध की उपासना करने वाले चीन वासी लोगों में भी एक देवता तीन व्यक्तियों में गुंथा हुवा पाया जाता है।" चीन वासी ओम् अ उम् इस रहस्य युक्त पद की भी उपासना करता है।

लोउ. त्स्जे या लोग के इम त्स्जे नामक चीनी प्रसिद्ध दार्शनिक के अनुयायियों ने ६०४ बी० सी में एक वीर पुरुष को देवता कर के पूजा। लेओ कुम की दार्शनिक ईश्वरीय मीमांसा में यह एक बड़ी अद्भुत बात पाई जाती है कि टाउ (Jaoh) अनादि ज्ञान ने एक पैदा किया। एक ने दो पैदा किया। दो ने तीन

पैदा किया । और तीन ने समग्र संसार पैदा किया । लाउ कूणईसी वाक्य को बार बार दुहराया करता था ।

चीन वासियों का धर्म ग्रन्थ कहता है कि ।

"सब का विकास और मूल एक है इस स्वयंभू ने (Selfexistent) अवश्य दूसरे को पैदा किया पहले और दूसरे ने परस्पर मिलकर तीसरे को पैदा किया । और इन तीनों ने मिलकर सारे संसार को । "

चीन के प्राचीन महाराजों में से प्रत्येक ने तीन साल "उस देव के नाम से बलि किये कि जो स्वतः एक और तीन है ।'

प्राचीन मिश्रवासी परमात्मा को त्रिमूर्त्ति रूप में उपासना करते थे । यहाँ उनके अत्यन्त प्राचीन मन्दिरों में मूर्त्ति २ बनाकर रखी जाती थी । परमात्मा के भिन्न २ गुणों के दिखाने के लिये पक्ष मण्डल तथा सर्प तीन वस्तुओं की कल्पना की गई थी

ईजिप्ट में मैम्फिस के पुरोहित नवीन आगत शिष्यों को यह रहस्य इस त्रिमूर्त्ति का बताते थे कि पहली व्यक्ति ने दूसरी को पैदा किया जिसने कि तीसरी को पैदा किया वह यही त्रिक है जो कि प्राकृतिक संसार भर में चमकता है ।

एक थूलिस (Thulis) नामक बड़े महाराज ने जो कि सारे मिश्र का चक्रवर्ती राजा था और जो प्रायः सेरपिस (Serapis) की देववाणी की सलाह लिया करता था एक वार इस प्रकार का प्रश्न देववाणी से किया ।

क्या मुझसे पहले मेरी अपेक्षा भी कोई बड़ा था ।

और आगे भी मुझ से बड़ा कोई होगा ।

इस पर देववाणी ने कहा कि

पहले ईश्वर था फिर वर्ड (Word) हुवा और उस के साथ पवित्र आत्मा ये तीनो एक स्वभाव के थे और तीनो मिलकर एक थे जिस की अनन्त शक्ति है । जाओ जल्दी, ऐमर्त्य तेरा जीवन भी बड़ा अनिश्चित है ।

[Logos) या (Word) ये दोनों शब्द मिश्रवालों के थे परन्तु इसाईयों ने ईसा के कई शताब्दियों पीछे इन शब्दों को अपना लिया । देवता अपोलो जिसकी मिश्र में डलफी स्थान पर कबर थी कई Word कहलाता था ।

प्राचीन ग्रीस में भी त्रित की पूजा थी। पुरोहित बलि देने के पहले वेदिपर तीनबार पवित्र वृक्ष की शाखा को पवित्रपानी से भिगोकर छिड़काव करते थे। इसी प्रकार चारों तरफ खड़े हुवे लोगों पर छिड़का जाता था। इसी प्रकार तीन अंगुलियों से सुगन्ध लेप लेकर तीन वार वेदीपर छिनकते थे। ये इस लिये किया जाता था कि एक देववाणी ने कहा था कि सब पवित्र वस्तुएं तीन तीन के तिक्कों में होनी चाहिये।

ओरफियस लिखता है कि—

सब वस्तुएं एक परमात्मा ने तीन २ नामों में बनायी हैं और वही परमात्मा सब वस्तुएं हैं।"

इस प्रकार महाशय डोवने इन सब प्राचीन ऐतिहासिक अनुशीलकों के उद्धहरण देकर यह बड़ी उत्तमता से दिखाने का परिश्रम किया है कि यद्यपि प्राचीन भारत वासी तथा अन्य प्राचीन सभ्यता शालिनी जातियों ने त्रिदेव को माना परन्तु वह भी त्रिदेव एक देव से सर्वथा अतिरिक्त न था। परन्तु एक देव ही त्रिरूप में विद्यमान है।

महाशय कडवर्थ (Cud worth) कहते हैं कि:—

अब ये सर्वथा निःसन्देह स्पष्ट होचुका है कि मिश्र देश में यह परस्पर समहोचुकी है को एक सर्वोच्च सर्व व्यापक अनादि अज देवता ही हैं। इस सारी युक्ति शृंखला को देख ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मिश्रदेश का सारा बहु देवता वाद सिवाय एक तथा सर्वोच्च देवता के नाना नामों, और भावों द्वारा हैम्मन नैथ इसिस ओसरिस सिरे पिस नेफ तथा प्याआदि नामों द्वारा पूजा के सिवाय वास्तव में कुछ भी नहीं। ईसाई मत के अतिरिक्त शेषमतों के सभी दुनिया के वासी इसी प्रकार से भिन्न नामों से एकेश्वर पूजा करते हैं यह बात महाशय एपोलियस Apulins भी अपने दीर्घ दर्शिता के वाक्य में स्वीकार करते हैं—

कि सारासंसार उसी एक सर्वोच्च देव की नाना प्रकारों में उपासना करता है और भिन्न नाम धरता है और नाना प्रकार संस्कार रचता है। वही नाना नाम जो एक सर्वोच्च देव के लिये थे उनको अज्ञानियों ने भूल कर किधर का किधर लगा लिया और वैसे ही पीछे के आये हुवे विद्वान् लोगों ने भी वैसा ही किया और सब अज और अनादि स्वयंभू देवताओं पर लगा लिया हो।

इसी प्रकार की सम्मति सरविल्लियम जोन्स भी प्रकाशित करते हैं।

सूक्ष्म परीक्षा द्वारा यह देख कर हमें आश्चर्य न करना चाहिये कि ईसाई मतातिरिक्त धर्मों के देवताओं की वैयक्तिकता चाहे वो स्त्री या पुमान हो परस्पर संक्रमित हो जाती है और अतर्न्भाव द्वारा अन्त में एक या दोही बच जाते हैं। यह बड़ी साधार तथा संयुक्तिक सम्मति है कि पुराने रोम और वर्तमान की वाराणसी (बनारस) के सभी देवी देवताओं का वर्ग प्राकृतिक शक्तियों की प्रतिनिधि था, विशेषतः सूर्य की शक्तियों का, जिनको नाना नामों तथा कल्पित संज्ञाओं से कहा जाता था। यह सम्मति तभी बन सकती है जब भिन्न प्रकृति वाली दो घटनाओं को बहुत पृथक् २ करके न देखा जाय। क्योंकि इस में संदेह नहीं कि एक ही देव के देव बहुत से नाम हो और बहुत से मन्दिर खड़े होवें और नाना प्रकार की स्तुतियें भी की जावें। और इस में भी कोई सन्देह नहीं उसी समय उस के अन्य नाम भी प्रायः सभी अन्य प्रार्थनाओं में आजावें जिन में कि उस की स्तुति की हो। होमर और ओर्थियस की स्तुतियों में इस न्याय का पर्याप्त प्रमाण मिल सकता है। सरविलियम जोन्स ने हिन्दु लिटनी और अन्य प्रार्थनाओं में भी यही बात अवश्य देखी होगी कि इन में और विशेषणों के गिनने के। सिवाय एक ही देवता के नाम और कुछ भी नहीं यह भी असम्भव नहीं है कि एक देश से दूसरे देश में जाकर बसने में औपनिवेशिक शनै २ भूल गये हों कि एक देवता के भिन्न नाम थे इस से उन की इधर ही प्रवृत्ति होगई हो कि ये सब नाम तथा विशेषण भिन्न २ देवताओं को बताने के रह गये हैं। परन्तु इस प्रकार भारतसदृश देश में बहु विध नामों से परिणाम निकालना जहां कि ईश्वर लगातार अति प्राचीन काल से उपासना किया जाता हो केवल असम्भव ही नहीं परन्तु हिन्दु मत देख कर सर्वथा खण्डित हो जाता है और इसी लिए इस दिये गये तर्क को सब मूर्ति पूजा की जड़ मानने के पहिले यह भी सिद्ध कर लेना चाहिये कि इसका धर्म भी स्वतः उत्पन्न तथा परन्तु बाहर के आने वालों ने यह यहां चलाया।

इस विषय पर इतने झंझट पड़ जाने पर यह असम्भव प्रतीत नहीं होता कि मिश्र वालों ने पहले केवल एक मात्र स्वयंभू सर्वाधिष्ठातृ देवता को दिव्यत्रि

रूप में प्रकटित हुआ माना परन्तु बाद जिस प्रकार अन्य देशों में एकेश्वर अदृश्य देव की पूजा अज्ञानी लोगों की दृष्टि में अस्त होने लगी तब दैनिक कार्य व्यवहार में वही प्रजा सूर्य के नाम पर की जाने लगी। परन्तु क्योंकि परमात्मा की मूर्ति से दिखाने का रिवाज नहीं पड़ा था तो नेफ को देवता की मूर्तियां भी जो कि अभी तक चित्रों और मूर्तियों में पायी जाती है वे भी परमात्मा की मूर्ति के प्रतिनिधि न थे। इस अवसर पर जैम्बिल्कस Jamblichus की सम्मति भी ध्यान देने योग्य है:—इस महाशय ने प्रसिद्ध मिश्री इतिहास वेत्ता हर्मीज़ Hermes की पुस्तकों के अनुसार इस प्रकार लिखा है "सब विद्यमान वस्तुओं के पहले और सब तत्वों के पहले "प्रथम एक परमात्मा था जो प्रथमोत्पन्न परमात्मा के अनन्तर था वह प्रथमोत्पन्न परमात्मा सब का अधिष्ठाता निष्क्रिय अपनी ही सत्ता मात्र में निष्ठ मानसिक तथा कायिक वासना से रहित देवता का एक मात्र स्वरूप अपने ही से पैदा होने वाला श्रेयो रूप प्रथम महान से भी महान सब का उत्पादक प्रथमोत्पन्न मूल भावों का आश्रय था।"

यह भी प्रतीत होता है कि यह देवता भी संसार का वास्तविक स्थापिता न था परन्तु इसने भी अपने तत्व में से एक और दिव्य शक्ति को उत्पन्न किया और उस से सम्पूर्ण चराचर पैदा हुआ। इस अन्तिम देव के बारे में कतिपयों का सम्मति भेद है। एक स्थान पर इस प्रकार को दिखला कर जमबैलिक ने दूसरा पक्ष इस प्रकार वर्णन करता है।

"दूसरे पक्ष के अनुसार हर्मीज़ ने देव एमिफ़ Emeth को द्यौ लोक के सब देवों का देव मानता है यही अपने ही विचारों में मग्न एक विचार शील मानव के रूप में है। इस देव के अगला देव वह है जिसका विभाग नहीं हो सकता और जो सब से प्रथम अध्यात्म शक्ति है। इसका नाम ऐक्टोन (Eicton) हैं और क्योंकि यही बुद्धि का प्रथम बौद्ध आधार है अतः उस की पूजा मौन रूप से की जाती है।" मिश्र वासियों के प्राचीन सिद्धान्त के रूप में इस विचार की अपूर्वता बड़ी शंका स्पद है क्योंकि जेम्बलिकस कहता है कि इन दो देवों के अतिरिक्त तीसरी दिव्य शक्ति भी है जबकि वह अपनी उत्पादक शक्ति का उपयोग लेता है तब वह मिश्र भाषा के अनुसार अमोन Ahioun कहाता है। और जब वह पूर्ण करने तथा नियमित करने में अपना कौशल दिखाता है तब वह प्या Path कहाता

है और जब वह कृपाएं करता है तब वह ओसरिस Osirid कहाता है इस पर महाशय कडवर्थ कहता है कि इस जैम्बलिकसे के वाक्य में हम साधारणतः स्पष्टतया तीन देवता के रूप मिलते हैं या सार्वजनिक तीन नियम जो कि हर्मिक देव वाद के अनुसार परस्पराश्रित हैं प्रथम—अभाज्य एकता इकटन Eiction. इस की पूर्ण मानस स्वत ही विचारों में मग्न आमिफ Emeph, तथा तीसरी तदनन्तर उत्पत्ति का नियम जो कतिपय शाक्तियों के अनुसार प्था एमन ओसारिसादि कहता है। अर्थात् यह तीन नाम तथा अन्य नाम भी जम्बलिकस के अनुसार मिश्री देवतावाद एक और उसी देवता को बताती है।

इस प्रकार हम प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वान् लेखकों के तथा विचारकों लेख बद्ध विचारों और नाना प्राचीन जातियों के धार्मिक इतिहास के भूयो भूयः अनुशीलनों से इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि—

उपासनीय देवता एक था एक रहा और एक रहेगा। जिस प्रकार कि वेद भगवान कहते हैं कि—

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं वरुणं मातरिश्वानमाहुः।"
"एकोदेवः सर्वभूतेसुगूढः सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा"
"सद् वेवुनामथा एक एव"

इतिशम्

अष्टम अध्याय

बहु देवतावाद की उत्पत्ति।

पुराणों को समष्टि रूप से लेकर अनुशीलन करने से साधारणतः यही प्रतीति होती है कि पुराणों में बहुदेवतावाद को सम्मत माना है। इसी प्रकार का उस जनसमाज का भी विश्वास तथा श्रद्धा है। इस ही का कार्यरूपेण प्रपञ्च भारतभर में मन्दिर रूपेण दृष्टिगोचर होता है। वे देवता जो कि सर्वसाधारण में पूजा तथा मान की दृष्टि से देखे जाते हैं निम्न प्रकार से श्रेणी विभक्त किये जासकते हैं।

(१) महान् आत्मा परमात्मा के गुणों को देवता रूपेण विग्रहवान् मान कर कल्पनामय देवता। जैसे रुद्र, भैरव, काल शिव, पार्वती काली आदि।

(२) प्राकृतिक घटनाओं को देखकर उन्हीं में विद्यमान किसी प्राकृतिक शक्ति या शक्तिमय पदार्थ को देवता मानकर उस के आधार पर कल्पना करनी। जिस प्रकार इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, ध्रुव वायु, अग्नि आदि।

(३) मानुषीय शक्ति के ही विभाग करके उन पर आन्तरिक दृष्टि से विचार पूर्वक योजना कर के देवता की कल्पना करनी। जिस प्रकार प्राण देवता तथा इन्द्रियादिकों को भी देवता मानना।

(४) वीर पुरुषों तथा बड़े आदर्श पुरुषों को श्रद्धा तथा आदर की अधिकता वश उन को भी देवता मानकर पूजा करना। जिस प्रकार राम, कृष्ण, बुद्ध, हनुमान आदि। इसी प्रकार देवता वर्ग केवल पुंलिंग ही नहीं परन्तु देवियों की भी कल्पना उपरोक्त विभाग नियमानुसार कल्पित हैं।

हम क्रम से इन देवताओं की समालोचना एक २ कर के करने का प्रयत्न करेंगे।

पुराण साहित्य के सब से प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। और बहुत से भेद इन्हीं देवताओं के उपासक की अपनी भावना तथा श्रद्धा के परिणाम से नाना प्रकार के होगये हैं। वास्तव में देखा जाय तो पूर्व अध्यायों में प्रतिपादित एक देवता की यह त्रिमूर्ति की कल्पना रची गयी।

उपरोक्त तीनों देवों के ही अवतार कल्पना से बहुत से अन्य देवता उत्थित हुवे और बहुत से उन्हीं के पुत्र पौत्रादि क्रम से संतानिरूपेण देवता कह लाये। जिस प्रकार मत्स्यावतार, वराहावतार, रामावतार और परशुरामावतारादि। कुछेक देवता इन्हीं तीनों देवताओं के कार्यों में सहायक तथा अंश रूपेण उपजीवक होने से देवता कह लाये तथा आदर और पूजा के पात्र हुवे। जिस प्रकार शेष, यमराजादि, लोकेश्वर देव।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनों देवताओं की कल्पना का मूल-भूत कारण जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय, इन कार्यों के भेद से हुई। जिस प्रकार कि लिंग पुराण में लिखा है "वत्स वत्सहरे विष्णोपाळयैस्त्वं चराचरम्।" महादेव कहता है कि हे प्रियहरे विष्णु तुम चराचर को पालन करो। ब्रह्मा और शिव के विषय में ब्रह्मा के वचन द्वारा भागवत में आता है। सृजामितन्नियुक्तोहं हरो हरातितद्वशः। अर्थात् विष्णु के वशमें होकर----हर अर्थात् महेश प्रलय करता तथा ब्रह्मा मैं सृष्टि करता हूं। इसी बात को हम अगले प्रकरणों में विस्तार से लिखें और यह भी दिखायेंगे कि पुराण भी एक देवता को किस प्रबलता से सिद्ध करते तथा मानते हैं। और प्राक्प्रतिपादित परमात्मा तथा एक मात्र ब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन करते हैं।

इस प्रकरण में केवल देवताओं का उत्पत्ति मूल ही दर्शाना है।

प्रथम प्रकार की देवताओं की उत्पत्ति का प्रकार

एक मूल-भूत शक्ति को आधार मानकर उस पर गुण-भेद से उपाधि-भेद लगा कर देवता-भेद की कल्पना अर्थात् एक ही परमात्मा के गुण-भेद से देवता-भेद होना यह प्रथम प्रकार है।

वेद के देवता इन्द्र, मित्र, वरुण, गरुत्मान् आदि नाना प्रकार के हैं। परन्तु इन सब की एकात्मता का प्रतिपादन करता हुआ वेद भगवान् कहता है "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वान माहुः।"

अर्थात् विद्वान् लोग एक ही देवता को नाना नाम से पुकारते हैं। इसी प्रव्र प्रायः सर्व पुराण कर्त्ता भी अपने २ शब्दों में कहते हैं उदाहरणार्थ जिस प्रव देवी भागवत में विष्णु देवी के प्रति बोलते हैं:—*

" हे ब्रह्मा ! तुझे स्रष्टा मुझे पालक और हर को सब का संहारक शक्ति ने ब दिया ऐसा संतर्क वेद के परम निपुण ज्ञाता लोग किया करते हैं। तेरे में जगत् पैदा करने की राजसी शक्ति विद्यमान है। मेरे में सात्विकी शक्ति है और रुद्र तामसी शक्ति कही जाती है। उस शक्ति के बिना तू कार्य करने में असमर्थ है मैं पालन करने में असमर्थ हूं और शंकर भी संहार करने में असमर्थ है।"

इस प्रकार एक ही शक्ति के भिन्न २ कार्य करने वाले रूप को इन देवता में विभक्त किया है।

इसी प्रकार देवी भागवत में दूसरे स्थल पर देवी का निरूपण कर के देवी तीन गुणों द्वारा त्रिदेवों की उत्पत्ति बतलाई है + और विष्णु को सत्व प्रधा ब्रह्मा को रजः प्रधान तथा महेश को तमः प्रधान ही बताया है।

इन सब देवताओं की वास्तविकता निर्णय करने के बारे में देवी भाग निश्चय से एकेश्वर को ही सर्वाधार मानता है जैसा देवी स्वतः अपने वचन कहती

---

* स्रष्टात्वं पालकश्चाहं हरः संहार कारकः।
कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियते वेदपारगैः ॥ ४६ ॥
जगत्संजनने शक्ति स्त्वयि तिष्ठति राजसी।
सात्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्त्तिता ॥ ४७ ॥
तया विरहितः स्त्वं न तत्कर्म करणे प्रभुः।
नाहं पालयितुं शक्तः संहर्त्तुं नापि शंकरः ॥ ४८ ॥

देवी भागवत० अ० ४,
श्लो० ४६-४८. ॥

\+ (१) तया विरहित स्त्वं न तत्कर्म करणेप्रभुः।
नाहंपालयितुं शक्तः संहर्त्तुं नापिशंकरः ॥ ४ ॥
देवी भाग० स्कं० १, अ० ४, श्लो० ४६, ४७.४८

(२) देवी भाग०—स्क० ३ अ० ६
देखो ब्रह्मादेवी संवादः

* देखो त्रिदेवनिर्णय पृ० १०।

नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधराम्यहम् ।
भवामिशक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ।
गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ॥
वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी ।
उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामितान् ॥
देवीभाग० स्कं० ३, अ० ६, १२–१४ ।

अर्थात्—निश्चय से सब कार्यों में ही नाना प्रकार के नाम के धारण करने वाली मैं ही हूं। शक्तिरूप से प्रादुर्भूत हो कर मैं ही पराक्रम करती हूं।"गौरी ब्राह्मी ब्रह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही वासवी, ये सब प्रकार मेरे ही हैं सब ही के उत्पन्न होने पर मैं उन में प्रविष्ट रहती हूं।

इस प्रकार एक ही देवता को मुख्य मान कर अन्य सबों को उसका रूपान्तर माना गया है।

इसी प्रकार ब्रह्म के एकत्व तथा मुख्यत्व को बताने के लिये भी देवीभागवत ने निम्न प्रकार से लिखा है:—

एक मेवा द्वितीयं वै ब्रह्मनित्यं सनातनम् ।
द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सु संज्ञके ॥
देवीभा० स्कं० ३, अ० ६, ४ ।

"ब्रह्म ही एक अद्वितीय नित्य सनातन है उत्पित्सु नाम काल में अर्थात् सृष्टि की इच्छा के समय में द्वैतभाव प्राप्त होजाता है।"

इसी प्रकार:—

यो हरिः सशिवः साक्षाद्यः शिवः सस्वयं हरिः ।
दे० भा० स्कं० ३, अ० ६, ५५ ।

"जो हरि है वही शिव है जो शिव है वही स्वयं हरि है।" इत्यादि प्रकार से एक ही ब्रह्म के प्रकृति उपादान कारण सृष्टि को बनाने पालने तथा संहार करने के तीन पृथक् गुणों व कर्मों के अनुसार इन नामों से पुकारा जाता है इस प्रकार पुराणों की सम्मति भी स्थान २ पर पाई जाती है।

अनुभवी वैदिक विद्वान् श्री काव्यतीर्थ शिवशंकर जी ने अपने त्रिदेव निर्णय में त्रिदेवमूर्ति को नैरुक्तिक तीन देवताओं का रूपान्तर माना है * जिस प्रकार अग्नि पृथवी स्थान तथा वायु अन्तरिक्ष स्थान तथा सूर्य को द्युः स्थान मान अन्य देवताओं को इन्हीं के अंग प्रत्यंग भूत निरुक्त के सिद्धान्त में माना गया है। और वास्तव में देवता के महाभाग्य से ये तीनों देवता भी एक ही हैं उसी प्रकार विष्णु, ब्रह्मा, महेश, भी उपरोक्त नैरुक्त देवताओं के आलंकारिक विस्तृत वर्णन हैं। एवं प्रकारेण सूर्य, विष्णु तथा वायु, ब्रह्मा और विद्युत् महेश हैं। उपरोक्त पण्डित जी ने बड़े प्रमाण तथा उत्पत्ति से इस विचार को निभाया है जैसा कि स्थान २ पर एक २ देवता के प्रकरण में यथा स्थान संक्षेपतः वर्णन किया जायगा।

अब क्रमशः देवताओं की आलोचना की जाती है।

1 विष्णुदेव

उपरोक्त पंडित काव्यतीर्थ श्री शिवशंकर शर्म्मा जी ने विष्णुदेव को सूर्य का प्रतिनिधि कहते हुए निम्नलिखित प्रकार से प्रतिपादन करते हैं।

"पूर्व काल में सूर्य का ही नाम विष्णु था:—

जैसा विष्णु पुराण में १२ आदित्य नामों में विष्णु की (१) गणना है महाभारत (२) में भी द्वादश आदित्यों में विष्णु का परिपाठ है। इसी प्रकार आकाश शब्द के पर्याय भी विष्णु शब्द अनेक नामों में परिगणित है। (३)

इधर वैदिक देवता विष्णु का निर्णय करते हुए निघण्टु के भाष्य कर्त्ता यास्काचार्य ने भी विष्णु का सूर्य ही (४) अर्थ किया है। वेद में भी सूर्य वाचक विष्णु शब्द का प्रयोग होता है, जैसे:—

---

(१) तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेवच।
अर्य्यमाचैव धाता च त्वष्टापूषा तथैव च॥ १३१॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रोवरुण एव च।
अंशो भगश्चादिति जा आदित्याद्वादशस्मृताः॥ १३२॥
विष्णु पुराण॥

(२) पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च अंश १० अ० १५. श्लो० ॥
आदित्याद्वादशस्मृताः॥
महाभारत० आदि पर्व अ० १२३ श्लो० ६६॥

(३) वियद् विष्णु पदंवापि पुंस्याकाश विहायसीत्यमरः॥

(४) सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते।
तावांवस्तून्युष्म सिगमध्यै यत्र गावोभूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सुयवसिनी मनुष्ये दशस्या।
व्यस्कम्भ्नाद्रोदसी विष्णावेते दाधर्थ पृथिवी मभितोम यूखैः॥
ऋ० मं० ७, ६, ३।

हे सूर्य! इस द्यु लोक तथा भू लोक को आपने थाम रखा है और किरणों से पृथिवी धारण किया है।

निरुक्त दर्शित मन्त्र तथा इस मन्त्र दोनों में ही मयूख अर्थात् किरण का सम्बन्ध होने से निश्चय से प्रतिपद्यार्थ रूप देवता सूर्य ही है। श्री पं० जी इस प्रकार विष्णु को सूर्य सिद्ध करके तत्सम्बद्ध शेष देवों का व्याख्यान करते हैं।

"अब आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिए कि सूर्य के जो जो गुण हैं वे ही उस कल्पित विष्णु में भी स्थापित किए हैं। उस २ शब्द के अर्थ के अनुसार वाहन स्थान शक्ति आदि बनाये गये हैं इसी प्रकार जिस २ समस्त पद में दो दो समास हो सकते हैं ऐसे २ पद रखे गये हैं बात यह है कि बड़ी निपुणता और विद्वत्ता के साथ वाहन आदि की कल्पना की गई है।"

वेदि किरण गो आदि पन्द्रह १५ रश्मि वाचक नामों सुपर्णश भी एक है यह भी वेद में बहुत प्रयुक्त होता है।

"वयः सुपर्णा उपसे दुरिन्द्रं"

यह ऋग्वेद का मन्त्र है निरुक्तकार ने भी इसको सूर्य परक व्याख्यान किया है और **सुपर्णाः** का व्याख्यान **आदित्य रश्मयः** किया है इसी प्रकारः—

"यत्रा सुपर्णा अमृतस्यभागं"

इस मन्त्र के व्याख्यान में भी यास्क मुनि ने **सुपर्णाः सुपतना आदित्य रश्मयः"** सुपर्ण अच्छी तरह से पड़ने वाली आदित्य रश्मि में ऐसा किया है। अर्थात् सूर्य के किरण का नाम सुपर्ण है "अब आप लोगों को विश्वास हो गया होगा सुवर्ण शब्द वेदों में रश्मि के अर्थों में आया है। परन्तु आज कल यह **सुपर्ण** शब्द गरुड़ के अर्थ में ही आता है।

जैसा—"**गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः ।**" इस रूप से अमर कोश ने प्रतिपादन किया।

गरुत्मान् तार्क्ष्य आदि शब्द भी सूर्य के किरणार्थक वेद में आये हैं आप लोगों ने देखा कि सुपर्ण नाम गरुड़ का भी है अब विचारने की बात है कि सूर्य का वाहन किरण है क्योंकि किरणों के द्वारा ही सूर्य मानों सर्वत्र पहुंचता है वेदों में वर्णन आया है किरण मानों सूर्य को ढोते फिरते हैं जब सूर्य के स्थान में विष्णु देव पृथक् कल्पित हुवे तब जो वाहन सूर्य का था—उसी नाम का विष्णु को भी दिया गया। उस नाम का वाहन इस मर्त्य लोक में गरुड़ नाम का पक्षी ही है। अन्य नहीं। इस हेतु विष्णु का वाहन गरुड़ माना गया है। इस से भी आप देख सकते हैं कि सूर्य को ही लोगों ने विष्णु ही माना है।"

इस प्रकार पंजी ने अपनी रचना कर के इसी की पुष्टि में गरुड़ को तथा सुपर्ण को सूर्य किरण बता कर उस के साथ सम्बद्ध अन्य पौराणिक कल्पनाओं पर भी प्रकाश डाला—जो कि स्पष्टता के लिये संक्षेप से दिया जाता है।

[१] गरुड़ को सर्प भक्षक कहा जाता है। गरुड़ ही जो अहिभक्षक था विष्णु का वाहन इस लिये है कि सूर्य पक्ष में भी रश्मियें मेघ जिसको वैदिक भाषा में अहि भी कहते हैं उसको खाजाती हैं अर्थात छिन्न भिन्न करती हैं।

इसी प्रकार गरुड़ की अमृतहरण की कथा पुराणों में वर्णित है। वैदिक भाषा तथा लौकिक भाषा में भी अमृत नाम जल का है "**पयः कीलालममृत मित्यमरः**" सूर्य रश्मियें भी जल को पृथ्वी तल से उठा ले जाती हैं।

इसी प्रकार समुद्रशायी विष्णु की पौराणिक कल्पना प्रसिद्ध है। उधर समुद्र नाम वैदिक भाषा में आकाश मण्डल का है।

अम्बरम् , वियत्...
....**पुस्करम् सगरः, समुद्रः इति षोडशान्तरिक्षनामानि निघण्टु १. ३।**

इस के भाष्यकर्त्ता निरुक्तकार भी:—

तत्र समुद्रइत्येतत् पार्थिवेन समुद्रेणसंदिह्यते। समुद्रः कस्मात्समुद्द्रवन्त्यस्मादापः। समभिद्रवन्त्येनमापः। इत्यादि ।

निरुक्त २, १०।

जिस में पानी झरे या जिससे पानी बह के आवे ये दोनों ही समुद्र की व्युत्पत्तियें होने से ये दोनों अर्थों को बता सकता है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि व्यर्थक शब्दों की रचना से पौराणिक कल्पना भी वेद के प्रतिपादित तत्वों के आधार पर अलंकारिक है।

सूर्य का उदय भी समुद्र से आलंकारिक रूप में वेद में आया है।

"सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रा पुदाचरत्"

अथर्व० ४, ५॥

सहस्र सींगों वाला बैल समुद्र से अर्थात् आकाश से उदय हुवा। इसी समुद्र शब्द को आधार रख के कल्पित सूर्य स्थानीय विष्णु का भी निवास स्थान समुद्र कल्पना हुआ।

विष्णु का एक नारायण है। ये नारायण भी आपः अर्थात् जलशायी हैं। जैसा कि मनु कहते हैं:—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वैनर सूनवः।
तायदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ मनु० १।१०

अपः नाराकहता है क्योंकि वे ही नररूप परमात्मा से पैदा हुआ क्योंकि इस के सबसे प्रथम स्थान नार अर्थात् आपः थे अतः नारायण कहा जाता है। अपः की उत्पत्ति के बारे में भी मनु भगवान् कहते हैं:—

अप एव ससर्जादौतासुबीजमवासृजत्। मनु० १, ८।

लौकिक व्यवहार से अप शब्द जल बाची अवश्य है परन्तु नर से पैदा होने के कारण।

"तस्माद्वाएतस्माद्वा आकाशासम्भूतः।"

इत्यादि श्रुति से एक वाक्यता करने पर अपः का अर्थ आकाश ही है। जैसा कि ऋग्वेद के इस मन्त्र से भी प्रतीत होता है।

**" तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥**
ऋ० १०, ८२, ६ ॥

" अपः आकाश ने प्रथम गर्भ वहीं धारण किया था जहाँ सब देव आकर इकट्ठे हुवे उस परमात्मा की नाभि में एक तत्व अर्पित है जिस में सब भुवन-स्थित हैं । "

इस से आपः आकाशवाचक होने से सूर्य को विष्णु मानना दृढ़ है ।

सागर शब्द भी आकाश वाचक है ।

सब का आधार सोचते २ पृथ्वी आदि ग्रहों का आधार सूर्य और सूर्यादि मण्डलों का आधार सिवाय परमात्मा के जो इस जड़ जगत् को छोड़ कर शेष रह जाता है वही है वही शेष भूत परमात्मा विष्णु मय सूर्य कोआधार है इस प्रकार शेष नाग के पलंग पर सोने वाले विष्णु का अलंकार भी स्पष्ट हो जाता है । सूर्य वाचिक शेष अनन्त आदि शब्द सभी पर ब्रह्म तथा आकाश और नाग इन सब के पर्याय भूत होने के कारण श्लिष्ट अलंकार के आधार वन जाते हैं ।

विष्णु का दूसरा नाम हरि है । हरि शब्द भी लोक वेद में सूर्य के वास्ते बहुधा प्रयुक्त होता है ।

विष्णु की चार भुजाओं की कल्पना भी सूर्य के चतुर्दिगन्त में किरण द्वारा प्रकाश करने से समञ्जस है । किरण कर भुजहस्त इत्यादि सब पर्याय भी प्रसिद्ध हैं । चतसृषु दिक्षु भुजः किरणायस्य सचतुर्भुजः ऐसा मध्यमपद लोपीसमास तथ चत्वारिबाहवो यस्य ऐसा बहुव्रीहि भी दोनों ही के सम्भव होने से आलंकारिक रूप सुन्दर होजाता है ।

इसी कारण विष्णु का कतिपय स्थानों * पर अष्टभुज तथा कतिपय स्थानों पर दशभुज वर्णन * भी आया है ।

यह कल्पना भी दिशाओं की संख्या पर निर्भर है चार दिशा मानने से चार भुजा आठ दिशा मानने से आठ और दश मानने से दश भुजा हो जाती हैं विष्णु का वर्णन श्वेत (३) माना है और कृष्ण (४) भी ये दोनों वर्ण

---

* **प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं ।
श्रीवत्सयक्ष्यं वनमालयावृतम् ॥
श्रीमद्भागवत स्कं० १० । ८६ । ५६ ।**

* **दशबाहु र्महातेजा देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥
महाभारत० अनुशासन० १४७ अ० ।**

+ **शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ॥
सत्यनारायण कथा ।**

सूर्य में घटित हैं। शुक्ल तो स्वभावतः है ही और कृष्ण आकर्षण शक्ति वाला होने से वेद सूर्य का वाचक है **जैसे—**

"कृष्णं नियानं हरयःसुपर्णाःअपो वसानाः
दिवमुत् पतन्ति" इत्यादि में।

परन्तु द्व्यर्थकता होने से वही आकर्षण शक्ति सम्पन्न सूर्य का रूप पुराण में रूपान्तर में बदला हुआ पड़ा है।

श्यामादि नील वाचक शब्द भी **आकाश** में व्याप्त होने से तन्मय मानकर सङ्क्रान्त होगया है।

दूसरा श्याम सुन्दर वाचक शब्द भी जगप्रसिद्ध है। सब सौन्दर्यों को देने वाला होने से तथा सब सौन्दर्यों का मूल होने से भी सूर्य श्याम कहा सकता है। जैसा कि छान्दोग्य में भी:—

असौ वा आदित्यः पिंगल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष
लोहित इत्यादि॥
छा० ३, ८, ६, १।

पीला सफेद नील लाल कतिपय रंगों का वर्णन किया है।

इसी सुन्दरता तथा शोभा या लक्ष्मी के निधान होने से लक्ष्मी को ही विष्णु की पत्नी होना कल्पित है। जैसा यजुर्वेद में भी:—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे इत्यादि॥
यजुः० ३१, ३२।

श्री और लक्ष्मी को सूर्य की पत्नी कहा गया है।

कवियों की कल्पनामय कृति काव्यों में सूर्य का कमलों से बड़ा सम्बन्ध है। अतः विष्णु की भी कमलों से संतुष्टि तथा प्रसार पुराणों में से अभिमत है।

विष्णु को ही त्रिविक्रम प्रथा वामनादि कल्पना करना भी सूर्य को ही आधार रूपेण पुष्ट करता है। वेद में भी**:—**

इसी मन्त्र पर महीधरः—
ऋषिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते। हे आदित्य॥
श्रीश्च लक्ष्मीश्च ते तव पत्न्यौ जाया स्थानीये त्वद्वशस्य इत्यर्थः॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदं समूढमस्य पांसुरे ॥

यजुः० ५, १५ ।

यास्काचार्य भी इसे सूर्य के पक्ष में लगाते हैं

यदिदं किञ्च तद्विक्रमते विष्णुः त्रेधा निधत्ते पदं ।
त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षेदिवीति शाकपूणिः ।

इत्यादि ।

"ये जो भी कुछ है सब को विष्णु लांघ जाता है तीन रूप का होने के लिए तीन पद रखता है पृथिवी मे, अन्तरिक्ष में, द्यौ लोक में, यह शाकपूणि आचार्य का मत है । विष्णु की निरुक्ति करते हुवे भी यास्क कहते हैं:---**यद्विषितो भवति तद्विष्णु र्विष्णु विंशते व्यश्नोतेर्वा । दैवतकाण्ड ।**

अथ यदाविषितः व्यासोऽयमेव सूर्यो रश्मिभिर्भवति ॥ [भाष्यं]

अर्थात् जब सूर्य व्याप्त होता है तब सूर्य ही विष्णु कहलाता है ।

इसी प्रकार विष्णु को सूर्यार्थ में प्रतिपादन के बहुत से मन्त्र उद्धृत किए जा सकते हैं । जो कि आगे चलकर अवतार कल्पना ध्यान तथा व्याख्या ध्याय में स्पष्टतया दिखाये जायेंगे ।

विष्णु के साथ बलि की कल्पना भी उपयुक्त प्रतीत होती है जब कि बलि मेघ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं इसी प्रकार जलन्धर भी मेघ ही हैं ।

इसी प्रकार आषाढ़शुक्ला एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशी तक ४ मास बर्षा ऋतु के होते हैं जिनको चौमासा कहा जाता है । इस वर्षा काल में पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार बिष्णु भगवान् क्षीरसागर में लुप्त होजाते हैं । तदनन्तर फिर जागते हैं । यह कल्पना भी चौमासे के दिनों में मेघमण्डल सूर्य का छिपे रहने को आश्रय रख सूर्य विष्णु की एकात्मता का दृढ़ प्रमाण है ।

इस प्रकार सामान्यतः विष्णु के विषय में सूर्य को आधार मानकर सकल कल्पना का व्याख्यान श्री पं० शिवशंकर शर्मा जी ने किया है । यह बड़ी विद्वता युक्त व्याख्या भी बड़ी ध्यानाकर्षक है और वास्तव में यह भी एक प्रकार की दृष्टि पुराण साहित्य में बहुत से स्थलों पर पायी जाती है । परन्तु अब वास्तविक सूर्य का ध्यान तो पौराणिक अनुशीलकों के ध्यान में भी नहीं आता प्रत्युत भक्त

जनों को अपने किसी भी देवता का नाम सुनकर आदिमूल को छोड़ कर वर्त्तमान अभिमत देव ईश्वर तथा तत्सम्बद्ध कल्पित रूप की ही भावना होती है। इसका क्या मूल है इस विषय पर विवेचना करने के लिए। सूर्य को देकर विष्णु को केवल सूर्य परक मानने की अपेक्षा विष्णु को प्राचीन ग्रन्थों में क्या और कितने प्रकार से कल्पित किया है। इसपर प्रकाश डालने से सब विषय स्पष्ट होजायगा। इसको दिखाने के लिए हम मूल वेद तथा उसके व्याख्या ब्राह्मण तथा निरुक्तादि का आन्दोलन करते हैं। ऋग्वेद में कतिपय सूक्त विष्णु देवता के आये हैं। जिन में मुख्य २ मन्त्रों को विषय के स्पष्टी करण के लिये उद्धृत करते हैं।

"विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाण स्त्रेधोरुगायः ॥"

ऋ० मं० १०, सू० १५९, १ ॥

अर्थ—मैं उस विष्णु के वीर कर्मों को शीघ्र कहता हूं जिस ने पार्थिव (रजांसि) लोकों को बनाया जिसने ऊपर के निवास योग्य लोकों के आश्रय भूत अन्तरिक्ष को बनाया है। जो उन को बहुतों से स्तुति की गई है जिसने तीनवार में लोकों को लांघ लिया है।

इस मन्त्र में सामान्यतः वह पौराणिक घटना अवश्य उल्लिखित है कि विष्णु ने तीनवार लोकों को लांघ लिया। परन्तु इस में बलि तथा वामनादि कल्पनाओं का लेशमात्र भी नहीं। सायणाचार्य के भाष्यानुसार यह तत्कथापरक कभी नहीं और नाही सूर्य परक है परन्तु यह परमात्मा का प्रतिपादक है।

सायण भाष्य के भाष्य से निम्न लिखित उद्धरण इस बात को स्पष्ट करते हैं।

"विष्णोर्व्यापनशीलस्य देवस्य" "पार्थिवानि, पृथिवी सम्बन्धीनि रजांसि रंजनात्मकानि क्षित्यादिलोकत्रयाभिमानीनि अग्निवाय्वादित्यरूपाणि रजांसि विममे विशेषेण निर्ममे।" अत्र त्रयोलोका अपि पृथिवी शब्द वाच्याः। "तैत्तरीयेऽपि योऽस्यां पृथिव्या मित्युपक्रम्य यो द्वितीयस्यां य तृतीयस्यां पृथिव्यामिति।"

"अस्कभायत् तेषामाधारत्वेन स्कम्भितवान निर्मितवानित्यर्थः। अनेनान्तरिक्षाश्रितलोकत्रयमपि सृष्टवान् इत्युक्तंभवति।"

"यद्वा' यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवी सम्बन्धीनि रजांसि पृथिव्या अधस्तनसप्तलोकान् विममेनिर्मितवान्" रजः शब्दोलोकवाची लोका रजांसीत्युच्यन्ते इति यास्केनोक्तत्वात्। किञ्च यश्च उत्तरं उद्गततरं सधस्थं पुण्यकृतां सहनिवासयोग्यं भूरादिलोकसप्तकं अस्कभायत् स्कंभितवान् सृष्टवानित्यर्थः।

अथवा—"सधस्थं उपासकानां सहस्थानं सत्यलोकं अस्कभायत् स्कंभितवान् ध्रुवं स्थापितवान्" किंकुर्वन् त्रेधाविचक्रमाणः त्रिःप्रकारं स्वसृष्टान् लोकान् विविधं क्रममाणः। विष्णोस्त्रेधाक्रमणं इदं विष्णुर्विचक्रमे इति श्रुतिसुप्रसिद्धम्।" इत्यादि।

इन टिप्पणियों का भावार्थ यह है—विष्णु की व्यापन शील देव की स्तुति करता हूं।" "पार्थिवरजः पार्थिवलोक कहलाते हैं। यहां तीनों लोक भी पृथिवी शब्द कहे जाते हैं क्योंकि तैत्रीय में भी "इस पृथिवी में, दूसरी पृथ्वी में, तीसरी में" इत्यादि द्वारा पृथिवी का ग्रहण है। "अस्कभायत्" उन को आधार रूप बनकर थामा अर्थात् बनाया इस से अन्तरिक्ष के आश्रित तीन लोक कह दिये।

अथवा पार्थिवलोक से तात्पर्य पृथिवी से नीचले सातलोक लेना। रजः शब्द लोक का वाची यही बातनिरुक्त ने भी कही है। सधस्थ का तात्पर्य पुण्य करने वालों के एक साथ रहने योग्य भूरादिसात इसी विष्णु के विशेषण जो वेद मन्त्रों में आये हैं वे भी विचार ने योग्य हैं। विष्णु को वेद में × कुचर कहा है जिसका अर्थ है **क्वायं न चरतीति**, सब जगह जाने वाला सर्व व्यापक, इस को गिरिष्ठ * कहा है जिसका तात्पर्य है पर्वत में रहने वाला या वाणी में रहने वाला स्तुति के योग्य। तीसरा विशेषण है गिरिक्षित * गिरि में रहने वाला। चौथा विशेषण महेशूर ÷ बड़ा भारी विक्रमशील। पांचवां विशेषण।

विष्णु का दूसरा प्रकरण यज्ञ विभाग में ब्राह्मणों में प्रतिपादित है। इस में यज्ञस्वरूप ही विष्णु माना गया है। जैसाः—

× (२) ऋ० म० १५४, २।
* (३) ऋ० म० १, १५४, ३।
÷ (४) ऋ० म० १, १५५, १,

ऋग्वेद में ९ मण्डल के १-१ सूक्त भी विष्णुदेवता कहे उस में यह विशेषण है।

'तवसस्तवीयान्' बुड्ढों में भी बुड्ढा, **एषह्यस्य स्थविरस्य नाम,** यह इस बूढ़े ही का नाम है। **शिपिविष्ट,** रश्मियों से युक्त, यह सब परमात्मा के ही नाम समुचित हैं।

लोक। या सबस्थ सहवास के योग्य उपासक को सत्य लोक के स्थिर किया। तीन प्रकार से लोकों को लांघता हुवा। इदं विष्णु रित्यादिक श्रुतियों में प्रसिद्ध है कि विष्णु ने लोकों को तीन प्रकार से क्रमण किया।"

इस प्रकार यह विष्णु परक मन्त्र भी परमात्मा का ही वास्तविक स्वरूप बताता है।

इसी विष्णु की त्रिधा लोकों को लांघने की बात को इसी सूक्त के अगले मन्त्रों में भी उद्धृत किया है। जैसे

(१) **"यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु अधिक्षियन्ति भुवनानिविश्वा** ॥ २ ॥"

जिसके महान् तीन पद प्रक्षेपों सकल विश्वा निवास करते हैं।

इसी प्रकार अन्यत्र भी:—

[२] **त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन्" ऋ० मं० १, सू० २२, मं० १८ ॥**

इस संसार के धर्मों को धारण करता हुवे न हिंसा करने योग्य विष्णु ने तीन पद प्रक्षेप किए।

इसी प्रकार अन्य स्थान में:—

"त्रिर्दिवः पृथिवीमेष सतांविचक्रमे।"

ऋ० मं० ७, १०१, ३ ॥

विष्णु ने इस पृथिवी को तीन बार लांघा:—

"यज्ञोवै विष्णुः" [**तैत्तरीय ब्रा० २, १, ६, ७**]

यज्ञ स्वरूप ही विष्णु है।

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण भी कहता है:— ×

अग्नि ही देवताओं का सबसे प्रथम है और "विष्णु सब देवताओं में उत्तम या परम देवता है। इन्हीं दोनों के मध्य में सब देवता हैं, आग्नावैष्णव पुरोडाश ११ कपाल का बनाया जाता है यह सब देवता के लिए ही होता है। अग्नि ही सब देवता है और विष्णु भी सब देवता है। यही दोनों अग्नि और विष्णु के शरीर यज्ञ के आदि और अन्त में होते हैं इसी लिए इन देवताओं के पुरोडाश बनाने से सब देवता तृप्त हो जाते हैं।"

इस देवता का स्वरूप भी ऐतरेय को वही व्यापक परमात्मा इष्ट है क्योंकि कपाल विभाग आगे चलकर विष्णु के त्रिपाद के अनुसार ही इन कपाल भाग में रखे हैं।

इसी यज्ञ स्वरूप विष्णु का प्रतिपादन शतपथ ने भी १४ वें काण्ड में किया है जहां विष्णु के सम्बन्ध की एक पौराणिक कथा का मूल भी और स्पष्ट हो जाता है।

"देवा ह वै सत्रं निषेदुः। अग्निरिन्द्रः सोमो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम्। तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास.........॥ १ ॥ त आसतश्रियं गच्छेम यशः स्याम अन्नादाः स्यामेति..............। तेह्रोचुः यो न श्रमेण तपसा श्रद्धया यज्ञेनाहुतिभिर्यज्ञस्योदृचं पूर्वोऽवगच्छात् सनः श्रेष्ठोऽसत्तदुनः सर्वेषां सहेतितथेति। तद्विष्णुः प्रथःमप्राप। सदेवानां श्रेष्ठोऽभवत् तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठ इति। सयः सविष्णुः यज्ञः सः। सयः सयज्ञो

× (१) "अग्निर्वैदेवानामवमो विष्णुः परमः।
तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता।
अग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीय मेकादश कपालं।
सर्वाभ्यएवं तद्देवताभ्यो ऽनन्तरायं निर्वपन्ति।
अग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुः सर्वा देवता।
एतेवै यज्ञस्य अन्त्येतन्वौ यदाग्निश्चविष्णुश्च तद्यदाग्नि।
वैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति अन्ततएवदेवान् ऋध्नुवन्ति।"
ऐतरेय ब्राह्मण पं० १, अ०, ख० १,
अग्निमुखं प्रथमो देवतानां सङ्गतानामुत्तमोविष्णु रासीत्।
इतिहिमन्त्र आम्नायते इतिसायनः।
(ऐ० ब्रा० भा० पं० १, अ० १, ख० १,)।

ऽसौ स आदित्यः तद्धेह इदं यशो विष्णुर्न शशाक संयन्तुं..........सतिस्र धन्वमादाया पचक्राम। सधनुरार्त्न्यां शिर उपस्तभ्य तस्थौ। तं देवा अनभिधृष्णुवन्तः समन्तं परिरायाविशन्त। ताह वम्र्य ऊचुः योऽस्यज्या मप्यद्यात्किमस्मै प्रयच्छेतेति। अन्नाद्यमस्मै प्रयच्छेम..........तथेति तस्या-पपरासृत्य ज्याम पिनत्तः। तस्यां छिन्नायां धनुरार्त्न्यौ विस्फुरन्त्यौ विष्णोः शिरः प्रचिच्छेदतुः। तद्ध घृङ्ङितिपपात। तत्पति त्वा असौ आदित्यो ऽभवदथेतरः प्राङेव प्रावृज्यत तद्यद्ध घृङ् इत्यपतत् तस्माद्ध घर्मः अथय-त्प्रावृज्यत तस्मात्प्रवर्ग्यः। ते देवा अब्रुवन। अहान् वतनो वीरो ऽपादि इति तस्मान्महावीरस्तस्य योरसोव्याक्षरत् तंपाणिभिः सममृजुः तस्मात् सम्म्राट्। तंदेवा अभ्यमृज्यन्त। यथा वित्तिं वेत्स्यमानाः एवं तमिन्द्रः प्रथमः प्राप तमन्वंगमनुन्यपद्यत तं पर्यगृह्णाद्ध तंपरिगृह्येदंयशोभवद्ध यदि दमिन्द्रोयशः।..................सउएवमखः सविष्णुः ततइन्द्रो मखवान भवत्। मखवान् हवैतं मघवान् इत्या चक्षते परोक्षम्।..........ताभ्यो वम्रीभ्यो ऽन्नाद्यंप्रायच्छन्। आपोवै सर्वमन्नं ताभिर्हि इद मभिक्नूयमिवा दन्ति यदिदं किं वदन्ति। अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधान्यभजन्त। वसवः प्रातः सवनं। रुद्रामाध्यन्दिनं सवनं आदित्या स्तृतीय सवनम्। अग्निः प्रातः सवनं। इन्द्रोमाध्यन्दिनं सवनं विश्वेदेवास्तृतीयं सवनम्। गायत्री प्रातः सवनं त्रिष्टुप् माध्यंन्दिनं सवनं जगती तृतोयं सवनं। तेना पशीर्ष्णायज्ञेन देवा अर्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुः।"

देव लोग यज्ञ में आकर बैठे अग्नि, इन्द्र, सोम, विष्णु, विश्वे देव सब ही थे परन्तु अश्वि देव न थे। उन का यज्ञ स्थान कुरुक्षेत्र था। वे इस लिए बैठे थे कि श्रीपायें यश लें अन्नाद बनें। वे कहने लगे जो हम में से परिश्रम, तप, श्रद्धा, और आहुतियों से यज्ञ की सब क्रियाएं को सब से पहले जान ले वह हम में सब से अच्छा है। विष्णु ने सबसे पहले समाप्त किया। वही विष्णु है वही यज्ञ है। वही यज्ञ वही आदित्य है। तब विष्णु उस यश को संयमम न कर सका। वह धनुष ले कर निकल पड़ा। वह धनुष की ज्याओं से सिर को टेक कर बैठ गया उसी के इर्द गिर्द सब देव उस को न छेड़ छाड़कर के बैठ गये। उन दीमकों ने कहा कि जो इस की ज्या को भी खा जाय उस को क्या दोगे। वे बोले कि हम अन्नादि

देंगे। यह स्वीकार करके दीमकों ने निकल कर उस के धनुष की डोरी खाडाली। उस डोरी के कट जाने से धनुष की दोनों कोटिएं एक झटके से उछली और विष्णु का सिर कट गया। और घृङ् ङ् ङ् कर के दूर चला गया। वह गिर कर सूर्य होगया। शेष पहले ही पानी पानी होगया। घृङ् ङ् करके गिर पड़ने से धर्म कहलाया प्रवर्जन करने से प्रवर्ग्य बना। वे देवता बोले हमारा महावीर मर गया। उस से महावीर कहलाया। उसका जो रस चुआ उस के देव लोग हाथों से साफ करने लगे इस से सम्राट् कहलाया। फिर देव उसे पूंछने लगे जैसे कुछ खोई वस्तु को ढूंढा करते हैं इस प्रकार सब से पहले इन्द्र को वस्तु मिली प्रत्येक अंग में से वही वस्तु मिली उस को ले लिया और इकट्ठा कर लिया सो ही यश होगया इसी से इन्द्रयश है। वही मख है वही विष्णु है उस से इन्द्र मखवान् कहलाया। मखवान ही मघवान कहा जाता है। देवतों में उन दीमकों को अन्नाद्य दिया। आप ही सब अन्न हैं इसी से वे सब चीज़ों को पानियों से गीला कर के खा लेती हैं। यही उन श्रुति है। उस यज्ञ रूप विष्णु के तीन हिस्सों में बांटा। वसु प्रातः सवन, रुद्र माध्यं दिन सवन, आदित्य तृतीय सवन, अग्नि प्रातः सवन, इन्द्र माध्यं दिन सवन, विश्वेदेव तृतीय सवन। उसी बिना शिर के यज्ञ से देवता तो पूजा करते तथा परिश्रम करते भ्रमण करने लगे।"

इस उद्धरण से स्पष्ट यह होता है कि विष्णु यज्ञ स्वरूप है विष्णु रस स्वरूप है। विष्णु का शिर सूर्य स्वरूप है। अतएव सूर्य को भी विष्णु स्वरूप या देवता स्वरूप मान लिया जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। विष्णु ही सर्व देवताओं में श्रेष्ठ है। इन्द्र और विष्णु का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। विष्णु का शेष धड़ प्रवर्ग्य रूप है। प्रवर्ग्य एक यज्ञान्तर्गत इष्टि है। इष्ट सम्पादन या धर्म सम्पादन इसका मुख्य उद्देश्य है।

इस यज्ञ स्वरूप विष्णु का वर्णन अलंकार रूप कैसी सुन्दरता से शतपथ के उपरोक्त उद्धरण में उल्लचित् है। उपरोक्त पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ जी का सूर्य परक विष्णु को लगाना भी शिरोभाग मात्र सूर्य को लक्ष्य में रख कर समीचीन ही है। परन्तु शिर को ही सर्वस्व न मानकर शेष विष्णु के शरीर पर भी ध्यान देना उचित था। सो केवल सूर्य को विष्णु का पद न देकर यज्ञ का रूप पर विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

यज्ञ रूप विष्णु को भी इन रूपों में बांटा गया है प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, तथा तृतीय सवन, इनको भी इन विभागों में किया गया। प्रथम श्रेणी के देवता क्रम से वसु, रुद्र, आदित्य है। द्वितीय के अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव हैं तृतीय में गायत्री त्रिष्टुप् जगती हैं। इसकी प्रथमादि भौतिक यज्ञ द्वितीय आधिदैविक यज्ञ तथा तृतीय आध्यात्मिक यज्ञ है। इस प्रकार तीनों ही विष्णु के स्वरूप है। इसी याज्ञिक स्वरूप का वर्णन पौराणिक साहित्य में वराहावतार के रूप से किया गया जैसा कि मत्स्य पुराण के २४९ अध्याय में पृथिवी उद्धरण प्रकरण में:-

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्म शीर्षो महातपाः
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्ग श्रुति भूषणः
आज्यनासः स्रुवस्तुण्डः सामघोष स्वनोमहान्
सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्म विक्रमसत्कृतः
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः
वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थि विकृतिःसोमशोणितः
वेदस्कन्धोहविर्गन्धोहव्यकव्य विभागवान्
प्राग् वंशकायोद्युतिमान् नाना दीक्षाभिरन्वितः
दक्षिणा हृदयो योगी महासत्रमयो महान्
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्त्त भूषणः
नाना छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः
छाया पत्नी सहायोऽसौ मणिशृंगइवोच्छ्रितः
रसातल तले मग्नां रसातलतलं गतां।
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहारताम्
ततः स्वस्थानमानीय वराहपृथिवीधरः
मुमोच पूर्वं मनसा धारिताचवसुन्धरा
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगतापुरा।

अर्थात्—"पृथिवी देवी का उद्धार करने वाले महावराह इस प्रकार था कि जिस के पैर वेद दाढ़ यूप, दन्त क्रतु मुख चितिथा। जीभ अग्नि, रोम दाभ, सिर ब्रह्मा, था। दिन रात उसकी आंखें, वेद के अंग ही उस के भूषण थे। आज्य उसकी नाक, श्रुव उसकी थूथन, साम का घोष उसका महान स्वर था।' वह स्वयं सत्यधर्म का बना हुआ शोभायुक्त पशु रूप जानुओं वाला (मख) यज्ञ का आकार धारण करने वाला था। उद्गाथ होम ही जिसका लिंग है। बीज और ओषधि ही जिसका फल है। वायु ही जिसकी अन्तरात्मा है। यज्ञ की विकृति ही अस्थि हैं सोमरस ही जिसका रुधिर है। वेद के ही जिस के कन्धे बने हैं। जिस की हवि ही गन्ध है। हव्य कव्यमय विभागों से युक्त है। प्राची दिशा का वंश ही जिसका मेरुदण्ड है। इस प्रकार द्युति कान्ति से युक्त नाना दीक्षाओं से समन्वित, दक्षिणामय हृदय को धारण करने वाला महासत्यस्वरूप स्वतः महान् उपाकर्म रूपी होठावाला प्रवर्ग्य से सूभूषितः है। नाना प्रकार के छन्द ही जिसकी नाना प्रकार की गतिये हैं। गूढ़ उपनिषद् ही जिसकी स्थिति का आसन है। छाया अर्थात् कान्ति प्रकृति ही जिसकी सहायक पत्नी है। वो इस प्रकार के स्वरूप वाला माणियों के वने शिखर वाले पर्वत के शिखर की न्याई उठा हुआ था। उसीने रसातल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया। इस प्रकार **यज्ञ-वराह** रूप हो कर भगवान् ने सब भूतों के हित करने की इच्छा से सागर से पृथ्वी का उद्धार किया।"

इस प्रकार पाठक देखते है कि विष्णु का सिवाय यज्ञरूप के अन्यरूप वराह अवतार कल्पना करने पर भी नहीं बना। यह सब यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो ऊपरि लिखित **यज्ञो विष्णुः** इस श्रुति के आधार पर ही है।

विष्णु से सूर्य का ग्रहण करने में एक यह भी दोष है कि सूर्य सिद्धान्ती भविष्य पुराण के इस वचन से विरोध आता है।

"आदित्य को ब्रह्मा कहा जाता है और नक्षत्रों में चन्द्रमसी विष्णु है और तीसरा ताराग्रह महेश्वर है।"*

(÷) i विष्णु स्मृति के २ सेर अध्याय में भी ठीक इसी प्रकार यज्ञमन वराह का वर्णन है।

(*) आदित्य उच्यते ब्रह्मा विष्णुस्तेषां तु चन्द्रमाः
महेश्वरस्तु विज्ञात स्तृतीयस्तारकाग्रहः॥ ४३॥
(भविस्य ब्राह्मपर्व अ० १२५)

व्यापनशील विष्णु परमात्मा का वैदिक वर्णन हमगत अध्यायों में विस्तार से दिखा चुके परन्तु उसी विष्णु का पौराणिक स्वरूप भी कुछ विचारणीय तथा ध्यान देने के योग्य है।

पौराणिक रूप में विष्णु के नाम से कमल वक्षःस्थल श्रीवत्स तथा कौस्तुममणि नाना पुष्पों की गले में माला एवं पीताम्बर धारण शेष नाम के पर्यंक पर शयन एवं चतुर्हस्तों में शङ्ख चक्र गदा पद्म का धारण आदि अन्य अभिराम रूप कल्पित है। इस का एक व्याख्यान श्री पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ जी की सम्मति द्वारा हम गत पत्रों में दिखा चुके। अब पुराण स्वतः इस की क्या व्याख्या बतलाते हैं सो भी देखिये।

बराह पुराण में विष्णु के उत्पत्ति के बारे में इस प्रकार लिखा है:—

(बराह पुराण० अ० ३१)

"विष्णु को चिन्ता हुई कि मैंने सृष्टि को बनाया तो मुझे ही पालना भी होगा। परन्तु बिना मूर्त्ति धारण किये कर्मकाण्ड का करना बहुत असम्भव है। इसलिए मैं भी एक मूर्त्ति बनाऊं जिससे यह संसार पाला जाय। इस प्रकार सत्य ही ध्यान करते हुव (हे राजन) प्रथम काल में उत्पन्न की गई सारी सृष्टि मूर्त्तिमान् हो प्रतीत होने लगी। आगे ही नारायण भी हुवे। उस नारायण के देह में ही सब त्रैलोक्य को प्रविष्ट होते देखा। यह देख विष्णु को पुराना वरदान याद आया। नारायण ने यागादिकों द्वारा तुष्ट होकर वर दिया और कहा कि तुम सर्वज्ञ सर्वकर्त्ता और तीनों लोकों के प्रतिपालन से सब लोकों से पूजित हो जाओ। इस प्रकार विष्णु भी अपनी पूर्व बुद्धि स्मरण करके योग निद्रा में सोगया और योग निद्रा में इन्द्रियों के विषयों से पैदा होनी वाली प्रजा पररूप ध्यान कर के सुप्त हो गया। उस के सोते २ के पेट से बड़ा भारी पद्म निकल आया। जिसका रूप सातों द्वीपों सहित तथा कानन और समुद्रों सहित पृथिवी ही का था। कर्णिकाभाग में मेरु था। और उस के कमल के बीच में ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उस के इस प्रकार के रूप को देखकर वायु ने प्रसन्न होकर अपने आप को सजा। अविद्या को विजय करने के लिए शंख धारण कराया। अज्ञान के छेदन के लिए खड्ग को धारण किया। काल चक्र स्वरूप घोर चक्र भी धराया अधर्मराज के घात के लिए गदा दी भूतों की मातास्वरूप माला कण्ड में धारण करायी। चन्द्र और आदित्य के व्याज से श्रीवत्स और कौस्तुम भी पहनाये। (मरुत) वायु की गति ही गरुत्मान् कहाया। तीन लोकों में व्याप्त (शोभा) देवी लक्ष्मी उस की पत्नी निर्धारित की। इस प्रकार उपरोक्त विष्णु के स्वरूप की व्याख्या पुराण में कहीं कहीं पायी जाती है। इस से भी वही परम-परमात्मा जिसका चरा-चर में व्याप्त होकर पैदा करता तथा पालता और नाश करता है उसी का रूपान्तरण वर्णन है।

यही विष्णु वास्तव में रुद्र है यही ब्रह्मा इस में कोई सन्देह नहीं है परन्तु कार्य-भेद से देवता का विभेद है जैसा कि वराह-पुराण में ही अन्यत्र इस प्रकार भी लिखा है।

रुद्र उवाच:—

विष्णुर्देवपरं ब्रह्म त्रिभेदमिहपठ्यते
वेदसिद्धान्त मार्गेषु तन्न जानन्तिमोहिताः
विशप्रवेशनेधातु स्तत्रस्नु प्रत्ययादनु
विष्णुर्यः सर्व देवेषु परमात्मा सनातनः
यो प्रविष्णुस्तुदशधा कीर्त्यते चैकधाद्विजाः
स आदित्यो महाभाग योगैश्वर्य समन्वितः।
सृष्टिकालेचतुर्वक्त्रं स्तौभिकालोभवामिच
ब्रह्मादेवा सुराः स्तौति मांसदा तुकृते युगे।
लिङ्ग मूर्त्ति श्चमांदेवा यजन्ते भोगकांक्षिणः
सहस्र शीर्षक देवं मनसातु मुमुक्षवः।
यजन्ते यं स विश्वात्मादेवो नारायणः स्मृतः
ब्रह्मयज्ञेन ये नित्यं यजन्ते द्विजसत्तमाः
ते ब्रह्माणं मींणयन्ति वेदो ब्रह्मा प्रकीर्त्तितः।
नारायणः शिवोविष्णुः शंकरः पुरुषोत्तमः
एतेषु नामभि ब्रह्म परं प्रोक्तम् सनातनम्।
कर्मवेदयुजां विप्र ब्रह्मा विष्णुमहेश्वरः
वयं त्रयोऽपि मन्त्राद्या नात्र कार्या विचारणा
अहं विष्णुस्तथावेदा ब्रह्मकर्माणिचाप्युत
एतात्रयन्त्वेक मेव न पृथग् भावयेत्सुधीः।
अहं ब्रह्माच विष्णुश्च ऋग् यजुः साम चैव तु
तेनास्मिन् भेदमप्याहुः सर्वेषां द्विजसत्तमाः।
[वराह पु०—प्रकृतिपुरुषनिर्णये अ० ७२]

अर्थात्—"रुद्र बोले—विष्णु ही पर ब्रह्म तीन भेद वाला वेद सिद्धान्त के ग्रन्थों में पढ़ा जाता है। परन्तु मोह युक्त लोग इस बात को नहीं जानते। विश् धातु से नु प्रत्यय करने से विष्णु सिद्ध होता है जिसका सर्व देवों में सनातन परमात्मा यही अर्थ है। यही विष्णु दश रूपों से तथा एक रूप कहा जाता है। योग और ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण आदित्य कहाता है। सृष्टि के समय में

वही ब्रह्मा है जिसकी मैं स्तुति करता हूं और स्वतः पैदा होता हूं। कृतयुग में ब्रह्मा मेरी स्तुति करता है। देव लोग भोग की इच्छा करते हुये लिंग रूप में पूजते हैं। मुमुक्षु मोक्ष की इच्छा करने वाले अपने मन द्वारा हजारों सिरों वाले जिस देवकी (**सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः०**] वे पूजा करते हैं वही सबों का आत्मा देव नारायण स्मृतियों में कहा है। ब्रह्मयज्ञ से जो लोग नित्य पूजा करते हैं वे ब्रह्मा को सन्तुष्ट करते हैं। वेद ही ब्रह्मा कहलाता है। नारायण, शिव, विष्णु, शंकर, पुरुषोत्तम इन सब देवतो में भिन्न २ नामों से सनातन ब्रह्म ही कहा जाता है। कर्मकाण्ड तथा वेद के साथ योग करने वाले पुरुषों के ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देव हैं। हम तीनों ही मन्त्र के आदि भाग प्रणव ओंकार रूप है इस में कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं विष्णु वेद जो ब्रह्म के ही कर्म भूत हैं बुद्धिमान इन तीनों को एक ही जाने, अलग २ नहीं। मैं ब्रह्मा, विष्णु और ऋग् यजुः तथा साम इन सबों में विद्वानों ने कुछ भी भेद नहीं कहा।"

इस प्रकार जब उस पर ब्रह्म का स्वरूप ही विष्णु शब्द तथा विष्णु वाच्यार्थ से भी प्रति पाद्य है तब उस के परमस्वरूप को छोड़ कर तदितर रूप पर आग्रह पूर्वक विश्वास करना सन्मार्ग नहीं।

उसी पर ब्रह्म के साथ तीन लोक तीन पाद तथा तीन रूप के लगने से विष्णु के तीन पादों की कल्पना बड़ीसा रगर्भित लक्षित होती है। इसी लिये वेदान्त श्रुति कहती है।

" एतावानस्य महिमाअतोज्यायांश्चपूरुषः।
पादोऽस्या विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि॥"

तथा—

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विश्वङ्व्यक्रामत् साशनानशनेअभि॥

[यजु० अ० ३१, ३, ४,]

ये सब चराचर उसी की महिमा है। वह महान् पुरुष इससे भी बड़ा है। सब भूत इस के एक पाद है तीन पैर अमृतस्वरूप द्यौ लोक में हैं।

पुरुष तीन पाद ऊपर उठा एक पैर ही उसका यहां रहा इस प्रकार वह सर्व चर अचर में विक्रान्त 'व्याप्त' हुआ।

विष्णु का त्रिविक्रम नाम भी इसी वेद मन्त्र के आधार पर है। जो कि वामन अर्थात् स्वल्प ज्ञानवाले पुरुषों की दृष्टि में तुच्छ रहता हुआ भी सर्वस्वदान देने वाले बलि की दृष्टि में सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हुआ हुआ ज्ञात होता है। अतःएव बलिदान देकर भी लोक को छोड़ पाताल बद्ध हुआ यहां भी **तेनत्यक्तेन भुंजीथाः,'** इस उद्देश्य को दृष्टि में रखा गया है। **अप एव ससर्जादौ इत्यादि** तथा **आपोनारा इति प्रोक्ता** इस मानवीय सिद्धान्त के आधार पर पूर्वोक्त प्रकार से नारायणादि नाना कल्पनाओं का मूल भी स्पष्ट हो जाता है।

विष्णु के दश अवतार मुख्य माने जाते हैं जिनमें से परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गौतम बुद्ध तथा भगवती और बल कर्म करने वाला इन्द्र इत्यादि वीर ये सब आदर्श वीर पूजा के सिद्धान्त पर देव रूपेण पूजित होकर अवतार कहलाए हैं। अवतार नरसिंह कूर्म बराह मत्स्यादि शेष है इनका विशेष व्याख्यान अवतार प्रकरण तथा अवतार व्याख्या में किया जायगा। विष्णु के साथ सम्बद्ध कथा तथा उपाख्यानों का विशेष प्रक्रम आगे के अध्यायों में स्थान २ पर दिखाया जायगा।

अब क्रम प्राप्त ब्रह्मा की आलोचना करेंगे।

ब्रह्मादेव

हम पहले दिखा आए हैं कि ब्रह्मा का कार्य सृष्टि करना है। जैसा कि कूर्म पुराण में लिखा है

ससर्व लोक निर्माता मन्नियोगेन सर्ववित्।
"भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसंम्भवः"॥

चतुर्मुख ब्रह्मा जो सब लोकों को बनाने वाला है मेरे ही आदेश से सर्वज्ञ हो कर सृष्टि को पैदा करता है। इस ब्रह्म देव के संस्कृत साहित्य में निम्न लिखित नाम उपयुक्त होते हैं।

"ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः
हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः
धाताऽब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः
स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः
नाभिजन्मांडजः पूर्वोनिधनः कमलोद्भवः ।
सदानन्दो रजोमूर्त्तिः सत्यकोहंसवाहनः ।"

यह बीस २० नाम ब्रह्मा के हैं जिनमें सुर ज्येष्ठ परमेष्ठी लोकेश यह महिमा सूचक हैं आत्मभू और स्वयंभू ये स्वरूप को दिखाने वाले हैं । हिरण्यगर्भ अंडज सदानन्द रजो मूर्ति सत्यक ये नाम प्राकृतिक रूप का वास्तविक रूप दर्शाते हैं । चतुरानन नाभि जन्मा कमलोद्भव हंसवाहन अब्ज योनि ये कल्पित रूप की सूचना देते हैं । धाता, द्रुहिण विरिञ्चि स्रष्टा प्रजापति वेधा विधाता विश्वसृड् विधि यह उस के क्रियात्मक कार्य का परिचय देते हैं ।

इस प्रकार नाम—आलोचना मात्र से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा देव भी नाना दृष्टियों से देखा गया है ।

उपरोक्त पण्डित जी निरुक्त देवता के क्रम से ब्रह्मा को वायु रूप मानते हैं इस कथन की पुष्टि में वे निम्न लिखित प्रमाण देते हैं ।

(१) ब्रह्मा को विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल से पैदा हुवा माना गया है । परन्तु प्राक्प्रतिपादितानुसार सूर्य रूप विष्णु जो आकाश समुद्र में सोते हैं—किरण रूपनाल के स्पर्श से पृथ्वी लोक में वायु बहने लगता है ।

(२) चारों दिशाओं में बहने से वायु चतुर्मुख है ।

(३) वायु जब जैसा चाहता है वैसा बहता है इस प्रकार इस में रुद्र की न्यायी नेत्र की तथा विष्णु के तुल्य बाहु की विशेषता न होकर इस में मुख की ही विशेषता है ।

(४) ब्रह्मा की कन्या वाक या सरस्वती थी ब्रह्मा ने मोहित होकर काम पूर्वक उसी को अपनी पत्नी बना लिया । ऐसी कथा पौराणिक सम्प्रदाय सम्मत है । परन्तु यह बात वायु को ब्रह्मा मानने से बहुत अच्छी लगती है । वायु के नाना आघातों से मुख में वाक् का उद्भव हुवा और मुख से बाहर होकर वायु में ही लुप्त हो जाती है । मानो वायु ने उसे फिर ग्रहण कर लिया ।

(५) वायु की दूसरी स्त्री का नाम सावित्री है यह और कोई विशेष स्त्री नहीं परन्तु सविता सूर्य की शक्ति वही सावित्री है उसीकी शक्तिवायु लेकर स्वतः बहने लगता है ।

(६) ब्रह्मा का वाहन हंस है । परन्तु हंस नाम सूर्य का भी आता है । अतः श्वेतादि गुण साम्य होने से वही सूर्यमय हंस वायु का बाहन होजाता है ।

(७) कमल का नाम पुष्कर भी आता है ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान तथा निवास-स्थान यही पुष्कर है यह पुष्कर अन्तरिक्ष ही कहाता है। क्योंकि वायु अन्तरिक्ष में ही बहता है।

(८) ब्रह्मा का दिन बहुत बड़ा माना गया है एक कल्प एक दिन है वायु सृष्टि पर्यन्त शयन नहीं करता इसका चलन ही जागरण सृष्टि है तथा शयन ही प्रलय है ।

(९) **तदेतत् ब्रह्मा प्रजापतये उवाचादि**--श्रुतिस्मृत्यादि वचनों में ब्रह्मा-देवता का ग्रहण नहीं प्रत्युत ब्रह्मा विद्वान् तथा ब्रह्मा ऋषि का ग्रहण है ।

(१०) जैनकाल में जैनियों की प्रतिद्वन्द्वता में स्थापित देवतों के बीच में वायु रूप देवता की भी किसी विशेष स्थान पर प्रतिष्ठा या स्थिति न होने से इस का प्रतिष्ठापन ही नहीं किया अतएव ब्रह्मा की पूजा बहुत न्यून होती है ।

इस प्रकार ब्रह्मदेव के बारे में हम ने संक्षेप से सर्वांश-रूपेण ब्रह्मा विषयक पं० जी का अभिप्राय कह सुनाया । यह भी एक बहुत अच्छा तथा साधारण ब्रह्म-देवता का व्याख्यान है । परन्तु बहुतसी मुख्य २ बातों का जिनका सम्बन्ध पुराण साहित्य ने ब्रह्मा के साथ जोड़ा है संतोषप्रद व्याख्या नहीं प्रत्युत एक अत्यन्त तुच्छ वादरायणसा सम्बन्ध जोड़ कर उत्कृष्ट कल्पना को भी कुछ रूक्षता से उपेक्षित कर दिया गया है ।

ब्रह्मा की सबसे मुख्य बात सृष्टि को उत्पन्न करना है उपयुक्त यह था कि सृष्टि क्रम का विस्तार से रूप दिखाकर उस में ब्रह्मा का स्वरूप दिखाया जाता।

इसी प्रकार अन्यान्य सम्बद्ध घटनाएं भी एक संवादिता रूप से कथन करनी उपयुक्त हैं।

अब हम पण्डित जी के मत को रख चुके और स्वतन्त्ररूप से ब्रह्मा की आलोचना करते हैं।

ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से

पुराण-साहित्य में ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुए कमल से हुई वर्णित है। जिस प्रकार देवीभागवत में लिखा है कि:—

"एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः।
पद्मनाभेर्नाभिपद्मा निःससार महामुनि ॥ ७८ ॥

(देवी भागवत नवमस्कन्धः)

इसी प्रकार भागवत में भी:—

सपद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता
स्वयंभुवं यंस्म वदन्ति सोऽभूत्
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र
श्चत्वारि लेभेनुदिशंमुखानि ॥

अर्थात् पद्मकोश सहसा नाभिकमल से उठ खड़ा हुआ उसी में से वेदमय ब्रह्मा जिस को स्वयंभू कहा जाता है आकाश में चक्कर लगाता हुआ और नेत्र को घुमाता हुआ पैदा हुआ और प्रत्येक दिशा में एक २ मुख को उसने पाया।

आग्नेयपुराण में ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान पद्म नहीं प्रत्युत हिरण्यगर्भ में ही ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है यथा—

ततः स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः
अपएवससर्जादौ तासुवीर्यमवासृजत्
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
अयनंतस्य ताःपूर्वं तेन नारायणः स्मृतः

हिरण्यवर्णमभवत् तदण्डमुदकेशयम्
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्
हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवम्भुवमथापि च ।
तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत् प्रभुः
अप्सुपारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।

[आग्नेयपु० १७ अ० ६—११]

"फिर परमात्मा ने नाना-प्रकार की सृष्टि रचना की इच्छा से अप: बनाये और उसी में अपने वीर्य (शक्ति) का आधान किया । आप ही नार कहलाते हैं उन्हीं में उसका स्थान होने से परमात्मा नारायण है । सुवर्ण के वर्ण का पानी में सोने वाला एक अण्ड [चक्र] पैदा हुआ उसी में स्वयं ब्रह्म जिन को स्वयम्भू भी कहा जाता है पैदा हुए । एक ब्रह्मदिन तक उन स्वयंभू हिरण्यगर्भ ने अपने उस अण्ड के दो भाग कर दिये । एक पृथ्वी और दूसरा द्यौलोक । उन दोनों खण्डों के बीच में परमात्मा ने आकाश को बनाया । पानियों में तैरती हुई पृथ्वी को बनाते हुए दिशाएं भी दश बनादीं ।"

इस सृष्टि रचना के प्रकरण पर विचार करने से सकल ब्रह्माण्ड को चक्रवद् भ्रमण कराने वाली प्राकृतिक रूपमय शक्ति का नाम ही ब्रह्मा है तथा आपोमय सकल संसार के होने से तत्संयुक्त अपरा शक्ति का नाम सरस्वती है । सकल ज्ञान को अव्याकृत रूप में अपने अन्तधारण करने से वेदविज्ञान का धारण भी समञ्जस है इसी से वेदमय यह ब्रह्मा का विशेषण भी संघटित होता है ।

इस के और भी स्पष्ट व्याख्यान के खोज निकालने के लिए हम और अनुशीलन करते हैं । प्रथम यह जानना ही अत्यन्त आवश्यक है कि बहु-पद्म क्या है जिस में कि ब्रह्मा आकर बैठे फिर यह निर्णय किया जायगा कि ब्रह्मा क्या होना चाहिए ।

मत्स्यपुराण में पद्म को पृथ्वीमय कहा है । उसी-पद्म का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"पद्म नाभ्युद्भवश्चैव समुत्पादितवांस्तदा ।
सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥

(मत्स्य. अ० १६८, १५)

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्‌भूरितेजसम् ।
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥ १ ॥
यस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते ।
सर्वतेजो गुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम् ॥ २ ॥
तच्चपद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम् ।
नारायण समुद्भूतम् प्रवदन्तिमहर्षयः ॥ ३ ॥
या पद्मा सारसादेवी पृथिवी परिचक्ष्यते ।
ये पद्मासार गुरवस्तान्दिव्यान् पर्वतान्विदुः ॥ ४ ॥
एभ्यो मत्स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् ।
दिव्यास्तीर्थशताधाराः सुरम्याः सरितः स्मृताः ॥ ५ ॥
स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणि समन्ततः ।
असंख्ये याः पृथिव्यास्ते विश्वे वै धातुपर्वताः ॥ १० ॥
यानिपद्मस्य पर्णानि भूरीणि तु नराधिपः ।
ते दुर्गमाश्शैलाचिताः म्लेच्छदेशाविकल्पिताः ॥ ११ ॥
यान्यधो भागपर्णानि ते निवासास्तुभागशः ।
दैत्यानामुरगाणाञ्च पतंगानाञ्च पार्थिव ॥ १२ ॥
तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम् ।
महा पातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥ १३ ॥
पद्मस्यान्तरतोयस्तदेकार्णवगतामही ।
प्रोक्ताथदिक्षुसर्वासु चत्वारः सलिलाकराः ॥ १४ ॥
एवं नारायणस्यार्थे महीपुष्करसम्भवा ।
प्रादुर्भावोप्ययं तस्मान्नाम्नापुष्करसंज्ञितः ॥ १५ ॥

(मत्स्य० अ० १६९)

विष्णु ने अपने नाभी से पैदा होने वाले सहस्रों पत्तियों से युक्त रजो रहित सूर्य के सदृश दीप्ति वाले सुवर्णमय पद्म को पैदा किया ।

उस के बाद अत्यन्त तेजोमय योगियों में श्रेष्ठ सब लोकों को पैदा करने वाले चहुं ओर मुखों से युक्त ब्रह्मा को पैदा किया।

जिस स्वर्णमय पद्म में नाना योजन लम्बे चौड़े ब्रह्मा को पैदा किया जो कि सर्वतेज तथा गुणों युक्त था सब पार्थिव चिन्हों से ढका हुआ था। उसी पद्म-पुराण को जानने वाले लोग उत्तम पृथिवीरूप कहते हैं जो कि नारायण से पैदा हुआ है, जो पद्म वही रसा पृथिवी कहाती है। जो पद्म के सार गुरु मध्य में उठे हुए लिंग भाग कर्णिका आदि हैं वे दिव्य हिमालयादि पर्वत हैं इन से जो पानी झरता है वही दिव्य अमृत के तुल्य नाना तीर्थों से युक्त रमणीय महा नदियें हैं। पद्म के जो केसर हैं वही पृथिवी के नाना धातुओं के पर्वत हैं। जो पद्म के पत्ते हैं वे शैलों से ढके हुए म्लेच्छों के देश हैं जो अधो-भाग में पत्ते हैं वे दैत्य उरग पतंगादिकों के निवास स्थान हैं। और पद्म के मध्य भाग में एक समुद्र में प्रविष्ट जो भूभाग है वे ही सब दिशाओं में महा समुद्र हैं इस प्रकार नारायण के लिए यह पृथ्वी पुष्कर से पैदा हुई इसी लिए इस का नाम भी पुष्कर ही रखा गया है *।

इससे पाठक देख सकते हैं कि पद्म की उत्पत्ति तथा ब्रह्मा का अलंकार किस सुन्दरता से व्याख्यान किया है। जब वास-योग्य तथा मानवादि भूत सर्ग के उपयुक्त पृथ्वी का निर्माण हो चुका तभी तन्मय ब्रह्मा पैदा होकर सृष्टि करने लगे कैसा उपयुक्त जान पड़ता है। अन्यथा नारायण समुद्र में पड़े सोवें तो ब्रह्मा कमल में लगे बच्चे की न्याईं सृष्टि पैदा करें तो कहां पर ? । इस से पृथ्वी को ही पद्म मानकर सृष्टि का प्रक्रम उपयुक्त प्रतीत होता है।

अब हम पाठकों के समक्ष ब्रह्मा का स्वरूप दर्शाने का प्रयत्न करते हैं।

---

* यही और इसी प्रकार की व्याख्या महाभारत में भी-

मानसस्येह या मूर्त्तिं ब्रह्मत्वंसमुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥ ३८ ॥
कर्णिकातस्य पद्मस्य मेरुर्गगनसमुच्छ्रितः।
तस्यमध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः ॥ ३९ ॥

(महा० शान्ति०, अ० १८२)

अग्निषोमौ च चन्द्राकौं नयनेतस्य विश्रुते ।
नभश्चोर्ध्वशिरस्तस्य क्षितिः पादौ भुजौ दिशः ॥ २१ ॥
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मासिद्धैरपि न संशयः ॥ २२ ॥

[बृहन्नारदीय अ० ४२]

मानस नाम का देव जिस का न आदि तथा अन्त है अजर और अमर रूप अव्यक्त नाम से विख्यात है वही शाश्वत अक्षय तथा अव्यय है जहां से सब भूत पैदा हुए तथा जहां लीन होते हैं उसी देव ने सब से पहले महान् को पैदा किया जिस का दूसरा नाम आकाश है। आकाश से जल हुए जल से अग्नि तथा वायु । जल और वायु के संयोग से पृथिवी पैदा हुई उन सबों से तेजोमय पद्म बनाया गया। उस पद्म से वेदमय सब के विधाता ब्रह्मा पैदा हुए जिस का नाम अहंकार है जो सब प्राणियों में अहं स्वरूप को बनाता है । वहीं पंच धातुयें ही महत्तेजो रूप ब्रह्मा हैं । उसकी अस्थिसंध ही हड्डियें हैं। मेद और मांस पृथिवी रूप है । समुद्र ही उसका रुधिर है पवन ही निःश्वास है तेज ही कान्ति तथा नदियें हैं । अग्नि सोम और चन्द्र तथा सूर्य ये दोनों नयन, नभोमण्डल उच्च स्थित शिर, तथा सम्पूर्ण भूतल पैर, और दिशायें भुजाएं हैं एतादृश ब्रह्मा का रूप है।

इस प्रकार सृष्टि का प्रक्रम कितना स्पष्ट हो जाता है और पौराणिक अलंकार वर्णन का रहस्य भी खुल जाता है अब इस गूढ़ रहस्य का वैदिक मूल देखिए ।

"सोऽकामयत अद्भ्यो अद्भ्यो ऽधिप्रजायेयेति। सोऽनयात्रय्या विद्यया सह आपः प्राविशत् । तत आण्डं समवर्त्तत । तदभ्यमृशदस्त्वित्यस्तु भूयोऽस्तुइत्येव तदब्रवीत्ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रयीएवविद्या तस्मादाहुः सर्वस्य प्रथमजमित्यपि हितस्मात्पुरुषात् ब्रह्मैव पूर्वं सृज्यत" तदस्य तन्मुखमेवासृज्यत । तस्मादनूचानमाहुरग्निकल्प इति ।

(शतपथ०, ६ का० ब्रा० १४. १०)

उस (पुरुष) ने इच्छा की कि जलों से ही सृष्टि करूं वह तीनों वेदों के साथ जलों में प्रवेश कर गया । तब अण्ड ही बन गया । फिर देखा किया और उसे पसन्द किया और कहा और बनो । तदनन्तर ब्रह्म ही पहले बनाया गया जो त्रयी विद्यास्वरूप है इसी लिए कहा कि ब्रह्म सब से पहले पैदा हुआ था । इसी लिए

उस पुरुष से सब से प्रथम जो ब्रह्म बना था व उस का मुख ही बना था इसी से विद्वान् को अग्नि सदृश कहा है।"

यही सृष्टि क्रम में सब से प्रथम उत्पन्न हुआ ब्रह्म ही पौराणिक कथाओं में ब्रह्मा का रूप धारण किए हुए है। उसने तीन वेदों का स्मरण किया और श्रुति में वह स्वयं त्रयी विद्या है। इसी श्रुति पादित ब्रह्म के रूप को पुराणों में व्याख्यान की ओढ़न उढ़ाई गई है।

इस प्रकार सृष्टि विषयक ब्रह्मा का निरूपण हुआ अन्य ब्रह्मायज्ञ के अधिष्ठाता का नाम भी है जो चतुर्वेदवित् होता हुआ सब ऋत्विजों का साथी तथा अधिष्ठाता होता है।

एक प्राक्काल में ब्रह्मा विद्वान् भी हुआ जिसको लक्ष्य करके:—

"तद्धैतद् ब्रह्माप्रजापतये उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः।" छान्दोग्य, ३, ११,४। ८, १५,१।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्तासब्रह्म विद्या ब्रह्मविद्यामथर्वाय ज्येष्ठपुत्रायप्राह। मुण्डक।

यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वं यो वै वेदांश्चप्रहिणोतितस्मै तंहदेवमात्म बुद्धिप्रकाशः मुमुक्षुर्वैशरणं प्रपद्ये।

ये सब श्रुतिवाक्य सब से प्रथम होने वाले विद्वान् ब्रह्मा केविषयमें होसकते हैं।

परन्तु अण्डमय ब्रह्म में ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि ने क्रियामय वेद का दर्शन किया यह व्याख्या भी अतियुक्ति सम्पन्न होने से मान पा रही है।

अब हम पाठकों का ध्यान रुद्र की ओर खींचते हैं।

रुद्रदेवः

ब्रह्मा और विष्णु की पर्याप्त आलोचना हो चुकी अब संक्षेपतः त्रिमूर्त्ति के तीसरे संहारिक देवता महेश की आलोचना संक्षेप से की जायगी।

लौकिक संस्कृत-साहित्य में महादेव के वाचक निम्नलिखित ४८ शब्द प्रयुक्त होते हैं:—

शंभु, ईश, पशुपति, शिव, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, भूतेश, खण्डपर्शु, गिरिश, गिरीश, मृड, मृत्युंजय, कृत्ति-

वासा, पिनाकी, प्रमथाधिप, उग्र, कपर्दी, श्रीकण्ठ, शितिकंठ, कपालभृत, वामदेव, महादेव, विरूपाक्ष, त्रिलोचन। कृशानुरेता, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नील-लोहित, हर, स्मरहर, भग, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, गंगाधर, अन्धकरिपु, क्रतुध्वंसी, वृषध्वज।

इन शब्दों में शंभुशिवादिशब्द स्वभाव वाचक हैं। शूली आदि शब्द कल्पित वस्तु के सम्बन्ध के द्योतक हैं। ईशानादिशब्द हमारी सम्मति में ये ब्रह्मा वायु नहीं हैं और न कोई कमलासन पुरुष विशेष हैं प्रत्युत एक सर्ग कारिणी प्रभुशक्ति कल्पित प्रतिनिधि मात्र हैं जिनका नाम ब्रह्मा है और सहवासिनी सरस्वती है जिस के लिए पुराण ने **"या पद्मा सारसा देवी"** ये भाव गर्भित शब्द कहे हैं रसादेवी ही सरस्वती है। वाहन हंस शुक्र या Protoplasm उसका वाहन अर्थात् उत्पादक शक्ति का आश्रय भूत है। अन्यथा जगत्सर्ग ही नहीं हो सक्ता।

पृथ्वी सदृश महत्पद्मासन पर ज्ञानमय होकर व्याप्त ब्रह्मा नाम की शक्ति का प्रतिनिधि कोई छोटा तथाअल्प शक्ति नहीं हो सकता प्रत्युत महदाकार ही होगा। अब उसका वर्णन भी विस्तार से वृहन्नारदीय पुराण में मिलता है।

भृगुरुवाच—
मानसोनाम यः पूर्वं विश्रुतो वै महर्षिभिः ॥ १३ ॥
अनादिनि धनो देवः तथा तेभ्यो जरामरः।
अव्यक्तइति विख्यातः शाश्वतोऽथाक्षयोऽव्ययः ॥ १४ ॥
यतः सृष्टानि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ते च।
सोऽसृजत्प्रथमं देवो महांतं नाम नामतः ॥ १५ ॥
आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः।
आकाशादभवद्वारि सलिलादग्निमारुतौ ॥ १६ ॥
अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन् मही।
ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा ॥ १७ ॥
तस्मात्पद्मात्समभवद्ब्रह्मा वेदमयो विधिः।
अहंकार इतिख्यातः सर्व भूतात्मभूतकृत् ॥ १८ ॥
ब्रह्मावै सुमहातेजा य एते पंचधातवः।
शैलास्तस्यास्थिसंघास्स्युर्मेदो मांसञ्चमेदिनी ॥ १९ ॥
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा।
पवनश्चैव निश्वासस्तेजो निर्निम्नगाः शिराः ॥ २० ॥

पद की महत्ता दिखाते हैं स्मरहरादि शब्द प्रतिद्वन्दी के संहार शक्ति के द्योतक हैं त्रिलोचनादि उस के शरीर की रचना को सूचित करते हैं। उग्रादि शब्द प्रकृति के द्योतक हैं।

इस महादेव शंकर या रुद्र के विषय में पूर्वोक्त विद्वान् शिवशंकर जी का एतद्विषयक मत संक्षेप से दर्शाते हैं।

[१] पुराण कल्पित महादेव का वर्णन—जैसा कि उस के नामों तथा कथाओं से मिलता है—सब उग्र प्रभाव, मेघ के अन्दर स्थित अशनि या वज्र का है। क्योंकि रुद्रशब्द की व्युत्पत्ति यह है।

"रुद्रो रौत्तातिसतः रोरूयमाणो रुवतीतिसतः।
यदरुदत्तद्रुद्रस्यरुद्रत्वम्। यदरोदीत्तद्रुद्रस्य
रुद्रत्वमितिहारिद्रविकम्"॥

रुधातु से रुद्र बनता है जो शब्द करता हुआ भागे वह रुद्र है। सो विद्युत्शाली मेघ ही रुद्र है।

[२] इसका वाहन **वृषभ** वर्षा करने वाला है। चारों तरफ चमकने वाली विद्युत लताएं ही जटाएं हैं इसी से **धूर्जटी** कहाते हैं। इन्द्र धनुष ही उसका पिनाक है गिरने वाली विद्युतें बाण हैं। मेघ धारा ही गहरा होने से गंगाधर हैं। मेघ के श्यामवर्ण होने से कृत्तिवासा हैं। सन्निहित चन्द्र होने से चन्द्रभूषण हैं। अहि जलका पर्याय होने से वह अहिभूषण या फणीभूषण भी है। सर्वव्यापक होने से महादेव है। मेघ का शासन करने से अशनि है। औषधि द्वारा सब पशुओं को पुष्ट करने से पशुपति है।

मेघ वर्ण होने से शितिकण्ठ हैं। आग्नेय प्रतिनिधि होने से तीन अग्नियों के आधार पर त्रिलोचन। पंचाग्निमय होने से पंचमुख है।

अग्नि रुद्र है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में निम्नलिखित वेदमन्त्र भी प्रमाण हैं।

[१] अग्निरपि रुद्रउच्यते तस्यैषाभवति।
स्तोमंरुद्रायदृशकम् इति। निरु० दे० ४, ८॥

[२] **अग्नि सुम्नाय**·······

रुद्रं यज्ञानांसाधदिष्टिमपसाम् ।

इत्यादि स्थलों में अग्नि का विशेषण रुद्र आया है । मेघ पर्वतों का आश्रय लेता है सो गिरीश या गिरिशय कैलासवासी आदि भी सिद्ध हैं ।

[३] दूसरा मेघ वाचक सब शब्द वैदिकभाषा में पर्वत के भी वाचक है सो पर्वत सम्बद्ध सब घटनायें विद्युत के साथ चरितार्थ हैं ।

[४] सारा आकाश का वाचक वेद में आया है उसका पुत्र (**दिवस्पुत्र**) वैदिक मन्त्रों में मेघ कहा गया है । सो ही सगर के पुत्रों द्वारा वरसायी जल धारा का पारम्पर्य देखने से गंगा की कथा भी सरल होजाती है ।

[५] अग्नि और भस्म का कार्य कारण भाव तथा नित्य सम्बन्ध होने से भस्म भी रुद्र का भूषण कल्पित है ।

[६] दिगम्बरत्व तो मूर्तिपूजा के प्रवर्त्तक जैनों की मूर्तियों के अनुकरण करने से पश्चात् कल्पित है ।

[७] मेघ गत आग्नेयवज्र विद्युत की उत्पत्ति के लिये अग्नि-सूर्य-चन्द्र-भूमि जल वात यजमान आकाश सभी हेतु हैं सो कारणरूपेण वे भी रुद्र कहलाते तथा अष्ट मूर्त्ति रुद्र में हेतु हैं ।

[८] आहुति आदि देने से नाना वर्षा की ज्वालाएं निकलती हैं सो ही गौरी आदि की आठ माताओं की कल्पना में हेतु हैं ।

इस प्रकार पण्डित जी ने रुद्र का सम्पूर्ण प्रकार मध्य लोकस्थ आग्नेय विद्युत पर लगाया है ।

श्री पंण्डित जी की यह बडी सारिष्ठ व्याख्या है और वास्तव में सम्पूर्ण रुद्राध्यायक के व्याख्यान करने के लिये पथदर्शक है । इस मूल्यवती व्याख्या से हम तदंश में सर्वथा सहमत हैं परन्तु इस के अतिरिक्त पुराणों की कल्पना में केवल आधिभौतिक पक्ष पर ही ध्यान नहीं दिया गया प्रत्युत आध्यात्मिक तथा पारमार्थिक तत्व पर भी बहुत बल दिया गया है । जिसको हम आगे दिखायेंगे । इस के पहले शतपथ के आधार पर वैदिक रुद्रों का स्वरूप दिखाना आवश्यक है ।

१ रुद्र को अष्टमूर्त्ति

" प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत् एक एव सोऽकामयतस्यां प्रजायेयेति । सोश्राम्यत् । सतपोऽतप्यत । तस्माच्छ्रान्तात्तेपानादापोऽसृज्यन्त । तस्मा-त्पुरुषात्तप्तादापोजायन्ते ॥ १ ॥

आपोऽब्रुवन् क्वयंभवाम इति । तप्यध्वमित्यब्रवीत् । ता अतप्यन्त । ताः फेनमसृजन्त । तस्मादपांतप्तानां फेनोजायते ॥ २ ॥

फेनोऽब्रवीत् क्वाहं भवानीति । तप्यस्वेत्यब्रवीत् । सोऽतप्यत । समृदमसृजत । एतद्वै फेनस्तप्यते यदप्सुआवेष्ट्यानःप्लवते । सपदोवहन्यते मृदेवभवति ॥ ३ ॥

मृदब्रवीत् क्वाहं भवानीति । तप्यस्वेत्यब्रवीत् । सातप्यत । सासिकता असृजत । एतद्वैमृत्तप्यते यदेनां विकृषन्ति । तस्माद्व यद्यपि सुमार्त्स्नांवि-कृषन्ति सैकतमिवैवभवति । एतावन्नुतद्यत्क्वाहं भवानीति ॥ ४ ॥

सिकताभ्यः शर्करामसृजत तस्मात्सिकताः शर्करैवान्ततो भवति । शर्कराया अश्मानं । तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो भवति । अश्मनोऽयः । तदश्मनोयो धमन्ति । अयसोहिरण्यं । तस्मादयो बहुध्मातं हिरण्यसंका शमिवैव भवति ॥ ५ ॥

तस्माद्व यदसृज्यताक्षरत् । तद्व यदक्षरत् तस्मादक्षरं यदष्टौकृत्वो-ऽक्षरत् सैवाष्टाक्षरागायत्री ॥ ६ ॥

अभूद्वा इयं प्रतिष्ठा । तद्व भूमिरभवत् सा पृथिव्यभवत् तस्यां प्रतिष्ठायां भूतानि च भूतानां पतिः संवत्सरा. यादीक्षन्त पतिर्गृहपतिसादुषाः पत्नी ॥ ७ ॥

तद्व यानिभूतानि ऋतवस्तेऽथयः सभूतानां पतिः संवत्सरः सः, अथ मासोषाः पत्नी औषसीसा । तानीमानि भूतानि च भूतानांच पतिः संवत्सर उषसिरेतोऽसञ्चित् ससंवत्सरे कुमारोऽजायत सोऽरोदीत् ॥ ८ ॥

तं प्रजापतिरब्रवीत् । कुमार किंरोदिषि । यच्छ्रमात्तपसोऽधिजातोऽसि इति । सोऽब्रवीद्व अनपहतपाप्मावा अस्म्यहितनामा । नाम मे धे हि इति ॥९॥

तमब्रवीद्द रुद्रोऽसि इति तद्द यदस्यनाम अकरोत् अग्निस्तद्रूपमभवद्द अग्निर्वैरुद्रः । यदरोदीत् तस्माद्रुद्रः । सोब्रवीज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मेनामेति ॥ १० ॥

तमब्रवीत् सर्वोऽसीति । तद्यदस्यनामाकरोत् आपस्तद्रूपमभवत् । आपोवैसर्वः अद्भ्योहीदंसर्वं जायते । सोऽब्रवीत् ज्यायान्वा अतोऽस्मीति धेह्येव मे नामेति ॥ ११ ॥

तमब्रवीत् पशुपतिरसि । तद्यदस्यतन्नामाकरोद्द ओषधयस्तद्रूपमभवन्नोषधयो वै पशुपतिः तस्माद्द यदा पशव ओषधीर्लभन्तेऽथपतीयन्ति । सोऽब्रवीज्यायान्वा अतोऽस्मिधेहिमेनामेति ॥ १२ ॥

तमब्रवीदुग्रोऽसीति तद्यदस्य तन्नामाकरोद्द वायुस्तद्रूपमभवद्द । वायुर्वा उग्रस्तस्माद्यदाबलवद्ववात्युग्रोवातीत्याहुः सोब्रवीत्० ॥ १३ ॥

तमब्रवीदशनिरसीति । तद्यदस्य०..........विद्युत्तद्रूप........ विद्युद्वा अशनिस्तस्माद्यं विद्युद्हन्ति । अशनिरवधीद्दइत्याहुः सोब्रवीज्ज्याया ॥० १४ ॥

तमब्रवीद्द भवोऽसीति । तद्यदस्यतन्नामाकरोत् पर्जन्यस्तद्रूपमभवत् । पर्जन्यो वै भवः । पर्जन्याद्धि इद सर्वं भवति । सोब्रवीज्यायान्वे ० ॥ १५ ॥

तमब्रवीन्महादेवोऽसीति । तदस्य यन्नामाकरोत् चन्द्रमास्तद्रूपमभवत् प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः । प्रजापतिर्वै महान् देवः सोऽब्रवीज्या ॥ १६ ॥

तमब्रवीदीशानोऽस्मीति । तद्यदस्य तन्नामाकरोत् आदित्यस्तद्रूपमभवत् । आदित्यो वा ईशानः । आदित्योह्यस्यसर्वस्येष्टे । सोऽब्रवीदेतावान्वास्मि । माभेतः परोनामधास्मति ॥ १७ ॥

तान्येतान्यष्टावग्निरूपाणि । कुमारो नवमःसैवाग्नेस्त्रिवृत्ता ।

अर्थ—पहले प्रजापति ही एक था । उस ने इच्छा की प्रजा उत्पन्न करूं उसने श्रम किया तप किया । उस के श्रम और तप करने से आप पैदा हुआ । इसी तरह गर्म हुवे आदमी से भी पानी ही निकलते हैं । वे आप बोले हम कहां रहें । कहा कि तप करो उन से (**फेन**) झाग पैदा हुआ । इसी से तप्त पानी से फेन पैदा होता है । फेन बोला मैं कहां रहूं । कहा तप करो । उसने तप किया । उस से मिट्टी पैदा हुई । यही फेन का तपना होता है कि पानी में लिपटा हुआ तैरता

है । जब वही और घना होजाता है तो मिट्टी बन जाता है । मिट्टी बोली में कहां रहूं । कहा तप करो उसने तप किया । उस से रेत [सिकता] पैदा हुई । उस मिट्टी का यही तपना है कि इस में हल आदि चलाया जाता है । यद्यपि अच्छी मिट्टी ही बनाने के लिये हल चलाया जाता है वह फिर रेत सा ही होता है । इसी प्रकार रेत ने कहा कि कहाँ रहूँ एवं तप परम्परा से मोटी बालू पैदा हुई इसी से अन्त में बालू भी मोटी बालू ही हो जाती है । मोटी बालू से पत्थर पत्थर, से लोह बनता है क्योंकि पत्थर से ही लोहे को गरम कर के निकाला जाता है । अथः लोहा से सुवर्ण बनता है । क्योंकि लोहा ही गर्म करने से सोना सा चमकता है । बस फिर जो बनाया तो पिघल पड़ा इसी लिये वह अक्षर कहलाया । क्योंकि आठ विकार प्राप्त होकर पिघला तो सो अष्टाक्षरा गायत्री हुआ । वही प्रतिष्ठा हुई । वही भूमि बनी वही फैलायी गई सो पृथिवी बनी उसी प्रतिष्ठारूप पृथिवी में भूत और भूतों के पति ने एक सम्वत्सर के लिये दीक्षा ली भूतों का पति गृहपति हुआ उषा पत्नी थी । ऋतु ही भूत थे भूतों का पति सम्वत्सर था उन सब उषा में वीर्य का आधान किया । एक संवत्सर में कुमार पैदा हुआ वह रोया । उस को प्रजापति ने कहा मत रोवे क्योंरोता है क्योंकि तू श्रम और तप से पैदा हुआ है । वह बोला मेरा मल दूर नहीं हुआ क्योंकि मेरा नाम नहीं रखा, मेरा नाम रखा । इसी से उत्पन्न पुत्र का नाम पाप को नाश करने के लिये रखा जाता है । उसको कहा तू रुद्र है । नाम रखने से अग्नि रुद्र रूप हुआ । रोया सो रुद्र कहाया । वह बोला मैं तो इस से बड़ा हूं मेरा नाम रखो । उसका नाम रखा तू रुर्व (शर्व) है । आप इस रूप के हुऐ आप ही सर्व हैं क्योंकि सब आप से ही पैदा होता है । वो बोला मैं इससे भी बड़ा हूं मेरा नाम रखो । कहा तू पशुपति है । इस नाम के करने से औषधि इस रूप है । औषधि ही पशुपति है जब पशुओं को औषधि मिलती है तभी मोटे ताजे हो जाते हैं । वह बोला मैं इससे बड़ा हूं मेरा नाम रखो । कहा तू उग्र है । ऐसा नाम किया कि वायु ने यह रूप धारण किया । इसीसे जब प्रबल वायु बहता है तो उग्र बहता है ऐसा कहा जाता है । वह बोला मैं इस से भी बड़ा हूं मेरा नाम रखो । कहा तू अशनि है । उसका नाम रखने पर वह विद्युत रूप हुआ । विदूयुत ही अशनि है । जिस को बिजली मार जाती है अशनी मार गई ऐसा कहते हैं । वह बोला मैं इससे भी बड़ा हूं मेरा नाम रखो । कहा गया तू भव है । पर्जन्य ने यह रूप धारण किया । पर्जन्य ही भव है ।

पर्जन्य ही से यह सब पैदा होते हैं। वह बोला मैं इस से भी बड़ा हूं मेरा नाम रखो। कहा गया तू महादेव है चन्द्रमाने वह रूप धारण किया। प्रजापति ही चन्द्रमा है। प्रजापति ही महादेव है। वह बोला मैं इस से भी बड़ा हूं मेरा नाम रखो। कहा गया तू ईशान है। आदित्य ने यह रूप धारण किया। आदित्य ही सब को सामर्थ्य देने वाला है। वह बोला इससे आगे मेरा नाम मत रखो, यही आठअग्नि के रूप हैं। कुमार नवमा है।"

इस वैदिक ब्राह्मण के उल्लेख से महेश्वरकी ८ तनु अर्थात् शरीरों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। जो नीचे दी गई तुलनात्मक सारणी से और भी स्पष्ट हो जायगा।

	कुमार के आठ नाम ब्राह्मण कृत	रुद्रों के लौकिक प्रतिनिधि ब्राह्मण कृत	सृष्टिउत्पत्ति में आठ रूप ब्राह्मण कृत	पुराण कृत रुद्र की आठ मूर्त्ति
१	रुद्र	अग्नि	आपः	अग्नि
२	सर्व	आपः	फेन	क्षिति
३	पशुपति	ओषधयः	मृद्	यजमान
४	उग्र	वायुः	सिकता	वायु
५	अशनि	विद्युत्	शर्करा	भीम
६	भव	पर्जन्यः	अश्म	जल
७	महादेव	चन्द्रमा	अयः	सोम
८	ईशान	आदित्य	सुवर्ण	सूर्य

अथाग्निः रविरिन्दुश्चभूमिरापः प्रभञ्जनम् । यजमानः स्वमष्टौ च महादेवस्यमूर्त्तयः ।

इनका स्वरूपः—

ओ३म् सर्वाय क्षितिमूर्तयेनमः । ओं भवायजलमूर्त्तयेनमः । रुद्रायाग्निमूर्त्तयेनमः । ओं उग्रायवायुमूर्त्तयेनमः । ओं भीमायाकाशमूर्त्तयेनमः ओं पशुपतयेयजमानमूर्त्तयेनमः । ओं महादेवायसोममूर्त्तयेनमः ।

यह उपरिलिखित पौराणिक रूप से शिव जी को नमस्कार किया जाता है। इन में सब जगत् के बनाने वाले मुख्यघटकों को ही महादेव की आठ मूर्त्तिया मानी हैं।

इन्ही सब को लेकर भूत कहा जाता है इनका पति भूत पति कहा गया उस का दूसरा नाम संवत्सर काल का प्रतिनिधि है इस आधार पर काल भैरवादि महादेव के नाम उत्पन्न होते हैं। यही काल सब को नाश करने वाला सबको रुलाने वाला होने से संहारशक्ति की मूर्त्ति कहा जा सकता है अतः शिव को संहार शक्ति का रूप देकर पुराणों ने काल का निरूपण किया यही काल भूत पति है और वही उपरोक्त प्रकार से प्रजापति संवत्सर का रूप बना कर हैमवती उषा पत्नी से मिल कर संसार को रचता तथा संहार करता है।

उपनिषद् की परिभाषा से भूत का पर्याय देव शब्द है। तदनुसार भूतों का मिलकर शतपथ में वर्णित कुमार का पैदा करना सब देवतों द्वारा * कार्त्तिकेय कुमार के पैदा होने का मूल है।

उस कुमार का पैदा होने का प्रकरण भी इसी ब्राह्मण भाग से स्पष्ट हो जाता है।

शेष जितने महादेव के नाम हैं वे यजुर्वेद के रुद्राध्याय (१६-१७) में सब विशेषण रूपेण आये हैं। उन्हीं को लेकर रुद्र का नाम तथा अन्यान्य

---

* सौर पुराण, अ० ६२
श्लो० ४—८—१२—२४—२६

कल्पनाएं उद्भावन की गई है । वैदिक शब्दों के नैरुक्तिक अर्थ को सर्वथा त्याग कर केवल ऐतिहासिक या लौकिक दृष्टि से अर्थ करने पर वे सब पुराण प्रोक्त शंकर पर भी लग जाते हैं । शतपथ ब्राह्मण में वे सब मन्त्र क्षत्रियों पर लगाये जाते हैं। (**शतपथ, का ६, १, १, १५**) कतिपय विद्वान् इस शतरुद्रीय प्रकरण को बैक्टीरिया के जर्मों पर लगाते हैं । उनका भी आधार रुद्र शब्द की व्युत्पत्ति कि वे सब को रुलाते हैं, यही है ।

११. रुद्रों की संख्या १० इन्द्रिय तथा ग्यारहवां मन करके पूरी की जाती हैं। इस प्रकार परमात्मा को छोड़ कर अन्य सब अवान्तर मार्गों से महेश का रूप संक्षेपतः आलोचित हो चुका अब परमात्मा महेश्वर के रूप पर ध्यान दें ।

श्वेताश्वतर में जीव का निरूपण करते हुऐ हर कहा है:—

"क्षरं प्रधानममृताक्षरंहरः क्षरात्मानावीशते देवएकः । "

(श्वेता०, अ० १, १०)

क्षर प्रधान अमृत अक्षर हर जीव है और प्रधान तथा जीव दोनों को सामर्थ्य देने हारा एक देव परमात्मा है ।

इस परम आत्मा की व्यापकता भी श्रुति युक्त रूपेण बताती है:—

यो देवोऽग्नौ योऽप्सुयो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥

[श्वे० श्व० अ० २, १७]

" जो देव अग्नि में पानी में प्रकट है जिसने भुवन भर को व्याप्त किया है । जो औषधियों और वनस्पतियों में शक्ति रूपेण विद्यमान है । उस देवता के लिए बारम्बार नमस्कार हो । "

उसी देवता का:—

विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतस्पादिति ।

इत्यादि रूप से विराट् रूप वर्णन करके अथर्व के मन्त्रों द्वारा रुद्र रूप बताते हैं:—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥

" या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी तया नस्तन्वा गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ ५ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसी पुरुषं जगत् ॥ ६ ॥

(श्वे० उप० अ० ३)

जो देवताओं का उत्पत्ति स्थान है, जो सबका अधिपति रुद्र महर्षि है, जिसने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया है, वह हमें शुभ बुद्धि से जोड़े ।

हे रुद्र ! जो तेरी शिव (कल्याण कारिणी) तनु है, जो घोर नहीं, जो पाप को नाश करने वाली है, उस तनु से हे गिरिशन्त ! (वाणि में लीन रहने वाले) तू प्रकाशित हो ।

हे गिरिशन्त ! जिस (पाप संहारक) बाण को तू हाथ में लेता है जिस से कि पाप नष्ट हो जाते हैं उस बाण को हे गिरित्र ! शिव कल्याणकारी बनाओ, जगत् में पुरुष को मत मार ।"

बस इसी प्रकार परमात्मा के प्रति औपनिषद् प्रार्थनाओं पर आधार रख कर परमात्मा स्वरूप शिव महेश या गिरीशादि की कल्पना पुराणों में की गई है । शिव की स्त्री भी उमा पार्वती, जिस को हिमवान् की पुत्री कहा जाता है, की कल्पना करना एक बहुत छोटे से आधार पर स्थित है ।

केनोपनिषद् में परब्रह्मरूप यक्ष का प्रतिपादन कर ब्रह्मविद्यारूप उमा हैमवती का वर्णन बड़ा ही कौतुक पूर्ण है ।

"अथ (देवाः) इन्द्रमब्रुवन् भगवन्नेतद्विजानीहि किमेतद् यक्षमिति । तथेति । तदभ्यद्रवत् । तस्मात्तिरोदधे । स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानां उमां हैमवतीम् । तां होवाच किमेतद् यक्षमिति । सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति । ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति"

(केनोपनिषत् तृतीय खण्ड तथा चतुर्थ)

"देवताओं ने इन्द्र को कहा कि ये तो जानो कि यह क्या बला है। अच्छा कहकर इन्द्र उसकी तरफ़ बढ़ा। वह छिपगया। उसी आकाश में एक अत्यन्त सुन्दर शोभा वाली हिमवान की पुत्री या स्वर्ण की बनी हुई स्त्री (**हैमवती**) के पास आया उससे पूछा कि वह क्या विचित्र वस्तु थी वह बोली **ब्रह्म**, ब्रह्म ही के विजय में तुम भी उन्नति करो। तब इन्द्र ने जाना कि वह ब्रह्म है।"

इसी ब्रह्म तथा ब्रह्मप्रतिपादिका उमा या ब्रह्म-विद्या को मन में रखकर पुराण-कार ने भी शिव तथा पार्वती का सम्पूर्ण किस्सा छेड़ा है। यद्यपि यह सब सुनकर प्रथम बड़ा आश्चर्य होता है, परन्तु कतिपय स्थलों पर प्रसंगागत व्याख्यानुव्याख्या द्वारा सब रहस्य खुल जाता है।

स्कन्दपुराण में पार्वती की तपश्चर्या का वर्णन इसी व्याख्या का एक नमूना है।

हिमालय की पुत्री पार्वती शिवजी को अनन्य चित्त से ध्यान करती हुई, घोर व्रत और कठिन तपस्याओं में अपने कोमल से शरीर को भी कुछ न समझती हुई, कृच्छ्र व्रतपाल रही थी और शिव जी एक बटु का रूप धारण करके आये और बोले कि:—

"हे पार्वती! तुम कोमलांगी हो, तुम्हारे शरीर के योग्य यह कृच्छ्र तपस्या नहीं है, तुम्हें सब प्रथम ही प्राप्त है फिर किस लिए इतना दुश्चर तप करती हो। यदि शंकर को अपना पति वरती हो तो यह तुम सी कुलीना के लिए नहीं सोहता। वह शंकर विरूप, उसके वंश वा गोत्र का पता नहीं, उसका वाहन हाथी घोड़े नहोकर एक बूढ़ा बैल है। उसके पास रेशमादि के कपड़े न होकर सदा से नंगा दिगम्बर है। उसके पास अन्यान्य सम्पत्तियें न होकर भवूत मलता है। वह तो तीनों पुरी में आग लगाकर जलाने वाला, त्रिशूल धारण करने वाला, तथा भद्दे से रूप वाला और तीन आंखों वाला है, उस रुद्र भैरवरूप को वरना अच्छा नहीं। वह निर्धनता अधिकांगतादि दोषों से युक्त होता हुआ सांप आदि भयंकर जीवों से और भी भयावह है।" इस प्रकार उस बटु के कटुवचन सुन पार्वती उत्तर देती हैं:—

(स्कन्द०, महिश्व, कौ. ख. २, अ० २५)

स आदिः सर्वजगतां को ऽस्य वेदान्वयं ततम्।
सर्वं जगद्यस्यरूपं दिग्वासः कीर्त्यते ततः॥ ७१॥

गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद् बिभर्त्ति सः ।
अबद्धाः सर्वतो मुक्ताः भूता एव च तत्पतिः ॥ ७२ ॥

श्मशानं चापि संसारः तद्वासीकृपयार्थिनाम् ।
भूतयः कथिता भूतिस्तां बिभर्त्ति स भूतभृत् ॥ ७३ ॥

वृषो धर्म इति प्रोक्तः तमारूढस्ततो वृषी ।
सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्याः तान्बिभर्त्ति जगन्मयः ॥ ७४ ॥

नानाविधाः कर्मयोगा जटारूपाः बिभर्त्ति सः ।
वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरं त्रिगुणं वपुः ॥ ७५ ॥

भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः ।
एवं विधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ७६ ॥

कथंकारं हि ते नाम भजन्ते नैव तं हरम् । ७७ ॥
स्कान्द पुराण; महि०, कौ० ख०, २ अ० २५ ॥

[१] वह परमात्मा सब लोकों का आदि उद्भव स्थान है, उसके अन्वय या वंश को कौन जान सकता है । जिसका रूप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है उसकी दिशाएं अम्बर वस्त्र होने से वह परमात्मा "दिगम्बर" कहलाता है । प्रकृति के सत्व रजस् तमस् यह तीन गुण ही पापियों को दुःख और कष्ट देने के साधन रूप शूल होने से वह "शूली" कहाता है । सर्व जगत् जालों से मुक्त हुवे हुवे भूत कहलाते हैं उन का पति "भूतपति" परमात्मा है । संसार ही श्मशान है उस में व्यापक परमात्मा ही "श्मशान वासी" है । सम्पूर्ण संसार की सम्पत्तियें उस की भूति हैं इस से वह "भूतिभृत" कहाता है । वृष धर्म का नाम है उस धर्म नियम पर आरूढ़ होने से "वृष

---

(१) **उपरोक्तभाव को ही लेकर इसी पार्वती के तपस्या प्रकरण में शिव पुराण में भी निम्नलिखित प्रकार से उक्तार्थ की पुष्टि की गई है:— शिव पु०, पा० खं० ३, अ० २८ ।**

वस्तुतो निर्गुणो ब्रह्म सगुणेन कारणेन सः ।
कुतो जातिर्भवेत्तस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ ६ ॥

स सर्वासां हि विद्यानां अधिष्ठानं सदाशिवः ।
किं तस्य विद्यया कार्यं पूर्णस्य परमात्मनः ॥ इत्यादि ॥ ७ ॥

वाहन" कहाता है। मन्यु आदि दोष यही सर्प रूप हैं उन को जगत् स्वरूप हो कर परमात्मा अपने में धारण करता है। नाना प्रकार के कर्म योग ही **जटा** हैं। तीन वेद ही उस के "तीन नेत्र" हैं। त्रिगुणात्मक शरीर "त्रिपुर" कहलाता है उस त्रिगुणात्मक मुमुक्षुओं के प्राकृतिक शरीर को वह परमात्मा अपनी ज्ञानाग्नि से भस्म कर देता है अतः "त्रिपुरघ्न" कहाता है। जो सूक्ष्म-दर्शी लोग ऐसे महादेव को जानते हैं वे उस **"हर"** की किस प्रकार उपासना नहीं करते।

इस प्रकार से शंकर का रूप पुराण ने भी उपनिषद् प्रतिपाद्य 'परब्रह्म का ही वर्णन किया है, इसमें सन्देह नहीं। इसी भगवान् शंकर की लिंगमूर्त्ति का अद्यापि समस्त शैव मण्डल में उपासना होती हैं। उसका तत्व तो सर्वथा न देख कर घृणित भावों में लिंग तथा योनि कल्पना कर उपासना को भी अज्ञान का फांसा बना रखा है। लिंग का अर्थ पुराण भी स्वतः यही मानते हैं कि:—

जगत्त्रयं तु सकलं यतो लीनं सदात्रयम्।
तस्माल्लिङ्गमितिप्राहुः सदा रुद्रस्य धीमतः॥

सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त लिंग की वर्त्तमान में अभव्य कल्पना करके कैसा विचित्र अज्ञान फैलाया है।

इस प्रकार हमने रुद्र देवता की भी पर्याप्त आलोचना करली अब अन्य देवों की उत्पत्ति पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

त्वष्टा

"त्वष्टा" देव वेद में परमात्मा का नाम आता है, जैसा कि इस यजुर्वेद की ऋचा से प्रतीत होता है।

त्वष्टा इदं विश्वं भुवनं जजानेति [यजुः, २९, ९,]

त्वष्टाने इस संसार को रचा।

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी "**त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतु** इत्यादि मन्त्रों से त्वष्टा सूर्य के लिये, और अथर्ववेद में त्वष्टा प्रजापति तथा शिल्पि के लिये भी आता है। इसी त्वष्टा का अपर पर्याय विश्वकर्मा और देववर्धकि हैं इनका प्रयोग

भी उपरोक्त अर्थों में वैदिक भाषा में आता ही है जैसा कि हम प्रथम पत्रों में दिखा आये हैं, परन्तु पौराणिक गाथाओं में परमात्मा का भाव तो सर्वथा लुप्त हो गया, किन्तु "देवताओं का मिस्त्रीमात्र" ही रहगया। और उस के हाथ में कार्य सौंपे गये कि वह इन्द्र की अमरावती बनाए। हेति प्रहेति आदि के लिये लंकापुरी बसावे। सूर्य खराद कर गोल बनावे। शंकर की विजय यात्रा के लिये रथ बनावे। विष्णु के लिये शार्ङ्ग धनुष बनावे। विष्णु के लिये चक्र तथा इन्द्र के लिये वज्र वही तय्यार करे इत्यादि मिस्त्री का कार्य सब त्वष्टा के सपुर्द हुआ। वह देवताओं का बढ़ई **देववर्धकि** या तरखान **त्वष्टा कहलाता है**।

ब्राह्मणकारोंने इस को रूपकृत माना **"त्वष्टा देवानां रूपकृत"** त्वष्टा देवताओं की वस्तुओं में सुन्दरता का आधान करने वाला है। या संक्षेप से आर्ट (Art) का प्रतिनिधि है। इसी मुख्य बिन्दु पर लक्ष्य देकर पुराणकर्त्ताओं की भी "त्वष्टा" तथा "देववर्धकी" की कल्पना है।

वाग्देवता को "सरस्वती" या "भगवती" माना गया है। जिसकी व्याख्या गत पत्रों में हमने वागम्भृणी सूक्त में की है। सरस्वती वेद में नदी का भी नाम है।

चन्द्रमा, सूर्य आदि देवता प्रत्यक्ष दृश्यमान प्राकृतिक शक्ति के बड़े प्रतिनिधि मान कर देवता बनाये गये हैं।

वृहस्पति देवताओं का गुरु कल्पित है, परन्तु वैदिक साहित्य में पुरोहित स्थानीय है। इन्द्र राजा रूप है, उसी साम्य को लेकर वृहस्पति को इन्द्र का मन्त्री या पुरोहित बनाया गया है।

अन्यान्य भावात्मक विचारों को भी रूपवान करके दिखाने का प्रयत्न पुराण में जगह २ किया गया है। कामदेवता की कल्पना और श्रद्धा देवी की कल्पना देवी भागवत में वर्णित है।

शोक यह है कि श्रद्धा देवी सी पवित्र वस्तु को भी बड़े घृणित रूप में रखने का प्रयत्न किया गया है। जिस का विचार हम आगामी पत्रों में करेंगे।

कतिपय देवता अभी शेष हैं जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वे हैं गणेश, कुमार आदि। इन सब के आधारभूत कुछ वैदिक-साहित्य के अन्य शाखाओं के मन्त्रभाग उद्धृत करते हैं जिस से कुछ मूल ज्ञान हो जायगा।

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ति प्रचोदयात् ॥

इसका सायण भाष्य करते हुए लिखते हैं:—

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकेन्यागमप्रसिद्धं मूर्त्ति धरं विनायकं प्रार्थयते तत्पु-रुषायविद्महे० दन्तिः प्रचोदयात् । गजसमानवक्त्रदोर्घस्य तुण्डस्य रत्नकलशादिधारणार्थं वक्रत्वं, दन्तिः महादन्तः ।

बीजापूरेन्यादि शास्त्र प्रसिद्ध मूर्त्ति वाले विनायक की प्रार्थना करते हैं कि--उस पुरुष को हम जानें जिसका वक्र अर्थात् मुड़ा हुआ मुख है वह बड़े दांतों वाला हमें प्रेरणा करे ।

इससे गणेश की प्रार्थना का मूल प्रतीत होता है ।

तत्पुरुषायविद्महे चक्रतुण्डायधीमहि ।
तन्नो नन्दिः प्रचोदयात् ॥

इस पर सायण कोई भाष्य नहीं करते । इस का तात्पर्य यह है कि हम उस पुरुष का ज्ञान करते हैं जिसका चक्र सदृश गोल मुख है वही नन्दी हमें प्रेरणा करे ।

इस से नांदिया बैल की उपासना का मूल खुलता है ।

अगला मन्त्र है—

तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः षण्मुखः प्रचोदयात् ॥

इस पर भी सायण मूक हैं । इसका अर्थ है कि हम उस पुरुष को जाने, उस बड़ी सेना वाले का ध्यान करें, और वही छःमुखों वाला हमें प्रेरणा करे।

इस से कार्त्तीयषण्मुख जो कि सब देवताओं के इकट्ठा प्रसन्न करने से उत्पन्न हुआ इसका कुमार शब्द के ऊपर लिखते हुऐ गतपत्रों में कुछ विचार किया था उसी की प्रार्थना है ।

" तत्पुरुषायविद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात् "

इस पर सायण लिखते हैं:—

पुराणादिषु प्रसिद्धं पक्षिराजं मूर्तिधरं देवं प्रार्थयते तत्पुरुषायेति० शोभनपतनसाधनंपक्षोपेतः सुवर्णपक्षः ।

पुराणादिकों में प्रसिद्ध पक्षिराज की मूर्त्ति वाले गरुड़ देव की प्रार्थना करता है—सुन्दर उड़ने के साधन अर्थात् पत्तों वाला सुवर्णपक्ष कहाता है।

इस आधार पर विष्णु का वाहन, तथा विनता का पुत्र वैनतेय, पक्षियों का राजा इत्यादि रूपों से पुराणों में गरुड़ वर्णित है।

वेदात्मनाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।

इस में हिरण्यगर्भ स्वरूप व्यापक ब्रह्म की उपासना है।

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय विद्महे तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

इस में वासुदेव विष्णुस्वरूप नारायण की प्रार्थना की है। इस विषय में हम पहले लिख आये हैं।

वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्।

इस में वज्र के समान नख वाले तीखेदाढ़ वाले नरसिंहावतार की प्रार्थना की है

इस की समालोचना गतपत्रों में कर आये हैं।

इसी प्रकार की छोटी २ गायत्रीऐं, भास्कर, वैश्वानर, कात्यायनी, और दुर्गा के विषय में भी हैं।

पर क्या इनको मूल मानकर पुराणों का देवतापक्ष सबल हो सकता है? कभी नहीं। प्रथम, क्योंकि ये सब खिलपाठ में सम्मिलित है जैसा कि इस प्रकरण को प्रारम्भ करते हुऐ ही सायण ने भी इसे खिल प्रकरण अर्थात् परिशिष्ट प्रकरण माना है, अर्थात् ये पीछे से मिले हैं। इन के मिलने का कोई निर्णीत काल नहीं बहुत सम्भवतः पुराण काल में ही यह मिलाया गया हो। ये सब तैत्तरीयारण्यक १० प्रपाठक १ अनुवाक में कृष्णशाखा में ही मिलते हैं, शुक्ल शाखा में नहीं। विशेष गणेशादि गायत्री पर भाष्य करते हुए सायण ये भी स्वीकार करते हैं कि इन परिशिष्ट मन्त्रों में बहुत पाठ भेद है परन्तु हम * द्राविडपाठ ही को सम्मत मान

*** इत ऊर्ध्वं तेषु तेषु देशेषु श्रुतिपाठा अनन्त विलक्षणाः तत्र विज्ञानात्म-प्रभृतिभिः पूर्वैर्निबन्धनकारै द्राविडपाठस्यादृतत्वाद्वयमपि तमेवादृत्य व्याख्या-स्यामः (सायणः)**

कर उस पर भाष्य करते हैं। इस प्रकार अत्यन्त विलक्षण पाठभेद ही बताता है कि साम्प्रदायिक मन्त्रों के मेल से यह परिशिष्ट बना है, इससे इस साम्प्रदायिक हाथा पाई को हम निर्मूल मान कर विचार कोटि से बाहर करते हैं। तथापि इनका मूल ढूंढा जाय तौ भी वैदिक शब्दों को उनके वास्तविक यौगिक अर्थ को न लेकर केवल लोकरीत्या वाच्यार्थ लेकर भी कल्पनात्मकरूप बनाने का प्रयत्न किया गया है। सूर्य को सुपर्ण वेद में देखकर, संवत्सर रूपी विष्णु का वाहन सूर्य का ही कथा रूप में ढलकर गरुड़ देवता बन जाना कोई अलौकिक नहीं है। इस प्रकार **विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतस्पात्** इस परमात्मस्वरूप प्रतिपादक मन्त्र में भी परमात्मा के पत्त्रों (पंखों) का उल्लेख किया है क्या वास्तव में परमात्मा के पंख होते हैं? नहीं, तो फिर केवल शक्तिमात्र लेना उचित है। पत्त्रादिक शब्दों द्वारा आलंकारिक वर्णन में यदि पक्षीरूप की कल्पना करें तो कोई असंगत नहीं। श्येनयाग में यज्ञ की कल्पना सब श्येनरूप से की जाती है। उस स्थल में वही यज्ञस्वरूप विष्णु श्येन-रूप से कल्पित है इस में क्या आश्चर्य है। इसी रूप से गरुडादिक कल्पना भी समञ्जस प्रतीत होती है।

इस प्रकार रूपों की कल्पनायें असम्भव नहीं हैं क्योंकि कल्पना प्रौढ़ कवि लोगों ने किस २ अमूर्त्तभाव को मूर्त्त करके नहीं दिखा दिया। रागविद्या की सब राग रागिणियोंतक का स्वरूप कल्पित किया गया; इसी प्रकार वाणी जो कि केवल मुख से जिह्वा द्वारा उच्चारण कीजाकर, कर्ण द्वारा सुनी जाकर, अपने दिव्य गुणों से श्रोतृवृन्द को अपूर्व हर्ष तथा आनन्द का आस्वादन कराती है, इसकी भी **वीणा पुस्तक धारिणी आदि** स्वरूप से कल्पना कोई छिपी नहीं हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, आदि नाना पवित्र नदियें जो केवल प्राकृत जल मय हैं उनको भी कविकल्पना ने कल्पकचित्र से अनुपम मूर्त्ति बनाकर कैसा चमत्कार दिखाया है, और इनका भी पुराणों में कथाप्रसंग उसी प्रकार आता है जैसे कि सत्य पदार्थों का मनुष्यसंसार में आता हैं।

अष्टभुजा देवी चण्डी की कल्पना केवल अष्टमूर्त्ति हरका स्त्रीरूप प्रतिबिम्ब है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार इन अष्ट वस्तुओं को

रूपान्तर देकर अष्ट देवियें, क्रम से शारिका, राज्ञा, ज्वाला, चण्डी, काली, भवानी, सरस्वती तथा सावित्री की कल्पना हुई और इनके ही परमतत्त्वज्ञान या परमउपासना का फलरूप अणिमा, लघिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियां योगिजनों को प्राप्त मानी गई।

इन सब का आश्रय उमा को माना गया है। तत्त्वतः विचारने से फिर वहीं ब्रह्मविद्या में सम्पूर्ण प्रपञ्च आश्रित प्रतीत होता है।

उपरोक्त अष्टतत्त्ववती देवियों में निर्गुण उमा मिलकर नौ हो जाती हैं तो योगिजन उन के आधार पर नवनिधियों को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार का रहस्य देवता देवियों की कल्पना के मूल में रखा हुआ प्रतीत होता है।

अन्य शेष देवता कुछ वीरपूजा से सम्बद्ध हैं। जैसे राम, कृष्ण दत्तात्रेय या इसी प्रकार हनुमान आदि अन्य महापुरुषों को वैयक्तिक भक्ति तथा श्रद्धावश देवता बनाकर पूजा गया है। इस प्रकार के देवी देवता की पूजा प्रायः अशिक्षित और असभ्य लोगों में हैं। इस बहुदेवता पूजा का कारण जैसा हम पहले बतला आये हैं यही है कि एक ही महान् आत्मा के गुणों को भूल कर, एक गुण का प्रतिनिधि, एक २ देवता बना लिया जाता है। और एक ही देवता के नाना नामों को देखकर उनके आधार पर ईश्वरों का नाता मान लिया जाता है।

इसी प्रकार हम पहले अध्याय में वैदेशिक विद्वानों की सम्मतियों के उल्लेख से दर्शा चुके हैं कि किस प्रकार अन्य देशों में भी अज्ञानवश एक ही परमात्मा की भिन्न २ नामों तथा भिन्न २ रूपों से पूजा प्रचलित हो गई।

इसी सम्बन्ध में आगे आने वाले अध्यायों में बहुत कुछ प्रकाश डाला जायगा। और शेष देवताओं का भी बड़ी सूक्ष्मता से मूल शाखा प्ररोहादि दिखाया जायगा तथा नमूने के तौर पर इस में भी दिखा दिया है। इसी प्रकार वैदिक देवतासे पौराणिक देवताओं में धर्म के बदल जाने का विषय वैदेशिक मतों के साथ तुलना करते हुए और भी स्पष्ट हो जायगा।

इस प्रकार आलोचना करते हुऐ देवता विषय में हम फिर उसी वैदिक सिद्धान्त पर पहुंचते हैं कि:—

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥"

इति।

नवम अध्याय

पुराणों की उत्पत्ति

प्रथमचार अध्यायों में हमने पर्याप्त विस्तार से यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि पुराण कालीन सभ्यता का अधःपतन महाभारत काल, से ही चला आरहा है। अगले चार अध्यायों में वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करके तदनुसार बहु-देवतावाद उत्पत्ति का क्रम तथा वास्तविकता का पर्याप्त दिग्दर्शन कराया गया।

इस के उपरान्त वास्तविक तथा मुख्य विषय पुराणों की समालोचना प्रारम्भ करते हैं।

पुराण-साहित्य वर्त्तमान काल में संस्कृतभण्डारका एक बड़ा भारी भाग है और धर्म-ग्रन्थ के नाम से सर्वसाधारण के परम विश्वास का पात्र बना हुआ है। पुराण का मनोहर गाथात्मक तथा अलंकार रूपेण वर्णन किस के मन को नहीं हरता और कथा क्रम से वर्णन किये हुए गहन-तत्व को किसे सुगमता से नहीं पहुंचाता। सभी जातियों में शिक्षा तथा विद्याभ्यास का साधन अपनी यथोचित अवस्था में कथाएं भी हुआ करती हैं। प्राचीनकाल के ऐतिहासिक जीवन ही सर्वसाधारण के जीवन के पथ-दर्शक--हुआ करते हैं। सर्वसाधारण की प्राकृतिक दृष्टि भविष्य को नहीं देख सकती तथा उपस्थित कार्य में सहसा-विवेक करने में भी सर्वथा असमर्थ होती है अतः यदि किसी पर भी दृष्टि पड़ सकती है तो केवल पुराने जमाने के जातीय-जीवन पर। इसलिए सर्वसाधारणजातीयजीवन को संगठन करने के लिये हमारे प्राचीन विद्वान् ऋषियों ने शास्त्र के गूढ़ मर्मों को इतिहास की निरन्तर गामिनी श्रृंखला में गूंथ कर सर्वसाधारण को शिक्षा देने का यथोचित आविष्कार किया था। इसी मुख्य लक्ष्य को रख कर इतिहास को भी पांचवां वेद ही माना है और इसी का दूसरा रूप पुराण भी है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः पुराण और इतिहास दोनों का इकट्ठा ही नाम दृष्टि गोचर होता है। प्राचीन इतिहासों का संग्रह करना तथा सृष्टि, स्थिति, लय, मन्वन्तर तथा वंश-परम्पराओं का वर्णन करना पुराण-साहित्य के अन्तर्गत माना जाता है। इस की परम्परा निःसन्देह अति प्राचीन काल से चली आई है जिस का उल्लेख प्रायः वैदिक साहित्य में भी बहुत स्थानों पर उपलब्ध होता है। जैसा कि अथर्ववेद में:—

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवाः दिविश्रिताः ॥

[अथर्व०, ११, ७, २४ ॥]

"ऋक्, साम, छन्द और यजुर्वेद के साथ ही पुराण भी उस उच्छिष्ट जगत् पर शासन करने वाले यज्ञमय परमात्मा से पैदा हुए।" यह सब दिव्यभाव से विद्यमान नक्षत्र-तारा मण्डल जो कि द्युलोक में स्थित है, वे भी उसी परमात्मा से हुए।

"सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् । तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।"

[अथर्व० १५, ६, ११, १२ ॥]

"वह व्रात्य बृहती दिशा को चला; इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी भी उसके पीछे २ चलीं। इस प्रकार से ज्ञानी पुरुष इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी आदि का प्रिय हो जाता है।" इसी प्रकार गोपथ में:—

"एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वयाख्याताः सपुराणाः सस्वराः" इत्यादि।

[गोपथ, भा० २, प्र० ॥]

"इस प्रकार सम्पूर्ण वेद रहस्य ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, वंश पुराण, स्वरादि के साथ बनाये गये।"

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी:—

अध्वर्यु स्तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजा इत्याह। तानुपदिशति पुराणं वेदः। सोयमिति किश्चित्पुराणमाचक्षीत ॥

[शतपथ० १३, ४, ३, १३ ॥].

अध्वर्यु ने कहा कि तार्क्ष्य वैपश्यत राजा है। उस की यादि तथा वायु विद्या

के जानने वाली प्रजाएं हैं उन को उपदेश किया जाता है कि तुम्हारा पुराण वेद है। कुछ पुराण उन को सुना दिया जाय।

इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् में भीः—

"एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितं यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः"
[बृहदा०—२, ४, ११ ॥]

इसी महान् भूत परमात्मा के ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषदें ये सब निश्वास हैं।"

छान्दोग्य में भी नारद ने अपनी विद्या के विस्तार में:—

"**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि**' से प्रारम्भ करके **इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति**" तक गिनाया है।

इस प्रकार स्थान २ पर प्राचीन काल में पुराण की सत्ता की साक्षियें उपलब्ध होती हैं।

सूत्र-ग्रन्थों में भी पुराणों के अध्ययनाध्यापन का प्रक्रम क्वचित् २ दीखता है जैसा:—

आश्वालयन गृह सूत्र में:—

आयुष्मतां कथा कीर्तयन्तो मांगल्यानीतिहास—
पुराणानीत्याख्यापयमानाः। [आश्वलायन गृह्य० ४, ६ ॥]

इसी प्रकार आपस्तम्ब में भी विधि के प्राशस्त्य सूचन के लिये पुराणों का कहीं २ उल्लेख किया है। जिस प्रकार उत्तरायणपथ की प्रशंसा के लिये:—

अथ पुराणे श्लोकावुदाहरन्ति।
अष्टाशीतिसहस्राणीत्यादि।
[आपस्तम्ब धर्म० २, २२, ३५ ॥]

आपस्तम्बधर्म सूत्र में उल्लेख आया है।

इस तरह से पुराण की सत्ता तथा उपयोगिता को अत्यन्त प्राचीन काल से

विद्वानों ने माना है । ऐतिह्य वाक्य या पुराण भाग, विधि या वेद प्रतिपादित काम्यादि कर्मों के, तथा तत्साधनों के प्राशस्त्य जतलाने के लिए होता है जिस से मनुष्य कर्म को प्रशस्त जान कर एकाग्र-चित्त से श्रद्धापूर्वक दीक्षा ले, इस लिये प्रवृत्ति के प्रयोजक पुराण तथा ऐतिह्य भाग का उपादन प्राचीन काल से ही होना आवश्यक है इस में कोई विवाद नहीं है । परन्तु विवादविषय इतना ही है कि वर्त्तमान अतिविस्तृत ग्रन्थाकारेणपरिणत भविष्य गरुड़ वामनादि नामों से प्रसिद्ध महापुराण तथा सौरादि उपपुराण, प्राचीनकाल से हैं या कुछ उथल पुथल घटाव बढ़ाव या उधेड़बुन मध्यकाल में हुआ है । यही अत्यन्त विचारास्पद विन्दु है ।

इस बात के समझ लेने तथा निर्णय कर लेने के लिए प्राक्प्रतिपादित ऐतिह्य, गाथा, नाराशंसी तथा पुराण इन का तात्पर्य समझ लेना आवश्यक है ! प्राचीन कालिक राजाओं, वंशों और जनसमाजों के वर्णनात्मक इतिहास **ऐतिह्य** हैं, जिन से उनके सदाचार, विचार और सभ्यता का ज्ञान होता है । दृष्टान्त दार्ष्टान्त रूप से कथा प्रसंग कहना **'गाथा'** कहाता है । या दूसरे शब्दों में **उपाख्यान** कहाता है ।· जिस में किसी मनुष्य का वृत्तान्त कहा जाय उसे **"नाराशंसी"** कहते हैं । **"पुराण"** पुरातन घटना के उल्लेख को कहते हैं । इस में जगत् की रचना तथा संहार का अधिक भाग होता है और इतिहास अंश मात्र होता है । अब; वह पुराण क्या वस्तु है इस विषय में पुराण लक्षण कोविद कहते हैं:—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्" (आदि पुराण०) —

जिस में सृष्टि, प्रति सृष्टि, वंश, मन्वन्तर और वंशों का अनुचरित इन पांच का प्रतिपादन किया जाय तो उन पांच लक्षणों से युक्त-ग्रन्थ को 'पुराण' कहा जाता है । परन्तु यह लक्षण पुराणकर्त्ताओं ने अपने पुराणको सार्थक बनाने के लिये किया है । चूंकि यदि वंश वंशानुचरित रखना भी पुराण का कार्य होता तो इतिहास का कार्य क्या है । इस से हमारा तात्पर्य यह नहीं कि वंश वंशानुचरित होना ही नहीं चाहिये परन्तु इस को गौणस्थान देना उचित है । मुख्य भाग तो सर्ग प्रतिसर्ग

मन्वन्तरादि निरूपण ही है। इसीलिये सायणाचार्य पुराण का लक्षण यूं करते हैं:—

"इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीन्नद्यौरासीत्" इत्यादिकं जगतः प्रागनवस्थानमुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं "पुराणम्"

(ऐतरेय सायण भूमिका)

अर्थात् "पहले कुछ न था द्यौ भी न थी" इत्यादि जगत् की पहले असत्ता बतला कर ततः सृष्टि का प्रतिपादन करने वाले वाक्य ही पुराण कहाते हैं।

कोई महाशय इस पर शंका करते हैं कि यदि पुराण अन्य कोई ग्रन्थ विशेष नहीं होता तो अथर्व में **'तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्चनाराशंसीश्चानुव्यचलन्** इत्यादि, (अथर्व० १५,६,१२,) में इतिहास पुराणादि का पृथक् २ प्रतिपादन कैसे संगत होगा। इसी प्रकार "सकल्पा सरहस्या सब्राह्मणा सोपनिषत्का" इस गोपथ के वचन में भी पृथक् २ उपादान करना ठीक न होगा। क्योंकि उपरोक्त ब्राह्मण शब्द से पुराण वाक्य के ग्रहण हो जाने से पुराण शब्द का उपादान व्यर्थ हो कर जतलाता है कि पुराणग्रन्थ करके एक अन्य नवीन ग्रन्थ मानना चाहिये।

यह कहना ठीक नहीं क्योंकि सायण ही अपनी ऐतरेय की भूमिका में इस का उत्तर देते हैं:—

"ननु ब्रह्मयज्ञप्रकरणे मन्त्रब्राह्मणव्यतिरिक्ता इतिहासादयो भागा आम्नायन्ते" यद् ब्राह्मणानि इतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथाः नाराशंसीः (तै०,आ०२,६) इति मैवम् विप्रपरिव्राजक न्यायेन ब्राह्मणा द्यवान्तरभेदानामेवेतिहासादीनां पृथगभिधानात्।"

(ऐतरेय सायण भूमिका)

इसी प्रकार नाना देवताओं को उद्देश्य करके चले हुए पन्थों के हाथ में यह जाने से वही पुराण प्रतिसम्प्रदाय भेद से पृथक् २ रूप में होगया। और बहुत से पुराण ग्रन्थ पीछे से साम्प्रदायिक धर्मपुस्तक के रूप में प्रकट हुए। यही कारण है कि पुराणों में परस्पर देवताओं की निन्दा तथा अन्योन्य देवतोपासकों के प्रति

अश्लील वाक्य और गाली प्रदानादि में भी कुछ संकोच नहीं किया जिसका कि प्रदर्शन आगे किया जायगा। साम्प्रदायिक होजाने से ही प्रत्येक देवतोपासक सम्प्रदाय ने अपने पुराण को सर्वाङ्गपूर्ण करने के हेतु उस में नाना उपाख्यान, नाना उपदेश, नाना आचार विचार, नाना पूजा पाठादि उपचार और नाना रूप के इतिहास अपनी २ दृष्टि के अनुकूल जांचकर रखे हैं। इसी से प्रत्येक पुराण का विस्तार बड़ा चमत्कारिक होगया है। सम्प्रदायों में रहने वाली पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से ही नाना देवता भेद से पुराणों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। इस प्रकार से पुराण का विस्तार करके पुराण कर्ताओं ने अपने देवता को सर्वाधीश्वर बनाकर दूसरों के अभिमत देवताओं को नीचे गिराने का भरपूर प्रयत्न किया है।

कई पुराणकारों का मत है कि:—

× प्राचीन काल में पहले एक ही पुराण था जिस में एक खरब श्लोक थे परन्तु सम्पूर्ण लोकों के भस्म होजाने पर, अश्वका रूप धारण कर, चारों वेद पुराण तथा ब्रह्मयज्ञ प्रकरण के मन्त्र और ब्राह्मण के अतिरिक्त ही इतिहासादि भाग वेद वचन से कहेगये हैं, तो मन्त्र ब्राह्मण शब्द से ही उनका ग्रहण हो जाता है। फिर पृथक् पाठ करने से ब्राह्मणातिरिक्त पुराण कोई अन्य ग्रन्थ है या वही है (?) इस पर उत्तर देते हैं कि ऐसे प्रश्न मत करो क्योंकि ब्राह्मणपरिव्राजक (१) न्याय से ब्राह्मण के अवान्तर भेदों को इतिहास शब्द से पृथक् कहा है।

इस वैदिक सिद्धान्त को अनुसरण करके श्री स्वामी दयानन्द जी अपने सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं। "पुराण में जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन होता है।"

[सत्यार्थ० ११ समुल्लास पृ० ३४७]

दशमवार

× पुराण सङ्ख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्
पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम् ॥ ४ ॥

(१) जैसे किसी ने कहा कि बहुत ब्राह्मण और परिव्राजक लोग आए। तो यद्यपि ब्राह्मण शब्द से परिव्राजक भी लिए जाते थे परन्तु विशेष भिन्नता दिखाने के लिए, परिव्राजक का नाम भी लिया जाता है यही 'विप्रपरिव्राजक' न्याय है।

इस प्रकार देखने से पुराणों का अन्य पृथग् कोई ग्रन्थ "पुराण" नाम से प्राचीनकाल में था इसका कोई भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

पुराण वाक्यों के आधार पर और प्राचीन ऐतिहासिक वाक्यों तथा उपाख्यानों को संग्रह करने का प्रयत्न किया गया और उसका नाम पुराण रक्खा गया। इसी प्रकार का वर्णन आदि पर्व महाभारत में हम पाते हैं जो इस स्वरूप में हैं:—

ऋषय ऊचुः—

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्॥ १७॥
तस्याख्यान वरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः॥ १८॥
....

भारतस्येतिहासस्य.............. ॥ १९॥
वेदैश्चतुर्भिः संयुक्ता व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयावहाम्॥ २१॥

(महाभारत० आदि० अ० १)

"द्वैपायन व्यास ने जो कुछ पुराण कहा, जिस को देव तथा ऋषियों ने आदर से देखा, उन उपाख्यानों में सब से श्रेष्ठ, विचित्र पद और पर्वों से युक्त महाभारत इतिहास की पुण्य तथा पाप के नाशक संहिता को हम सुनना चाहते हैं" इस प्रकार के वर्णन से यह परिणाम अवश्य निकलता है कि महाभारत का महान् आख्यान ही पुराण के नामान्तर से कहा जाने लगा, परन्तु अन्य पुराणों की पृथग् सिद्धि का कोई आधार नहीं।

स्वभाविक प्रश्न यह उठता है कि ये पुराण फिर किस प्रकार बन गये। इस का सरल उत्तर यह है कि प्राचीन काल से चली आई कथाओं, किंवदन्तियों तथा इतिहासों को भी ग्रथित करके रखने का विचार विद्वानों में उपस्थित हुआ और बहुत सम्भवतः व्यास ने ही इस बड़े भारी कार्य को सब से प्रथम अपनाया हो। उसने सब प्राचीन पुराण वाक्यों [जैसा कि ऊपर दिखाया जाचुका है] को संग्रह कर, साथ ही प्राचीन वंश तथा मन्वन्तर वर्णनों को क्रमबद्ध कर, सृष्टिक्रम,

तथा स्थिति और प्रलय वर्णनों को तात्कालिक प्रचलित भाषा में रोचक रूप से विन्यासकर एक पुराण तय्यार किया हो। और वह परम्परा से बढ़ता २ अगले आने वाले गद्दीदार व्यासों के हाथों में पड़ इतना विस्तृत हो गया हो। उसी के परिणाम रूप वर्तमान पुराण का आदि अन्त पता लगाना दुष्कर हो गया है।

इस के साथ ही यह भी माना जाता है कि ये पुराण ही सब से पहले परमात्मा ने प्रकाशित किये थे। और फिर वेदों का निर्माण हुआ यह एक आश्चर्य जनक सिद्धान्त पुराण ने खोज पाया है।

जैसे मत्स्यपुराण में:—

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरश्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥"

सृष्टि प्रकरण की सब श्रुतियों में तो सब लोकों के निर्माण के बाद उन्हीं के सारभूत ज्ञान वेदों की उत्पत्ति का उपदेश किया है परन्तु पुराणों के मत में प्रथम पुराणों की उत्पत्ति बताई गई है।

सम्भवतः पुराणकारों ने अपने कल्पित पुराणों की बड़ाई करने के लिए ऐसा किया हो। ऊपर लिखे श्लोक के बहुत से पद समालोचना के पात्र हैं। प्रथम तो चारमुखों की कल्पना फिर पुराणों का निकलना और फिर वेदों का निकलना। तिसपर पुराण शब्द से किस का ग्रहण होगा क्या वर्तमान भागवतादि का या वैदिक सृष्टि क्रम के वर्णन का?

इसी प्रकार कल्पान्तर में एक अरब (शतकोटि) विस्तार युक्त पुराणों की सत्ता, आगामीकल्प में मत्स्य का मनुष्य रूपेण भाषण, देव लोक में शतकोटि प्रविस्तार पुराण की सत्ता, परमात्मा का व्यास रूप से पुनः प्रकट होना ये सब बातें ऐसी कही गई हैं जिन पर सिवाय आंख पर पट्टी बांध कर अन्ध विश्वास करने, या सर्वथा कपोलकल्पित मिथ्यावाद कह देने के और तीसरी गति ही नहीं। (इसी पुराणों के कर्तृत्व के विषय में शेष अगले अध्याय में कहा जायगा)।

शेष रहा वर्तमान उपस्थित पुराणों की गणना तथा श्लोक विस्तार का वह यहां ही निरूपण करते हैं।

* "न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र इनको लेकर पुराण मैंने (विष्णु ने) बनाए और फिर मत्स्य का रूप लेकर कल्पके आदि में समुद्र के बीच में बैठे २ कहा, जिसको सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं और ऋषियों के प्रति कहा। तब से ही पुराण और धर्मशास्त्र प्रसिद्ध हुए। फिर कालान्तर में पुराण को लोगों ने छोड़ दिया यह देखकर मैं ही बार २ व्यास का रूप बना कर प्रति द्वापर में ४ लाख श्लोकों में पुराण का संग्रह करता हूं। उसी को १८ अठारह विभाग कर इस भू लोक में प्रकाशित करता हूं। अब भी देवलोक में एक खरब श्लोक वाला पुराण है। उसी को यहां संक्षेप से रखा है जिनको १८ पुराण के नाम से पुकारते हैं।"

मत्स्य पुराण में निम्न प्रकार से पुराणों की गणना की गई है।

(मत्स्य अ० ५३)

[१] पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥ ११ ॥

अब अठारह पुराण कहते हैं:—

ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते॥ १३॥

निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया।
अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम् ॥ ५ ॥
मीमांसा धर्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मया कृतम्।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ॥ ६ ॥
अशेषमेतत्कथितमुदकान्तर्गतेन च।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रतिदेवांश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ॥ ८ ॥
व्यासरूपमहंकृत्वा संहरामि युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥ ९ ॥
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन्प्रकाश्यते ॥ १० ॥
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्ष संक्षेपेण निवेशितम्।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥ ११ ॥
(मात्स्य० अ० ५३.)

ब्रह्मा ने पूर्वकाल में मरीचि को जितना कहा सो ब्राह्म [=१३०००श्लोक] कहा जाता है।

[२] पाद्मंतत् पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि कथ्यते ॥ १४ ॥

पद्मपुराण=५५०००

[३] .... वैष्णवं विदुः।

त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥ १७ ॥

विष्णु पुराण=२३०००.

[४] .... तद्वायवीयं स्यात् ....

चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥ १८ ॥

वायवीयपुराण=२४०००.

[५] .... तद्भागवतमुच्यते।

अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रचक्षते ॥ २२ ॥

भागवतपुराण=१८०००.

[६] पञ्चविंशत् सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ २३ ॥

वृहत् नारदीय=२५०००.

[७] पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय=९०००.

[८] .... आग्नेयेः— ....

तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥ ३० ॥

आग्नेयपुराण=१६०००.

[९] चतुर्विंशत्सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।

भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते ॥ ३१ ॥

भविष्य=२४५००.

[१०] तदष्टादशसाहस्त्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥ ३४॥

ब्रह्मवैवर्त=१८०००.

[११] कल्पान्ते लैंगमित्युक्तम्.........................

तदेकादशसाहस्त्रम्............ ॥ ३७ ॥

लिंगपुराण=११०००.

[१२] ....तद्वाराहम्.........................

चतुर्विंशत् सहस्त्राणि तत्पुराण मिहोच्यते ॥ ३६ ॥

वराह==२४०००.

[१३] स्कन्दं नाम पुराणञ्च ह्येकाशीति निगद्यते ।

सहस्त्राणि शतञ्चैकमिति मर्त्येषु गीयते ॥ ४२ ॥

स्कान्द=८११००.

[१४] ....वामनं परिकीर्त्तितम्

पुराणं दशसाहस्त्रं............ ॥ ४५ ॥

वामन=१००००.

[१५] माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपीजनार्दनः

अष्टादशसहस्त्राणि.......................................॥ ४७ ॥

कूर्म=१८०००.

[१६] तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्त्राणि चतुर्दश ॥ ५० ॥

मात्स्य=१४०००.

[१७] ....; गारुडं तदिहोच्यते ।

अष्टादशकञ्चैव सहस्त्राणीह पठ्यते ॥ ५३ ॥

गरुड़=१८०००.

(१८) तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।

ब्रह्माण्ड=१२२००.

नीचे सारिणी दी जाती है:—

क्रम संख्या	मत्स्य पुराण के अनुसार सारिणी।	श्लोक संख्या
(१)	ब्रह्म........पुराण	१३०००
(२)	पद्म ,,	५५०००
(३)	विष्णु ,,	२३०००
(४)	वायु ,,	२४०००
(५)	भागवत ,,	१८०००
(६)	बृहन्नारदीय ,,	२५०००
(७)	मार्कण्डेय ,,	९०००
(८)	अग्नि ,,	१६०००
(९)	भविष्य ,,	२४५००
(१०)	ब्रह्मवैवर्त्त ,,	१२०००
(११)	लिङ्ग ...... ,,	११०००
(१२)	वराह...... ,,	२४०००
(१३)	स्कन्द ,,	८१०००
(१४)	वामन ,,	१००००
(१५)	कूर्म ,,	१८०००
(१६)	मत्स्य ,,	१४०००
(१७)	गरुड़ ,,	१८०००
(१८)	ब्रह्माण्ड... ,,	१२२००
सर्व योग		=४१३५००

इस के योग से १३५०० श्लोक अधिक हैं।

श्रीभागवत पुराण के अनुसार पुराण के श्लोक तथा नाम संख्या में भी कुछ भेद है। मत्स्य पुराण के अनुसार शिवपुराण की पुराणों में गणना

नहीं, इसी प्रकार भागवतपुराण की दृष्टि में वायु पुराण की पुराणों में गणना नहीं ।

भागवत के अनुसार सारणी निम्नलिखित है ।

[१]	ब्रह्म ....पुराण	..........१००००
[२]	पद्म ....,,	..........५५०००
[३]	विष्णु	..........२३०००
[४]	शिव..........,,	..........२४०००
[५]	भागवत ....,,	..........१८०००
[६]	नारद ....,,	..........२५०००
[७]	मार्कण्डेय ....,,	..........९०००
[८]	अग्नि ....,,	..........१५५००
[९]	भविष्य..........,,	..........२४०००
[१०]	विवर्त ....,,	..........१८०००
[११]	लिङ्ग ....,,	..........११०००
[१२]	वराह..........,,	..........२४०००
[१३]	स्कन्द..........,,	..........८१०००
[१४]	वामन..........,,	..........१०१००
[१५]	कूर्म ....,,	..........१७०००
[१६]	मत्स्य ....,,	..........१४०००
(१७)	गरुड़..........,,	..........१९०००
[१८]	ब्रह्माण्ड	..........१२०००
		४०९६००

इस सारिणी में प्रति पुराण की पद्य संख्या भी कतिपयस्थानों में न्यूनाधिक है । जैसे ब्रह्मपुराण में २००० पद्य कम हो गये, अग्नि में ५०० कम हो गये । वामन में १०० की वृद्धि हो गई । भविष्य के ५०० घट गये इस प्रकार न्यूनाधिकता से चतुर्लक्ष संख्या के लग भग अवश्य पहुंचा दिया गया है फिर भी ९६०० पद्य अधिक हैं ।

कूर्म पुराण की गणना में ब्रह्माण्ड को १८ पुराणों में नहीं गिना परन्तु उसे बाद को मिलाया गया और अवशिष्ट पुराण माना गया है ।

इसी प्रकार पुराणों के अतिरिक्त अभी १९ के लग भग उप पुराण हैं । इन की श्लोक संख्या कोई नियत नहीं ? ये भी अन्य ऋषियों के बनाये हुऐ माने गये हैं ।

इस प्रकार पुराणकारों में ही परस्पर पद्यगणना तथा ग्रन्थ गणना तक मे बड़ा भेद प्रतीत होता है । यह भेद भी इसी परिणाम पर ले जाता है कि ये पुराण वास्तव में साम्प्रदायिक गद्दीवाले व्यासों की कृतियों से बने तथा बढ़ाये गये हैं । साम्प्रदायिकता होने से परस्पर के अभिमत देवताओं को लेकर बने पुराणों को भी कहीं २ घृणा से उपेक्षा करने या तबतक बने ही न होने के कारण उनको छोड़ दिया गया है ।

इसका और भी स्पष्ट प्रमाण यह है कि श्रीमद्भागवत् और देवीभागवत यह दोनों पुराण प्रायः भागवत के नाम से पुकारे जाते हैं । कोई विष्णु भागवत को मुख्य मानते हैं और कोई देवी भागवत को । परन्तु अधिक पुराणकारों ने देवीभागवत को मुख्यपुराण में और भागवत को उप पुराणों में गिना है ।

संक्षेपतः अभी तक प्रतिपुराण का प्रतिपाद्य विषय तथा साम्प्रदायिकत्व दिखाने का प्रयत्न किया जायगा ।

सब पुराणों को तीन विभागों में बांटा गया है सात्विक, राजस तथा तामस ।

इस प्रकार से विष्णु देवता को मुख्य मान कर प्रवृत्त हुऐ २ पुराणों को सात्विक तथा ब्रह्मदेवता के पुराणों को राजस और शिव देवता के पुराणों को तामस माना जाता है । अर्थात् * विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह ये सात पुराण सात्विक विभाग में हैंऔर वैष्णव सम्प्रदाय के हैं । मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अग्नि ये ६ पुराण तामस हैं और प्रायः शैव सम्प्रदाय के हैं । तीसरे राजस विभाग में ब्रह्माण्ड ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, और ब्रह्मपुराण हैं और ये ब्रह्मदेवता के हैं । इसी क्रम से इन पुराणों की आलोचना भी की जाती है ।

---

* **मात्स्यं, कौर्मं, तथा लैङ्गं, शैवं, स्कान्दं, तथैव च ॥ ११ ॥**
आग्नेयं च षडेतानि, तामसानि, निबोध मे ॥
वैष्णवं, नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ॥ १२ ॥
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शनम् ॥
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ॥ १३ ॥
ब्रह्माण्डं, ब्रह्मवैवर्त्तं, मार्कण्डेयं तथैव च ॥
भविष्यं, वामनं, ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ॥ १४ ॥
(पाद्म, उत्तर०, २६३)

दशम अध्याय

सात्विक पुराण—अठारह पुराण

विष्णु पुराणः--

इस के ६ अंश हैं; प्रथम अंश में २२ अध्याय, द्वितीय अंश में १६ अध्याय, तृतीय में १८ अध्याय, चतुर्थ में २४ अध्याय, पंचम में ३८ अध्याय तथा षष्ठ में ८ अध्याय हैं।

इस वैष्णव पुराण की मात्स्य पुराण तथा भागवत पुराण के अनुसार २३००० तेईस हजार पद्य संख्या है। परन्तु वर्त्तमान में उपलब्ध तथा सनातन समाज से अभिमत व प्रकाशित विष्णुपुराण के पद्यों की गणना करने से कुल पद्य ५४६१ पांच हज़ार चारसौ इकसठ ही होते हैं। इस पुराण को देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शेष विष्णु पुराण के १७००० श्लोक देवलोक में चले गये हैं। या तो व्यासजी को गणित नहीं आती होगी और या बिना सोचे समझे अन्दाज़ा लगा कर पहिले ही गिनती लिख दी होगी और बाद को याद न रहने से उसका अनुसरण न कर सकें होगें अथवा जिस प्रकार भूमि आदि के विस्तार और दैत्यादिकों के शरीर बताने में पुराणकार अतिशयोक्ति में बड़े सिद्धहस्त हैं उसी प्रकार इस विष्णु पुराण की पद्य गणना में भी बड़ा कौशल दिखाया हो तो क्या आश्चर्य है। युक्ति युक्त कल्पना यही है कि किसी साम्प्रदायिक गद्दीवाले व्यास ने अपने चार लाख की टेक पूरी करने के लिये बिना विष्णुपुराण को देखे ही अनुमान से कह दिया होगा। कुछ भी हो; कम से कम इस अंश में विष्णु पुराण की २३००० श्लोकों की तो सरासर गप्प है।

सनातन पक्ष का पोषण करने पर कटिबद्ध पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र अपने "अष्टादश पुराण दर्पण" में विष्णु पुराण की श्लोक संख्या की न्यूनता को देखकर समाधान करते हैं कि यद्यपि मत्स्यपुराण प्रतिपादित विष्णुपुराण वर्तमान में उपलब्ध विष्णुपुराण ही है परन्तु बृहन्नारदीय पुराण में इन ६ अंशों के अतिरिक्त भी एक उत्तर खण्ड पढ़ा गया है। और पूर्वोक्त ६ अंशों के विषयों में भी कुछ २ भेद है। तिसपर

भी अलबूनी के वचनानुसार विष्णु धर्मोत्तर के पद्यों के मिलाने से १६००० श्लोक हो जाते हैं फिर ७००० की न्यूनता पूरी करना दुष्कर है। इस से पंडित जी कहते हैं कि:—

"इसका निर्णय करना हमारी बुद्धि से अगम्य है।"

तदन्तर पंडित जी ने प्रचलित धर्मोत्तर में भी ब्रह्मगुप्त कृत ज्योतिषग्रन्थ का मूल नया कर उसको उत्तर अंश मानने से निषेध किया है। फिर विष्णु पुराण कौनसा झूंठा और कौनसा सच्चा है इसका निर्णय करना नितान्त दुष्कर हो जाता है।

तथापि पंडित जी पौराणिक मान बचाने के हेतु अन्त में लिखते हैं कि "हेमाद्रि और बृहत्स्तोत्ररत्नावलीकार ने बृहद्विष्णुपुराण से पद्य उद्धृत किये हैं किन्तु यह पुराण इस समय नहीं पाया जाता। सुना जाता है कि काठियावाड़ में किन्हीं के घर पूरा २३००० का विष्णुपुराण है मिलने पर उसका उल्लेख किया जायगा।"

यदि सच्चा विष्णुपुराण मिलजाय तो और भी खुशी होगी। परन्तु सोचने की बात है कि २३००० वाले विष्णुपुराण के मिलजाने पर मत्स्यपुराणोक्त विष्णुपुराण तथा वर्त्तमान प्रचलित विष्णुपुराण एवं पूर्व कथित विष्णु धर्मोत्तर भाग इनकी क्या गति होगी! यें सब झूंठ मूंठ हीव्यास के गले मढ़े जाने का दोष सहना होगा। इसी प्रकार अन्य पुराणों के झूंठा होने तथा व्यास के गले मढ़े जाने में भी क्या सन्देह रहेगा। एक ही नाम से दो या तीन पुराणों का प्रसिद्ध होना एक कर्त्ता के बनाये हुए न होकर स्पष्ट साम्प्रदायिक पोथों के होने में पूरा प्रमाण है। केवल विष्णुपुराण की आलोचना से ही प्रथम सम्प्रदाय वर्त्तमान विष्णुपुराण वादियों का, दूसरा विष्णुधर्मोत्तर उक्त पुराण वालों का तीसरा सम्प्रदाय अज्ञानरूप २३००० पद्यमय काठियावाड़ वास्तव्यजन के गृहगत श्रुति गोचर वादियों का हो जाता है।

साम्प्रदायिकता के पोषण में ही पंडित जी ने एक बात का और उल्लेख किया कि:-

"कन्याकुब्जमाहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा, भरताख्यान, देवीस्तुति, महादेवस्तोत्र, लक्ष्मीस्तोत्र, विष्णुपूजन, विष्णुशतनामस्तोत्र, सिद्धलक्ष्मीस्तोत्र, सुमनःशोधन, सूर्यस्तोत्र, इत्यादि छोटी २ पोथीं विष्णुपुराण के अन्तर्गत

कह कर प्रचलित देखी जाती हैं; किन्तु उन सब के देखने से ही उन पोथियों को विष्णुपुराण के पीछे की रचना ज्ञात होती है ।"

ठीक है । साम्प्रदायिक पुराण का पोथा इसी तरह से वृद्धि किया करता है । उपरोक्त पोथियों को जिस प्रकार स्वनिर्मित स्तोत्रादिकों का झूंठ मूंठ व्यास के गले मढ़ने का साहस है इसी प्रकार वर्तमान में महदाकारेण साम्प्रदायिक देवताओं को उद्देश्य करके रचे गये, शिव विष्णु पुराणादि के कर्त्ताओं ने भी वैसा ही साहस किया हो इस में क्या सन्देह है ।

वर्तमान विष्णुपुराण की पहचान के लिये मत्स्यपुराण कहता है:—

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ॥

"बराहकल्प वृत्तान्त से प्रारम्भ करके पराशर ने समस्त धर्मों को जिस पुराण में कहा है वह वैष्णव पुराण कहा जाता है ।" यह लक्षण यथाकथंचित् वर्त्तमान विष्णु पुराण में घटित हो सकता है । क्योंकि तृतीय अध्याय तक वैदिक सृष्टिक्रम तथा काल परिमाण बतला कर ब्रह्मा की सृष्टि रचना बताते हैं और संक्षेप से बराह कल्प का प्रक्रम छेड़ा गया है:—

"तोयान्तः स महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवे प्रभुः ।
अनुमानात्तदुद्धारं कर्त्तुं कामः प्रजापतिः ॥ ७ ॥
अकरोत्स तनूमन्यां कल्पादिषु यथापुरा ।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद् वाराहं वपुरास्थितः ॥ ८ ॥
वेदयज्ञमयं रूपमशेष जगतः स्थितौ ॥ ९ ॥

(विष्णु० अंश १, अ० ४,)

एक मात्र समुद्ररूप में जल के मध्य में सम्पूर्ण पृथ्वी को मग्न जान कर अनुमान * से उसका उद्धार करने की इच्छा से प्रजापति ने जैसे पहले कल्पों में दूसरी प्रकार की मच्छी और कछुओं की शकलें धारण की थीं, उसी प्रकार इस कल्प में सूअर की शकलें धारण कीं, वह रूप वेद और यज्ञमय था ।

*** क्या प्रजापति सर्वज्ञ नहीं था जो अनुमान से जानने की अवश्यकता पड़ी ।**

बृहन्नारदीयपुराण में विष्णुपुराण के सर्व विषयों की सूची इस रूप में दी है:

ब्रह्मा मरीची के प्रति बोले:—

"हे पुत्र बड़े वैष्णवपुराण के विषय में कहता हूं—ये पापों का नाश करने वाला २३००० श्लोकों से युक्त है। जिस के आदि भाग के ६ अंश हैं जिस में शक्ति के पुत्र पराशर ने मैत्रेय को उपदेश किया। प्रथम अंश में पुराण की भूमिका, आदि कारण की सृष्टि, देवताओं की उत्पत्ति, समुद्रमथन, दक्षादिकवंश, ध्रुवचरित्र, पृथुचरित्र, प्रचेतस का आख्यान प्रह्लाद की कथा पृथक् २ राज्याधिकार का वर्णन है।

प्रियव्रतवंशकीर्तन, पाताल नरकादि वर्णन तथा द्वीप वर्षादि का विचार, सात स्वर्गों का निरूपण पृथक् २ लक्षणों से युक्त सूर्यादि गति का प्रतिपादन, भरत चरित्र, मुक्ति मार्ग का निर्देश निदाघ ऋतु सम्वाद, यह दूसरे अंश में प्रतिपादन किया है।

तीसरे अंश में मन्वन्तराख्यान, वेदव्यास का अवतरण, नरकोद्धारककर्म, सगर और और्व सम्वाद, सर्व धर्म निरूपण, श्राद्ध, कल्प, वर्ण आश्रम व्यवस्था सदाचार, और मायामोह की कथा; यह सब कहा है।

चौथे अंशसूर्य वंश की कथा, सोमवंश की कथा, नाना राजों का वृत्तान्त कहा है।

पांचवें अंश में कृष्णावतार का प्रश्न, गोकुल सम्बन्धी कथा, पूतनादि वध, कुमारावस्था में अघादिवध, किशोरावस्था में कंसादिघात, मथुरा का वर्णन युवावस्था, द्वारका की लीला, सब दैत्यों का विनाश, नाना प्रकार के विवाह, परस्पर के मारने से पृथ्वी का भार कम करना, अष्टावक्रउपाख्यान इत्यादि कथा कही हैं।

छटे अंश में कलियुग का चरित्र, चार प्रकार का प्रलय, खण्डिक का ब्रह्मज्ञान उपदेश वर्णित हैं। इस प्रकार विष्णुपुराण का पूर्व खण्ड समाप्त होता है इतना ही वर्तमान विष्णु पुराण उपलब्ध है। बृहन्नारदीय के अनुसार, वैष्णवपुराण का उत्तर खण्ड, जिस का दूसरा नाम विष्णु धर्मोत्तर है प्रारम्भ होता है। इस में नाना धर्म कथाएं, पुराणवत यम नियम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्तज्योतिष, वंशाख्यान स्तोत्र प्रलय सर्वलोकोपकार नाना विद्याओं के मूल भी दिखाये हैं यही सब शास्त्रों के अर्थ को इकट्ठा करने वाला विष्णु पुराण है। *

---

* देखो बृहन्नारदीय पुराण-(पूर्व खण्ड० अ० ९४)

इस प्रकार विष्णु पुराण भी एक सम्प्रदाय का स्मृतिरूप धर्म पुस्तक उसी प्रकार बना है जिस प्रकार कि सम्प्रदायिकों का बाइबल या कुरान है। इस में अन्य स्मृति तथा सूत्र ग्रन्थों तक यथाअभीष्ट सिद्धान्तों को येन केन रूपेण, कल्पना को प्रधान रख कर वर्णित किया है। और विष्णु को ही प्रधानता देने के निमित्त, विष्णु को मुख्य मान कर अन्य देवताओं को उसी का रूप दिया गया है। इस के प्रवक्ता पराशर ने भी किसी विशेष क्रम का अनुसरण नहीं किया। प्रथम सर्ग बतला कर वंशादि वर्णन करते हुऐ वेनचरित्र, पृथुचरित्र, ध्रुव चरित्र, प्रह्लाद कथाएँ, स्वसम्प्रदाय के देवता को भक्तवत्सल सिद्ध करने के लिये उपाख्यानों का विन्यास किया है। विशेषतः तीसरे अंश से प्रारम्भ करके वर्णाश्रम—धर्म श्राद्ध कल्प तथा व्यासावतरण ये तो केवल नाना स्थानों के ज्ञान भागों का संग्रह मात्र हैं। इनका प्रारम्भ भी श्रोता तथा प्रश्न के हृदय में प्रश्न के सहसा उत्थित होने मात्र से हो जाता है। इस विष्णुपुराण के बनने का काल जैनों के पश्चात् ही स्थिर होसकता है। जैन लोगों का जब प्रचार अच्छा फैल चुका, और पीछे से पुनरपि वैदिक विष्णु के उपासकों ने नास्तिकीभूत जनसमाज को वैदिक धर्म पर लाने के लिये पुरुषसूक्त तथा स्मृतियों के आधार पर गद्दीदार व्यास द्वारा जीवन का संचार कराया गया, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि तीसरे अंश में बौद्धों का उद्भव दिखाया गया है। साम्प्रदायिक विरोध का मूल अपने को देव तथा दूसरे को दैत्य मानना ही जतलाता है। सभी सम्प्रदायों में ऐसा होता चला आया है। जैसे ईसाई अपने को क्रिश्चियन दूसरों को पेगन। मुसल्मान आप तो अच्छे दूसरे काफिर इसी प्रकार भारतीय आप आर्य, तो दूसरे दस्यु या म्लेछ इसी प्रकार पौराणिक परिभाषा के अनुसार विष्णु भक्त स्वतः देव उस के विरोधी दैत्य। इस सांकेतिक विभाग का प्रयोग खूब होने लग गया था। अतएव (**विष्णु पुराण०, अंश ३, अ० १६**) कथा को इस रूप में रक्खा कि दैत्यों को तपश्चर्या करते देख कर देवों के हृदय में शूल* हुआ। देव लोग विष्णु के पास कहने लगे कि दैत्य लोग बड़े तपस्वी

---

* देवताओं के हृदयों में शूल का कारणः—

तमूचुः सकलादेवाः प्रसीदेति शरणार्थिनः ॥ ३६ ॥
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च दैत्यैर्ह्रादिपुरोगमैः ।
हृतं नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लंघ्य परमेश्वरः ॥ ३९ ॥
स्ववर्णधर्माभिरताः वेदमार्गानुसारिणः ।
नशक्यास्तैरयं हन्तुमस्माभिस्तपसाजिताः ॥ ४० ॥

तथा धर्मनिष्ठ होकर हम से बढ़ जायेंगे अतः उनका कुछ उपाय करो। विष्णु ने माया मोह को पैदा किया और कहा कि निःशंक रहो। ये सब दैत्यों को च्युत कर देगा। वह मोहमाया विष्णु भगवान् से प्रेरित होकर दैत्यों को गिराने के लिये मयूर का पंख हाथ में लेकर, सिर मुंडा कर, दिगम्बर होकर प्रगट हुआ और मधुर २ बचनों से दैत्यों को बोला:—*

हे दैत्यो! यह इतना घोर तप क्यों करते हो?

इस पर दैत्य बोले:—

परलोक फल की प्राप्ति के लिये।

मोहमाया:— ÷

मुक्ति पाने की इच्छा है तो मेरा वचन सुनो। इसी मत्प्रतिपादित धर्म के योग्य बनो, देखो यहां ही रहते हुए १० विष्णु की पूजा कर के विफल किया जण्डी से राजाने आलाप किया। इस पाप का फल मिला कि प्रथम वह कुत्ता फिर शृगाल फिर भेड़िया और फिर तुम मुक्त होजाओगे। इस प्रकार युक्तियों को दिखा कर बढाये हुए प्रकारों से माया मोहने दैत्यों को धर्म से डिगा दिया। इसी प्रकरण में माया मोह के युक्ति जाल का नमूना दिखाने के लिये जैनियों का अस्तिनास्तिवाद भी × उल्लेख किया है।

* मायामोह का प्रादुर्भाव:—

ततो दिगम्बरो मुंण्डो बर्हिपत्रधरोद्विजः।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥ २॥

÷ मोहमाया का वचन सुनिये:—

धर्मोबिमुक्ते रर्होऽयं नैतस्मादपरः परः।
अत्रैवावस्थिताः स्वर्गं विमुक्तिं वा गमिष्यथ॥ ६॥
अर्हध्वं धर्ममेनञ्च सर्वेयूयं महाबलाः।
एवं प्रकारैर्बहुभिः युक्तिदर्शनवर्धितैः॥ ७॥
मायामोहेन दैत्यास्ते वेदमार्गादपाकृताः।

अर्होयं अर्हध्वम् इन दो पदों से आर्हत मत की व्युत्पत्ति सहित उत्पत्ति का मूल निर्देश किया है।

× दिगम्बर जैनियों का अस्तिनास्तिवाद:—

धर्मायैतदधर्माय सदेतन्नसदित्यपि॥ ८॥
विमुक्तयेत्विदं नैतद् विमुक्तिं सम्प्रयच्छति।
परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम्॥ ९॥
कार्यमेतदकार्यञ्च नैतदेवं स्फुटं त्विदम्।
दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम्॥ १०॥
इत्यनैकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा।
तेन दर्शयता दैत्याः स्वधर्मान् त्याजिताः द्विजाः॥ ११॥

आर्हत धर्म *का मूल दिखाया है। दिगम्बर, वल्कम्बर, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, इनका विभेद दिखलाया। साथ ही यज्ञ में पशु × हिंसा की उपस्थिति को देखकर बौद्ध और जैनों के आक्षेपों को विस्तार से दिखाने का प्रयत्न किया है। बौद्धों का *

* अर्हत सम्प्रदाय की उत्पत्तिः—

अर्हथेमं महाधर्मं महामोहेन ते यतः।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेनतेऽभवन् ॥
त्रयीधर्मसमुत्सर्गं मायामोहेन तेऽसुराः।
कारितास्तन्मया ह्यासंस्तथान्ये तत्प्रबोधिताः ॥
तैरप्यन्येपरंतैश्च तैरप्यन्ये परे च तैः।
अल्पैरहोभिः संत्यक्तास्तैर्दन्यैः प्रायशस्त्रयी ॥
तमुपायमनेयात्मन् अस्माकं दातुमर्हसि।
येन तानसुरान् हंतुं भवेम भगवन् क्षमाः ॥ ४१ ॥

भगवान् बोलेः—

मायामोहोयमखिलान् दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति।
ततोवध्याः भविष्यंति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ ४२ ॥
स्थितौ स्थितस्य मे वध्या यावन्तः परिपन्थिनः।
ब्रह्मणो येऽधिकारस्थाः देव दैत्यादिकाः सुराः ॥ ४३ ॥
तद्गच्छतनभीः कार्याः मायामोहोऽयमग्रतः।
गच्छत्वधोपकाराय भविता भवतां सुराः ॥ ४४ ॥

(वि० पु०, अंश० ३, अ० १७,१८)

× पशु हिंसामय यज्ञ पर आक्षेपः—

स्वर्गार्थं यदिवाञ्छावो निर्वाणार्थं यथा सुराः।
तदलं पशुघातादि दुष्टं धर्मं निबोधत ॥ १६ ॥

i बौद्धों का विज्ञान वादः—

विज्ञानमयमवैतदशेषमवगच्छथ ॥

ii बौद्धों की उत्पत्तिः—

बुद्धध्वं मे वचः सम्यग् बुधैरेवमुदीरितम् ॥ १७ ॥

iii क्षणिक तथा अनीश्वर वादः—

जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थ तत्परम्।
रागादि दुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसंकटे ॥ १८ ॥
एवं बुद्धयत बुध्यध्वं बुद्धयैवमितीरयन्।
मायामोहः सदैतेयान् धर्मंमत्याजयन्निजम् ॥ १९ ॥

विज्ञानवाद, क्षणिकवाद, वेदनिन्दा श्राद्धनिषेध, दर्शा कर मायामोह द्वारा दैत्यों को धर्म हीन किया। इस प्रकार हीनसत्व दैत्यों पर आक्रमण करके देव का विजय दर्शाकर पुराणकार ने अपने साम्प्रदायिक द्वेषभाव से भरपेट परपक्षियों को गाली प्रदान तथा द्वेष विष का उद्गार किया है।

यहां तक द्वेषभाव* बढ़ा दिया कि परस्पर सम्भाषण करने तक में महा पातक तथा नरक गामिता का अपराध लगाया गया है। इस को पुष्ट* करने के लिये सरासर कल्पित एक राजा रानी की कथा घड़कर लगादी गयी है। एक राजा शतुधनु अपनी पत्नी के सा गीध फिर कौवा फिर मोर फिर राजा का पुत्र बना।

---

iv यज्ञ निन्दा:—

केचिद्‌ विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज।
यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम्‌॥ २४॥
नैतद्‌ युक्तिसहं वाक्यं हिंसाधर्माय नेष्यते।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम्‌॥ २५॥
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः॥ २६॥
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते।
स्वपितायजमानेन किन्नु तस्मान्नहन्यते॥ २७॥
तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः।
दद्याच्छ्राद्धं श्रद्धयान्नं न वहेयुः प्रवासिनः॥ २८॥

v वेदों का पौरुषेयत्व:—

न ह्याप्तवादा नभसः निष्पतन्ति महासुराः।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयाऽन्यैश्च भवद्विधैः॥ ३०॥

* द्वेष की पराकाष्ठा:—

ततो मैत्रेय उन्मार्ग वर्त्तिनोऽभवज्जनाः।
नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयी संवरणं वृथा॥ ३५॥
यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते।
परिव्राड्वाऽपि मैत्रेय स नग्नः पापकृन्नरः॥ ३७॥
तस्यावलोकनात्‌ सूर्यो निरीक्ष्यः साधुभिः सदा॥४०॥
स्पृष्टे स्नानं स चैलस्य शुद्धिहेतु र्महामते।
पुंसो भवति तस्योक्ता न शुद्धिः पापकर्मणः॥ ४१॥
देखो (विष्णुपुराण अंश ३ अ० १८)

कथा घड़ने वाले ने यह भी न सोचा कि इस कथा से अभिमत विष्णु की कितनी नपुंसकता तथा भक्तनिर्दयता सिद्ध होगी। एक वार पाखण्डी के आप से क्या इतना पाप होगया कि शत और सहस्त्र वार भगवान का दर्शन भी उसके सामने तृण तुच्छ है। यदि इतना बलहीन विष्णु है तो ऐसे निर्वीर्य की उपासना से क्या।

इस उपरोक्त कथा से तृतीय अंश समाप्त किया है। ऐसी अविवेक जन्य बच्चों को बहलाने की कथाओं को अन्धे की तरह मानना तथा मनवाना सिवाय साम्प्रदायिक द्वेष के और कुछ नहीं सिद्ध करता। इसी लिये पुराणकार ने नीचे लिखे उद्धृत भगवान के वचन से कहला दिया कि—

स्थितौस्थितस्यमेवध्याः यावन्तः परिपन्थिनः।
ब्रह्मणोयेऽधिकारस्थाः देवदैत्यादिकाः सुराः॥ ४३॥

(अंश० ३, अ० १७)

ब्रह्मा के अधिकार में स्थित देव दैत्यादिक सब जो भी मेरे शत्रु हैं वह सब मारने योग्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों रूप में एक परमेश्वर देखने वाले, विवेकी, वसुधाकुटुम्बी, को यह वचन शोभा नहीं देता [प्रत्युत साम्प्रदायिक आवेश में ऐसे भूयः प्रलाप भी उद्वेगजनक नहीं प्रतीत होते] यही प्रकार होते हैं साम्प्रदायिक द्वेषविष के उगलन के जिन को येन केनापि छिपाना असम्भव है।

सब से अधिक आश्चर्य की सीमा यह है कि अभिमत देवता विष्णु इतने ईर्षाकुल हुऐ कि उनको पर तपश्चर्या तथा धर्मानुष्ठान देख कर प्रसन्न होना चाहिये था परन्तु क्योंकि दैत्यजन दितिवंश के थे, सो मायामोह का जाल स्वयं रच कर उनको प्रथम धर्म च्युत किया। क्या कभी देवता होकर कोई दूसरे के धर्म को डिगाया करता है। यह देवता का कार्य नहीं प्रत्युत नीच राक्षस का कार्य है कि दूसरों को धर्माचरण से भ्रष्ट करे। स्वयं सब पुराणों में सात्विकतम पुराण से प्रतिपादित हो कर स्वयं सत्वमय होकर इतने धर्म विप्लव का कार्य छल से करना किसी बुद्धिमान् साम्प्रदायिक को भी रुचिकर न होगा इसी से तो इन पुराणों में छल छद्मी पाखण्डी वैडाल व्रतिकों का भी करस्पर्श हुवा प्रतीत होता है नहीं तो देवता को ऐसे नीच पद तथा कार्य के लिये नियुक्त न किया होता, अस्तु ! प्रसंग वश पुराणाभिमत देवताओं के और भी अद्भुत राक्षसी माया का विस्तार यथा प्रकरण दिखाएंगे।

चतुर्थ अंश में भगवान मनु का वंश वर्णित है जिसमें मान्धाता आदि की विचित्र गाथाओं की असम्भवता तथा निर्मूलता ही असत्यता का एक नमूना हैं। तथापि

इस अंश में कृष्ण को विष्णु का अन्तिम अवतार कह के बुद्धावतार सर्वथा छोड़ गये। इस अंश में भविष्य का वर्णन किया है जिसमें कलिका पतित दृश्य, भावि कतिपय राजा तथा चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध काल का वर्णन करते हुये, फिर यवन काल, फिर गौरवकों का राज्य, फिर कल्कि अवतार की उत्पत्ति बतलाई है। कल्कि ने सकल अधर्म का नाश किया तदनन्तर कृतयुग तथा धर्म का राज्य प्रारम्भ होता है।

इसी उपसंहार में कलि की वर्ष गणना तथा कलि की समाप्ति का वर्णन करके अंश समाप्त किया है।

इस में साम्प्रदायिकता का इतना प्रबल प्रमाण है कि जगद्विख्यात बुद्धावतार का नाम मात्र भी निर्देश नहीं किया। केवल इक्ष्वाकु वंशावली में शाक्य नाम के राजा होने मात्र का निर्देश है। अन्य जहां छोटी से छोटी कथा का पर्याप्त भाग दिया है वहां इस आवश्यक परिवर्तन को स्पर्श तक नहीं किया इसमें बौद्धों से साम्प्रदायिक विद्वेष के बिना दूसरा कारण नहीं दीखता। जैसा कि हम पहले बौद्धों की निन्दा विषयक गत पृष्ठों में उद्धृत कर आये हैं।

पंचमांश में तो विष्णु पुराण के कर्त्ता ने बड़ा अद्भुत चमत्कार दिखाया है। कृष्ण को विष्णु का अवतार मान कर अपने चरितनायक को परमात्मा सिद्ध करने के लिये एक बात का बतंगड़, तिल का ताल, सूई का फावला, पशु का दैत्य तथा राई का पहाड़ बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जो २ व्यक्ति भी कृष्ण के हाथ से मारे गये उनके विषय में [१] मुख्य कल्पना यह है कि ये सब दैत्य थे असुर थे, दानव थे, और जितनी भी स्त्रियें मारी गयीं उन में कोई कुबड़ी थी, कोई स्थूलस्तनी थी और ये सब दैत्याएं थीं। [२] यह कल्पना इतनी बढ़ी कि शकट को उल्टा होकर पैरों के धक्कों से उछाल देने पर वह शकट भी एक दैत्य शकटासुर ही बन गया। [३] बक मारा गया सो बकासुर बन गया। आगे रात के समय वृन्दावन में एक मत्त बैल का दमन किया। कृष्ण ने उसका सींग तोड़ दिया तथा उस बैल का घात कर दिया सो चरित्र नायक की इस गो हत्या को दूर करने के लिये वह बैल भी एक धेनुकासुर बनाया गया। वर्षा के अधिक होने से आश्रयार्थ कृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ को अपनी एक छोटी उंगली पर उठाया, यह तो पढ़ने और पढ़कर विचारने वालों के लिए सर्वथा गपोड़ा है। अच्छा यह

था कि गोवर्धन पहाड़ पर एक गोशाला या पत्तों की छत बना देता यह तो बुद्धिमत्ता थी। परन्तु पहाड़ को उठाना यह कोई भी बुद्धिमत्ता न थी इस निर्बुद्धिता की कल्पना ने पुराण के कर्त्ता को अपने चरित नायक की अवतारता में एक बड़ी भारी युक्ति दी। इसी प्रकार केशी नाम का घोड़ा उधर भागता २ आनिकला उस को देख गवाले घबराये। यह देख कृष्ण ने उस घोड़े को पकड़ कर उस का मुंह तोड़ दिया और मारडाला सो विष्णु पुराण के कर्त्ता ने उसे भी एक दैत्य कल्पित किया। केशिवध के अनन्तर उस ने कल्पित नारद जी को भी एक अवसर दिया कि ये इस नर अश्व के युद्ध को देखने के लिए स्वर्गलोक से आते।

तदनन्तर कुब्जा की बारी आती है। यह विचारी कंस की दासी थी जो चन्दन लेपनादि की थाली ला रही थी उस से कृष्ण और राम दोनों भाईयों ने अनुलेपन खींस लिया और जबरदस्ती से नीचे से पैर कड़ाई से पकड़ कर टोडी से ऊंचा किया कि वह सीधी हो गई। यह एक विचित्र कार्य किया।

(देखो० अंश ५ , अ० २०)

आगे कंस की रंगशाला आखाड़ में चाणूर और मुष्टिक दो पहलवानों से कृष्ण गद्दम परख करते हैं और बाकायदा सब राजवंशीय लोग अपने २ सीट्स, पर बैठ २ कर यह मैच भी देखते हैं। बहुत देर तक कुश्ती होती रही और अन्त में कृष्ण ने चाणूर को उठाकर पटका कि उसके प्राणपयान कर गये। दूसरी तरफ रामने मुष्टिक को भी मारडाला। एक यह बाजी जीती कि पुराणकार को अवसर मिल गया चाणूर और मुष्टिक दोनों को असुर वा दैत्य बनालेने का।

अपने दो मल्लों को मरे देखकर कंसने क्रोध में नन्द और वसुदेव को मारने की आज्ञा दी तथा राम और कृष्ण दोनों को भी निकल जाने की आज्ञा दी बस इतने ही में कृष्ण ने उछल कर उसको उसकी जगह धर घसीटा।

इसी प्रकार अवन्तिपुर के वाससांदीप निकाश्य के पास कृष्ण पढ़ने गये वहां धनुर्विद्या सीखकर प्रभासतीर्थ पर डूबे पुत्र को लौटाकर देने की गुरु-दक्षिणा देने के लिये वहां पञ्चजन नामक शंखकीटको कृष्णने मारा उसका खोलशंख पाञ्चजन्य तो बजाने के काम में आया, परन्तु पुराणकारने उस पञ्चजन शंखकीट को भी दैत्य ही बना दिया, इस शंखकीट की कहानी असम्भव प्रकरण में दिखाई जायगी।

कंसने जरासन्ध की कन्याओं से विवाह किया था अतः कंस की मृत्यु सुनकर जरासन्ध ने मथुरा पर धावा किया इस पर पुराणकार ने कृष्ण को पूरा देवता बनाने के लिये सींगका बना धनुष अक्षय तूणीर कौमोद की गदा आसमान से लाकर दिलादी। इसी प्रकार राम बलभद्र के हाथ में हल भी आसमान से मिलगया। [देखो वि० पु० अंश ५, अ० २१] सौनन्द मूसल भी आस्मान से बरसा। देखिये पूरा इन्द्रजाल। जितनी असम्भव बातें हो सकी हैं उतनी मिलाने के लिये यदि कोई चामत्कारिक ब्याज है तो यह है:—

मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतः पतेः।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥
मनसैव जगत्सृष्टिं संहारंचकरोतियः।
तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥

"मनुष्य के धर्मों को धर्मों वाले परमात्मा की यह लीला है कि शत्रुओं पर नाना प्रकार के अस्त्र प्रहार करता है। वैसे केवल मानस व्यापार से जगत् की सृष्टि और संहार करने वाले को केवल शत्रु का क्षय करना कौन बडी बात है।"

फिर वह क्यों ऐसा करता है:—

मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्त्ततः।
लीलाजगत्पतेस्तस्य छंदतः सम्प्रवर्त्तते ॥

"मनुष्यादि देहधारियों की नाना प्रकार से चेष्टाओं का अनुकरण करते हुए परमात्मा की यह सब लीला अपनी इच्छा से ही हुआ करती है।"

यह केवल व्यक्ति विशेष जो सम्प्रदाय सिद्ध साम्प्रदायिक पूजनीय देवता है उसको बढ़ाने के लिए एक प्रकार रचा हुआ है। जिससे सुनने वालों को श्रद्धा रहे।

वैसे तो अवतार मानने की अपेक्षा एक मनुष्य सामान्य मान लेने से ये सब लीला पदवाच्य घटनाएं अनायास सिद्ध हो सकती हैं।

इसके अनन्तर काल यवन की कथा और कृष्ण का द्वारका बसाना, कृष्ण का छिपजाना बता कर काल यवन का नाश करने में एक अन्य मिथ्या कल्पना घड़ीगई, [देखो अं० ५, अ० २३,]

राम बलभद्र ने अपने भोग सम्पत्ति बढ़ाने के लिए यमुना की नहर निकाली उसका विचित्र ही आलंकारिक वर्णन किया है जिस से ये यमुना जी बोल उठीं। तदनन्तर कृष्ण का रुक्मिणी से राक्षस विवाह है।

इस के अनन्तर प्राग्ज्योतिष पुर के राजा नरक को भी पुराणकारने दैत्यमान कर उसका वध कराया। तथा उसका सर्वस्व कृष्ण लूट लेगया उसकी १६००० स्त्रियें भी कृष्ण ने अपनी द्वारका में रखीं। तदन्तर इन्द्र के बाग का पारिजात वृक्ष बलात्कार से उखाड़ा गया इस के बाद विष्णुपुराणकार को लज्जा नहीं आई कि भगवान् विष्णु कृष्ण को देवता मानकर लिखता है कि नरकासुर की १६००० स्त्रियों से कृष्ण ने भोग किया। (देखो अं० ५, अ० ३१)

पहले कालयवन की कथा से शंकर का अपमान सूचित है। यहां बाणासुर और अनिरुद्ध के युद्ध में दोनों दलों के सहायक शंकर और कृष्ण का युद्ध छिड़ाया गया है। शंकर को नीचा करने के लिए सांप्रदायिक देवता बढ़ाने के लिये इस कथा का आविष्कार किया। आश्चर्य यह है कि इतनी तुच्छ तथा घृणास्पद बात पर देवताओं को लड़ाया गया है। (देखो अध्याय ३३) फिर रुद्र के मुख से कृष्ण की स्तुति कराई है।

इस के अनन्तर काशीराज के साथ तुच्छ सी बात पर युद्ध होजाने से उस की काशी का नाश किया। वहां के राज पुत्र ने शिव की उपासना करके कृष्ण पर कृत्या चलाई कि उस के प्रतीकार में कृष्ण ने चक्र के बल से सारी काशी का दहन किया। इस में भी शंकरदेव के साथ विष्णु की लड़ाई हुई और विष्णु का विजय हुआ। (अ० ३४)

इसी प्रकार बलदेव का एक बन्दर से युद्ध हुआ पुराणकार ने कैसी मनोहर गप्प घड़कर उस को भी दैत्य बना दिया। (देखो अ० ३६)

यादव वंश कथा के उपसंहार में कृष्ण के १०० वर्ष आयु के बीत जाने पर देवता बुलाने आगये कि चलो पृथिवी का पर्याप्त भार उतार दिया अब देवलोक में रहो। परन्तु कृष्णने ७ दिन की मोहलत ली कि इतने यादवों का नाश करूंगा। सो मुसल की कथा का उल्लेख भी इस प्रकार किया गया।

कृष्ण के लाने के लिए फिर आये विमान पर चढ़कर कृष्ण जी वसुधा को छोड़ चले गये। इधर कृष्ण की स्त्रियें जलकर भस्म हो सती हुई। अर्जुन इस को अन्य ६०००० धर्मपत्नियों को लेकर चला कि रास्ते में पंजाब में चोर लुटेरों ने लूट ली।

पता नहीं कृष्ण भगवान् ने इन चोर लुटेरों का भार क्यों कम न किया। और इतनी संख्याक दुखिता लूटी खसोटी गई स्त्रियों का शोकभार तथा दुःखभार क्यों क्रम न किया।

खैर पुराणकार को तो कथा समाप्त करनी थी। सो यदुवंश कथा समाप्त हुई।

शेष रहा ६० अंश इस में प्रलयकाल का उपक्रम छेड़ा गया है परन्तु प्रसंगतः कलियुग का पतित वर्णन प्रथम दूसरे अध्याय में खेंचा गया है, तदन्तर शास्त्ररीति का अवलम्बन करके प्रलय तथा खाण्डिक्य की कथा से ब्रह्मोपासना का प्रकरण सविस्तर कहा है

इस प्रकार यह एक महासाम्प्रदायिक पोथा मैत्रेय और पाराशर संवाद में समाप्त किया गया है।

इस के अनन्तर अब हम अन्य पुराणों को भी क्रम से विषय प्रदर्शन द्वारा आलोचन करते हैं।

—:०:—

बृहन्नारदीय पुराण

यह महापुराण दो विभागों में विभक्त है वर्त्तमान में उपलब्ध बृहन्नारदीय पुराण के प्रथम खण्ड में १२५ अध्याय हैं, द्वितीय जिसको उत्तर खण्ड कहा जाता है उस में ८२ अध्याय हैं। मात्स्यपुराण के अनुसार इसकी गणना:—

"पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते" ॥ २३ ॥

[मात्स्य०, अ० ३५]

२५ हजार है। परन्तु वर्त्तमान में उपलब्ध की श्लोक गणना प्रो० विलसन के अनुसार ३००० है या ३५०० ही है परन्तु पुराणदर्पण के कर्त्ता ज्वालाप्रसाद मिश्र के अनुसार लग भग २२००० के है शेष ३००० की संख्या का पता नहीं, मिश्र जी किस प्रकार पूरी करते हैं जब कि साथ ही यह भी मानते हैं कि यह "सब पुराणों के पीछे संकलन किया गया है।" उनकी दृष्टि में वैष्णव पंथियों की बनाई एक बृहन्नारदीय पुराण नामक एक और पोथा है जिसको वे पुराण नहीं मानते इसी प्रकार लघु बृहन्नारदीय, कार्त्तिक माहात्म्य, पार्थिव लिंग माहात्म्य, मृग व्याघकथा, यादवगिरिमाहात्म्य, श्रीकृष्ण माहात्म्य, शंकर गणपतिस्तोत्र, इत्यादि नामों की कई पोथियों को भी बृहन्नारद के अतिरिक्त साम्प्रदायिक अर्वाचीन रचना में मानते हैं।

हमारी सामान्य दृष्टि में उपरोक्त साम्प्रदायिक रचना के सदृश ही सम्पूर्ण नारदीय पुराण बहुत अर्वाचीन काल का संग्रहीत तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थ है जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण हम स्थान २ पर दिखाते जायगें। ये हो सकता है कि इस में प्राचीन पद्यों के संग्रह को भी यथाशक्ति त्याग न किया हो परन्तु नवीन संग्रह को तो कोई रोक टोक न थी। अस्तु—

वर्त्तमान पुराण पद्य संख्या हमारी एक २ पद्य की गणना कर पूर्वोत्तर खण्ड दोनों को मिला कर कुल १७९०४ है। अर्थात् लग भग १८००० के। शेष पुराण संख्या या तो देवलोक में होगी या होगी ही नहीं या मिश्र जी के घर पर होगी। यदि उत्तर खण्ड को परिशिष्ट मानलें जैसा कि प्राचीनों का नियम है कि परिशिष्ट भाग को ग्रन्थ का वास्तविक भाग नहीं माना जाता तो पूर्वखण्ड के १३७४६ ही श्लोक रहजाते हैं।

इस पुराण में अभी और भी कितना व्यर्थ भाग है जिस का अन्य पुराणों में लवमात्र भी निर्देश नहीं—जिस प्रकार सब पुराणों की

अनुक्रमणिका देना आदि। प्रतीत ऐसा होता है कि इस पुराण को सर्व पुराणों का दर्पण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

"मात्स्य के अनुसार बृहत्कल्प को मुख्य रखकर जहां नारद ने धर्म कहे हैं वह बृहन्नारद पुराण कहा गया है।

परन्तु वर्त्तमान हस्तगत बृहन्नारद पुराण में नारद प्रवक्ता नहीं है प्रत्युत श्रोता है सनत्कुमारादि ऋषि प्रवक्ता हैं। इससे यह लक्षित होता है कि या तो मात्स्य पुराण के कर्त्ता ने बृहन्नारद स्वतः नहीं देखा, नाम सुनकर अनुमान से वर्णन लिखा है।

बृहन्नारदीय पुराण ही में बृहन्नारदीय की अनुक्रमणिका इस प्रकार दी है:— *

सूत शौनक संवाद, सृष्टि का संक्षेप से वर्णन, प्रसंग से नाना पुण्य कथाएं। प्रथम पाद में महात्मा सनक ने कहीं द्वितीय मोक्षधर्म नामक पाद में मोक्षोपाय निरूपण, वेदांगों का कथन, शुकोत्पत्ति का विस्तार से वर्णन, सनन्दन ने नारद को कहा। तीसरे में महातन्त्र में कहा पशुपाश विमोक्षण मन्त्रों का शोधन, दीक्षा, मन्त्रोद्धार पूजन, प्रयोग, कवच, नाम सहस्र स्तोत्र। प्रथम गणेश, द्वितीय सूर्य फिर विष्णु फिर शिव और शक्ति के क्रम से मन्त्रादि सनत्कुमार मुनिने नारद को कहे हैं। चौथे में पुराण के लक्षण प्रमाण दान दानकाल के साथ साथ पृथक् पृथक् कहा है, चैत्रादि मासों में प्रतिपदादि तिथियों में सब पापों को नाश करने वाला व्रत सनातन मुनिने नारद को कहा है। यह पूर्वभाग समाप्त होता है।

"इसके उत्तर विभाग में एकादशी व्रत के विषय में मांधाता का वसिष्ठ से प्रश्न है। फिर रुक्मांगद की कथा मोहिनी की उत्पत्ति, वसु का शाप, उसका उद्धार, गंगा की कथा, गया यात्रा का अनुकीर्तन, काशी माहात्म्य, पुरुषोत्तम वर्णन, नाना-आख्यानों से युक्त क्षेत्र यात्रा विधान, प्रयाग माहात्म्य, हरिद्वार का आख्यान, कामोदाख्यान, बदरीतीर्थ, कामाक्षा, तक्षी, और प्रभास का माहात्म्य, पुष्कराख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादस्तव, गोकर्ण क्षेत्रस्तव, लक्ष्मणाख्यान, सेतु माहात्म्य, नर्मदातीर्थ वर्णन, अवन्ती माहात्म्य, मथुरा, और वृन्दावन की महिमा, पशु की गति, मोहिनी चरित। यह विषय नारदीय पुराण का है।"

* (देखो, बृहन्नारदीय पुराण, पूर्वार्ध भाग, अ० ६१)

पूर्व भाग को देखने से प्रतीत होता है कि बृहन्नारदीय एक विलक्षण साम्प्रदायिक विश्वकोश है (Religiouns Encyclopeaha) है । इस में सभी सम्प्रादायों का बराबर भाग है । इस में सभी पुराणों का संक्षेप रखा गया है । तंत्र ग्रन्थों के सभी देवताओं का मन्त्रादि साधन उपदेश किया है और सभी देवताओं के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन किया है तथापि विष्णु और कृष्ण को अधिक मुख्यता दी है । इस पुराण की साम्प्रदायिकता में ये एक बड़ा भारी प्रमाण है कि अधिक भाग इस का महात्म्यों तथा पूजा पाठों से भरा है, पूर्व भाग मे ही १२५ अध्यायों में से एक अध्याय में संक्षेप से युगधर्म एक में सृष्टि तत्वनिरुपण, २ में वर्णाश्रमाचार कथन किया, शेष में सब पूजापाठ तथा अन्यों का संक्षेप पौराणिक श्राद्धादि विधि जो कतिपय प्रासंगिक गाथाओं के और कुछ भी ऐसा नहीं जो कि पुराणों के पंच लक्षणों के अनुसार हो ।

इसी प्रकार उत्तरखण्ड में मोहिनी रुक्मांगद की कथा और तीर्थों के माहात्म्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं । यदि इसे पौराणिक संसार की नोटबुक या संक्षेप विवरण कहा जाय तो कोई क्षति नहीं ।

इस में सभी सम्प्रदायों की दीक्षा आदि का हाल है इससे यह सम्प्रदाय बन ने के पीछे विरचित है इस में संदेह नहीं । असली नारदीय पुराण जिसका वर्णन मात्स्य में या अन्य पुराणों में है वह यह पुराण नहीं क्योंकि इस में नारद कभी प्रवक्ता नहीं । यहा मुख्य प्रवक्ता सूत तथा गौण प्रवक्ता सनकादि हैं । मात्स्याभिमत नारदीय का प्रवक्ता नारद है । यह एक और प्रमाण है जिससे सिद्ध होता है कि देखा देखी कृत्रिम पुराण बना कर एक बडे आदमी के नाम पर थोपा जाना पौराणिक क्षेत्र में कुछ कठिन नहीं । जिस प्रकार शृंगेरीमठ के आचार्य की पीठ पर आरूढ़, सभी गद्दीदार शंकराचार्य कहाते हैं उसी प्रकार व्यास गद्दी पर बैठे सभी , का व्यास कहलाना साधारण बात है इस प्रकार के किसी व्यास ने यदि सब पुराणों का संक्षेप तथा तीर्थों और देवताओं का माहात्म्य और सब का कुछ २ सार अपने उपयोग के लिए निबद्धकर के बृहन्नारदीय बनाया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

माहात्म्यों में भी अत्युक्ति के विन्यास में तो पराकाष्ठा ही करदी । गंगा और विष्णु के अर्चनादिक फल में बढ़ाते २ असमान की सीमाएं भी तोड़ डाली । अधिक क्या कहें इस पुराण में सभी कुछ विचित्र है ।

त्रिमूर्त्ति में विष्णु को मुख्य रखकर भी शिवादि की उपासना से बहुत घृणा भी नहीं दिखाई है । प्रत्युत दोनों को मिलाने का प्रयत्न किया गया है ।

विष्णु भागवत पुराण

भागवत पुराण दो हैं। एक देवी भागवत और दूसरा विष्णु भागवत। विष्णु भागवत वैष्णवों का देवी भागवत, शैव शाक्तों का इन दोनों के मानने वाले साम्प्रदायिकों का बड़ा भारी विवाद है। देवी भागवत वाले अपने पुराण को १८ हों में एक मान कर दूसरे को उपपुराण कहते हैं, और विष्णु भागवत वाले दूसरे को उपपुराण कह कर अपने पुराण को मुख्य पुराणों में एक गिनते हैं। इस साम्प्रदायिक द्वेषाग्नि की सत्ता ही पुराणों की सत्यता तथा प्रामाणिकता का पूरा निर्णायक कही जासकती है। क्योंकि साम्प्रादायिक जत्थे ने किसी एक पुराण को १८ हों पुराणों से अलग है और जो १६ सवां है वह व्यास के नाम पर प्रसिद्ध किया है। एक न एक अवश्य झूठा है या दोनों ही झूठे हैं। वास्तव में ये दोनों साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं अपने जत्थे की रचनाएं ये हैं और व्यास के नाम पर प्रसिद्ध की गई हैं।

यही भागवत वास्तविक भागवत है इस के प्रमाणित करने के लिए वैष्णव साम्प्रदायिक विद्वान् निम्नलिखित प्रमाणों को दिया करते हैं।

[१] पद्म पुराण में भागवत से विष्णु पुराण का ही ग्रहण किया दूसरे देवी भागवत का नहीं। *

[२] भागवत के टीकाकार स्वामी श्रीधर ने भागवत से अपने गृहीत ग्रन्थ को ही ग्रहण किया है।

[३] बृहन्नारद पुराण में भी इसी शुकशास्त्र भागवत की विषयानुक्रमणिका दी है देवी भागवत की नहीं।

[४] भागवत के प्रथमस्कन्ध के चौथे २ अध्याय में लिखा है कि चार वेद तथा पांचवां इतिहास पुराण बना चुकने पर भी, जब व्यास को संतोष न हुआ तब यह भागवत पुराण बनाया। ||

---

* **पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतंपरम् ॥**
यत्र प्रतिपदंकृष्णोगीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३ ॥
(पद्म० उत्तर खण्ड १८६ अ०)

इसी भागवत को पद्म पुराण में शुक शास्त्र या परिक्षित शुक संवाद मय भागवत नाम से भी पुकारा गया है। यह लक्षण विष्णु भागवत में ही घटता है।

भागवतं नाम अन्यदित्यपि नाशङ्कनीयम्। श्रीधरः।

॥ सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यन् हृदयं ततः ॥ २६ ॥
नातिप्रसीदद् हृदयः सरस्वत्यास्तरे शुचौ ॥
वितर्कयन् विविक्तस्थः इदंप्रोवाचधर्मवित् ॥ २७ ॥
भागवत —स्क० १ अ० ४,

इन में प्रथम युक्ति का स्थल पूर्वापर विचार से पद्म पुराण में स्पष्ट साम्प्रदायिक है अतः कोई बल नहीं विशेषतः जब शैव और मात्स्य की प्रबल युक्ति उसका विरोध करती हैं। दूसरी युक्ति भी ठीक नहीं क्योंकि श्रीधर स्वामिमत ग्रन्थ को मुख्य कहें, इसमें आश्चर्य क्या है उसके विरोध में भी देवी भागवत के टीकाकार को रखा जासकता है। बृहन्नारद की समालोचना हम पहले कर आये हैं परन्तु फिर भी इस स्थान पर प्रमाणरूप से देखा जाय तो इस अंश में नारद पुराणकार ने साम्प्रदायिक अनुरोध से देवी भागवत को उपपुराण समझकर उसका उल्लेख नहीं किया। चतुर्थ भागवत का स्वतः कथन कहना यह अपने मुख अपनी बड़ाई करना है। जो स्पष्ट साम्प्रदायिकता का फल है। महाभारत के बाद इस पुराण को कहने में एक यह शंका रह जाती है कि क्या अठारह संख्या पहले पूरी हो चुकी थी। यदि नहीं तो ठीक है, परन्तु यही आपत्ति देवी भागवत पर पड़ेगी। यदि हो चुकी थी तो यह १९ सवां पुराण होगा।

वैष्णव सम्प्रदाय तथा शैव सम्प्रदाय दोनों में अपने २ भागवत के लिये बड़ा घोर संग्राम रहा है जिसका पुराणों में घृणा का आविष्कार होने के सिवाय और भी बहुत परस्पर गाली गलौज तथा धमकी आदि होती रही है। जिसका प्रमाण ये पुस्तकें हैं **प्रथम** "दुर्जनमुख चपेटिका" अर्थात् "दुष्ट के मुख पर थप्पड़" यह समाश्रम की बनायी हुई है; इसमें देवी भागवत वाले को कोसा गया तथा विष्णु भागवत की सत्यता का निर्धारण किया है।" **दूसरा पुस्तक** है "दुर्जनमुखमहाचपेटिका" अर्थात् "दुष्ट के मुखपर बहुत बड़ा थप्पड़।" यह काशीनाथ की बनाई हुई है। इस में देवी भागवत का पक्ष पोषण किया है। **तीसरा पुस्तक** है "दुर्जनमुखपद्मपादुका" अर्थात् दुष्ट के मुखकमल पर जूता" यह पुरुषाधमका बनाया हुआ है इसमें भागवत का पक्ष है। इसी प्रकार अन्यान्य पुस्तकें भी मिलती हैं।

इन साम्प्रदायिक लघुपुस्तकों में मुख्ययुक्तियों को हमने उद्धृत करदिया शेष यह प्रमाण कि विशेष श्लोक भागवत का विशेष अन्य ग्रन्थ में भी मिलता है अतः हमारा भागवत वास्तविक है ऐसी युक्तिएं देना निष्फल है क्योंकि पुराणों में बहुत सा भाग तो पारस्परिक उद्धरणों को संग्रह करके ही रचा गया है। इस से कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता।

अब हम पद्य गणना पर आते हैं मात्स्य में भागवत के लिये १८०० पद्य मान लिखा है नारद पुराण में भी १८०००, ही है। विष्णु भागवत में भी १८००० ही पद्य गणना है।

तत्राष्टादश साहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥ ६ ॥

[भाग०, स्कं० १२, अ० १३, ६]

इसी प्रकार:—

"दशाष्टौ श्रीभागवतम् इत्यादि" ॥ ६ ॥

पुराणदर्पण के कर्त्ता ज्वालाप्रसाद मिश्र ने किन्हीं का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि पूर्वतन भागवत में १८००१ पद्य थे परन्तु द्वितीय बार संकलित में १८००० पद्य हैं। अस्तु एक पद्य का आगा पीछा अधिक ध्यान देने योग्य नहीं।

ये हमारे पास निर्णयसागर का छपा भागवत का मूल गुटका है। इस के एक पत्रे में लम्बे छन्द उपजाति के केवल १८ पद्य आते हैं और अनुष्टुप् छन्द के २२ पद्य आते हैं इस हिसाब से यदि उपजाति छन्दों के भी अनुष्टुप् के रूप में गिन लिया जावे तो कुल गुटके के पुराण पद्य-२२ × ६७६=१४८७२

इसमें यदि पद्मपुराणान्त गत भागवत माहात्म्य के उसी गुटके के २४ पेज और भी जोड़ दिये जावें तो भी २२×२४=५२८ इतने पद्य मिलने से भी पूरी संख्या न होगी। वर्तमान भागवत की पद्य संख्या १५००० से अधिक नहीं है। १८००० गणना लिखने वाले लेखकों ने बिना गिने ही मोटा मोटी गप्प मारने का प्रयत्न किया है फिर १८००१ के गणक ने तो अन्धे की आंख को चकमा ही दिखया है। अभी ३००० की गणना में न्यूनता है। इसी प्रकार देवी भागवत की गणना में भी १८००० पद्यों के स्थान पर कुल १८४७७ श्लोक हैं इसमें ४७७ पद्य बढ़ गये हैं।

हमें वर्त्तमान में इस वृद्धि और न्यूनता का रहस्य ज्ञात नहीं होता।

विषय विवेचन

विष्णुभागवत में १२ स्कन्ध तथा जिस में अध्यायों की संख्या केवल ३३५ है, परन्तु श्रीधर के मत से:—

"द्वात्रिंशत्त्रिशतश्च यस्य विलसच्छाखाः"

इस पद्य के अनुसार केवल ३३२ अध्याय, प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार **दुर्जनमुखमहाचपेटिका** में काशीनाथ ने भी :—

"द्वात्रिंशत्त्रिशतं पूर्णमध्यायाः परिकीर्त्तिताः"

३३२ अ० ही लिखे हैं वेंक्टेश्वर में छपे श्रीधरी व्याख्या सहित भागवत के भी ३३५ अध्यायों पर श्रीधर की टीका है।

वास्तव में भागवत एक पुराण साहित्य में सर्वोत्तम रत्न है। इसे यदि उपनिषदों का भाष्य कहा जाय तो कुछ भी सन्देह नहीं है। पुराण भी इस भागवत को गायत्री की व्याख्या कहते हैं। विद्वत्ता तथा गाम्भीर्य बहुत है अतएव पुराण होता हुआ भी शुक शास्त्र कहा जाता है उपनिषदों का सम्पूर्णतया आश्रय लेने से इसकी पवित्रता तथा श्रद्धा भाजनता की सीमा नहीं रही। प्रत्येक हिन्दू घर में इसका होना आवश्यक समझा जाता है। इतनी विद्वत्ता पूर्ण होने पर भी साम्प्रदायिक होने से कृष्ण के चरित मनुष्य का चरित न रहने देकर वही कविकल्पित सीमा तिक्रान्त किसी सांसारिक दृष्टि से पराकाष्ठा के भोगी विलासी तथा बहुरूपिये और असम्भव जादूगर की कथा प्रतीत होती है जिस में जान बूझकर कृत्रिम प्रसंग छेड़ कर उपनिषदों के जग सृष्टि तथा प्रलयादिका वर्णन ब्रह्म का प्रतिपादन और अन्य सामाजिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों को शृंखला बद्ध किया है। यदि वैष्णव सम्प्रदाय की महास्मृति कहा जाय तो कोई हानि नहीं।

१म स्कन्ध:—

मत्स्यपुराण में पुराणदान प्रस्ताव में भागवत के विषय में लिखा है:—

यत्राधिकृत्यगायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्‌ भागवतमिष्यते॥

"जिस पुराण में गायत्री से प्रारम्भ करके धर्म का विस्तार किया है और जिसमें वृत्रासुर का वध लिखा है वह पुराण भागवत है।"

इस मर्यादा को रखने के लिये विष्णुभागवत के प्रारम्भ के पद्य के अन्तिम चरण में:—

"सत्यं परंधीमहि" यह गायत्री मन्त्र का भाग आया है इस से यह भागवत

वास्तविक है ऐसा साम्प्रदायिक मानते हैं। परन्तु देवीभागवत के प्रारम्भ में तो प्रायः सारा गायत्री मन्त्र का विन्यास है तथा छन्द भी वही है।

ओ३म्। "सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि बुद्धया नः प्रचोदयात्"

इस प्रकार से दोनों भागवतों का प्रारम्भ है। अपनी २ टेक दोनों ने पूरी कर ली है।

नैमिषारण्य में बैठे ऋषि लोग प्रष्टा हैं और सूत जी प्रवक्ता हैं। तीन अध्याय की भूमिका के बाद चौथे अध्याय से व्यास प्रवक्ता हैं इन के मुख से फिर नई भूमिका पूर्वोक्त अध्यायों में कथित ऋषि तथा सूत की बांधी गई है। और सूत शौनक का सम्बाद चलता है। चतुर्थाध्याय से षष्ठ तक भागवत की उत्पत्ति, तथा व्यासकृत वैदिक साहित्य की सेवा और शाखाओं का विस्तार है। पांचवें में नारद का व्यास के आश्रम में आने और ब्रह्मविद्या विषयक प्रश्न करना तथा अपने गत जन्म की कथा सुनाना आदि है तदन्तर महाभारत के अन्त भाग की कथा का अवतार करके परीक्षित की उत्पत्ति, कलिका आगमन, परीक्षित का वन गमन, ऋषियों का आगमन, शुकदेव का भ्रमणादि करते वहां आना यहां तक वर्णन में १म स्कन्ध समाप्त होता है। अर्थात् अभी शुकशास्त्र प्रारम्भ नहीं हुआ।

२य स्कन्ध—शुकदेव का धारणा विषयक उपदेश नारद ब्रह्मा संवाद में अवतारों का वर्णन, आध्यात्मादि भेद से विराट् पुरुष का पुरुष सूक्त के आधार पर वर्णन ब्रह्म नारद संवाद में लीलावतार कथन, पुराण प्रयोजन, शुकदेव कृत भगवान् का औपनिषद् रूप प्रति पादन।

३ य स्कन्ध—महाभारत की कथा का प्रसंग छोड़ कर विदुर का मथुरा में आकर उद्धव से श्रीकृष्ण विषयक संवाद, संक्षेपतः कृष्ण के जीवन घटना सार, सृष्टि की उत्पत्ति विराट् वर्णन, पाद्म कल्प वर्णन, ब्रह्मा द्वारा विष्णु स्तुति। ब्रह्मा

की सृष्टि रचना महदादि * नव सर्ग, काल निरूपण, कालाख्य भगवान् का निरूपण, रुद्र रुणात्युत्पत्ति, ब्राह्म सृष्टि, वेदोत्पत्ति, यज्ञवराहाविर्भाव ।

भगवत्सेवकों का असुर रूप से जन्म, हिरण्याक्ष की उत्पत्ति, तथा वराह से उसका युद्ध, हिरण्याक्ष का मरण, हैम अण्ड की उत्पत्ति, सन्ध्या का स्त्री रूप से आना, स्वायंभव मनु की मैथुनी सृष्टि, कपिलक जन्म, सांख्य तत्व निरूपण, अष्टांग योग, संसार वर्णन, हीन ऊर्ध्व मध्यम गति,

४ स्कन्ध---मनु वंश वर्णन, भवदक्ष विरोध, दक्षयज्ञ, विष्णु का प्रादुर्भाव, तथा उस की स्तुति, ध्रुव की तपस्या, यक्षध्रुव युद्ध, पथु जन्म, वेन राज वर्णन, पृथु वंश, रुद्र गीता, पुरंजन की कथा द्वारा संसार, स्वप्रजागरण प्रपञ्चादि आत्म तत्व निरूपण,

५म स्कन्ध---राजा प्रियव्रत की कथा, ऋषभ देव की कथा, जड़ भरत कथा, उस का वंश, द्वीप वर्णन, काल चक्र, ज्योतिष् निरूपण, नरक वर्णन ।

६ष्ट स्कन्ध में---अजामिल कथा, दक्षकी ६० हजार कन्या, इन्द्र वृत्र संग्राम शेषतोषिणी विद्या, मरुतों की उत्पत्ति ।

* आद्यस्तु महतः सर्गो गुण वैषम्यमात्मनः
द्वितीयस्त्वहमोयत्र द्रव्यज्ञान क्रियोदयः
भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रोद्रव्य शक्तिमान्
चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तुज्ञान क्रियात्मकः ।
वैकारिकोदेवसर्गः पञ्चमो यन्मयंमनः ॥
षष्ठस्तुतमसः सर्वा यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ।
षड़िमेकृताः सर्गाः वै कृतानपिमे शृणु ॥
रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ।
सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषाञ्चयः ।
वनस्पत्योषधिलता त्वक् सारावीरुधोद्रुमाः ।
उत्स्रोतसस्तमः प्रायाः अन्तस्पर्शाः विशेषिणः ।
तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधः स्मृतः ।
अर्वाक स्रोतस्तु नवमोः क्षत्तरेकविधं नृणाम् ॥

(भाग०, स्कं० ३, अ० १०)

७ स्कन्ध में—प्रल्हाद की कथा, हिरण्यकशिपु की कथा, नरसिंह का रूप धारण, सामान्यतः मनुष्य धर्म, विशेषतः वर्णाश्रम धर्म, स्त्री धर्म व्यवस्था, मोक्ष लक्षण।

८म स्कन्ध—स्वायम्भुव आदि चार मनुओं का निरूपण, गजेन्द्र मोक्ष, पञ्चम षष्ठ मनुविवरण, विष्णुस्तव, अमृतक्षीरसागर मथन, कालकूट उत्पत्ति मोहिनी का वञ्चन, दैत्य दानवों का संग्राम, मन्वादि कर्म वर्णन वलियज्ञ में वामन प्रवेश, वलि वन्धन, मत्स्य लीला।

९म स्कंध—इलोपाखयान, मनु पुत्रवंश वर्णन, अम्बरीशादि से लेकर राम तक सूर्य वंश वर्णन, चन्द्र वृस्पति का स्त्री के हेतु कलह। ऐलवंश में गाधि जन्म, राम द्वारा कार्त्त वीर्यवध, परशुरामद्वाराक्षत्रिय वध, नहुषोपाख्यान, पुरुवंश, भरतवंश, दिवोदास वंश, ऋक्ष वंश, तुर्वसु 'यदुवंश कृष्णोत्पत्ति'।

१०म स्कंध—कंस राजकथा, कृष्ण का गोकुलवास कृष्ण की, गो कुल लीला, कल्पितासुर वध, रासलीला, कंसवध मंत्रणा, मल्ल तथा कंस मर्दन, जरासन्ध जय, रुक्मणी हरण। भौम वध, सहस्र कन्या भोग।

वलराम का गोपियों से रमण। रैवतपर्वतपर क्रीड़ा, युधिष्ठर राजसूय, दुर्योधन मान भंग, साल्व युद्ध, कृष्ण सुदामा, सुभद्रा हरण, विष्णु की उत्कर्षता।

११ वें स्कंध में:—मौसल कथा, यदुवंशनाश, मायामुक्ति कर्म ब्रह्म इन की समस्या, अवतार निर्णय, अवधूत इतिहास, भक्ति साधन, मुक्ति प्राप्ति। वर्णाश्रमधर्मनिर्णय, द्रव्यदेशादिगुण दोष विवेचन, क्रिया योग, परमार्थ, ज्ञान योग, फिर मुघलोत्पत्ति, यदुवंश नाश।

१२ वें स्कंध में:—कलिप्रभाव, वर्ण संकर, कृष्ण भक्ति, कल्कि अवतार, संसार प्रलय, परीक्षित का सर्पदर्शन, मोक्ष प्राप्ति, वेदशाखा विभाग, अथर्ववेद का विस्तार, मायाशिशु दर्शन, क्रिया योग, संक्षेप, **पुराण संख्या**, दानमहात्म्य जैसा हम विष्णुपुराणान्तर्गत कृष्ण चरित पाते हैं वैसा ही कल्कि उस से भी विस्तृत रूप से भागवत के १० स्कंध में वर्णित हैं। इसमें कतिपय दैत्य और भी घड़े गये हैं। एक तृणावर्त्त "पंजाबी में वावरोला कहाता है" उठा उस के जोर से कृष्ण कहीं रुल गया गोपीजन बड़ी दुःखित हुई। परन्तु कृष्ण भारी होने के कारण उठ न

सका । पुराणकारने उसे भी दैत्य बनादिया है। कृष्ण ने उस को गला घूंट कर मार दिया। (**देखो भागवत स्कंध १०, अ० ७**)

बछड़ों को चराते हुए कृष्ण ने एक बछड़े को पूंछ से पकड़ कर घुमाकर वृक्ष की जड़ में देमारा इस पर वह बछड़ा भी पुराणकार की लेखनी से वत्सासुर हुआ।

(देखो स्कंध ३, अ०११)

बछड़े यमुना पर पानी पीने गये वहां बगले का घात किया सो वह बकासुर बनगया। एक अजगर ने कृष्ण को निगल लिया। कृष्ण उस के गले में अटक गया। उस से सर्प के प्राण ज़ोर करके सिर फाड़ कर निकल गये। अजगर मर गया। और कृष्ण निकल आया। पुराणकारने इस अघासुर रखा।

(देखो, स्कंध ३, १२,)

प्रलम्बनाम के गवाले से प्रथम मित्रता की परन्तु फिर खेल कूद में चिड़चड्डी की खेल में बलभद्र ने उस का सिर फोड़ डाला और वह मर गया। पुराणकारने इस गवाले को प्रलम्बासुर बनाया। कदाचित् और साथियों की अपेक्षा अधिक लम्बा होने से प्रलम्ब नाम रखा गया है।

(देखो, स्कंध ३, अ० १८,)

कृष्ण को जादूगर बनाने के लिये कृष्ण का अग्निश मन पर्याप्त है। जंगल में आग लगी सब गवाले चिल्लाये कृष्ण बोले, " करो आंख बन्द " सब ने आंख बन्द की कि कृष्ण आग को मुख के रास्ते पी गये।

[देखो, स्कं० ३ अ० १८]

कैसी विचित्र गप्प है।

केशिवध के साथ दूसरा व्योमासुर का वध और सन्निविष्ट है। सब गवाले चोर पालकी खेलते थे। कोई भेडें बन जाते थे कोई गडरिये कोई चोर, उन में व्योम नाम का गवाला बहुत बार चोर बना। उसने कुछेक भेडों को दूर लेजाकर एक कन्दरा में बन्द कर दिया इस पर कृष्ण को गुस्सा आगया उसे कृष्ण ने बांध कर मार डाला। **(देखो, भाग० स्कं० १० अ० ३८)**

उसे पुराणकार ने भी एक असुर बना लिया ।

पाठकों के चित्त में शंका होगी कि कृष्ण यह इतने अकार्य क्यों करते हैं कि जो बिगड़ा उसे मार दिया । परन्तु यह बात नहीं है भावी वीर अपने बाल्यकाल में भी किसी से अपमान नहीं सहते अतः वे उद्धत को अवश्य दण्ड देते हैं यह उनका स्वभाव ही होता है । इस कारण उपरोक्त बधादि किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं । शिव पुराणकार के नायक कृष्ण की कुछ मारने की प्रकृति अधिक है उदाहरणार्थ दृष्टान्त लीजिये ।

कृष्ण गवालों के साथ मथुरा में आये । रास्ते में धोबी मिला । कृष्ण ने धुले कपड़े मांग लिये । उस ने कहा कि ये राजपुरुषों के कपड़े तुम को कैसे देदूं । बस यह जान कर कि कंस का धोबी है उसी समय धोबी का गला साफ कर दिया । कहिये धोबी गरीब का क्या कसूर । क्या यह अनार्की से कुछ कम है । (देखो, स्कन्ध, १० अ० ४१)

तदन्तर कंस की दासी कुब्जा को खींच कर लम्बा करना । [स्कन्ध, १०, अ० ४२] यह भी सिवाय एक शरारत के और क्या है । कईयों के मत में कृष्ण ने लात मारी थी, भाग्यवश लात गुण बैठी ।

इस प्रकार सम्पूर्ण श्रीकृष्ण लीला समाप्त कर कृष्ण को परमात्मा बना कर वैष्णव साम्प्रदायिकों ने अन्त में अपने देवता की मुख्यता तथा उच्चता बताने के लिये यह सिद्धान्त पुष्ट किया कि अन्य देवता भक्त तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं और विष्णु के भक्त मुक्ति प्राप्त होते हैं ।

इसी के लिये वृकासुर की कथा घड़ी गई [स्कं० १०, अ० ८८]

भस्मासुर ने तपस्या की, शिव जी ने वर दिया जिस के सिर पर हाथ रखेगा वह भस्म हो जायगा । उस ने पार्वती को लेने की इच्छा से शिव जी पर ही हाथ रखना चाहा । शिव जी भय से भागते २ बैकुण्ठ पहुंचे विष्णु को दया आई, उसी ने भस्मासुर को कहा कि यदि तुम में सिद्धि है तो अपने सिर पर हाथ रक्खो । हाथ रखते ही वह स्वयं भस्म हो गया । इसी की पुष्टि में भृगु की तीनों देवों के पास जाकर उनके अपमान पूर्वक परीक्षा करने की कथा भी है ।

भागवत के ११ स्कन्ध में ब्रह्म विद्या तथा आत्मविद्या तथा वर्णाश्रमधर्म नाना प्रकार से बहुत ही उत्तम रूप से प्रतिपादन किया है। परन्तु साम्प्रदायिकता का लेश वहां भी कम नहीं। अन्य सब भगवान् के कल्पित रूपों से कृष्ण को बहुत माना गया है। विशेषतः रासलीला का इस सम्प्रदाय में अधिक मान है। इसके आलंकारिक भावार्थ आत्मा तथा ब्रह्म और सांसारिक विषय और इन्द्रियों को मान बहुत से घटाने के प्रयत्न किये जाया करते हैं। ठीक है सर्वसाधारण को कान्ता संमित शब्द द्वारा यह रीति उपदेश की कोई बुरी नहीं परन्तु साम्प्रदायिक भाव में रंगी होने से इस से अपने देवता नायक में प्रेम तथा इतर में द्वेष स्वाभाविक-तया उत्पन्न हो जाने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है।

कृष्ण को देवता मानना यह वीर पूजा का एक बड़ा भारी दृष्टान्त है। भारतवर्ष के विद्वान् वीर पूजकों ने उच्च विचार परम्परा से पूर्ण ब्रह्मविद्या को भी वीर पूजा में भुला कर ब्रह्मविद्या और पूजनीय वीरों की एकता करने का बहुत भारी प्रयत्न किया है। इसके लिये ही अवतारवाद का सिद्धान्त आविर्भाव हुआ। भक्ति मार्ग में सर्वसाधारण को सदा प्रवृत्त रखने के लिये इस सिद्धान्त का सबसे मथम यह विषय है कि भक्तजनों पर अनुग्रह करके भगवान् अवतार लेते हैं।

बस लहर चलने की देरी थी कि अतिशयोक्ति के राज्य के महामात्य कवि तथा कथा भाषि व्यास लोगों ने अपने सम्मतवीर नायक की आंख झपकन तक को ब्रह्माण्ड के प्रलय के सदृश वर्णन किया। और नर को सचमुच ही देव बना कर छोड़ा।

देवी भागवत ४.

विष्णु भागवत के अतिरिक्त देवी भागवत भी भागवत के नाम से ही पुकारा जाता है। इस का नायक विष्णु भगवान् न होकर देवी भगवती है।

मत्स्य पुराणोक्त सम्पूर्ण लक्षण इसमें ही घटते हैं। मत्स्य पुराण में:—

यत्राधिकृत्यगायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते॥
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम्॥ २२॥

(मत्स्य अ० ५३)

जहां गायत्री से प्रारम्भ करके धर्म का विस्तार किया है जिस में वृत्रासुर की कथा है यह अठारह हजार पद्यों से युक्त भागवत कहाता है।

निस्सन्देह इसमें १८००० पद्य हैं। और प्रथम पद्यः—

> ओं सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
> बुद्धिं यो नः प्रचोदयात्।

गायत्री छन्द ही का है। और षष्ठ स्कन्ध में वृत्र वध की कथा भी है शुकदेव को व्यास ने भागवत का उपदेश किया था इस विशेषता का समावेश देवी भागवत में भी है। इसको मुख्य पुराण मानने वालों के पक्ष की मुख्य युक्तियें ये हैं।

(१) शिव पुराण में लिखा है:—

> शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञाः वदन्ति च।
> भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते,
> तत्तु भागवतं प्रोक्तं नतु देवी पुराणकम्॥

इस प्रकार भागवत को शैव सम्प्रदायका तथा भगवती देवता विषयक लिखा है। अर्थात् इसमें दुर्गा का चरित्र वर्णित है। वह देवी पुराण से अतिरिक्त है ये लक्षण विष्णु भागवत में नहीं घटता है।

(२) इस पुराण को उपपुराण भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उपपुराण का उपपुराण नहीं होता प्रत्युत पुराण का ही उपपुराण होता है। सो देवी भागवत का कालिका पुराण उपपुराण है अतः देवी भागवत महापुराण है।

(३) सूर्य पुराण में भी वृत्रासुर वध को ही देवी का चिन्ह बताया है उसी देवी के विषय में देवी भागवत है। वैष्णव भागवत में यद्यपि वृत्रासुर वध है परन्तु वह इन्द्र कृत है देवी कृत नहीं। *

[यह युक्ति देवी भागवत के टीकाकार शैव नीलकंठ ने दी है। परन्तु इसका कुछ बल नहीं रहता जब कि आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि की छपी सौरपुराण में इस प्रमाण को देखा जाय। वहां " **क्रूरं वृत्रासुरं तथा** " के स्थान में

---

* **याजघ्ने महिषं दैत्यं क्रूरं वृत्रासुरं तथा**
तारकासुरं हत्वा स्वाराज्यं ते प्रदास्यति॥

"क्रूरं चित्रासुरं तथा" ऐसा पाठ है और साथ ही हस्त लिखित २ नव प्रतिलिपियों में भी कोई भिन्न पाठान्तर नहीं। सम्भवतः यह स्वार्थ सिद्धि के लिये नीलकंठ ने पाठ परिवर्त्तन करके युक्ति रूपेण उद्धृत किया है।]

किसी अन्य पुराण में आता है कि:—

हयग्रीवब्रह्मविद्या, यत्रवृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या च समारम्भः तद्वै भागवतं विदु॥

जिस में हयग्रीव द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश तथा वृत्रासुर का वध, गायत्री पूर्वक आरम्भ हो वही भागवत पुराण है। यद्यपि हयग्रीव की ब्रह्मविद्या का मन्त्र विष्णुभागवत पुराण में भी है परन्तु पुंदैवत्य * मन्त्र होता है और स्त्री दैवत्य विद्या होती है। अतः यहां विद्या शब्द होने से देवी भागवत ही गिना गया है। देवी भागवत में प्रथमस्कन्ध में ही हयग्रीव का प्रकरण है। परन्तु यह रुचिकर नहीं क्योंकि उभय पक्ष में तुल्य है।

(५) मात्स्य पुराण में दूसरे स्थल में ही भागवत के विषय में यह भी आता है कि:

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमिष्यते॥

"सारस्वतकल्प में होने वाले नर तथा अमर लोगों के वृत्तान्त जिस में वर्णित हों वही भागवत है" इस प्रकार से विष्णु भागवत में पाद्मकल्प का प्रारम्भ है परन्तु देवीभागवत में सरस्वती कल्प ही है। सरस्वती कल्प का तात्पर्य यह है कि कथा का प्रारम्भ सरस्वती नाम से किया गया है। जैसा कि:—

पुरा सरस्वती तीरे व्यासः सत्यवती सुतः।
आश्रमौ कलविंकौतु दृष्ट्वा विस्मयमागताः॥

(६) विष्णु भागवत में लिखा है कि वह पुराण व्यास ने महाभारत के बना चुकने के बाद खिन्न हो कर बनाया था यदि वैष्णव भागवत बाद बना है तो महाभारत के पहले पुराण की १८ संख्या पूरी करने के लिये देवी भागवत बन चुका ही था अतः वह मुख्य है।

---

* मन्त्राः पुंदेवता प्रोक्ताः विद्यास्त्री देवतास्मृताः, नारदीये:—

परन्तु यह युक्ति बहुत हीन है क्योंकि कतिपय पुराण अपने को महा-भारत से पीछे का मानते हैं जिस प्रकार मारकण्डेय पुराण ने अपने विषय में लिखा है । सो यह संख्या पूरी करने की युक्ति निर्मूल तथा असंगत है ।

इतना होने पर भी नीलकंण्ठ टीकाकार कल्पित भक्ति दोनों भागवतों को प्रमाण मानता है । अतः दोनों को १८ की संख्या में गिनता है, हेतु यह है कि कतिपय पुराणों ने विष्णु भागवत को लिया है । और कतिपयों ने देवी भागवत को । दोनों ही अपने सम्प्रदाय के अनुसार ठीक हैं ।

सामान्यतः देवी भागवत की वास्तविकता की विवेचना हो गई परन्तु देवी भागवत का स्वतः का अपने विषय में ऐसा लेख है ।

श्रीमद्भागवतं पुराणं, सर्व दुःखौघनाशनम् ।
कामदं मोक्षदश्चैव वेदार्थपरिबृंहतम् ॥ २४ ॥
व्यासेन कृत्वाऽति शुभं पुराणं ।
शुकाय पुत्रायमहात्मनेयत् ॥
वैराग्य युक्ताय च पाठितंवै,
विज्ञाय चैवारणिसम्भवाय ॥

[देवी ० अ० ॥ २३ ॥

सब दुःखों का नाश करने वाला काम मोक्ष के देने वाला वेदार्थ से युक्त, पुराण को व्यास ने महात्मा शुक को उपदेश दिया ।

इसी प्रकार शुकोपदेश के पूर्व ब्रह्मा से विष्णु कहता है—

श्लोकार्द्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल ।
विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा ॥२६॥

[दे० भा० स्कं० अ० १६]

हे ब्रह्मन् ! भगवती ने पहले आधे श्लोक से ही भागवत का उपदेश किया उस का विस्तार द्वापरादि युग में विस्तार होगा । इस पर व्यास जी कहते हैं:—

*ब्रह्मा ने विष्णु के लिये नारद को कहा, नारद ने मुझे कहा, और मैंने १२ स्कन्ध बनाकर विस्तार से फैला दिया, उसी पुराण को हे शुक ! तुम लो इस भागवत के योग्य तुम हो अठारह हज़ार पद्यों का संग्रह करो मेरा ही शिष्य लोम हर्षण का पुत्र इस शुभ संहिता को तेरे साथ पढ़ेगा। फिर सूत बोला कि व्यास जी ने अपने पुत्र को ऐसा कहा और मुझे भी कहा मैंने वह बहुत लम्बा चौड़ा पुराण लेलिया शुकदेव तो इसे पढ़कर पिता के आश्रम में ही रह गये, परन्तु चिन्ता कुल होने से व्यासने उसे मोह नाश करने के निमित्त जनकपुरी में भेजा। इस प्रकार इस पुराण की उत्पत्ति देवी भागवत में ही आई है।

पुराण के प्रथम स्कन्ध में तथा द्वितीय के ११ वें अध्याय में शुकोत्पत्ति, व्यासोत्पत्ति और पाण्डव कौरवों की उत्पत्ति के वर्णन पूर्वक सम्पूर्ण प्रसङ्ग चलाकर यहां तक वर्णन किया कि परीक्षित विरक्त होकर बन में चला गया प्रसंग वश व्यास मुनि उस बन में आ निकले और उसके पूछने पर शान्ति का उपाय बोले।

*व्यास उवाचः—

ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तुनाभि पंकजे ॥
नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ॥ ३० ॥
नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिनापुरा ॥
मयाकृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कंधविस्तरम् ॥ ३१ ॥
तत्पठस्व महाभाग पुराणं ब्रह्म सम्मितम् ॥
पञ्च लक्षण युक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥
शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः ॥
पठिष्यतित्वयासार्धं पुराणं संहितां शुभाम् ॥ ३८ ॥
इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितंकिल।
मयागृहीतं तत्सर्वं पुराणञ्चातिविस्तरम् ॥ ३९ ॥
शुकोधीत्यपुराणन्तु स्थितो व्यासाश्रमेशुभे ॥
नलेभेशर्म कर्मात्मा ब्रह्मात्म इवा परः ॥ ४० ॥

"हे राजन्! इस गुह्य पुराण अद्भुत पुराण को सुनो। जिसका नाम भागवत है। यही मैंने पहले शुक को पढ़ाया था तुझे भी यही सुनाता हूं।"+

इस उपक्रम से प्रतीत होता है कि अभी तक पुराण का प्रारम्भ नहीं हुआ था परन्तु अब यहां से होगा। परन्तु आश्चर्य यह है कि इसके पश्चात् भी वह पुराण नहीं सुनाता परन्तु जनमेजय जरत्कारु की कथा विषयक प्रश्न करता है। [यह प्रसंग महाभारत के आदि पर्व के उपोद्घात का है] इस के उत्तर में अति संक्षेप से जरत्कारु की कथा कहकर व्यास बोले—"तुम ने हे महाबाहो! सब महाभारत सुन लिया है। देवी का एक बहुत लम्बा चौड़ा मंदिर बनाना जिस से सब तेरी सिद्धिएं हों। देवी यज्ञ करके श्रीमद्भागवत पुराण सुन, मैं तुझे परम पवित्र कथा सुनाऊंगा। ब्रह्मा आदि सब इस की आराधना करते हैं। *

इस प्रकार द्वितीय स्कन्ध भी समाप्त होता है। और भागवत प्रारम्भ भी नहीं हुआ।

तीसरे स्कन्ध से वास्तव में भागवत प्रारम्भ हुआ मानना चाहिये। अब हम संक्षेप से सकल देवी भागवत की विषय माला देते हैं।

" **प्रथम स्कन्धः**—सूत तथा शौनकादि ऋषियों का संवाद, पुराणारम्भ, भागवतप्रशंसा, ग्रहनिर्देश, पुराण लक्षण वर्णनादि, २९ व्यासों के नाम, ब्रह्माद्वारा

+ व्यास उवाचः—

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम्।
पुण्यंभागवतं नाम, नानाख्यानयुतं शिवम्॥ २॥
अध्यापितंमया पूर्वं शुकायात्मसुतायवै॥
श्रावयामि नृप त्वां हि रहस्यं परमम्॥ ३॥
(देवी भागवत) स्क० २, अ० १२)

* श्रुतमस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम्।
देव्याश्चायतनं भूप विस्तीर्णं कुरुभक्तितः॥
येनैवसकलासिद्धिः स्तवस्याज्जनमेजय॥ ५५॥
देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु॥ ५७॥
त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम्।
संसारतारणीं दिव्यां नानारससमाहिताम्॥ ५८॥
ब्रह्मादयः सुरासर्वे यदाराधनतत्पराः।
वर्तन्ते सर्वदाराजन् तां न सेवेत कोजनः॥ ६२॥
(देखो दे० भा० स्कंध० २, अ० १२)

विष्णु की शक्ति की प्रशंसा, देवी महात्म्य, हयग्रीव वर्णन, मधुकैटभहनन, शक्ति का वर्णन, बृहस्व तथा चन्द्र का तारा विषयक कलह बुधोत्पत्ति, सुद्युम्न की स्त्रीत्व बनना, पुरुवा की उत्पत्ति, घृताची का शुकी रूप, शुक की उत्पत्ति, उपदेश वैराग्य भगवती महात्म्य शुक का मिथिला जाकर जनक से संवाद, शुक का विवाहादि, शुक की मुक्ति, व्यास का विरह शोक, शुकछायाऽऽश्वास, व्यास का जन्म, व्यासाश्रम, विचित्रवीर्य से धृतराष्ट्रादि की उत्पत्ति।

द्वितीय स्कन्ध:—मत्स्यराज और मत्स्य जंघा सत्य की उत्पत्ति, व्यास का जन्म, महामिषराज्ञा का अवतरण गंगा का मेल, शान्तनु की उत्पत्ति, भीष्म की उत्पत्ति, भीष्म प्रतिज्ञा, सत्यवती का विवाह, पाण्डवों कौरवों की उत्पत्ति उनका राज्य काल तथा अन्त परीक्षितादि का जन्म यौवन तथा शमीक के गले में सर्प डालना, तक्षक की कथा, परिक्षित का शाप, परिक्षित की मृत्यु, जनमेजय का राज्य, विवाह तथा सर्पयज्ञ, जरत्कारु और आस्तीक की कथा।

तृतीय स्कन्ध:—जनमेजय का व्यास के प्रति प्रश्न, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि के निराकरण द्वारा देवी का प्रतिपादन, सांख्य निरुपित प्रधान प्रकृति के अनुसार गुणात्मिका देवी का वर्णन, देवी महात्म्य प्रतिपादक कथाएं, वीरसेन की कथा, युधाजित की कथा, जयद्रथ का द्रौपदी हरण, शशिकला का स्वयंवर तथा सुदर्शनादि की कथा, राम लक्ष्मणादि की कथा, रावण वध।

चतुर्थ स्कन्ध:—कश्यप का गो हरण, दिति की कथा, गर्भच्छेदनादि, माया का प्राधान्य वर्णन, उर्वशी की उत्पत्ति, अहंकारावृत ब्रह्माण्ड, प्रह्लाद की कथा, नरनारायण के साथ युद्ध, इन्द्र के साथ युद्ध, पराजित दैत्यों का शुक्र के समीप गमन।

शुक्र की तपस्या, शुक्रमाता का देवतों से युद्ध, जननीवध, दैत्यों को बृहस्पति का छलन, शुक्र जयन्ती विवाह, देवदानव युद्ध, विष्णु के नानावतार, कृष्णोत्पत्ति, देवी माहात्म्य, कृष्ण कथा, भगवती माहात्म्य।

पंचम स्कन्ध:— रुद्र की प्रधानता, रम्भादि असुरों का वध, देवीद्वारा शुम्भ निशुम्भ का वध, भगवती माहात्म्य, शिवलिंग की कथा।

षष्ठ स्कन्धः—त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर की उत्पत्ति तथा तपस्या वर प्राप्ति, स्वर्ग लाभ, देवता के मन में ईर्ष्या, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध, नहुष की कथा, कर्म फल फल कथन, कलिमहात्म्य, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, शुनःशेप बलि, आडीवक का युद्ध, मैत्रावरुणी हेतु कथन, हरिहर कोराज्य, हयराज्य स्थापन, नारद का वानर मुख प्राप्ति, नारद विवाह, नारद को स्त्रीरूप प्राप्ति, ताम्रध्वज का विवाह, नारद का पुरुष बनना, महामाया का, वर्णन ।

७म स्कन्धः—सूर्य वंशारम्भ दक्षप्रजापति से सृष्टि, च्यवनमुनि का उपाख्यान राजा रैवत की कथा, राजाककुत्स्थ का वृत्तान्त, मान्धाता का वंश कीर्त्तन,राजा त्रिशंकु की कथा, पुनःहरिश्चन्द्रोपाख्यान, शुनः शेप की बलि, हरिश्चन्द्र का सपुत्र कलत्र विक्रय आदि॰। दुर्गमासुर का देवी द्वारा बध, भुवनेश्वरी रूप कथन, दक्षयज्ञ देवी की पूजा, देवी का आत्मतत्व प्रकाश, सृष्टि प्रकरण, देवी का मन्त्रादि निरूपण, ब्रह्म ज्ञानोपदेश ।

८म स्कन्धः—देवी स्वरूप, ब्रह्मा की नाक से वराह का पैदा होना, पृथिवी उद्धार, हिरण्याक्ष वध, प्रियव्रत वंश कीर्त्तन, द्वीप वर्णन, ज्योतिष के ग्रहचक्र का वर्णन, भुवनों का वर्णन, नरक वर्णन ।

९म स्कन्धः—प्रकृति के पांचरूप, देवीरूप, तथा देव्यंश, और उनके अवतार, कलि विवरण, कल्कि अवतार, गंगा की कथा, तुलसी उपाख्यान, सीता का प्रसङ्ग, शंखचूड़ का तुलसी विवाह, शिवशंख चूड़संग्राम और वध, सावित्री का जन्म, सत्यवान की कथा, कर्म विपाक, ८६ कुण्ड वर्णन, आस्तीकोपाख्यान।

१०म स्कन्धः— स्वायम्भुव मनु का वृत्तान्त, अगस्त्य का विन्ध्य की वृद्धि रोकना । स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति, चाक्षुष मनु का वृत्तान्त,वैवस्वत और सावर्णि मनु का वृत्तान्त, भ्रमरी शक्ति का उपासन ।

११वां स्कन्धः—सदाचार निरूपण, रुद्राक्ष धारण, भस्म धारण, त्रिपुण्ड्र धारण. प्राणायाम, गायत्री की चौवीस मुद्रा, देवी पूजा, गायत्रीजप से ऐश्वर्यादि लाभ पातकादि नाश ।

१२ वां स्कन्धः—गायत्री वर्णन, दीक्षाविधान, केनोपनिषद् का यक्ष निरूपण, गौतम का शाप, ब्राह्मणों का गायत्र्यादि विस्मरण, मणिद्वीप वर्णन, पुराण का फल।

देवी भागवत पुराणकार ने प्रकृति को मुख्य देवी माना है और पुरुष को निर्गुण असङ्ग मानकर उस पर त्रिगुणात्मक तीन आवरण जिन में क्रम से एक २ गुण की प्रधानता हो उन से आत्मा का आवरण मानकर ब्रह्मा विष्णु महेश इन की पृथक्ता मानता है, परन्तु मुख्यता प्रकृति की ही है, इसी से इस में [**देवी भागवत स्कन्ध ३, अ० १-९**] तदनुसार ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना का सामस्त्येन वर्णन कर दिया, इस प्रकार शास्त्रीय सिद्धान्त का आधार रख-कर आडम्बर का पहरावा पहराया गया है पर आत्मा के अद्वैत पक्ष को अद्वैत रूप में ही स्वीकार किया है। साथ ही देवी को ब्रह्म से अतिरिक्त स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत शक्ति रूप ही मान लिया।

देवी उवाचः—

"सदैकत्वं न भेदोऽस्ति, सर्वदैव ममास्यच।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥"

सदा एकत्व ही है, मेरा (देवी का) और ब्रह्म का भेद नहीं है। जो वह है वही मैं हूं जो मैं हूं वही वह है। भेद केवल मति के अन्दर भ्रम ज्ञान के हेतु है। इतने पर भी सूक्ष्म भेद स्वीकार किया है:—

आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेदमतिमान् नरः।
विमुक्तः स तु संसारात् मुच्यते नात्रसंशयः ॥ ३ ॥

[स्कं० ३, अ० २६]

हम दोनों में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है जो बुद्धिमान इस सूक्ष्म अन्तर को जानले वह मुक्त हो जाता है। आगे प्रकृति का और ब्रह्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव ही स्वीकार किया है।

परब्रह्म शिव है तथा उसकी शक्ति प्रधान देवी पार्वती या शिवा है। इस मूल पर देवी की उपासना को प्रचारित किया है। शिव और विष्णु को प्रथक् यद्यपि गुण भेद से अवश्य माना है, परन्तु वैसे अभेद ही है। परमार्थ रूप में प्रकृति को सर्वथा छोड़ दिया और केवल ब्रह्म की सत्ता ही वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार स्वीकार की है।

न जानाति तयोः सूक्ष्ममन्तरं विरतिं विना॥ १६ ॥

(अ० ७)

यद्यपि सिद्धान्त वेदान्ताभिमत ही है परन्तु उपासना क्षेत्र में देवी प्रकृति की मुख्यता रखी है। इस मूल से चल कर अब साम्प्रदायिक आडम्बर का वेश पहनाया गया। और देवी को बहुत ही उत्तम तथा इष्ट देवता सिद्ध करने के लिये असम्भव से असम्भव गप्पें घड़ी गई हैं।

जैसे मूर्ख सत्यव्रत की कथा--एक निरक्षर मूर्ख सत्यव्रत एक सूकर के मुख से ऐकार सुनकर स्वयं एक वार उच्चारण करके बड़ा पण्डित हो गया और देवी ने तुष्ट हो कर उसे कविराज बना दिया॥

(देखो देवी भा० स्कंध ३ अ० १०)

और आश्चर्य एक यह है कि प्राचीन याज्ञिक ग्रन्थों में राजसूय अश्वमेधादि प्रसिद्धयाग अवश्य थे परन्तु देवी के उपासक सम्प्रदाय वालों ने एक नये यज्ञ का आविष्कार किया, देवी यज्ञ प्रश्नोत्तर में बहुत बड़े उपक्रम से प्रथम बहुत उत्सुकता जन्मेजय के मन में उत्पन्न हुयी क्योंकि पहले उसने यज्ञ कभी न सुना था। परन्तु यज्ञ का स्वरूप बताते हुये यज्ञ का स्वरूप सब ही न बताकर केवल दो श्लोकों में यज्ञ समाप्त कर दिया। इसी से पता लगता है कि देवी भागवत का बनाने वाला अलीक बातें करने में चतुर होगा।

इस के अनन्तर सुदर्शन की कथा में सारा तृतीय स्कन्ध समाप्त किया। और देवी ने कार्य किया इतना कि युद्ध में एक का पक्ष लेकर लड़ी और अपनी पूजा का मन माना विधान बता गई, समाप्त करते हुए राम की कथा कहते कहते बीच में नारद को उपस्थित करके उसके मुख रावण को मारने के

लिये देवी की पूजा की ठाप लगा दी, यह रामायण में न मिलने से सरासर गप्प है। इस तरह से सिवाय साम्प्रदायिक देवता के बढ़ाने के और झूठी मूठी गप्पों का कोई अभिप्राय नहीं क्योंकि इन में असंगत तथा बुद्धि विरुद्ध बातें बहुत मिलाई जाती हैं।

[देवी भागवत तृतीय स्कन्ध]

चतुर्थ स्कन्ध में कृष्णजन्म विषयक प्रश्न करके १६ अध्याय तक प्रासंगिक कथा ही चलती रही। उस में भी देवतों के मन्त्री बृहस्पति को छल पूर्वक दैत्यों की प्रतारणा के लिये भेज कर जैन लोगों से द्वेष निकाला है। और फिर दैत्यों के मुख से दिल भर के सब देवताओं की निन्दा कराई है। पुराणों में दैत्य प्रायः शिव के उपासक तथा देवता विष्णु के उपासक हुए हैं। अतः इस देवी के समक्ष देवताओं की शिकायत की गई है। और अपने आपस के सदा के झगड़े का न्याय कराया है।

[देखो देवी भागवत०, स्कन्ध ४, अ० १५, श्लोक ४५-७०]

तदनन्तर कृष्णावतार की भूमिका में स्पष्ट ही विष्णु भागवत से विरोध करने के लिये विष्णु को परतन्त्र बनाया और अपनी निन्दा कराई।

[देखो भागवत स्कन्ध, ४, अ० १८, श्लोक ३६-६०]

शिव तक की अश्लील तथा जुगुप्साजनक वर्णन व्यास के मुख से कराया है जिसका सभ्यजनों में कहना भी अतीव लज्जाजनक है। **[देखो भागवत स्कं० ४, २०, श्लोक ३०—४०]** पहले बताये कृष्ण के कल्पित असुरों को मारने के लिये भी, देवी देवतों के रोने धोने से दया करके भगवती देवी ने सारा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया—विष्णु को कृष्ण का रूप बनाया और सभी को यथा स्थान जाने को कहा। इस प्रकार इस पुराणकार की देवी सब की रानी बन कर बैठ गयी।

पहले भागवत वाले ने कृष्ण की स्वतन्त्र लीला दिखाई है परन्तु देवी भागवत वाले ने कृष्ण को शिव का भक्त बनाया। प्रसन्न हो कर शिव ने वर दिये कि तेरे बहुत पुत्र होंगे तेरी ६० हजार स्त्रियें होंगी। पहले में विष्णु का

अनुकम्पा से अवतार लेना था पर+ जब शाप से आना पड़ा [देखो स्कं० ४, अ० २५] साथ ही कृष्ण के प्रति शिव द्वारा कहायाजा रहा है कि अष्टावक्र के शाप से तेरे मरने के बाद तेरी स्त्रियें चोर चुरा ले जायगें। ×इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि किस प्रकार साम्प्रदायिक पुराणों में एक दूसरे के देवता के विरुद्ध चालें चली गई हैं।

पंचम स्कन्ध, के आदि में ही कृष्ण ने क्यों शिव की आराधना की देवी सब देवतों से क्यों उत्तम है इस का कारण बताया है कि:—

अकारो भागवान् ब्रह्माप्युकारः स्यात्स्वयं हरिः ॥ २२ ॥
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी।
उत्तरोत्तरं भावेनाप्युत्तमतमत्वं स्मृतंवुधैः ॥ २३ ॥
अतः सर्वेषुशास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमामता ॥
अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्याविशेषतः ॥ २४ ॥
विष्णोरप्याधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः ॥
तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने ॥ २५ ॥

[देखो भागवत स्कन्ध ५. अ० १]

अकार से भगवान् ब्रह्म उकार से विष्णु मकार से रुद्र कहे जाते हैं और आधी मात्रा देवी की है उत्तरोत्तर इनकी उत्तमता विद्वान् लोगों ने मानी है इस लिये देवी सब से उत्तम है। आधी माता होने से सब में सामान्य होकर उच्चारण नहीं होता। विष्णु से भी बड़ा रुद्र है विष्णु तो ब्रह्मा से बड़ा है इस लिये कृष्ण ने रुद्र की उपासना की हो इस में सन्देह न करना चाहिये।

इस के अनन्तर देवी की सब से प्रसिद्ध कथा महिषासुर वध की है इस में महिष दैत्य का बड़ा अद्भुत अद्भुत वृत्तान्त है जिस में असत्य, की पराकाष्ठा कहें तो भी झूठ नहीं। प्रथम पुरुष का महिषी=भैंस को पत्नी बनाना, फिर भैंस का सती होना, फिर चिता में से महिष रूप में पैदा होना, और भैंसे की शकल में

+ शापान्नारायणांऽशोऽहं जातोऽस्मिन् क्षिति मण्डले ॥ ५५ ॥
× अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन ॥
चौरेश्योग्रहणं कृष्ण गमिष्यंतिमृते त्वयि ॥ ६७ ॥

तपकरना तथा राजा बनना, और सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करना। फिर देवताओं की भाग दौड़, देवी की तेजो रूप उत्पत्ति और युद्धार्थ प्रस्थान महिष का उस को ही फिर पत्नी बनाने की इच्छा करना महिष का भी सचमुच* भैंसा के आकार का मानना, परस्पर दूतादि भेजने से युद्ध का निश्चय और फिर तुमुल युद्ध रण चण्डी का युद्ध में उतरना और सब दैत्यों का संहार करना ये सब कल्पित कथा परम्परा जोड़ कर फिर महिषासुर के मरण के अनन्तर तथा देवी के अनन्तर अन्य देवों की निन्दा की है:—

[देखो भा० स्कं० ५, अ० १२]

(१) विष्णु की निन्दा:—

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामम्
मत्स्यो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद् धरायां
तान् सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात् ॥ १८ ॥

भृगु के शाप से शापित हुवा जो पहले मच्छी फिर कछुआ और फिर सूअर हुआ और फिर छल करने वाला नरसिंह बना उनके सेवा करने वालों को मृत्यु भय क्यों न होगा।

(२) शिव की निन्दा:—

शम्भोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धम् ।
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ॥
तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तम् ।
तेषां सुखं कथमिहापि भरत्रयातः ॥ १९ ॥

देव्युवाच:—

*यथा ते महिषो माता प्रौढा यवसभक्षिणी ।
नाहं तथाऽश्टंगवती लम्बपुच्छा महोदरी ॥ १ ॥

(दे० भा० स्कं० ५ अ० १२)

इस अश्लील पद्य का हम अनुवाद नहीं करना अच्छा समझते ।

(३) गणपति या गणेश की निन्दाः—

योऽभूद्गजाननगणेशाधिपतिर्महेशात्
तं ये भजन्ति मनुजाः वितथप्रपन्नाः
जानन्तितेनं सकलार्थफलप्रदात्रीं
त्वां देविविश्वजननि सुखसेवनीयाम् ॥ २० ॥

. महेश पुत्र गणेश हाथी के मुख वाला हुआ, झूठे रास्ते पर चलने वाले लोग जो इस को पूजते हैं वे. सुख से सेवा करने योग्य हे जगत् की माता ! सब प्रयोजनों और फलों को देने वाली तुम को नहीं जानते हैं ।

(४) सूर्य्य या अग्नि की निन्दाः—

क्लिश्यन्ति तेऽपिमुनयस्तव दुर्विभाव्यं ।
पादाम्बुजंनहि भजंति विमूढचित्ताः ॥
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ।
ज्ञातंन तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥ २३ ॥

वे मुनि जो तेरे अज्ञेय पद क्रम को नहीं भजन करते वे व्यर्थ क्लेश उठाते हैं वे मूढ चित्त हुवे २ सुर्य अग्नि के सेवन करने में तत्पर परमार्थरूप को नहीं जानते और नाही उन्होंने वेदों के सैकड़ों मन्त्र पढ़कर भी तत्वजाना ।

(दे० भा० स्क० ५, अ० १६)

इस प्रकार सभी देवताओं की खुली निन्दा×. बिना सम्प्रदाय के द्वेषभाव के कोई उदार ऋषि नहीं करसकता और अन्य सम्प्रदाय के ग्रन्थों के विषय में **"स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च"** ॥ २४ ॥ आदि प्रयोग दिया है अर्थात् अन्य ग्रन्थ अपने २ मति से नाना प्रकार के आगम बना लिये हैं, इत्यादि स्पष्ट सम्प्रदायिकता उद्घोषित है । इसी प्रकार इससे आगे शुम्भ निशुम्भ दैत्यों के वरयुक्त होने पर देवता निराधार होकर चण्डी की उपासना करते हैं उस में भी पुराण कहता है:—

× यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे ॥ १७ ॥
इस में देवों को अबला बना दिया । (देखो भा० स्कं० ५, अ० २०)

ये वैष्णवाः पाशुपताश्चसौराः दम्भास्तएव प्रतिभान्ति नूनम् ॥ ३७ ॥ (स्क० अ० २२)

कितने स्पष्ट शब्दों में अन्य देवतोपासकों को दम्भी पाखण्डी कहा है। इस स्कन्ध के अन्त में आगम=तन्त्र के अनुसारमांत्रादिकों से पूजा का विधान किया गया है इस से भी शाक्त सम्प्रदाय का यह पुराण है। इस में सन्देह नहीं।

६ठे स्कन्ध में वृत्रासुर का वध है। वृत्रासुर वास्तव में देखा जाय तो किसी प्रकार भी नीच गुणों से युक्त नहीं दीखता। प्रत्युत बड़ा धर्मात्मा है। सारे दुर्गण इन्द्र ही में दृष्टि गोचर हैं। फिर यह केवल इन्द्र का और वृत्र का पारस्परिक कलह मात्र है। ये एक दूसरे की उन्नति से जलते थे तथा एक दूसरे का घात करते थे। इसी झगड़े में बड़े२ देवता भी पक्षपात में आकर एक दूसरे का पक्ष लेते थे। इसी प्रकार इन्द्र का पक्ष देवी ने और विष्णु ने किया वृत्र को समुद्र की फेन से करवाया। यह भी भागवत का कथांश है। परन्तु यही कथा वैदिक वृत्रासुर संग्राम की है परन्तु भेद इतना है कि उस में विष्णु देवी आदि साम्प्रदायिक देवताओं का हाथ नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक पुराण ने अपने देवता को इन्द्र पर अनुग्रहीता बताया है। वृत्रासुर के ब्रह्म हत्याकृत पापसे श्रद्धा रहित हुवे देवताओं ने सौगतमत धारण किया तथा वेद की प्रमाणता को छोड़ दिया, यह बौद्धकाल से बहुत अर्वाचीनता की साक्षि को पुष्ट करता है। इन्द्र की शुद्धि का उपाय प्रथम अश्वमेध निश्चित किया परन्तु फिर देवी के पूजन को+ उससे भी उत्कृष्ट गिनना सरासर साम्प्रदायिकता का ढोंग प्रतीत होता है जिससे वैदिक कर्म-काण्ड की जड़ ही उड़ जाय।

इन्द्र ब्रह्महत्या से डरकर स्वर्ग को छोड़ कर चला गया और नहुष राजा को देवताओं ने अपना राजा बनाया। इन्द्राणी को अपनी स्त्री बनाने के लिये सप्तर्षियों को वाहनबना कर शाप द्वारा भूमि में गिरा। इस पर कर्म की गति युगों के

+**यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥ ४१ ॥**
किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च ॥ ४२ ॥
(देखो भा० स्कन्ध ६)

धर्मादि के प्रसंग से कलियुग का महाभूत धर्म देवी के पूजन को बताया है । यहां तक कि:—

अवशेनापियन्नाम लीलयोच्चारितं यदि ।
किंकिंददाति तन्नातु समर्थाहरिहरादयः ॥

यदि खेल में भी देवी का नाम मुह से निकल जाय तो देवी क्या २ देती है वह विष्णु महेश भी नहीं जानते। यहां तक देवी को बढ़ाया गया है । जैसा कि:—

महान्तोऽपि न मुच्यन्ते हरिब्रह्महरादयः ।
पामराअपि मुच्यन्ते यथा सत्य व्रतादयः ॥

इन छः स्कन्धों की सामान्य समालोचना से पर्याप्त स्पष्ट कर दिया कि किस प्रकार देवी भागवत ने अपनी देवी को बड़ा बनाने के लिये अन्यों की निन्दा तथा कतिपय स्थानों पर उन से मेल मिलाप रखा है और किस प्रकार सम्प्रदाय की मुख्यता स्थापन की है शेषार्थ को विस्तार भय से हम पाठकों पर छोड़ते हैं ।

यद्यपि इस पुराण की आलोचना शैव प्रकरण में करनी आवश्यक थी परन्तु प्रसंग आजाने से यहां ही कर देना आवश्यक प्रतीत हुआ ।

गरुड़ पुराण

मत्स्यपुराण के अनुसारः—गारुड़ कल्प में गरुड़ की उत्पत्ति के प्रकरण में विश्वाण्ड से सृष्टि का पैदा होना प्रारम्भ करके भगवान कृष्णद्वैपायन नें जो कहा है वह गरुड़पुराण है, उस के १८००० अट्ठारह हज़ार श्लोक हैं।

परन्तु बृहन्नारदीय के अनुसार विष्णु ने गरुड़ के प्रति गरुड़ की कथा का प्रसंग १९ हजार श्लोकों में कहा है।

हज़ार संख्या का अन्तर तो यहीं पड़ गया। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र की दृष्टि से १८ हजार श्लोकों के स्थान पर लग भग ११ हज़ार हैं। क्योंकि आप लिखते हैं कि प्रचलित गरुड़पुराण में संख्या स्थल में प्रायः ७००० श्लोक कम होते हैं। परन्तु पण्डित विल्सन की सम्मति में इसमें केवल ७००० श्लोक हैं। वे कहते हैं कि हमारे पास दो प्रतियां थीं। ये हमारे पास १९०३ सन् का निर्णयसागर प्रेस बम्बई का छपा हुआ संपूर्ण गरुड़पुराण है जिसमें गिनने पर केवल श्लोक १२९१ ही पाये गये हैं।

ज्वालाप्रसाद जी की लिखी गरुड़ की विषय सूची के तथा बृहन्नारदीय के अनुसार हमारे पास का गरुड़पुराण उत्तर खण्ड ही प्रतीत होता है। तथापि हम दोनों की विषय सूची यहां देते हैं। और विशेष वक्तव्य अन्त में लिखेंगे।

इस के दो खण्ड कहे जाते हैं। प्रथम खण्ड निर्णयसागर की पोथी में नहीं है। मिश्र जी की सूची के अनुसार इस खण्ड में २४३ अध्याय हैं तथा दूसरे खण्ड में ४५ अध्याय हैं परन्तु हमारी पोथी में १६ ही अध्याय हैं। हमारी पोथी में एक विशेषता और है वह यह कि हमारा गरुड़पुराण टीकाकार के अनुसार सारोद्धार मात्र है सम्पूर्ण गरुड़पुराण नहीं हैं। परन्तु उद्धारकर्त्ताने अपने अन्त के वचनों में लिखा है कि:—झंझूलू नगर के निवासी श्री सुखलाल पुराण पाठी द्विज के पुत्र नौनिधिराम ने प्राचीन गरुड़पुराण के संग्रह को दुर्बल बुद्धि होने के कारण अगम्य होनें से बालकों के लिये यह गरुड़पुराण का सारोद्धार बनाया। बहुत ठीक। परन्तु इस में गरुड़ के दो खण्डों का पता भी नहीं दिया। और सारोद्धार के देखने से उत्तर खण्ड मात्र का सारोद्धार प्रतीत होता है। इससे

यही परिणाम निकल सकते हैं कि या तो सारोद्धार बनाने वाले के पास पूर्व खण्ड-मय गरुड़पुराण न था। या पूर्वखण्ड गरुड़पुराण का वास्तविक अंश ही उसकी दृष्टि में न हो या ये सब अन्यों के बढ़े हुए हों। उसके शब्दों से यह भी झलकता है कि गारुड़सार संग्रह बहुतों ने अपने २ समय पर संग्रह किया और पुराण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि वह लिखता है:—

प्राचीनैर्यत्कृतः पूर्वं गारुड़ः सार संग्रहः।
सतुतौ बुद्धिदौर्बल्या ज्ज्ञातस्तस्मादयं कृतः॥

यहां एक शंका यह रहजाती है कि इसका नाम सार संग्रह क्यों! क्या गरुड़ महापुराण का सार है? इस लिए या किसी अन्य वस्तु का सार है। प्रथम कल्प मानना ठीक नहीं—क्योंकि सारोद्धार करने वाला लिखता है कि:—

विष्णु रुवाच:—

इत्येवसर्वशास्त्राणां सारोद्धारोनिरूपितः।
भयाते शोडषाध्यायैः किंभूयः श्रोतुमिच्छति॥

"ये मैंने तुझे शास्त्रों का सार उठा कर, सोलह अध्यायों से कह दिया अब क्या अधिक सुनना चाहता है।"

इससे गरुड़,विष्णु,संवाद रूप से शास्त्रों से सार का उद्धरण करना ही गरुड़-पुराण नाम से प्रसिद्ध होगा यही परिणाम निकलता है।

ये हमारे पास पत्थर के छापे की छपी एक प्रति है इस में २४ अध्याय हैं परन्तु पद्य संख्या केवल कुल ९०० ही है। परन्तु इसमें साथ ही इसको उत्तर खण्ड भी स्वीकार किया है। पंडित विलसन ने संक्षेप से गरुड़ की समालोचना करते हुए लिखा है कि:—

"इसमें केवल ७००० श्लोक हैं। इसमें वक्ता ब्रह्मा तथा प्रष्टा इन्द्र है। गरुड़ की उत्पत्ति का इसमें नाम भी नहीं है। सृष्टि का विषय इसमें बहुत ही न्यून है। परन्तु अधिक भाग में व्रतपूजा, अनध्याय, तीर्थ, तान्त्रिकस्तव, जोतिष, सामुद्रिक, रत्न,और वैद्यक,बहुत ही विस्तार से हैं। यह पहले खंड में है। और दूसरे छोटे खंड में प्रेतकल्प है। दोनों भागों में गरुड़पुराण के नाम होने का कोई भी हेतु नहीं है। गरुड़पुराण की वास्तविकता में भी सन्देह है। मत्स्यपुराणकारने जो कुछ भी

लिखा है उस से पता लगता है कि उसे वास्तविक पुस्तक का ज्ञान भी न था। परन्तु कर्ण परम्परा से तथा नाम देख कर लगाए, अनुमान से जैसा तैसा लिख दिया है। अस्तु।"

प्रथम खंड में सूतशौनक संवाद द्वारा गरुड़ की आपत्ति की कथा छोड़कर रुद्र, विष्णु, संवाद द्वारा प्रजापति का सर्ग तथा काश्यप-कृत सृष्टि का वर्णन करके सूर्य की पुजा, विष्णु की पूजा आदि नाना पूजाएं, सहस्र नाम, मूर्त्ति-स्थापन, प्रियव्रत का आख्यान छोड़कर, ज्योतिष शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, रत्न परीक्षा, नया माहात्म्य, पिण्डदानादि वर्णन करके फिर रुचि मनु के वर्णन में गृह-धर्म उपन संस्कार, पँचयज्ञ, नीति शास्त्र फिर व्रतविधान, ततः चन्द्रवंश के प्रकरण में राम और कृष्ण की उत्पत्ति आदि, कथा तदनन्तर आयुर्वेद सर्पविद्या अश्वचि-कित्सा, छन्दः शास्त्र प्रगधर्म निरूपण प्रलय वर्णन विष्णुस्तुति पूर्व आत्मज्ञान का उपदेश। इसी में बीच बीच में एक ही विषय को कतिपय बार बताया है इससे पुनरुक्त दोष इस में अवश्य है।

द्वितीय खण्ड में: वैकुण्ठ में विष्णु और गरुड़ का संवाद द्वारा नरकों का वर्णन, यमपुर का वर्णन, और्ध्व देहिक कृत्य जीवन की उत्पत्ति, पाप पुण्यों के फल, श्रद्धादि निरूपण, मुक्ति के उपाय बताए गये हैं। ये संक्षेप से गरुड़ पुराण की विषय सूची है।

इस पुराण का प्रथम खण्ड तो केवल नाना विषयों का संग्रह मात्र है। इस में गरुड़ का कुछ भी सम्बन्ध न होने से गरुड़पुराण का नाम रखना केवल दुःसाहस है। इसी लिए नौनिधिराम ने उसका सार नहीं बनाया और उस पर टीका भी नहीं की और उसे भी केवल संग्रहमात्र ही कहा है। पुनरुक्त दोष भी कतिपय स्थान पर है ही जैसे सन्ध्याविधान दो बार है।

उत्तरखण्ड का निर्माण तो केवल नरक का घोर कल्पित दृश्य दिखाकर श्राद्ध-विधि का पोषण करना मात्र प्रयोजन है। अन्य शेष सब बातें बहुत स्वल्प में ही समाप्त की हैं। इस में भी आश्चर्यजनक यह है कि श्राद्धकल्प का वक्ता एक प्रेत है और श्रोता एक राजा है।

राजा इतना बड़ा होगया हैं विद्वान् है, धार्मिक है, वह मृगया के लिये बन में गया वहा उसे एक प्रेत मिला। उस प्रेत ने अपना दुःख सुनाया और कहा कि

और्ध्वदैहिक क्रिया करने की विधि आदि बतलाई । इस प्रकार श्राद्ध की स्थापना की है। इन बातों की सत्यता पर उन्हीं का विश्वास होसकता है जो भूत प्रेत को मानते हों। प्रेत के प्रवक्ता होने से ही यह परिणाम भी निकलता है कि उस के उपदेश के पहिले श्राद्ध का विधान इस रूप में नहीं होगा।

इस में उपादेय भाग नरक का घोर दृश्य तथा जन्म मरण चक्र की कल्पना कर्म-फल का सिद्धान्त और अध्यात्मक प्रक्रिया उत्तम रूप से वर्णित हैं।

पद्म पुराण

यह महा पुराण अति विस्तृत है इस के विषय में मात्स्यपुराण कहता है कि सृष्टि के आदि में हिरण्मय पद्म स्वरूप जगत् को लेकर जिस पुराण में वृत्तान्त लिखा गया है वह पाद्मपुराण है। इस में ५५ हजार पद्य हैं। यह हमारे पास आनन्दाश्रम ग्रन्थावली का छपा पद्म महापुराण रखा है। इस में सम्पूर्ण छहों खंडों की पद्य संख्या केवल ४८४५२ है। साढे छः हजार उल्लिखित संख्या से कम है।

" पद्मपुराण सारा ही विवाद ग्रस्त है। इस के कितने ही संस्करण मिलते हैं जिनमें से मुख्य दो हैं, प्रथम ५ खण्ड वाला, द्वितीय ६ खण्ड वाला। इन दोनों में खण्डानुक्रम का भी भेद है। अध्यायों में तथा प्रतिपाद्य विषय सूची तक में भेद है। इसी लिये उचित उद्धरणों के निकाल ने में बड़ी गड़ बड़ होती है।

प्रथम इसके खण्डों का निर्णय करते हैं:—

आनन्दाश्रम में छपी पोंथी के ६ खण्ड इस क्रम से हैं।

[१] आदि खण्ड।
[२] भूमि खण्ड।
[३] ब्रह्म खण्ड।
[४] पाताल खण्ड।
[५] सृष्टि खण्ड।
[६] उत्तर खण्ड।

वैंकटेश्वर प्रेस में छपी पोंथी के अनुसार ५ खण्ड ही हैं।

इसका क्रम यह है:—

[१] सृष्टि खण्ड।
[२] भूमि खण्ड।
[*३] स्वर्ग खण्ड।
[४] पाताल खण्ड।
[५] उत्तर खण्ड।

पद्मपुराण के खण्डों का क्रम बृहन्नारद पुराण ने इस प्रकार बतलाया है:—जैसे पांच इन्द्रियों से एक शरीर धारी कहा जाता है उसी प्रकार पांच खण्डों से यह पुराण युक्त है।

[१] सृष्टि खण्ड, [२] भूमि खण्ड, [३] स्वर्ग खण्ड, [४] पाताल खण्ड [५] उत्तर खण्ड।

इसी प्रकार दाक्षिणात्य में प्रचरित पाद्मपुराण के उत्तर खंड के १ अध्याय में यह क्रम दिया है:—

[१] सृष्टि खण्ड, [२] भूमि खण्ड, [३] पाताल, [४] पुष्कर, [५] उत्तर खण्ड, इस क्रम में बृहन्नार के बताये स्वर्ग खण्ड के स्थान पर पुष्कर खण्ड लिखा है।

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड के आदि अध्याय में लिखा है कि पद्मपुराण में हय पांच पर्व हैं:—

[१] पौष्कर पर्व, [२] तीर्थ पर्व, [३] विशेष कोई नाम नहीं, [४] कोई विशेष नाम नहीं, [५] कोई विशेष नाम नहीं।

अब कहिये किस क्रम को उपादेय और किस क्रम को हेय कहा जाय। किस क्रम को सच्चे व्यास का और किस क्रम को झूटे व्यास का कहा जाय? यह बड़ी असुविधा है कि जिस ने ५ खण्डों के ६ खण्ड बनाये उसके छठे खण्ड की क्या व्यवस्था की जाय। इसकी व्यवस्था के लिये पौराणिक पण्डित मिश्र ज्वाला प्रसाद का उस संक्षेप से मत यहां उद्धृत करते हैं।

"आदि पद्मपुराण के लक्षण और विषयादिका प्रचलित पद्मपुराण में सम्पूर्ण अभाव नहीं है। मत्स्य और नारदपुराण में जैसे लक्षण निर्दिष्ट हुवे हैं वे सब ही प्रचलित पद्मपुराण में पाये जाते हैं किन्तु पहले पद्मपुराण का जैसा खण्डविभाग या उस का सम्पूर्ण परिवर्त्तन हुआ है।"

(**समीक्षा**) i सम्पूर्ण अभाव नहीं है तो क्या थोड़ा सा अभाव भी है?

ii परिवर्तन का क्या कारण?

"प्रचलित पद्मपुराण देखते ही हम पद्मपुराण के तीन संस्कार का परिचय पाते

हैं, (१) प्रथम संस्करण में यह पुराण खण्डों में विभक्त न था परन्तु पर्वों में था, [देखो सृष्टि खण्ड अ० १, ५५-६०] विष्णुपुराण में तत्पूर्ववर्त्ती पद्मपुराण का उल्लेख है, सम्भवतः वही पञ्चपर्वात्मक था।" (समीक्षा) प्रतीत होता है कि उस को छोड़ कर शेष प्रचलित सब व्यास के नाम पर मढ़े गये हैं।

"प्रथम संस्करण में पौष्कर पर्व,प्रथम गिना जाने पर भी दूसरे संस्करण में बदल गया" क्यों ? और सृष्टि खण्ड ने प्रथम पर्व का अधिकार पाया।"

"तीसरे संस्करण में पौष्कर खण्ड का लेख हुआ। (सम्भवतः) पुष्कर महात्म्य के अन्तर्गत हुआ। उसके स्थान पर स्वर्ग खण्ड ने स्थान पाया।" (स्वर्ग खण्ड प्रक्षिप्त है ?)

"उसके पीछे चौथा संस्करण हुआ दाक्षिणात्य लोगों ने स्वर्ग खण्ड का ग्रहण नहीं किया, परन्तु उसके स्थान में ब्रह्मखण्ड ग्रहण किया, और क्रम से आदि भी ब्रह्म,पाताल,सृष्टि, और उत्तर खण्ड की व्यवस्था की है।"

"पद्मपुराण के कै संस्कार हुये हैं, प्रथम संस्कार वेदव्यास का दूसरा बौद्धधर्म के पुनः अभ्युदय समय का, तीसरा नारदपुराण के अनुसार, पद्मपुराण का चतुर्थ संस्करण में, ग्यारहवीं,बारहवीं,शताब्दी के बाद, रामानुजाचार्य तथा माधवाचार्य के मत फैलने के बाद, बहुत सी प्रक्षिप्त श्लोकावली मिलाई गई। उदाहरण के लिये पाखण्डियों के लक्षण, मायावाद निन्दा, तामस पुराण वर्णन, ऊर्ध्व पुराण चिन्हादि, वैष्णव लिंगादि धारण, ये सब आधुनिक कथा घुसेड़ी गई हैं।" यही मिश्र जी की सम्मति है। मिश्र जी कहते हैं कि "मेरी सम्मति में जहा कहीं पुराणों में इस प्रकार सम्प्रदाय के द्वेष सूचक श्लोक पाये जायं वे निश्चय ही आधुनिक और प्रक्षिप्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं और बुद्धिमान उन को व्यास जी के बनाये श्लोक नहीं मानते। यही श्लोक इस बात की साक्षी देते हैं कि एक समय सम्प्रदाय द्वेष भी इतना बढ़ गया था कि पुराणों में प्रक्षिप्त श्लोक मिला कर महानुभावों ने चित्त का गुबार मिटाया।"

(पता नहीं कि ऐसे द्वेषदग्ध हृदयों तथा आर्ष-ग्रन्थों पर हाथ साफ़ करने वाले तथा अपनी कलुषता को दूसरे के सिर पर थोपने वाले खलों को महानुभाव कहना कितना संगत है, हा व्योग लेप में कहना ठीक भी है) अन्त में मिश्र जी भी

इतनी पराकाष्ठा की साम्प्रदायिकता को देख कर उसी परिणाम पर पहुंच गये जिस पर हम पाठकों को पहुंचाना चाहते थे ।

तृतीय खंड —स्वर्ग खण्ड भी कई रूप का है। मिश्र जी की दी हुई सूची के अनुसार स्वर्ग खंड भिन्न है । अतः एक अन्त में मिश्र जी दूसरी सूची भी देते हैं इसी से स्वत सिद्ध: है कि साम्प्रदायिक भेदों के कारण ये खंड भी भिन्न २ होगये हैं।

इस प्रकार यद्यपि यह खंडों का विपर्यास पाया जाता है पर फिर भी कौनसा अनुक्रम पहला और कौनसा दूसरा है इस का निर्णय सुगमता से ही हो सकता है।

एच० एच० विल्सन द्वारा समालोचित पद्मपुराण प्रथम खंड सृष्टिखंड है । द्वितीय भूमि खंड, तृतीय स्वर्ग खंड, चतुर्थ पाताल खंड तथा पांचवां उत्तर खंड है। परन्तु आनन्दाश्रम में मुद्रित पद्मपुराण में, प्रथम आदिखंड, द्वितीय भूमिखंड, तृतीय ब्रह्मखंड, चतुर्थ पाताल खंड, पञ्चम सृष्टिखंड, छठा उत्तरखंड ।

इन दोनों मतों में प्रथमखंड में विवाद है क्या आदिखंड प्रथम है या

आदिखंड प्रथमखंड नहीं है। क्योंकि बृहन्नारदीय के अनुसार, तथा उपरोक्तखंड सूची के अनुसार आदिखंड कोई खंड ही नहीं। यह सर्वथा पीछे से घड़कर मिलाया गया है। [२] पद्मपुराण के ही सृष्टिखंड के आदि में * तथा भूमिखंड के अन्त में लिखे तथा उत्तरखंड में लिखे खंड तथा पूर्व सूची के अनुसार आदिखंड गणना में नहीं आता है । इस के अतिरिक्त सृष्टिखंड ही वास्तव में प्रथम खंड है क्योंकि उस के ही प्रथम में पुराण कथा का उपक्रम छेड़ा गया है । जैसा कि ऋषि लोग नैमिषारण्य में सूत के पास पुराण श्रवण के लिए आते हैं।

इसी पर सूतने पाद्मपुराण के उपक्रम में उसका विस्तार बताते हुए कहा कि पद्मपुराण ५५ हजार पद्य का पढ़ाजाता है व्यास कर देने से उसके पांचपर्व हैं, पहला पौष्करपर्व जिस में विराट् की उत्पत्ति का वर्णन है। दूसरा तीर्थपर्व जिसमें सब

---

* **प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम्**
तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम् ॥ ४८ ॥
पञ्चमञ्चोत्तरं खण्डं सर्वपाप प्रणाशनम् ॥ ४९ ॥
(पाद्म भू० खं० अ० १२५)

ग्रह गणों का वर्णन है । तृतीय पर्व में बहुत दक्षिणा देने वाले राजाओं का वंशानुचरित है, चौथे में भी वही है । पांचवें पर्व में मोक्षतत्व और सर्वज्ञत्व निरूपण है । +

इसी का दूसरा रूप भी साथ ही लिखा है कि:—पौष्करपर्व में नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन, देवता मुनि और पितृ गणों की सृष्टि है । दूसरे में पर्वत द्वीप सागर, तीसरे में रुद्र की सृष्टि, और दक्ष का शाप और चौथे में राजाओं की उत्पत्ति और वंशानुकीर्त्तन और पांचवें में मोक्षशास्त्र का उपदेश है । ×

इसी से देखसकते हैं कि इन दोनों में ही कितना भेद पड़ गया है । दूसरी बार लिखा २ ? पद्य का अनुक्रम पीछे से मिलाया प्रतीत होता है । क्योंकि इस में पहले से भी रुद्र और दक्षशाप अधिक लिखे गये । खैर इसी ही को प्रमाणिक लेख मान कर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ब्रह्मखंड जिस की उपेक्षा प्रायः सभी ने की है वह भी पांचों खंडों में पाचवा था । और पीछे से साम्प्रदायिकों ने उसे उड़ाकर उत्तर खंड रखा ।

पहले और पांचवें का निर्णय तो होगया शेषों में से दूसरा अन्य सब प्रतियों में

+ पाद्मं तच्च पञ्चाशत्, सहस्राणीह पठ्यते ।
पञ्चभिः पर्वभिः प्रोक्तं संक्षेपाद् व्यासकारणात् ॥ ५४ ॥
पौष्करं प्रथमं पर्व, यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट् ।
द्वितीयं तीर्थपर्वस्यात् सर्वग्रहगणाश्रयम् ॥ ५५ ॥
तृतीयपर्वग्रहणे राजानो भूरिदक्षिणाः ।
वंशानुचरितञ्चैव, चतुर्थे परिकीर्त्तितम् ॥ ५६ ॥

× पंञ्चमं मोक्षतत्वं च सर्वज्ञत्वं निगद्यते ।
पौष्करे नवधासृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिका ॥ ५७ ॥
देवतानां मुनीनाञ्च पितृसर्गस्तथापरः ।
द्वितीयपर्वतानां च द्वीपाः सप्त च सागराः ॥ ५८ ॥
तृतीये रुद्र सर्गस्तु दक्षशापस्तथैव च ।
चतुर्थे संभवोराज्ञां सर्ववंशानुकीर्त्तनम् ॥ ५९ ॥
अपवर्गस्य संस्थानम् । मोक्षशास्त्रानुकीर्त्तनम् ।
सर्वमेतत्पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामिवोद्विजाः ॥ ६० ॥
(पद्म, सृ० ख०, अ० १)

भूमि खंड ही है । और यहां भी तीर्थों का वर्णन भी अद्भुत प्रकार का है । मातृ तीर्थ, पितृ तीर्थ, भार्या तीर्थादि पुत्र की सेवा भक्ति से तारण करने वालों का वर्णन होने से उपरोक्त पर्व अनुक्रम के अनुसार भी भूमि खंड ही तीर्थ पर्व है । इससे आदि खंडान्तर्गत तीर्थ वर्णन प्रक्षिप्त है ।

तीसरे खंड के विषय में विवाद है । आनन्दाश्रम के अनुसार ब्रह्मखंड है । परन्तु इस में सब साम्प्रदायिक ही वैष्णवों की लीला है । दूसरों के मत में तृतीय खंड स्वर्ग खंड है । इस में पर्वानुक्रमणी के अनुसार ग्रहों का वर्णन तथा दक्ष यज्ञ, और रुद्र सर्ग भी प्राप्त है अतः स्वर्ग खंड को तृतीय खंड मानना ही श्रेष्ठ है ।

चतुर्थ पाताल खण्ड उभयत्र समान है । इस में राम और कृष्ण की कथा ही विस्तार से लिखी है । परन्तु पर्वानुक्रमणिका में लिखे भूरिदक्षिणा देने वाले राजाओं का वंशानुचरित इस में वर्णन न होने से यह खंड बहुत पीछे साम्प्रदायिकों की अदल बदल का परिणाम है । उन राजाओं का वंश वर्णन उड़ाकर दोनों में स्थान २ पर उपाख्यान रूपों में बांट दिया गया है ।

उत्तरखण्ड तो सरासर साम्प्रदायिक तथा अत्यन्त अर्वाचीन प्रक्षेपक है । इस का तो पर्वानुक्रम के अनुसार चिन्ह भी नहीं प्राप्त होता । अब क्रम से पद्मपुराण का संक्षेप कहते हैं:—

द्वितीयखण्ड—भूमिखण्ड में —शिवशर्मोपाख्यान द्वारा पुत्र तीर्थ का प्रतिपादन, पुत्रपर पितृभरण, पृथुचरित्र, वेनराजचरित्र, पुत्रभार्या माता के तीर्थ प्रतिपादन प्रसङ्ग में शूकरोपाख्यान, पितृतीर्थ प्रसङ्ग में नहुषोपाख्यान, सुकर्मोपाख्यान, गुरु तीर्थ प्रसङ्ग में दिव्यादेवी का उपाख्यान, सामान्यतीर्थ प्रसङ्ग में कुञ्जलाख्यान, अशोकसुदमी का उपाख्यान, विदुराडाख्यान, वेणाख्यान ।

प्रथम खण्ड—सृष्टिखण्ड:—संक्षेपतः दक्षयज्ञ प्रसङ्ग में सृष्टि का प्रश्न, देव और दैत्यों की उत्पत्ति पृथूपाख्यान रक्तोपाख्यान श्राद्धवर्णन, सोमवंशोपाख्यान, क्रोष्टुवंश कथा, स्यमन्तोपाख्यान, कुन्तीकथा, रामकृष्ण की कथा देवों का दानवों के साथ कलह तथा शिव और विष्णु का परस्पर कलह वृत्रासुरोपाख्यान, महिषासुरवध, प्राजापत्य सृष्टि, तारकासुर कथा तथा हिरण्यकशिपु अन्धकासुर हनन, पितृसेवा प्रशंसा सोपाख्यान, अहल्योपाख्यान, पुनः देवासुरसंग्राम कथा, बहुत से दैत्यों की कथा ।

इसी खण्ड के मध्य में कतिपय तीर्थों का तथा महात्म्यों और पूजाओं का भी प्रसङ्ग डाला गया है जो केवल साम्प्रदायिक है।

तृतीय खण्ड—स्वर्ग खण्ड में—शकुन्तलोपाख्यान, चन्द्रसूर्यमण्डल तथा भूलोकादिकथन, रुद्रसर्ग वर्णन मान्धातृ उपख्यान, वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म।

इसी तृतीय खण्ड स्थानीय ब्रह्मखण्ड में:—व्यासजैमिनि संवाद द्वारा कार्तिक महात्म्य जयन्तीव्रत राधाजन्माष्टमी महिमा। समुद्रमथन प्रसङ्ग में विष्णु का लक्ष्मी से विवाह, कृष्णाष्टमी एकादशी कार्तिक आदि महात्म्य वर्णित है। परन्तु येपर्वक्रमानुसारी तीर्थ पर्व न होने से सर्वथा अप्रमाण हैं। नारदपुराण के अनुसार भी इस में तीर्थ वर्णन ही है।

चतुर्थ—पातालखण्ड में:—रामराज्याभिषेक, तथा अश्वमेधोपदेश, और कृष्ण कथा प्रसङ्ग में वैष्णवपूजादि, पुनः राम तथा लक्ष्मी संवाद, और शिव की मति भस्म की महिमा, श्राद्धविधि आदि पुराणोपपुराण कथन आदि।

पांचवें उत्तरखण्ड में:—नारदमहेश्वर संवाद में जलन्धर उपाख्यान, श्रीशैलहरिद्वार गया प्रयागादि का महात्म्य, नाना तिथियों का व्रत और महात्म्य वैष्णव सम्प्रदाय का प्रपञ्च, शंखासुरोपाख्यान शिव द्वारा जलन्धर वध। कार्तिक प्रशंसार्थकलह तथा उपाख्यानों की माला। तीर्थों का माहात्म्य, गीता माहात्म्य, गोकर्ण माहात्म्य, तथा अन्य उपाख्यानों सहित माहात्म्य कथन, सोपाख्यान व्रत माहात्म्य।

जिन पुराणों में आदि खण्ड भी ग्रन्थ का भाग माना जाता है उन के आदि खण्ड की विषयसूचि इस प्रकार है।

आदि खण्ड:—पुराणका प्रारम्भ पद्म का खण्डादि निरूपण, प्राकृतसर्ग, जनपदनदी पर्वत वर्णन, वर्ष वर्णन, द्वीप वर्णन, तीर्थ निरूपण तथा उनके माहात्म्य, अन्त में वर्णाचार, वैष्णवाचार, और आश्रमाचार तथा पद्मकी श्रेष्ठता वर्णित है।

इस पुराण की साम्प्रदायिकता को सिद्ध करने की अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं।

फिर भी उदाहरणार्थ कुछ स्थल दिखाये जाते हैं।

(१) प्रथम सृष्टि खण्ड में कोष्टु वंश का प्रसङ्ग छेड़ कर विष्णु के अवतार की समस्या को हल करने के लिये देव और दैत्यों का कथानक इस प्रकार

बनाया गया। पहले देव और असुरों में बहुत मित्रता रही। परन्तु बलि के बांधे जाने पर यह विरोध उठ खड़ा हुआ। तब से असुरों का संहार करने के लिये विष्णु मनुष्यों में पैदा होता है। दूसरा कारण भृगु शुक्राचार्य का शाप भी है।

करोड़ों वर्षों तक दैत्यों का राज्य रहा परन्तु बारी आने पर इन्द्र का राज्य आया, यज्ञ देवों के पास चला गया। यज्ञ की रक्षा के लिये शुक्र के पास असुर गये। शुक्र ने अपने तपोबल से दैत्यों को ३/४ भाग यज्ञ का दिया। यह देख कर देवों ने दैत्यों पर आक्रमण किया। असुर भाग कर शुक्र की शरण गये। उन की रक्षा के हेतु शुक्र शंकर की उपासनार्थ गया। पीछे से देवताओं ने दूसरा आक्रमण किया इस पर दैत्यों ने भय से शस्त्र छोड़ कर घरबार त्यागकर बनवासी साधु तपस्वी बनना स्वीकार किया। और शुक्र की माता की शरण ली। शुक्र की माता ने अपने तपोबल से इन्द्र को निद्रा से स्तब्ध कर दिया। परंतु विष्णु ने आकर क्रोध में स्त्री का भी वध कर दिया। तपश्चर्या से लौटकर शुक्र ने स्त्री वध को देख कर विष्णु को शाप दिया कि तूने धर्म को जानते हुवे भी स्त्री घात किया है अतः सातवार तुझे मनुष्यों में जन्म लेना होगा। शुक्र ने सत्यविद्या के बल से अपनी भार्या को जिला लिया। परंतु इन्द्र ने अपनी कन्या को शुक्र के मोहने के लिये भेज दिया उस से १००० वर्ष के लिये शुक्र मुग्ध रहा। परन्तु इस अन्तर में देवों की प्रार्थना पर बृहस्पति शुक्र का स्वांग भर कर दैत्यों की सभा में आचार्य बन गया। कुछ काल के पश्चात् वास्तव शुक्र आया। उसे देख कर सब अचम्भित हुवे परन्तु इस झूठे शुक्र ने वास्तव शुक्र को बहुत झूठा तथा छली कह कर अपमान किया। वह फिर अपमान के कारण बन में ही चला गया। पीछे से बृहस्पतिने अपनी उलटी पट्टी पढ़ानी प्रारम्भ की।

इस शिक्षा में चार्वाक तथा बौद्ध और जैन बनाने का प्रयत्न किया इस के लिये उसने विष्णु का ध्यान किया। विष्णु ने महामोह का निर्माण करके कहा कि यह सब दैत्यों को धर्म से डिगा देगा। उसी महामोहने दिगम्बर मुण्डमयूर के पंख धारण करने वाले जैनी का रूप धारण किया और आर्हत धर्म की दीक्षा दी। यही कथा विष्णुपुराण की समलोचना में दिखा आए हैं। इस में शुक्र का शाप तथा बृहस्पति का एवं रूपेण वञ्चन विशेष है।

फिर महामोह या मायामोहने रक्ताम्बर धारण कर निर्वाण सिद्धान्ती सौगतों की दीक्षा पर कमर कसी। उनको तत्ववाद सिखाया।

इस प्रकरण में पुराणकार ने जैनियों तथा बौद्धों के बहुत से सिद्धान्तों को तथा साम्प्रदायिक परिभाषाओं का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि यह पुराण बौद्धों और जैनियों के २४ तीर्थंकरों के होचुकने के बाद तथा इसमत के खूब फैल चुकने पर बना है। और उन के विरोध के लिये उनके धार्मिक सिद्धान्त पर आक्षेप न करके छोटी २ बातों पर आक्षेप तथा हास्य करने का प्रयत्न किया है। जैसे केशलुञ्चन से कुबेर बनना आदि (१) देखो पद्मपुराण सृष्टिखंड अ० १३, ३१८—४२१

---

(१) मायामोह के विरुद्ध उपदेश को हम पाठकों के परिचयार्थ उद्धृत करते हैं।

दानवा ऊचुः—संसारेऽस्मिन्नसारे तु किञ्चिज्ज्ञानं प्रयच्छनः।
येनमोक्षं व्रजामाश्च प्रसादात्तवसुव्रत ! ॥ ३१६ ॥
ततः सुरगुरुः प्राह कारुण्यो तदागुरुः ॥ ३१७ ॥

बृ० उ०—ज्ञानंवदेगा[illegible]वोदैत्याः अहं चमोक्षदायितु।
एषाश्रुतिर्वैद्विकीया ऋग्यजुः सामसंज्ञिता ॥ ३१९ ॥

वेदनिन्दाः—

वैश्वानरप्रसादात्तु दुःखदोह प्राणिनाम्।
यज्ञः श्राद्धं कृतं क्षुद्रैरैहिक स्वार्थतत्परैः ॥ ३२० ॥

मायामोह की उत्पत्तिः

विष्णु उ०—

मायामोहोऽयमखिलांस्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति
भवतासहितः सर्वान्, वेदमार्गबहिष्कृतान् ॥ ३४९ ॥
एवमादिश्य भगवानन्तर्धानं जगाम ह ॥
तेषां समीपमागत्य बृहस्पतिमुवाचह ॥ ३५० ॥
ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरोनृप ॥
मायामोहोऽभवद्भुय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५२ ॥

मायामोह दिगम्बर उ०

आर्हत जैनः—

कुरुध्वंममवाक्यानि यदिमुक्तिमभीप्सथः॥
अर्हध्वं सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ॥ ३५५ ॥

धर्माद्धिमुक्तिरर्होऽयं नतदस्मात्परोऽपरः ॥
अत्रैवावस्थिताः स्वर्गं मुक्तिं वापि गमिष्यथ ॥ ३५६ ॥

अतिनास्तिवादः——

धर्मायैतदधर्माय सदेतदसदित्यपि
कथं त्विदं नैतदु विमुक्तिं संप्रयच्छति ॥ ३५८ ॥
परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम् ॥
कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवस्फुटं त्विदम् ॥ ३५६ ॥
दिग्वाससामयंधर्मो धर्मोऽयं बहुसम्मतः ॥
इत्यनेकार्थवादांस्तु मायामोहनतेयतः ॥ ३६० ॥
तेनदर्शयता दैत्या स्वधर्मत्याजिताः नृप ॥
अर्हध्वं मामकं धर्मं मायामोहेन तेयतः ॥ ३६१ ॥
उक्तास्तमाश्रिताः धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन् ॥

वेदत्रयीत्याग:——

त्रयीमार्गं समुत्सृज्य मायामोहेन तेऽसुराः ॥ ३६२ ॥
कारितास्तन्मया ह्यासंस्तथाऽन्येतत्प्रबोधिताः ॥
तैरप्यन्ये परेतैश्च तैरप्योन्ये स्तथापरे ॥ ३६३ ॥
नमार्हन्ता येतिसर्वे सगमेश्विरवादिनः ॥
अल्पैरहोभिः संत्यक्ता स्तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ॥ ३६४ ॥

रक्ताम्बर सौगतः——

पुनारक्ताम्बरधरो मायामोहोजितेक्षणः ॥
सोऽन्यानसुरान् गत्वा तान् वेमधुराक्षरम् ॥ ३६५ ॥
यथासनवैष्णवाधर्मा येचरुद्रकृतास्तथा ।
कुधर्मः आर्यासहितैः हिंसाप्रायाः कृताहित ॥ ३२१ ॥

देवों की निन्दा

अर्धनारीश्वरोरुद्रः कथं मोक्षं गमिष्यति ।
वृताभूतगणैर्भूयो भूषितश्चास्थिभिस्तथा ॥ ३२२ ॥
न स्वर्गो नैवमोक्षो ऽत्र लोकाक्लिश्यंतिवै वृथा ॥
हिंसायामास्थितो विष्णुः कथं मोक्षं गमिष्यति ॥ ३२३ ॥

रजोगुणात्मकोब्रह्मा स्वां सृष्टिमुपजीवति ॥
देवर्षयोऽथयेचान्ये वैदिकं पक्षमाश्रिताः ॥ ३२४ ॥
हिंसाप्रायाः सदाक्रूराः मांसादाः पापकारिणः ॥
सुरास्तु मद्यपानेन मांसादाब्राह्मणास्त्वमी ॥ ३२५ ॥
धर्मेणानेनकः स्वर्गं कथं मोक्षं गमिष्यति ॥

यज्ञ वा श्राद्ध निन्दा

यच्च यज्ञादिकं कर्म स्मार्तश्राद्धादिकं तथा ॥ ३२६ ॥
तत्रनैवापवर्गोऽस्ति यत्रैषाभयते श्रुतिः ॥
यूपंछित्वापशून्हत्वा कृत्वारुधिरकर्दमम् ॥ ३२७ ॥
यद्येवं गम्यतेस्वर्गो नरकः केनगम्यते ॥ ३२८ ॥
यदियुक्तमिहान्येन, तृप्तिरन्यस्यजायते ॥
दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न स भोजनमाहरेत् ॥ ३२९ ॥
आकाशगामिनो विप्रापतिता मांसभक्षणात् ॥
नतेषां विद्यते स्वर्गो मोक्षोनैवेहदानवाः ॥
जातस्य जीवितं जन्तोरिष्टंसर्वस्य जायते ॥ ३३० ॥
आत्ममांसोपमं मांसं कथं खादेत पण्डितः ॥
योनिजास्तु कथं योनिं श्रयन्ते जन्तवस्त्वमी ॥ ३३१ ॥
मैथुनेन कथं स्वर्गं यास्यन्ति दानवेश्वर ॥
मृद् स्नानायत्रशुद्धिः तत्रशुद्धिस्तुकाभवेत् ॥ ३३२ ॥
तारांवृहस्पतेर्भार्यां हृत्वा सोमः पुरागतः ॥

प्राचीनपुरुष निन्दा

तस्यांजातो बुधः पुत्रो गुरुर्जग्राहतां पुनः ॥ ३३६ ॥
गौतमस्यमुनेः पत्नी अहल्यनामनामतः ॥
अगृह णात् तांस्त्वयंशक्रः पश्यधर्मो यथास्थितः ॥ ३३७ ॥
एतदन्यच्चजगति दृश्यते पारदारिकम् ॥
एवंविधो यत्रधर्मः परमार्थोमतस्तुकः ॥ ३३८ ॥

बौद्धोंका निर्वाण:——

स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छानिर्वाणार्थाय वा पुनः ॥
तदलंपशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥ ३६६ ॥

बौद्धोंका विज्ञानवाद:——

विज्ञानमयमेवैतदशेषमवगच्छथ
बुद्ध्यध्वं मेवचः सम्यगबुधैरिव प्रमोहितम् ॥ ३६७ ॥

प्रच्छन्नबौद्ध मायावादी:—

जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम् ॥
रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसंकटे ॥ ३६८ ॥

यज्ञनिन्दा:—

नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय जायते ॥
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्हन्ति कोविदः ॥ ३७१ ॥
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ॥
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक् पशुः ॥ ३७२ ॥
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ॥
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते ॥ ३७३ ॥

श्राद्धनिन्दा:—

तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेद्यदि ॥
दद्याच्छ्राद्धं श्रद्धयान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ॥ ३७४ ॥

वेदों पर हास्य:—

नह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयाऽन्यैश्च भवद्विधैः ॥ ३७५ ॥

दानवा ऊचुः—

जैनदीक्षाः —

ददद्दीक्षां महाभाग सर्वसंसारमोचनीम् ॥ ३८२ ॥

गुरु उ०:—

भोभोस्त्यजत वासांसि दीक्षाकारणिता स्मि वः
एवं ते दानवाः भीष्म गुरुरूपेण धीमता ॥ ३८३ ॥
आङ्गिरसेन ते तत्र कृता दिग्वाससोऽसुराः ॥
बर्हिपिच्छध्वजं तेषां गुञ्जिकाचारुमालिकाम्
दत्वा चकार तेषां तु शिरसो लुञ्चनं पुनः ॥
केशानामुत्पाटनं च परमं धर्मसाधनम् ॥
धनानामीश्वरो देवो धनदः केशलुञ्चनात् ॥
सिद्धिं परमिकां प्राप्तः सदावेशस्य धारणात् ॥
मुनित्वं लभ्यते ह्येवं पुराप्राह रहंता स्वयम् ॥
बालोत्पाटेन देवत्वं मनुष्यैर्लभ्यते त्विह

इत्यादि,

आगे तीर्थंकर श्रमण तथा उन के धर्मों का संक्षेप से प्रतिपादन है। पाठक जन मूल में देखने का कष्ट उठाएंगे। (पद्म० सृष्टिखंड अ० १३, ३१८–४२०)

किस प्रकार परकीयधर्म को लक्ष्य में रख कर निन्दा करने का प्रयत्न किया है। इस की समालोचना में हम फिर यही कहेंगे कि धर्मनिष्ठों को धर्म से, द्वेष भाव से च्युत करना, तपस्या में विघ्न करना, छलादि से उन को धर्म पथ से भटकाना आदि नाना प्रकार के घृणित छलों के प्रयोग करने का कर्त्तव्य सिवाय परस्पर लड़े भिड़े सम्प्रदायों के देवताओं के सार्वजनिक परमात्मा के नाम पर मढ़ा नहीं जाता। प्रायः साम्प्रदायिकों के परस्पर के युद्ध तथा कार्यों को आलंकारिक लोग ऐसे ही रूप में छुपा २ कर रखा करते हैं। इस का ज्वलन्तरूप हमारी इस उद्धृत कथा में कितनी स्पष्टता से भासमान हो रहा है। इसी खण्ड का एक उदाहरण और लीजिये।

पद्मपुराणकारने सृष्टिखण्ड के ७४ वें अध्याय की समाप्ति पर देवदैत्य भेड़िय कुत्ता, बन्दर, आदि की पहचान बताई है और उन का मनुष्य समाज में से उदाहरण देदेकर समझाया है। इससे स्पष्ट ही हो जाता है कि जो लौकिक पारस्परिक युद्धादि सम्बन्धी घटनाएं हो जाती हैं उन्हीं में कवि प्रतिभाशाली लोग अपने देवताओं और दैत्यों की सृष्टि की कल्पना करके उन पर कथा कहानी जोड़कर रोचक बना लेते हैं। इसी को घटाने के लिये पद्मपुराण में महाभारत के युद्ध को उदाहरणार्थ लिया है कि—महाभारत का युद्ध भी दैत्य दानवों का ही युद्ध था। उस में दुर्योधन के योद्धा कर्णादिक सब दैत्य थे। वसु देवों का मुख्य गङ्गासुत भीष्म था। नारद देवमुनि द्रोणाचार्य था। हर या महादेव अश्वत्थामा था, कृष्ण विष्णु था। पांच पाण्डव पांच इन्द्र थे। विदुर साक्षात्धर्म का स्वरूप था। गान्धारी द्रौपदी, कुन्ती, आदि ये सब देवियें थीं*।

---

* देवादीनां भवेज्ज्ञात भारत यत्प्रवर्त्तितम् ॥
येते दुर्योधनस्यैव योधाः सैन्यादयस्तथाः ॥ १२४ ॥
ते च दैत्यादयः सर्वे ये च कर्णादयोभुवि ॥
गाङ्गेयो वसु मुख्यश्च, द्रोणो देवमुनिः प्रभुः ॥ १२५ ॥
अश्वत्थामा हरः साक्षाद्‌हरिर्नन्दकुलोद्भवः ॥
पञ्चेन्द्राः पाण्डवाः जाताः विदुरो धर्म एव च ॥ १२६ ॥
गान्धारी द्रौपदी, कुन्ती, एतादेव्यो धरातले ॥
देवदैत्या कलेर्मध्ये दैत्या शेषे च मानवः ॥ १२७ ॥
(पद्म० सृष्टिखंड अ० १०४)

भूमिखण्ड में बहुत ही शिक्षाप्रद कथाओं का संग्रह है। जिन में माता पिता भार्या पुत्र आदि की ही सेवा तथा प्रेम पूर्वक वर्त्ताव की बड़ी महिमा गायी है। इन्हीं को तीर्थ भी कहा है। जिस का वर्णन हम तीर्थ प्रकरण में आगे करेंगे। परन्तु इन कथाओं में स्थान २ पर विष्णु की भक्ति को दृढ़ करने के लिये उपदेश है। साम्प्रदायिकता को बताने के लिये खण्ड के अन्तिम भाग में लिखा है।

कलौयुगे पठिष्यन्ति मानुषा विष्णुतत्पराः।

कलियुग में विष्णु के उपासक ही इस पद्मपुराण को पढ़ा करेंगे। अर्थात् अन्य नहीं।

ब्रह्म खण्ड में सिवाय व्रतों और विशेष उत्सव तिथियों के माहात्म्य के कुछ विशेष नहीं। पातालखण्ड में रामचरित और कृष्णचरित, इसी प्रसङ्ग में विविध नियमों का निरूपण है। इस खण्ड के १०० अध्याय से लेकर ११३ अध्याय तक शिव का भी बड़ा आदर किया है। और तत्सम्बन्धी काल देश तथा पदार्थों का बड़ा माहात्म्य दिखाया है। साम्प्रदायिकताएं यहां भी कम नहीं इन खण्डों में कृष्ण की भक्ति को ही अति प्रधानता दी है।

उत्तरखण्ड का तो कहना ही क्या है। यह तो सब के उत्तर ही परिशिष्ट रूप बनाकर मिलाया गया है। जालन्धरोपाख्यान छोड़कर व्रतों की तीर्थों की महिमा और श्लोकों का संग्रह ही कर दिया है। और अन्त में अद्भुत कृष्णलीला को घृणित रूप में वर्णन करके अपना साम्प्रदायिकत्व पूरा किया है। पर सम्प्रदायों को भी ऐसी जली कटी सुनाई हैं कि कुछ बचा नहीं रखा।

जैसा उत्तरखण्ड में रुद्र पार्वति संवाद में रुद्र कहता है*:—

महादेव उ०:—देवतानां हितार्थाय वृत्तिः पाषण्डिनां शुभे ॥
कपालचर्म भस्मास्थि, धारणं तत्कृतं मया ॥ ५३ ॥
तामसानि पुराणानि यथोक्तं विष्णुनामम ॥
पाखण्डशैवशास्त्राणि यथोक्तं कृतवानहम ॥ ५४ ॥
मच्छक्त्यावेसमाविश्य, गौतमादि द्विजानपि ।
वेदबाह्यानि शास्त्राणि सम्यगुक्तं मयाऽनघे ॥ ५५ ॥
इदं मतमवष्टभ्य, मोहिता सर्वराक्षसाः ॥
भगवद्विमुखाः सर्वे बभूवुस्तमसाऽऽवृताः ॥ ५६ ॥
भस्मादिधारणं कृत्या महोग्रतमसावृताः ॥
मामेव पूजयाञ्चक्रुर्मांसासृक्चन्दनादिभिः ॥ ५७ ॥
मत्तो वरप्रदानानि लब्धा मदबलोद्धताः ॥
अत्यन्तविषयासक्ताः कामक्रोधसमन्विताः ॥ ५८ ॥
सत्वहीनास्तु निर्वीर्या जिता देवगणैस्तदा ॥
सर्वधर्मपरिभ्रष्टाः कालेयान्त्यधमां गतिम् ॥ ५६ ॥

हे पार्वति ! देवताओं के हित के लिये मैंने पाखण्डियों को कपाल, चर्म, भस्म और अस्थि धारण करवाया है। विष्णु के कहने पर मैंने तामस पुराणों का तथा पाखण्डी शैवशास्त्रों का उपदेश किया। मेरी शक्ति ही ने गौतमादि ब्राह्मणों में घुसकर वेद से बाह्य शास्त्रों को कहा। इसी मत को हठपूर्वक मानकर और मुझ को देखकर सब राक्षस भगवान विष्णु से विमुख हुवे हुवे तम से आवृत होगये हैं। बहुत गहरे अन्धकार में पड़े हुवे बभूतआदि रंमा कर मांस, रुधिर, माला, चन्दन आदिकों से मुझ ही को पूजते हैं। मेरे ही से वरों को पाकर मद और बल होने के कारण उद्धत हुवे हुवे विषयासक्त होकर काम क्रोध में पड़कर सत्व और वीर्य से हीन होकर देवताओं से हार कर सब धर्मों से भ्रष्ट होकर अधमगति को प्राप्त होते हैं। जो मेरे मत को ग्रहण करके पृथिवी पर रहते हैं वे सर्व धर्मों से रहित होकर सदा नरक का दर्शन करते हैं। हे देवि ! देवों के हित के लिये मेरा यह पेशा है कि मैं विष्णु की आज्ञा लेकर भस्म और हड्डियां धारण करता हूं। यह सब शत्रुओं को छलने के लिये बाहर २ ये चिन्ह धारण करता हूं परन्तु अन्दर २ विष्णु की भक्ति करता हूं* ।

इसी प्रकार तामसों का वर्णन करते हुवे रुद्र कहते हैं:—हे देवि सुनो, यथा क्रम तामस शास्त्रों को कहता हूं जिन के स्मरण मात्र से ज्ञानी लोग भी पतित हो जाते हैं। पहले मैंने शैव पाशुपत मत का उपदेश दिया फिर मेरी शक्ति से युक्त होकर गौतम ने न्याय, कणाद ने वैशेषिक, कपिल ने सांख्य, बृहस्पति ने अत्यन्त निन्दित चार्वाक, विष्णु ने ही बुद्धरूप धारण करके झूठा बौद्ध शास्त्र नग्न नील पटादिक, इसी प्रकार माया व असत्शास्त्र, प्रच्छन्नबौद्ध शास्त्र, मैंने ही कलि का रूप धारण करके उपदेश किया था। और श्रुतिवाक्यों का लोक निन्दित भ्रष्टार्थ दिखाया था। इसी मायावाद में कर्मकाण्ड का त्याग मैं कहूंगा और ब्रह्म को

---

*येमेमतमवष्टभ्य चरन्ति पृथिवीतले ॥
सर्वधर्मैश्चरहिताः पश्यन्ति निरयं सदा ॥ ६२ ॥
एवं देवहितार्थाय वृत्तिर्मेदेवि गार्हता ॥
विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य कृतं भस्मास्थिधारणम् ॥ ६१ ॥
बाह्यचिन्हमिदं देवि मोहनार्थाय विद्विषाम् ।
अथान्तर्हृदये नित्यं ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ॥ ६२ ॥
(पद्म० उत्तर ख०, २६३ अ०)

निर्गुण बतलाऊंगा। सब जगत् को मोहन करने के लिये। कलियुग में वेद के अर्थों से युक्त होता हुवा मायाद्वारा अवैदिक शास्त्र की मैं ही रक्षा करता हूं। जैमिनि ब्राह्मण का कहा निरर्थक निरीश्वर वाद प्रतिपादक शास्त्र इत्यादि नानाशास्त्र तामस जानने* ।"

इसी प्रकार अपने सम्प्रदाय वालों की प्रशंसा करने के लिए दूसरों के विषय में लिखा है कि जो शङ्ख चक्र ऊर्ध्व पुण्ड्र आदि के चिन्हों से रहित हों वे पाखण्डी होते हैं×।

ऐसे कुवाक्य तथा निन्दा परक वाक्य कहने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि इन स्थलों में द्वेष और बैर के कारण अन्धे होकर पुराणकारों ने अपने मनके कालुष्यको पूरा उमड़ाया है। वेद के षट्शास्त्रों को भी पेट भर गालियां देलीं। वेदान्त शास्त्र को भी बुरा भला कहा। शैव पाशुपतादिकों को भी उन्हीं के देवताओं के मुख से पाखण्डितामसी आदि का प्रयोग करवाया। अहो कैसी लीला है कि द्वेष व

---

* शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथा क्रमम्।
येषां स्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि,
प्रथमंहियथा चोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि च ततः शृणु।
कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।
गौतमेनतथान्यायं सांख्यं तुकपिलेनवै,
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाक मतिगर्हितम्।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुनाबुद्धरूपिणा
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते॥
मयैव कथितंदेवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा।
अपार्थं श्रुति वाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्॥
कर्मस्वरूप त्याज्यत्वम् अत्रवै प्रतिपाद्यते॥
ब्रह्मणोऽस्य स्वयं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया॥
सर्वस्य जगतोऽप्ययं मोहनार्थं कलौ युगे।

× शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादि चिन्हैः प्रियतमैर्हरेः॥
रहिता ये द्विजा देवि ते वैपाषण्डिनः स्मृताः॥५॥
(पा०, उत्तर०, अ० २६३)

ईर्षा वश होकर परस्पर के प्रति हृदय कालुष्य को प्रगट करके पुराणों के छल में सम्पूर्ण नीचता से मान्य व्यासदेव और अपने देवतों को अपमानित किया है। इस प्रकार सामान्यतः पाद्मपुराण की समालोचना करके अब अन्य पुराण की आलोचना करेंगे * ।

* वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायया यदवैदिकम् ॥ ७४ ॥
मयैव रच्यते देवि जगतां नाशकारणात् ॥
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थकम् ॥ ७५ ॥
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ॥
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोध मे ॥ ७६ ॥

(पद्म०, उत्तर खं०, अ० २६३)

वराह-पुराण

मात्स्य तथा बृहन्नारद के अनुसार वराह महापुराण में केवल २४ सहस्र श्लोक संख्या है। परन्तु वर्त्तमान उपलब्ध वराहपुराण में १०८९९ ही पद्य हैं। शेष का पता नहीं।

इस में व्रत महात्म्य उपाख्यान फल और क्षेत्रादिका प्रभूत वर्णन है।

वर्त्तमान में उपलब्ध वराहपुराण के ९१८ अध्याय हैं इस का प्रवक्ता पुराणकारने वराह को ही कल्पित किया है। और पृथिवी को ही श्रोता या प्रश्नकर्त्ता बनाया है। इसका संक्षेप से विषय इस प्रकार है:— पुराणलक्षण आदिसर्ग कथा, प्रियव्रतोपाख्यान, दशावतार, अश्वशिर उपा०, रैभ्य उपा,० धर्मव्याध उपा०, आदियुगवृतान्त विराट्रूपदर्शन, श्राद्धनिर्णय, हरपार्वतीविवाह, तिथिमहात्म्य, दक्षयज्ञ, नागकार्त्तिकापकात्यायनी, धर्मरुद्रविष्णु कुवेर आदि की उत्पात्ति, नानातिथियों के व्रत वर्णन (३७—६५) त्रिदेवनिरूपण, नारायण माहात्म्य, भूलोक वा तदन्तर्गत द्वीपों का वर्णन, अमरावती और मेरु का वर्णन वैष्णवी की उत्पत्ति तथा दैत्यों का वध, चामुण्डा तथा कपालीरुद्र पुराण तथा दानों के अतिशयित फल, (९७-१११) वराहपुराण का प्रचार—

यहां तक का वराह पुराण का प्रथम भाग कहाता है।

द्वितीय भाग:—

नारायण-पृथिवी सम्वाद, द्विसांध्यविधि। कर्म्मफलयोनि परिवर्त्तन, पुनर्जन्म, मथुरा माहात्म्य के प्रसङ्ग में अन्य तीर्थ माहात्म्य (१४२-१८१) प्रतिमास्थापन (१८२–१८९) श्राद्ध यमालय निरूपण, फलश्रुति विषयानुक्रमणी।

इस पुराण में यद्यपि तीन देवों का ही विधान है परन्तु मुख्यतया विष्णु को ही प्रधानता दी गयी है। यद्यपि मथुरा की बड़ी प्रशंसा की है परन्तु विस्मय जनक बात यह है कि कृष्ण का बहुत ही स्वल्प प्रकरण है। इस की कथाओं पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इसने कतिपय अति प्राचीन कथाओं का संग्रह किया है। जिस प्रकार नारद का ब्रह्मपारक्य, कपिल रैभ्य संवाद, धर्मव्याध की कथा, दक्षयज्ञ, अगस्त्यगीता आदि परन्तु इतने मात्र से इसके अन्य उपाख्यान तथा माहात्म्यों और फलों सहित अति प्राचीनत्व मान लिया जाय, यह सर्वथा

असङ्गत प्रतीत होता है । उदाहरणार्थ देखिये । क्या कभी कपिला गोमाता की सेवा करने तथा उस का दूध पीने आदि से मनुष्य पापी हो सकता है ? नहीं कभी नहीं, प्रत्युत उन्नति को प्राप्त होगा परन्तु शूद्रों पर रुष्ट होकर पुराणकारने कागज बढ़ाया है "जो शूद्र कपिला गौ के दूधआदि पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं उन की गति सुनो, वे कपिलाजीवि लोग शूद्र, क्रूर, रौरवनरक को जाते हैं और करोड़ों वर्ष तक वहां कष्ट पाते हैं वहां से छूटकर भी वे कुत्ते की योनि को प्राप्त होते हैं यही अवस्था अन्य माहात्म्यों और फलों की भी है ।

त्रिदेवनिर्णय प्रकरण में रुद्र के उपासकों के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

* "ऋषि बोले कि हे रुद्र ! कलियुग में सभी जटाधारी तेरे रूप को धारण करके रहेंगे अपनी इच्छा से प्रेतों कासा वेश धारण करके मिथ्या लिङ्गों का धारण करेंगे । उन के अनुग्रह के लिये कोई शास्त्र दो, जो कि हमारे वंश में से भी कलि से पीड़ित होंगे ।

+रुद्र बोले:—हे द्विज इस प्रकार ऋषियों क प्रश्न करने पर मैंने उन्हें वेद क्रियाओं से युक्त संहिता का उपदेश दिया इस में वाभ्रव्य और शाण्डिल्य फंस गये । जिस का नाम निश्वास था । इस का प्रमाण १००००० एक लाख श्लोक था । यही पशुपति की पाशुपती दीक्षा थी । इस वेद मार्ग को छोड़ कर जो कुछ अन्य है वह सब क्षुद्र कर्म जानना चाहिये । यही रौद्र तथा भ्रष्ट जानना चाहिये । जो कलियुग में वेदान्ती लोगभी रुद्र की उपासना करते और अपने २ शास्त्र बना-

* ऊचुर्मां च मुनयः भवितारो द्विजोत्तमाः ॥ ५० ॥
कलौ त्वद्रूपिणः सर्वे जटामुकुटधारिणः ॥
स्वेच्छया प्रेतवेशाश्च मिथ्यालिङ्गधराः प्रभो ! ॥ ५१ ॥
तेषामनुग्रहार्थाय किञ्चिच्छास्त्रं प्रदीयताम् ॥
येचास्मद्वंशजाः सर्वे वर्त्तेयुः कलिपीड़िताः ॥ ५२ ॥

+ एवमभ्यर्थितस्तैस्तु पुराहं द्विजसत्तम ।
वेदक्रियासमायुक्तां कृतवानस्मि संहिताम् ॥ ५३ ॥
निश्वासाख्याततस्तस्यां लीना वाभ्रव्यशाण्डिलाः ।
अल्पापराधं श्रुत्वैव गतास्ते दाम्भिकाभवन् ॥ ५४ ॥
मयैव मोहितास्ते तु भविष्य ज्ञानता द्विजाः ॥
लौल्यार्थिनश्च शास्त्राणि करिष्यन्तिकलौनराः ॥ ५५ ॥
निश्वासंसंहितायाहि लक्षमात्रं प्रमाणतः ॥

एंगे। उन के नाम उच्छुष्य रुद्र कहलाएंगे। मैं उन में सर्वथा भी व्यवस्थित नहीं हूं। भैरव के रूप में देवताओं की कार्य सिद्धि के लिये जब मैंने पहले जमाने में ताण्डव नाच किया था वही क्रूर कर्मों को करने वाले का मेरा सम्बन्ध है। दैत्यों को नाश करने की इच्छा से अट्टहास करते हुवे मेरे जो आसुओं की बून्दें पृथ्वी पर गिर पड़ी थीं वेही बाद को रौद्र शराब मांस के लोभी स्त्री भोगी पापकर्मी होंगे, उन्हीं के वंश में जो ब्राह्मण होंगे वे मेरे शासन में रहते सदाचारी लोग स्वर्ग और अपवर्ग के भ्रम में पड़ कर वेदान्तिक नीचे गिर जायंगे, और मेरी सन्तति को कलंक लगाएंगे। पहले गौतम की शापाग्नि से जल कर फिर मेरे कहने से अवश्य नरक को जावेंगे, इस में कुछ भी सोचने की बात नहीं है। इस प्रकार मैंने तुम्हें धर्म का स्वरूप बता दिया इस से दूसरा धर्म पाखण्ड है"* ।

उस] में जो जाते हैं वहां से छूट कर विष्ठा खाने वाले कृमि बनते हैं फिर वार वार उसी मलमूत्र में पैदा होते २ कभी उसका उद्धार नहीं होता। ऐसे शूद्रों का जो ब्राह्मण दान भी लेते हैं उन के पितर तब से सदा मलमूत्र में गिरे पड़े रहते हैं। ऐसे ब्राह्मण से बात भी न करे उन से बोले भी नहीं उन को दूर से ही त्याग दें

---

*शैवपाशुपतीदीक्षा योगः पशुपतेस्तथा ॥ ५६ ॥
एतस्माद्वेदमार्गाद्धि यदन्यदिह जायते ॥
तत्क्षुद्रकर्मविज्ञेयं रौद्रं शौचविवर्जितम् ॥ ५७ ॥
येरुद्रमुपजीवन्ति कलौवेदान्तिकानराः ॥
लौल्यार्थिनः स्वशास्त्राणि करिष्यन्तिकलौनराः ॥ ५८ ॥
उच्छुश्यरुद्रास्तेज्ञेया नाहं तेषुव्यवस्थितः ॥
भैरवेण स्वरूपेणःदेवकार्ये यदापुरा ॥ ५९ ॥
नर्त्तितं मयासोयं सम्बन्धः क्रूरकर्मणाम् ॥
क्षयंनिनीषता दैत्यान्सोऽट्टहासोमयाकृतः ॥ ६० ॥
यः पुरातत्रयेमह्यां पतिताह्यश्रुबिन्दवः ॥
असंख्यातास्तुते रुद्राः भवितारोमहीतले ॥ ६१ ॥
उच्छुश्यनिरतारौद्राः सुरामांसप्रियाः सदा ॥
स्त्रीलोलाः पापकर्माणः सम्भूताभूतलेषु ते ॥ ६२ ॥
तेषां गौतमशापाद्धि भविष्यन्त्यन्वये द्विजाः ॥
तेषांमच्छासनरता सदाचाराश्च ये द्विजाः ॥ ६३ ॥

उस से बोलने वाले को कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करना प्रायश्चित है। " ! बहुत ठीक कहा पुराणकारजी* ।

परमात्मा जिस को उन्नत करे आप उस को गिराने पर तुलते हैं। कपिला गो माता के आश्रय पर जीने वाले ब्राह्मण तो तरजावें* और बिचारे शूद्र महारौरवनरक भोगें यह कौनसा न्याय है।

इस प्रसङ्ग में तान्त्रिकों की उत्पत्ति, वेदान्तियों की निन्दा किन स्पष्ट शब्दों में की है। ये ठीक उसी प्रकार है जैसा कि हम पहले पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में दिखा चुके हैं। यहां केवल रूप भेद मात्र है।

इस के अतिरिक्त वैसे भी कितने ही स्थानों पर इस पुराण के प्रश्नकर्त्ताओं ने इसी प्रकार प्रश्न भी किये हैं जैसे साम्प्रदायिक विधान ही का निरूपण करना हो जैसा कि पृथिवी ने पूछा कि:—

* असम्भाष्या प्रतिग्राह्याः शूद्रास्ते पापकर्मणः ॥ १८ ॥
पिबन्ति यावत्कपिलां तावत्तेषां पितामहाः ॥
भूमेर्मलं समश्नन्ति जायन्ते विड्भुजश्चिरम् ॥ १९ ॥
तासांक्षीरं घृतंचापि नवनीतमथापिवा ।
उपजीवन्ति ये शूद्रास्तेषां गतिमतः शृणु ॥ २० ॥
कपिलाजीविनः शूद्राः क्रूरा गच्छन्ति रौरवम् ॥
रौरवेतुमहारौद्रे वर्षकोटिशते घरे ॥ २१ ॥
ततोविमुक्ता कालेन शुनोयोनिं व्रजन्ति हि ॥
शुनो योन्या विमुक्तास्तु विष्ठाभुक् कृमयस्ततः ॥ २२ ॥
विष्ठा स्थानेषुपापिष्ठः भूयोभूयो जायमान ॥ २३ ॥
स्तथोत्तारंनविन्दंति ॥
ब्राह्मणश्चैव यो विद्वान् कुर्यात्तेषां प्रतिग्रहं ॥ २४ ॥
ततः प्रभृत्यमेध्यान्तः पितरस्तस्य शेरते ॥ इत्यादि ॥ २५ ॥
* पूर्वोक्ताश्चास्तुकपिलासर्वलक्षणलक्षिता ॥
सर्वास्तामहाभागास्तारयन्ति न संशयः ॥ १४ ॥
(वराह०, अ० ११२)
स्वर्गञ्चैवापवर्गञ्चइत्युक्त्वा संशयात्पुरा ।
वैदान्तिकाऽधोयास्यन्ति ममसन्ततिदूषकाः ॥ ६४ ॥
प्राग्गौतमाग्निना दग्धाः पुनर्मद्वचनाद्द्विजाः ॥
नरकन्तुगमिष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६५ ॥

"किस कर्म के अनुष्ठान से भागवत (वैष्णव) बन कर लोग स्नानादि कर के तेरी उपासना करें"* ।

इसी पुराण में प्रायश्चित प्रकरण में कैसी कड़ी साम्प्रदायिकता का चित्र है । लालरंग के कपड़े तथा नील वर्ण के कपड़े पहन कर विष्णु की भक्ति करने वाले के दण्ड सुनकर सम्भवतः किसी न्यायशील दयालु परमात्मा के राज्य में ऐसा दण्ड न्यायानुकूल नहीं कहा जासकता । उदाहरणार्थ कृष्णवर्ण का वस्त्र पहन कर विष्णु की उपासना करे उसका दण्ड सुनिये:—

"पांचवर्ष घुण बन कर चावल की खालों में रहे । पांचवर्ष नेवला बने, दशवर्ष कछुआ बने, इस प्रकार संसार के चक्र में घूमता रहे । और फिर १४ वर्ष कबूतरों में पैदा होवे । इस का प्रायश्चित्त है सातदिन जौ का सत्तु खाकर तीन रात सत्तु के ग्रास खावे और फिर तीन रात तीन २ ग्रास खाकर कृष्ण वर्ण के वस्त्र से हुवे अपराध से मुक्त होता है* । "

"इसी प्रकार मुरझाया फूल चढ़ाने, मैला वस्त्र पहन कर पूजा करने, कुत्ते का झूठा भोग चढ़ाने, वराह के मांस भोजन करने, दीप को छूकर पूजा करने, आदि आदि के बड़े विकट दण्ड विधान किये हैं । ऐसे भीषण दण्ड सदा साम्प्रदायिक जत्थे को दृढ़ करने तथा सर्वसाधारण को भयभीत करने के लिये बनाये जाया करते हैं" ।

एतद्वः कथितं विप्राः मया धर्मस्यलक्षणम् ॥
एतस्माद् विपरीतो यः सपाखण्डरतोभवेत् ॥ ६७ ॥
(वराह०, अ०७४)

* केनकर्म विधानेन भूत्वाभागवताभुवि ॥
उपस्पृश्योपसर्पन्ति तव कर्मपरायणाः ॥ ११)
(वराह०, अ० १३४)

* यः पुनः कृष्णवस्त्रेण ममकर्मपरायणः ॥ १५ ॥
देविकर्माणि कुर्वीत तस्य वै पातनं शृणु ॥
घुणोवैवपञ्चवर्षाणि लाजवास्तुसमाश्रयः ॥ १६ ॥
पञ्चवर्षाणिनकुलः दशवर्षाणिकच्छपः ॥
एवं भ्रमति संसारे ममकर्मपरायणः ॥ १७ ॥
पारावतेषु जायेतनव वर्षाणि पञ्चच ॥
जातो ममापराधेन स्थितः पारावतो भुवि ॥ १८ ॥
(वराह, अ० १३५)

इसी प्रकरण में विष्णु ने शिवविषयक कथा सुनाई उस में भी "विष्णु के प्रसाद से शंकरने त्रिपुरदहन किया इस का प्रायश्चित दिया कि तुम श्मशान में कपाल हाथ में लेकर पापनाशकरने के लिये मुर्दों का मांस खाया करो। क्योंकि उस पाप युक्त स्थान में शंकर घूमता है अतः वह स्थान मुझे अच्छा नहीं लगता।" इत्यादि पर सम्प्रदाय के देवताओं को कितना गिराया है। इस की सीमा नहीं। देखो (**वराह पुराण०, अ० १३६, श्लो० २६—५०**)

इस प्रकार वराह की समालोचना के साथ वैष्णव सम्प्रदाय के अभिमत सात्त्विक पुराणों की संक्षेपतः विषय प्रदर्शन पुरःसर आलोचना समाप्त होती है। इस के अनन्तर ब्रह्मदेव से सम्बद्धराजस पुराणों की आलोचना करेंगे

द्वादश अध्याय

राजस पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण

राजस पुराणों में सब से प्रथम ब्रह्माण्ड पुराण है। इस पुराण का प्रसिद्ध वक्ता वायु है। और प्रथम वक्ता ब्रह्मा है। इस की पद्य संख्या, १०२०० हैं। इस मे बहुत हीं न्यून परिवर्त्तन हुवा है। पुराणों में सब से अधिक आर्षपुराण यही है। वैदिक सिद्धान्तों की सब से अच्छी व्याख्या इसी पुराण ने की है। पुराण के पञ्च लक्षणों के अनुसार तथा सृष्टि और प्रलय के प्राचीन लक्षण निकट पर वास्तविकता दर्शाने वाला भी यही एक पुराण उद्धृत किया जा सकता है। ब्रह्मप्रोक्त होने से शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों का इस में आदर न होने से यह बहुत से साम्प्रदायिकों की झपेटों से मुक्त है। इसी से इस में साम्प्रदायिक कलह तथा व्यर्थ के महात्म्य, तीर्थ, दीक्षाएं और व्रतों का समावेश भी नहीं है। इस पुराण की प्राचीनता वैदिक अनुकूलता और प्राचीन विद्याओं के लिये पुराणों की वास्तविक आवश्यकता का नमूना इसी पुराण से ज्ञात हो सकता है। यद्यपि कतिपय स्थानों पर इस में देवताओं विषयक लोकोत्तर तथा असम्भव सी कथाएं भी विद्यमान हैं परन्तु वेभी किसी विशेष अभिप्राय से निबद्ध हैं। उदाहरणार्थ ललितोपाख्यान ही पर्याप्त है।

इस पुराण के प्रति अध्याय तथा पादकी समाप्ति में इस पुराण को वायुप्रोक्त कहा गया है। अतः बहुत से पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण दोनों एक दूसरे के बिम्बप्रतिबिम्ब हैं। एच. एच. विल्सन की सम्मति में वायुपुराण की छाया ही ब्रह्माण्ड पुराण है। परन्तु उन का यद्यपि कहना सर्वथा भ्रम नहीं परन्तु दोनों पुराणों को एक बना देने में तो अवश्य सम्भ्रान्त हैं। हां इतना अवश्य है कि बहुत से अध्यायों के अध्याय और प्रकरण के प्रकरण वायुपुराण के साथ ज्यों के त्यों ही मिलते हैं। परन्तु इतने मात्र से दोनों पुराणों को एक कहना उचित नहीं क्योंकि एक ही प्रवक्ता होने पर भी पूरा संगठन प्रकार में बहुत भेद है। क्रम बहुत स्थानों पर भिन्न हैं। इस में प्रथम पाद व्यवस्था तदनु अध्याय व्यवस्था है। और वायुपुराण में केवल मात्र अध्याय व्यवस्था ही है।

इस परिणाम पर अवश्य पहुंच सकते हैं कि पुराणों का निर्माणक्रम किस प्रकार का हो सकता है। इसी सम्बन्ध में दश साहस्री शिवपुराणान्तर्गत वायवीय संहिता की भी अद्भुत समस्या सामने उपस्थित हो जाती है। वायुपुराण के साथ इस संहिता का सर्वथा अभेद कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इसी हेतु से बहुतसों के मत से शिव पुराण के साथ ही वायुपुराण को मानकर इसकी गणना पृथक् नहीं की जाती। और कतिपय विद्वान साम्प्रदायिक द्वेष के कारण शिवपुराण को पुराण न गिनकर वायुपुराण को महापुराणों में पाठ करते हैं जैसा हम पहले दर्शा आये हैं।

हमें प्रतीत होता है कि वायुपुराण से पूर्व ब्रह्माण्डपुराण बन चुका था और इसी को लक्ष्य में रखकर ब्रह्माण्डपुराण के आधार पर शिवपुराणकार ने वायवीय संहिता का संग्रह किया तथा वायुपुराण पृथग् गिना जाने लगा। इस में वायुपुराण अपनी साक्षी आप ही देता है:—

सूतबोले "ब्रह्मा से कहे गये वेद के अनुकूल पुराण को मैं कहूंगा।" *

वायुपुराण की पृथक् समालोचना हम पृथक् वायुपुराण के प्रकरण में करेंगे।

सम्भवत: ऐसा ही प्रतीत होता है कि ब्रह्माण्ड को वायुने ऋषियों के प्रति कहा हो और समयान्तर में वायुपुराण ब्रह्माण्ड पुराण ही का रूपान्तार हो गया है। +

इस ब्रह्माण्ड पुराण के चारपाद हैं (१) प्रक्रियापाद (२) अनुषंगपाद (३) उपोद्घातपाद (४) उपसंहारपाद।

(१) प्रक्रियापाद:—विषयानुक्रम संक्षेप, पूरुरवा उपाख्यान, हिरण्यगर्भ प्रादुर्भाव, सत्वादिकल्पितदेवतात्रय, देव ऋषि आदि प्रजा की सृष्टि।

(२) अनुषङ्गपाद में—मन्वन्तर, कल्पसान्धि, देवऋषि आदि उत्पत्ति, युग प्रमाण, प्रजा की उत्पत्ति, ब्रह्माके शरीर से चार प्रकार की प्रजाओं का उत्पन्न होना, तथानानाभूतों की उत्पत्ति, मानसीप्रजा, रुद्र की सृष्टि, ऋषि सर्ग, अग्नि सर्ग, दक्ष यज्ञ, प्रियव्रतवंशानुचरित, द्वीप तथा वर्ष वर्णन, पृथिव्यादिभुवनवर्णन

---

* "पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तंमातरिश्वना" ॥ ३६ ॥

(ब्रह्माण्ड ०पा. १.। अ० १)

+ पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ॥ ११ ॥

(वायु० अ० १,)

सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादि की गति, पितर ऋषि आदि निर्णय चन्द्र की कला आदि का घटना बढ़ना, सूर्य का ज्योतिष वर्णन,—अमृतमथन कथन प्रसंग में शंकर का नील कंठत्व; लिंगोत्पत्ति, अमृतोत्पत्ति, पितृतर्पण युग वर्णन प्रकरण युगधर्म सन्ध्यांश, आदितत्वनिरूपण, कृतादि चतुर्युग निरूपण,—यज्ञहिंसा निषेध ।

ऋषि ब्राह्मण प्रवक्ता मन्त्र आदि के लक्षण तथा भेद, द्वापर के अन्त में व्यासकृत वेद संक्षेप, वेदों का प्रचार, शाखाओं की उत्पत्ति, स्वारोचिष् मनु की प्रजा सृष्टि ।

इति प्रथम भागः

तृतीय उपोद्घातपादः—

वैवस्वत अन्तर में सप्तर्षियों की उत्पत्ति, भृगुवंश आङ्गिरसवंश, दक्ष प्रजा-सर्ग, नारद की उत्पत्ति, दक्ष का शाप । धर्म प्रजासर्ग, देव ऋषिसर्ग। जयोपाख्यान नृसिंहावतार, दैत्य तथा दानववंश,

यातुधान ब्रह्मधान, गुह्यक, यक्षादिकों की उत्पत्ति, पुलह वंश, वालिकृत रावणवध, दिग्गजादि निर्वचन, ताम्रावंश, इरावंश, अत्रिवंश, वसिष्ठ वंश। श्राद्ध-विधि पितृ निरूपण । हिमालय की कन्या की उत्पत्ति, श्राद्धकल्प, तीर्थ पञ्चक प्रतिपाद, और्वोपाख्यान, जामदग्न्य को तपसे अस्त्रों की प्राप्ति, तथा दैत्यों का वध, राजा हैहय की कथा । मध्य में श्रीकृष्णस्तोत्र की कथा ।

कार्त्तवीर्य कथा । गणेशकादन्तपात, सगर का उपाख्यान, गंगावतरण, वरुणवंश, सूर्यवंश, शर्यातवंशवर्णन, त्रिशंकुकथा, मैथिलवंश, सोमवंश, आपुवंश, यदुवंश क्रोष्टुवंश, सात्वतवंश, दशावतार के हेतु दैत्यों का छलना । तुर्वसुवंश ब्रह्मवंश,

चतुर्थ उपसंहार पादः ।

महर्षियों का निरूपण भेद आदि, लोक वर्णन, योजनादिपरिमाण विचार, पुनः सर्गप्रवर्त्तन शिष्य परंपरा ।

इस प्रकार वर्त्तमान उपलब्ध ब्रह्माण्ड पुराण का विषयानुक्रम प्राप्त होता है। परन्तु वर्त्तमान में इसी के अन्तर्गत एक ललितोपाख्यान भी मिला हुआ मिलता है।

ब्रह्मविद्या को लक्ष्य में रखकर यह एक रोचक कथा बनायी गयी है। नारद पुराण की दी हुई सूची में इसका उल्लेख नहीं है।

साम्प्रदायिक कथकध्यासों को इस में भी स्थान २ पर हाथ लगा है जैसे जामदग्न्य कथा में कृष्ण का प्रादुर्भाव, यदुवंश वर्णन के साथ दशावतार वर्णन और इसी कथा में मायामोह की कथा का उद्धरण आदि बीच २ में मिलाया गया है। इस के उपाख्यान सब प्रायः अति प्राचीन हैं। इन्हीं को लेकर यथा स्थान पर किसी को विष्णु का उपासक तथा किसी को शिव का उपासक बना कर कथा का निर्वाह किया है। साम्प्रदायिकता का मुख्य प्रमाण यही है कि महाभारत तथा रामायण में आये हुवे इन उपाख्यानों का यह कथा रूप होता हुआ भी देवतोपासकता का रूप ऐसा नहीं है। इस प्रकार की सब से अधिक मिलावट तृतीयपाद में अधिक हुई है। इन उपाख्यानों की इन साम्प्रदायिक जोड़ तोड़ को हटा देने से शुद्ध पंचलक्षण पुराण का नमूना निकल आता है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

ब्रह्मवैवर्त के विषय में मात्स्यपुराण लिखता है कि रथान्तर कल्प को प्रारम्भ करके सावर्णि ने नारद को कृष्ण का चरित सुनाया है। ब्रह्म वराह का वर्णन किया है। इस का विस्तार १८००० है।

इस लक्षण के अनुसार वर्त्तमान में प्राप्त ब्रह्मवैवर्त्त वास्तविक पुराण नहीं है। क्योंकि प्रथम इसमें रथान्तर कल्प नाम भी नहीं आता वर्णन तो दूर है। द्वितीय इस में ब्रह्म वराह का भी वर्णन उपलब्ध नहीं होता। बृहन्नारद पुराण का भी यही मत है। इस के अनुसार भी वर्तमान उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त्त वास्तविक नहीं है।

पूर्वोक्त मिश्र ज्वालाप्रसाद जी के लेख से प्रतीत होता है कि इस पुराण में बहुत कुछ समय २ पर रद्दोबदल हुई है।

शिवपुराण में सविता आदित्य की महिमा प्रतिपादक ब्रह्मवैवर्त्त का पता चलता है। रुद्रयामल तन्त्र में शक्ति माहात्म्य प्रतिपादक लिखा है। परन्तु वर्त्तमान ब्रह्मवैवर्त्त को देखने से प्रतीत होता है कि यह कृष्ण माहात्म्य का प्रतिपादक है। परन्तु इस अवस्था में इस को राजस मानना सर्वथा असंगत है। केवल ब्रह्म और प्रकृति को बतलाने वाला पुराण राजस हो सकता है। प्रकृति खण्ड में शक्ति का प्रतिपादन होने से मिश्र जी की सम्मति में भी इस के बहुत संस्करण हुवे हैं। और रद्दोबदल हुवी है।

बहुतों की सम्मति में इस में प्रथम कृष्ण ने ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया था। इस कारण इस का नाम ब्रह्मवैवर्त है अतः केवल यह तथा मुख्य लक्षण ब्रह्म बराह प्रकरण के भी न मिलने से वर्त्तमानोपलब्ध वैवर्त्तपुराण यह नहीं है। तदनन्तर सावर्णि वशिष्ट संवाद में इस में कृष्णचरित मिलाया गया। तदनन्तर के संस्करण में सौर माहात्म्यपरक भाग की सृष्टि हुवी। और फिर वैष्णवों ने शुद्ध रासलीला-परक पुराण का पुतला घड़ कर खड़ा कर लिया। इस में जुलाहा आदि जातियों की उत्पत्ति का वृत्तान्त सभी पुराणों से अद्भुत लिख कर अत्यन्त अर्वाचीनता का परिचय दिया है।

दाक्षिणात्यों में कुछ भिन्न २ ब्रह्मवैवर्त्त का प्रसार है। इतने संस्कार या जोड़ तोड़ रद्दोबदल और डाल निकाल होने पर भी सनातन नामधारियों के मत से यह साक्षात् भगवान् वेदव्यास के मुख का उद्गार है। आश्चर्य!

इस पुराण के चार खण्ड हैं जिन का विषयक्रम संक्षेपतः इस प्रकार है ।

(१) ब्रह्मखण्डः—सौति से शौनक का प्रश्नक्रम, पुराण प्रशंसा, गोलोक महिमा, सृष्टि उत्पत्ति, कृष्णस्तोत्र, कृष्ण की नाक से सावित्री की उत्पत्ति, कृष्ण के वीर्यस्खलन से महाविष्णु का पैदा होना, गोपगोपी वर्णन, कल्प व्यवस्था, कालनिश्चय, राधा की उत्पत्ति, राधा के गाल से गोपियों का पैदा होना, विश्वसृष्टि, वेद–धर्म–सृष्टि, चन्द्र को यक्ष्मारोग, कृष्ण का दक्ष को शाप, नीच जातियों की उत्पत्ति, विश्वकर्मा की सन्तान जाति संकरोत्पत्ति, नारद की उत्पत्ति, नारद और (उपबर्हण) मालावती की कथा, वृषली के गर्भ में नारद की उत्पत्ति, स्त्रियों का स्वभाव, भक्ष्याभक्ष्य, कृष्ण माहात्म्य, प्रकृति माहात्म्य ।

(२) प्रकृति खण्डः—प्रकृतिचार, विराट् की उत्पत्ति, लक्ष्मी और तुलसी की उत्पत्ति, वसुधा की उत्पत्ति, गंगोपाख्यान, गंगा और विष्णु का गान्धर्व विवाह, वृषध्वज=शंकर और हंसध्वज ब्रह्मा का धर्मध्वज और कुशध्वज पैदा होना । जानकी का द्रौपदी अवतार, तुलसी का शंखचूड़ से विवाह, शंखचूड़ का देवों से युद्ध, उस के कवच की चोरी और वध ।

सावित्र्युपाख्यान, यमसावित्रीसंवाद, नरकवर्णन, पापकर्मों के फल, लक्ष्मी की उत्पत्ति, स्वाहा, स्वधाषष्ठीदेवी आदि का उपाख्यान, मनसादेवी का उपाख्यान, नारायणी कथा राधोपाख्यान राधा सुदामा का परस्पर शाप, सुयज्ञ की कथा, गोलोकवर्णन, कालमन्वन्तर राधा पूजा आदि, सुरथराजा का वंशवर्णन, चन्द्र तथा बृहस्पति की कथा, दुर्गास्तोत्र, आदि,

(३) गणपतिखण्डः— शिवपार्वतीसंगम, देव कृत विघ्न, स्कन्द की उत्पत्ति, पार्वती का शाप, श्री कृष्णावृत गणेश की उत्पत्ति, शनिदर्शन से गणेश का मस्तकपात, देवों द्वारा गज का शिरो योग । कार्त्तिकेयोत्पत्ति, उसका सेनापति बनाना जमदग्नि कार्तवीर्य का युद्ध, जमदग्नि का मरण, परशुराम की अर्जुन वध की प्रतिज्ञा, परशुराम का तप, कार्त्तवीर्य का परशुराम से युद्ध, परशुराम का २१ बार क्षत्र वध, शिवका पार्वती के समीप जाने के हठ में गणेश से युद्ध गणेश का एक दन्त का भंग, पार्वती का कोप ।

(४) कृष्णजन्म खण्ड—इस खण्ड को भी दो भाग किये हैं, एक पूर्वार्द्ध, द्वितीय उत्तरार्द्ध।

१ पूर्वार्द्ध में—कृष्णनारायण संवाद द्वारा कृष्ण की उत्पत्ति, गोप गोपियों की उत्पत्ति राधामन्दिर वर्णन, राधा की उत्पत्ति, कतिपयदैत्यों का वध, इन्द्र मार्ग भंग, गोवर्धनोद्धारण आदि लीलाएं, रासक्रीड़ा सकल देवताओं का गर्वापहरण अतिविस्तार से वर्णित है।

उत्तरार्द्ध में—कंसवध, मथुरा वर्णन, नाना उपाख्यान तथा अन्य संवाद, राम और कृष्ण का उपनयन, विद्याभ्यास द्वारका निर्माण, रुक्मिणी हरण, ऊषाहरण, शंखरासुरादि संहार, स्यमंतकोपाख्यान, वसुदेव का राजसूय, राधाकृष्ण का गोकुल वास आदि कतिपय अन्य उपाख्यानों और स्तोत्रों सहित वर्णित है।

इस पुराण का निर्माण केवल राधाकृष्ण की भक्तिमात्र के अनुरोधी सम्प्रदाय के लिए है। इस में राधाकृष्ण आदि शब्दों की व्युत्पत्तियों द्वारा इन शब्दों को देवता वाचक तथा ब्रह्मप्रकृतिमान कर कृष्ण का चरित तथा ब्रह्मप्रकृति की जगत् लीला का विस्तार किया है। अतः कतिपय स्थल अतिरोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। परन्तु सम्प्रदाय के अनुरोध से कृष्णस्तोत्र तथा रासलीला को अत्यन्त अधिक मुख्यता दी गयी है। इस प्रकार पुराण में स्थान २ पर वैष्णवों को बहुत कृपापात्र बनाया है। प्रत्येक नियम धारा तथा सामाजिक सम्बन्ध में वैष्णवों को उत्कृष्ट बनाया है।

चतुर्वर्ण से भी पृथक्वर्ण वैष्णवों का निर्धारण किया है।

कृष्ण का नन्द के प्रति संसारविषयक ज्ञान, तथा गृहस्थधर्म बहुत प्रशंसा योग्य भाग है। (कृ० खं, अ० ७४ ७२–८३, ८४,)

सामान्यतः ब्रह्मवैवर्त्त की वेंकटेश्वर की पोथी को पूर्वोक्त इन खण्डों की समाप्ति पर ही समाप्त किया है। और चतुर्थ खण्ड को उत्तरखण्ड या परिशिष्ट खण्ड माना गया है। इसी प्रकार कृष्ण खण्ड में भी ५४ वें अध्याय के अनन्तर ५५ वें अध्याय से १३३ अध्याय तक के भाग को उत्तरार्द्ध माना गया है। हमारी सम्मति में ब्राह्म और प्रकृति खण्ड ये दो खण्ड ही वास्तविक प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में होने चाहिये, क्योंकि "ब्रह्म का माया के साथ मिलने से

विवर्तरूप जगत् होना" इस सिद्धान्त को लेकर जगत् का सर्ग तथा प्रलय वर्णन करना इस पुराण का पुराणलक्षणानुसार उपयुक्त प्रतीत होता है। शेष यदि गणेश को जीव का प्रतिनिधि मानकर जीव खण्ड या गणेशखण्ड भी एक और अधिक मान लिया जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। इस अभिप्राय ही से दूसरे खण्ड के पश्चात् सम्भवतः पुराण को समाप्त किया गया है। शेष परिशिष्ट माना गया है।

मार्कण्डेय-पुराण

मार्कण्डेय पुराण के विषय में मात्स्यपुराण के अनुसार जिस पुराण में धर्मविज्ञ पक्षियों की कथा को आरम्भ करके धर्माचरण करने वाले मुनियों ने मुनि के किये हुवे प्रश्नों के उत्तर में धर्म की विचारणा की है। वह विस्तार से मार्कण्डेय से कहा हुआ नव सहस्र श्लोक वाला पुराण मार्कण्डेय कहाता है। *

शिवपुराण में भी जिस खण्ड में महामुनि मार्कण्डेय प्रवक्ता हैं वही पुराणों में सातवां मार्कण्डेय है।

इन उपरोक्त लक्षणों से युक्त पुराण निःसन्देह उपरोक्त मार्कण्डेय पुराण अवश्य है।

परन्तु वर्त्तमान उपलब्ध मार्कण्डेय पुराण की पद्य संख्या एच, एच विल्सन के अनुसार ६९०० ही है। वे कहते हैं कि मेरे पास एक प्रति है जिस में आन्तिम पद्य में मार्कण्डेय की इतनी ही संख्या स्वीकार की हुई है।

इसी उपरोक्तपाश्चात्य पण्डित के पास एक ऐसी प्रति भी प्राप्त हुवी जिस की समाप्ति पर "इति प्रथमः खण्डः" इस प्रकार समाप्त किया है। इस पर विल्सन पण्डित अनुमान करते हैं कि इस पुराण का उत्तर खण्ड लुप्त हो गया है।

परन्तु इस पुराण का वास्तविक कितना अंश होना उचित है इसका निर्णय पुराण स्वतः करता है।

जैमिनि पूछते हैं (१) कि वेद व्यास ने वेद के अनुकूल सब शास्त्रों के मर्मो से युक्त महाभारत कहा है इसी के सम्बन्ध में हे मार्कण्डेय ! मैं आप से तत्व जानने की इच्छा से पूछता हूं कि निर्गुण जनार्दन परमात्मा वासुदेव जो जगत की

---

* यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्मानधर्मविचारणा
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः,
मारकण्डेयेनकथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते।
(मत्स्य० ५३, २६)

स्थिति उत्पत्ति और लय के कारण हैं मनुष्यता को किस प्रकार प्राप्त होते हैं। (२) पांचों पाण्डवों की एक भार्या द्रौपदी कैसे हो गयी। (३) तीर्थयात्रा करते हुवे बलभद्र ने किस प्रकार ब्रह्महत्या का उपाय किया। (४) द्रौपदी के पुत्र पांच महारथ बिना विवाह किये हुवे ही अनाथ की तरह किस प्रकार मारे गये।

हे मुने यह सब मुझे विस्तार से कहो।

इस प्रश्न के विषय में मार्कण्डेय ने कुछ भी उत्तर न देकर केवल इतना कि यह हमारे क्रिया का समय है बहुत लम्बी चौड़ी बात करने के लिये यह समय ठीक नहीं है, मैं तुझे केवल इन पक्षियों के विषय में कहता हूं जो तुझे विस्तार से सब कुछ बतला कर तेरा संदेह दूर करेंगे। वे पक्षी बहुत विद्वान हैं।

जैमिनि बोले कि वे पक्षी द्रोणतनय किस प्रकार कहाये और वे विद्वान् किस प्रकार हुवे इत्यादि ?

इन पक्षियों की कथा सुनकर जैमिनि फिर विंध्य में द्रोणपुत्र पक्षियों के पास गये और वहां भी परमात्मा का मनुष्यावतार द्रौपदी का पंच पतीत्व, बलभद्र का ब्रह्महत्या प्रतीकार तथा द्रौपदी के पुत्रों का नाश इन चार प्रश्नों को ही करता है। +

धर्म पक्षियों ने इन पांचों प्रश्नों के उत्तर अत्यंत संक्षेप से दिये हैं भगवान् की चार प्रकार की सात्विक, राजस, तामस और तुरीया तनू होती हैं। निर्लेपा प्रथमा, स्वतः अपने सिर से पृथिवी को धारण करने वाली तिर्यक होने के कारण तामसी द्वितीया।

जैमिनिरुवाचः—
सन्दिग्धानीहवस्तूनि, भारतं प्रतियान्ति मे
शृणुध्वममलास्तानि, श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥
कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ॥
वासुदेवोऽखिलाधार, सर्व कारणकारणम ॥ ३१ ॥
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ॥
पञ्चानां महिषीकृष्णा सुमहानत्र संशयः ॥ ३२ ॥
भेषजं ब्रह्महत्यायाः बलदेवो महाबलः ॥
तीर्थयात्प्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥ ३३ ॥

धर्म को संस्थापन करने वाली सत्व गुण के अधिक होने से तथा प्रजा के पालन करने से वह तृतीया, सर्प पर सोने वाली, सागर के बीच रहने वाली, सृष्टि करने वाली होने से वह चौथी, राजसी है।

धर्म के स्थापन के लिये परमात्मा जब २ भी धर्म का नाश होता है तब तब ही वह अपने को निर्माण करता है जैसे पहले वराह रूप से पृथिवी का उद्धरण किया। नृसिंह रूप से हिरण्यकशिपु का नाश किया। और वामनादि नाना अवतार हुवे हैं जिनकी हम संख्या नहीं कर सकते। उसी भगवान का यह अवतार माथुर= मथुरा का वासी कृष्ण है वही सात्विक मूर्ति अवतार लेती है।

(मार्क० अ० ४, ३६-५८)

दूसरे प्रश्न को उत्तर यह है कि—इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र नमुचि को मारा था। इस ब्रह्महत्या के पाप से रुष्ट हो कर त्वष्टा ने अपनी जटा का कुछ भाग अग्नि में जला कर वृत्र को सेना सहित पैदा किया फिर घनघोर देवासुर संग्राम हुआ। ये दैत्य मर कर पृथिवी पर पैदा हुवे। पृथ्वी ने यह मेरु पर जाकर कहा कि मैं दैत्यों के भार से पीड़ित हूं अतः मेरी रक्षा करो इस पर देवताओं ने पांचों पाण्डवरूप में अवतार लिया। उसी की पत्नी द्रौपदी केवल इन्द्र की ही स्त्री थी और किसी की नहीं। [मार्क० अ० ५,]

तीसरे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है। बलराम ने मदमत्त होकर नैमिषारण्य में कहथ कहते हुवे सूत पुत्र को मार दिया इस पर सब ऋषिमुनि अपनी मृग-छाला उठा कर भाग गये। यह देख कर बलराम को पाप का पश्चात्ताप हुआ उसने बारह वर्ष तीर्थयात्रा की। (मार्क०, अ. ६.)

चौथे प्रश्न का उत्तर यह है कि विश्वामित्र ने परीक्षार्थ हरिश्चन्द्र को राज्य से च्युत कर दिया था इस को देख सब प्रजाएं बड़ी व्याकुल हुई हरिश्चन्द्र राज्य पाट छोड़ कर अपनी स्त्री को साथ लिए जा रहा था विश्वामित्र ने उस की पत्नी के एक दण्डा बड़े जोर से मारा, यह अनुचित कार्य देख कर विश्वेदेवों ने विश्वामित्र की निन्दा की। इस निन्दा से कुपित हो कर विश्वामित्र ने पांचों विश्वेदेवों को शाप

दे कर मनुष्य योनि में भेज दिया—और कहा कि तुम्हारी सन्तति ही न होगी और तुम्हारे घर में स्त्रियें आवेगी। * वे ही द्रौपदी के पांच पुत्र थे।

[मार्क० अ० ७]

इन प्रश्नोत्तरों के पश्चात् फिर क्रम से उपाख्यान प्रश्न आदि प्रष्टा के इच्छानुसार कहे गये हैं।

परन्तु इस में विस्मयजनक यही है कि महाभारत में पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर इस से बहुत ही अधिक सन्तोष-जनक दिया गया है। यहां इन प्रश्नों का अवतरण करा कर भी अत्यन्त स्वल्प शब्दों में दिया गया। उस में भी कृष्ण के सम्प्रदाय वालों ने केवल देवताओं के अवतार के सिद्धान्त को पुष्ट करने के निमित्त इस प्रकार का प्रश्न और उत्तरों का निर्माण किया है।

इस के अनन्तर मारकण्डेय का विषय इस क्रम से वर्णित हैं।

मारकण्डेय से जैमिनि का प्रश्न, द्रोणतनय पक्षियों का वर्णन, जैमिनि के चार प्रश्नों का उत्तर, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, वशिष्ठ का विश्वामित्र को वक होने का शाप, विश्वामित्र का वशिष्ट को आडी होजाने का शाप, दोनों में परस्पर युद्ध। प्राणियों का जन्म मरण निरूपण में भार्गव ब्राह्मण और जड़सुमति संवादः,—नरजन्म नरक क्लेश वर्णन, वैश्यराज और यम पुरुष संवाद में—कर्म्म फल कथन, दत्तात्रेय उपाख्यान, दत्तात्रेय कार्त्तवीर्य संवाद—कुवलयाश्व का उपाख्यान, मन्दालसा का उपाख्यान मन्दालसा का अपने पुत्र के प्रति वर्णाश्रम धर्मोपदेश, श्राद्ध कल्प, सदाचार व्यवस्था, अलर्क का गृहत्याग, आत्मज्ञान, दत्तात्रेय तथा अलर्क संवाद। मोक्षज्ञान निरूपण योगिचर्या, अरिष्ट कथन, सुवाहु और काशिराज का संवाद।

मार्कण्डेय क्रौष्टुकि संवाद में:—ब्रह्मा की उत्पत्ति, प्रकृति पुरुष निरूपण, प्राकृतिक तथा वैकारिक सृष्टि प्रलय निरूपण, गुणत्रय वर्णन, सृष्टिक्रिया सिद्धान्त,

---

* कथंच द्रौपदेयास्तेऽकृतद्वारा महारथाः।
पाण्डवेया महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥ ३४ ॥
एतत्सर्वं कथ्यतां मे सन्दिग्धं भारतं प्रति ॥ ३५ ॥
(मार्कण्डेय, अ० ४, और १ अ० श्लो० १३-१६)

काल निरूपण, कल्प सर्ग प्रतिपरशादि की सृष्टि, देवसृष्टि, पशु-सृष्टि, यज्ञानुशासन, दुःसह की उत्पत्ति, रुद्रसर्ग, भुवन कोष कथन, द्वीप कथन, भारतवर्ष का भूगोल, कूर्म संस्थापन, स्वारोचिष मन्वन्तर, नवनिधि वर्णन, उत्तम मन्वन्तर, तामस मन्वन्तर, रैवतचाक्षुष, तथा वैवस्वत मन्वन्तर, प्रसंगतः देवी महात्म्य, देवी का असुर संहार, चण्डी पाठ की सप्तशती, रोच और भौत्यमन्वन्तर, सूर्यवंशवर्णन, नाभाग, प्रमति, भलन्दन खनित्रविविंश खनिनेत्र करिन्धम, अविक्षत, मरुत, नरिष्यन्त और वपुष्मन्त आदिराजाओं का वर्णन, पुराण श्रवण फल।

इसी के साथ नारदपुराण में ही विषय सारणी के अनुसार इस के अनन्तर सोम वंश का कीर्तन नहुष की कथा ययाति की कथा, यदुवंश प्रसंग तथा कृष्ण चरित्र सत्वावतार कथा, सांख्य समुद्देशादिक कतिपय भाग अधिक वर्णित हैं।

यह भिन्नता यही प्रमाणित करती है कि भिन्न २ सम्प्रदायों में भिन्न २ भाग उपादेय तथा उपेक्ष्य समझ कर रखे तथा उड़ादिये गये हैं।

एक अद्भुत बात यह है कि इस में व्यास जी का सम्बन्ध, इस पुराण से सर्वथा नहीं है। क्योंकि वक्ता द्रोणतनय पक्षि है। इसी कारण मार्कण्डेय से कहा गया, मार्कण्डेय—पुराण यह भी पुराणों का प्रवादस था तथ्य नहीं हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो प्राचीन काल में इस मार्कंडेय पुराण का वास्तविक अंश ४२ अध्याय से लेकर, ८० अध्याय तक तथा ९९ अध्याय से लेकर १३८ अध्याय तक होना चाहिये। क्योंकि इतना ही भाग मार्कण्डेय ऋषि ने क्रोष्टुकि के प्रति कहा है। शेष सब आख्यान संवादादि अन्य संस्करणों को लक्षित करते हैं।

साथ ही सारे पुराण की कथाएं प्रायः प्राचीन हैं विषय प्रतिपादन भी प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर उसी रूप में विन्यस्त हैं। इस में सन्देह नहीं।

पौराणिक मण्डल सप्तशती को बहुत मान की दृष्टि से देखते हैं। यह आत्म सम्बन्धी मायाशक्ति की प्रतिनिधि देवी मानी गयी है। जो पापरूपी असुरों का सब मानसिक शक्ति सम्पन्न देताओं की शक्तियों से सम्पन्न होकर संहार करती है। इसी का शाक्त तान्त्रिक लोगों ने बहुत आदर किया है। यामल तन्त्रों में भी यह सप्तशती ज्यों की त्यों पायी जाती है। यही तान्त्रिक भाग ब्रह्म प्रकृति के प्रकरण में पुराण में अन्तर्निविष्ट हुआ है।

—:o:—

भविष्य पुराण

भविष्यपुराण सब अन्य पुराणों से विशेष ध्यान देने के योग्य है। ऐतिहासिक ज्ञान तथा विज्ञान की दृष्टि से इस का मूल्य और भी बढ़ जाता है। परन्तु इस को भविष्यपुराण इसी लिये कहा जाता है कि पुराणकार ने इस में व्यास जी के मुख द्वारा कलियुग में होने वाली बहुतसी कथाओं का उल्लेख कराया है। जिस प्रकार ईसाइयों की बाइबिल की कथाएं, पारसियों की मगजाति का वृत्तान्त आदि।

भविष्य पुराण में मत्स्यपुराण के अनुसार + १४५०० श्लोक संख्या है। जिसमें ब्रह्मा ने आदित्य के माहात्म्य को उद्देश्य करके अघोरकल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से जगत् की स्थिति का वर्णन और भूतसंघ का वृत्तान्त मनु के प्रति कहा है। जिस में प्रायः भविष्य कथाएं और चरित ही हों वह भविष्यपुराण कहाता है। *

वैंकटेश्वर के छपे वर्त्तमान के भविष्यपुराण में २८ हजार के लग भग श्लोक संख्या उपलब्ध होती है। भविष्यपुराण के इस प्रकार के दुगने से भी अधिक विस्तृत होजाने का कारण इस के अतिरिक्त कुछ नहीं कि साम्प्रदायिकों ने भविष्य नाम की आड़ लेकर जो कुछ भी कथा कान में सुन पड़ी उसी समय संस्कृत के पद्यों में बांधकर भविष्यपुराण में बढ़ा दी। उदाहरण रूपेण विक्रमादित्य की कथा के साथ ही साथ बेतालपचीसी और सिंहासनबत्तीसी की सर्वथा आधुनिक कहानियों का उल्लेख ही है।

+ यत्राधिकृत्यमाहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम्॥ ३०॥
मनवेकथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दशसहस्राणि तथापञ्चशतानि च॥ ३१॥

* भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते॥ ३२॥

मात्स्य० अ० ५३,

नारदपुराण के कथनानुसार * ब्रह्मा ने प्रथम मनु को भविष्यसंहिता कही थी जिस का दूसरा पर्याय नाम धर्मसंहिता था। व्यास ने पुराणों का व्यास करते हुवे उस का भी व्यास किया और उस संहिता को ५ पर्वों में विभक्त किया, प्रथम पर्व में नानाश्चर्य कथाओं से युक्त अघोरकल्प का वृत्तान्त है। प्रथम ब्राह्मपर्व कहाता है, इस में सूतशौनक सम्वाद में पुराण प्रश्न, आदित्य चरित, सृष्ट्यादि लक्षण

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम्।
भविष्यंभवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम्॥
यत्राहं सर्वदेवानामादिकर्त्ता समुद्यतः।
सृष्ट्यर्थं तत्र संजातः मनुः स्वायम्भुवः पुरा॥
स मां प्रणम्य पप्रच्छ धर्मं सर्वार्थसाधकम्।
अहं तस्मैतदाप्रीतः प्रोवाच धर्मसंहिताम्॥
पुराणानां यदा व्यासो व्यासं चक्रे महामतिः।
तदातां संहितां सर्वां पञ्चधा व्यभजत् मुनिः॥
अघोरकल्पवृत्तान्त नानाश्चर्यकथाचिताम्।
तत्रादिमं स्मृतं सर्वं ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः॥
सूतशौनकसंवादे पुराणप्रश्नसंक्रमः।
आदित्यचरितं प्रायः सर्वाख्यानसमाचितम्॥
सृष्ट्यादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः।
पुस्तकलेखकलेख्यानां लक्षणं च ततः परम्॥
संस्काराणां च सर्वेषां लक्षणं चात्रकीर्त्तितम्।
अक्षत्यादितिथीनाञ्चकल्पाः सप्तप्रकीर्त्तिताः॥
अष्टम्याद्याः शेषकल्पाः वैष्णवेपर्वणिस्थिताः।
शैवे च कामतोभिन्ना सौरेचान्त्यकथाचयः॥
प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमाचितम्।
पुराणस्योपसंहार सहितं सर्वपञ्चमम्॥
एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणो महिमाधिकः।
द्वितीये च तृतीये च सौरोवर्गचतुष्टये॥
प्रतिसर्गाह्वयं त्वन्त्यं प्रोक्तं सर्वकथाचितम्।
सभविष्यं विनिर्दिष्टं पर्वव्यासेन धीमता॥
चतुर्दशसहस्रन्तु पुराणं परिकीर्त्तिम्।
गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेतिहश्रुतिः॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

शास्त्रस्वरूप, पुस्तक लेखक लेख्य आदि के लक्षण और संस्कारों के लक्षण तथा ज्ञति आदि तिथियों के कल्प कहे गये हैं। अष्टम्यादि तिथि कल्प वैष्णव पर्व में हैं। तृतीयपर्व, शैव पर्व में कामानुसार विभेद है। चतुर्थ सौरपर्व में अन्तकथा समूह है। पीछे से प्रतिसर्ग नामक पर्व नानाख्यानों से युक्त उपसंहार सहित है। प्रथम पर्व में ब्रह्मा की अधिक महिमा, द्वितीय में विष्णु की, तृतीय में शिव की, चौथे में सूर्य की और पांचवां या अन्त्यका प्रतिसर्ग नामक पर्व है। इस में भविष्य के सहित बुद्धिमान् व्यास ने सर्वधर्मोपदेश दिया। यह पुराण १४००० श्लोक से युक्त है। इस पुराण में सब देवताओं की कथा समभाव से कही गयी है। क्योंकि गुणों के ऊंचे और नीचे होने से ब्रह्म सर्वत्र एकसा है। यह श्रुति है।

इस बृहन्नारद के लक्षण के अनुसार वैंकटेश्वर में छपा चारखण्डों वाला भविष्यपुराण बृहन्नारदोक्त भविष्यपुराण से सर्वथा भिन्न है।

भविष्य पुराण के विषय में पं० ज्वालाप्रशाद मिश्र जी की आलोचना बहुत दर्शनीय है जिस को हम ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं। "नारदीयपुराण के उद्धरण के अनुसार चतुर्थ वा भविष्योत्तर के अतिरिक्त प्रथम, द्वितीय, तृतीय भविष्य कुछ -कुछ प्राचीन भविष्य (पुराण) के लक्षण पाये जाते हैं। इन तीन प्रकार के भविष्यों में आदित्य माहात्म्य वर्णित होने पर भी अघोरकल्प वृत्तान्त अथवा ब्रह्मकर्तृक मनु के निकट जगत्स्थिति का प्रसङ्ग नहीं है।"

नारदपुराण के अनुक्रमानुसार भविष्य पांच पर्वों में विभक्त है—ब्राह्म, वैष्णव, शैव, सौर और प्रतिसर्ग, हमारी सम्मति में प्रथम भविष्य के उपक्रम में इन पांच पर्वों की कथा है। इस समय नारदीय मत से इस प्रथम भविष्य के केवल ब्राह्म पर्व का अनुसंधान पाया जाता है, इस पोथी में शेष चार पर्व नहीं हैं। मत्स्योक्त चतुर्मुख कथित आदित्य माहात्म्य इस ब्राह्म पर्व में दीखता है।

नारद मत से अष्टमी कल्प से वैष्णव पर्व आरम्भ, द्वितीय भविष्य के १५१ अध्याय से विष्णुपर्व और अष्टमी कल्प का आरम्भ देखा जाता है। **किन्तु इस द्वितीय भविष्य में इस के पूर्व में जितनी कथा हैं किसी २ स्थान में १ म**

भविष्य के साथ मेल होने पर भी अधिकांश स्थल में ही मेल नहीं है। सम्भवतः इस का अधिकांश ही प्रक्षिप्त वा परवर्त्तीकाल में संयोजित है।

कहीं १म भविष्य के ब्राह्मपर्व में १३१ अध्याय हैं किन्तु इस दूसरे भविष्य में विष्णु पूर्व के पूर्वांश में १५० अध्याय पाये जाते हैं। अधिकांश पुराणों के मत भविष्य की श्लोक संख्या १०,००० है किन्तु द्वितीय भविष्य के प्रमथ अध्याय में लिखा है कि भविष्य की संख्या ५०,००० है। **"शिव पुराण की वायु संहिता में परिवर्धित और नव कलेवर प्राप्त शिवपुराण जैसे लक्षश्लोकात्मक कहा है दूसरे भविष्य की उक्ति वैसे ही अत्युक्ति समझनी चाहिए।"**

"इस अंश में बहुत से विषय संयोजित हुवे हैं इस कारण रुरुवध (२५० अ०) आदि कोई २ विषय एक से अधिक बार वर्णित देखा जाता है। ऊपर कह आये हैं कि नारद के मत से अष्टमी कल्प ही से विष्णु पर्व आरम्भ है। किन्तु द्वितीय भविष्य में अष्टमी कल्प से ही विष्णु पर्व के निर्दिष्ट होने पर भी इस पर्व में विशेषरूप से रुद्रमाहात्म्य वर्णित होने से इस के साथ शैवपर्व भी सम्मलित हुआ है, ऐसा ज्ञात होता है। शेषांश में सौर पर्व के विषय के विषय का भी प्रभाव नहीं है किन्तु प्रतिसर्ग पर्व नहीं पाया जाता।

आपस्तम्ब के धर्म सूत्र में भविष्य पुराण का प्रसङ्ग भी द्वितीय भविष्य द्वितीय अध्याय में अनुसंधान पाया जाता है। इस से जाना जाता है "**कि इस अंश में बहुतसा प्रक्षिप्त होने पर भी**" आदिपुराण की अनेक कथा विद्यमान हैं।

उपरोक्त दोनों भविष्यों की अपेक्षा तृतीय में विशेष मिला है। इसमें भविष्य का कोई २ लक्षण होने पर भी इसकी विशेषवर्त्तीकाल की रचना बोध होती है। जिस समय समस्त भारत में तांत्रिक प्रभाव ने विस्तार लाभ किया था—यह तृतीय भविष्य संभवतः उस काल की रचना है। तीसरे भविष्य के ७ वें अध्याय में आगमतंत्र यामल डामरादिकथा विवृत हुई हैं।

मात्स्य मत से भविष्यपुराण में अनेक कथाएं हैं। प्रथम और तृतीय से उस का कुछ परिचय पाया जाता है, तीसरे भविष्य के नवम अध्याय में म्लेच्छोक्त

शास्त्रादि के परित्याग की बात है दशम अध्याय में कलि में निगम ज्योतिष और वेद के संग्रह में दोष कथन और मनसाषष्ठी दशहरा आदि की पूजा की कथा है, एक वैज्ञानिकों का ज्ञातव्य विषय है उद्भिज विज्ञान (Botany) ''

सूर्य के उपासक मगजाति का भारत में आना आदि ऐतिहासिक घटनाएं भी बहुत हैं।

मिश्र जी की इस आलोचना से स्पष्ट है कि भविष्यपुराण के कितने ही संस्करण हो गये हैं। और वे सब एक दूसरे से कितने भिन्न हैं। इनमें भी कितने प्रक्षेपक और कितनी अत्युक्तियों के विषय हैं जिस पर भी उस को व्यास देव की कृति मानना कितनी भारी भूल है।

हमारी अपनी सम्मति इस प्रकार की है कि साम्प्रदायिक सभी पुराणों में कुछ न कुछ भविष्य को लेकर भी स्थान २ पर कहा गया है। इसी की अपेक्षा करके सभी साम्प्रदायिकों की अपेक्षा रखकर यह भविष्यपुराण रचा गया, यह किसी शाकद्वीपी ब्राह्मण ने सूर्य की उपसना को स्थिर तथा प्रचार करने के निमित्त सूर्य के उपासक भूमिपालों की प्रेरणा से बनाया है। इन सूर्योपासकों के अतिरिक्त अन्य देवता के उपासकों के विरोध को हटाने तथा कम करने के लिये इसमें अन्य देवताओं के लिये भी एक २ पर्व में स्थान दिया गया है। भविष्य काल के निर्मर्याद होने से ज्यों २ घटनाएँ होती जाती हैं त्यों २ इस भविष्यपुराण का परिमाण भी बढ़ता जाता है। ईसामूसा की कथा और आदम हौवा की कथाएं इस बढ़े हुवे पुराण का रूप हैं।

पाश्चात्य पण्डित एच. एच. विल्सन इस पुराण के विषय में इस प्रकार लिखते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पुस्तकालय में तीन प्रतिएँ भविष्यपुराण की हैं जोकि सम्पूर्ण ही प्रतीत होती हैं। उनमें से दो के परस्पर प्रतिपाद्य विषय मिलते हैं उनकी श्लोक संख्या लगभग ७००० के है, एक दूसरा ग्रन्थ है जिसका नाम भविष्योत्तर है, यह पूर्व ग्रन्थ का उत्तर खण्ड प्रतीत होता है। इसकी श्लोक संख्या भी ७००० है परन्तु मात्स्योक्त विषय लक्षण के साथ कोई भी मेल नहीं खाता।

मेरे पास उपस्थित भविष्य में १२६ छोटे २ अध्याय हैं इसमें प्रवक्ता सुमन्तु तथा प्रष्टा शतानीक है। इसमें पञ्च पर्वात्मक भविष्य का उल्लेख भी है जिसमें सौरपर्व के स्थान पर त्वाष्ट्र पर्व का उल्लेख है। सम्भवतः यह प्रति वास्तविक भविष्य का प्रथम पर्वमात्र ही हो। यद्यपि लिखित*ग्रन्थ के देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता। अस्तु कुछ भी हो उपलब्ध ग्रन्थ वास्तव में पुराण नहीं है। प्रथम में वास्तव में सृष्टि की उत्पति वर्णित है परन्तु वह केवल मनुके शब्दों का अनुवाद मात्र है। शेष सब में उत्सवों, व्रतों तथा संस्कारों और पूजाओं का वर्णन है। तदनन्तर गुरु पूजा, आश्रम और वर्णों की व्यवस्था, व्रत और उपवास वर्णन और कतिपय उपदेश पूर्ण कथाएं महाभारत से उद्धृत यथा च्यवन की कथा, नाग पञ्चमी, और फिर कुछ भाग में कृष्ण शाम्ब संवाद द्वारा सूर्य की महिमा का वर्णन इन अन्तिम अध्यायों में शाकलद्वीप की सूर्य के मौन उपासकों के विषय में भी अद्भुत लिखा है। ये मगजाति ईरान के अग्नि उपासकों से सम्बद्ध है। यह विषय अन्वेषणा योग्य है।

भविष्योत्तर में धार्मिक क्रिया काण्ड व्रतोपासनादि का संग्रह मात्र है इस में मुसलमानी ज़माने के पूर्व होने वाले जगन्नाथ की रथ यात्रा और मदनोत्सवादि कतिपय मेलों का अच्छा वर्णन है। इस में युधिष्ठिर के प्रति कृष्ण प्रवक्ता हैं।

वर्त्तमान में प्रचलित भविष्यपुराण में शतानीक प्रष्टा तथा सुमन्तु प्रवक्ता है। इस भविष्यपुराण का निर्माण द्विजातियों के लिये नहीं है प्रत्युत शूद्रों पर दया कर के उन के लिये यह पुराण बनाया गया है * अर्थात् इस के सुनने का अधिकार शूद्रों के लिये भी है।

इस पुराण का संस्कार कतिपय वार हुआ है और कईयों के मुख से कहा गया तथा कईयों को सुनाया गया है। जैसा कि इसी पुराण के उपोद्घात में

* शतानीक उवाचः—भविष्य० ब्रा० प० १ अ० १)

'त्रयाणामपि वर्णानां प्रोक्तानामपि पण्डितैः
श्रेयसेननु शूद्राणां तन्ममेवचनं शृणु ॥ ४७ ॥

शूद्राश्चैव भशंदीनाः प्रतिभांतिममद्विजाः
आगमेनविहीना हि अहो कष्टं मतंमम ॥ ५२ ॥

लिखा है कि 'प्रथम ब्रह्मा ने शङ्कर के प्रति कहा, फिर शङ्कर ने विष्णु को कहा. विष्णु ने नारद को कहा, नारद ने इन्द्र को कहा, इन्द्र ने पराशर को कहा, पराशर से व्यास के पास आया और फिर इस प्रकार परम्परा से चलते आये हुवे इस पुराण को सुमन्तु ने शतानीक को कहा।'' +

पहले यह केवल १२००० श्लोक विस्तार था परन्तु फिर नाना प्रकार के आख्यानों के मिल जाने से स्कन्द पुराण की न्यायीं यह भविष्य पुराण हो गया। १००००० एक लक्ष श्लोकात्मक स्कन्द पुराण लोक में प्रचलित ही है परन्तु भविष्य को ऋषियों ने ५०००० आधालाख कहा है। *

इस के पश्चात् पञ्चपर्वात्मक भविष्यपुराण का उल्लेख है कि भविष्यपुराण में पांच पर्व कहे जाते हैं प्रथम ब्राह्म, द्वितीय वैष्णव, तृतीय शैव, चौथा त्वाष्ट्र, पांचवां प्रतिसर्ग नामक पर्व, सब लोगों में पूजा से देखा जाता है।

यह सर्ग प्रतिसवंश मन्वन्तर बंशानुचरित इन पांच लक्षणों से युक्त चतुर्दश विद्याओं साङ्ग वेदों से सुभूषित है। इस में सब से प्रथम सब भूतों की उत्पत्ति कही जाती है।

\+ ब्रह्मा कुरुकुलश्रेष्ठ शंकरायमहात्मने।
शंकरेण तथाविष्णोः कथितं कुरुनन्दन ॥ १०१ ॥
विष्णुनापिपुनः प्रोक्तं नारदाय महीपते ॥
नारदात्प्राप्तवान् शक्रः शक्रादपि पराशरः ॥ १०२ ॥
पराशरात्ततोव्यासो व्यासादपिमयाविभो ॥
एवं परम्परा प्राप्तं पुराणमिदमुत्तमम् ॥ १०३ ॥
शृणु त्वमपि राजेन्द्र मत्सकाशात्परंहितम्
सर्वाण्येवहि पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ ॥ १०४ ॥

* द्वादशैवसहस्राणि प्रोक्तानीहमनीषिभिः ॥
पुनर्वृद्धिगतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप ॥ १०५ ॥
यथास्कंदं तथाचेदं भविष्यं कुरुनन्दन ॥
स्कांदंशतसहस्रं तु श्लोकानां ज्ञातमेवहि ॥ १०६ ॥
भविष्यमेतदृषीणां लक्षार्द्धं संख्ययाकृतम् ॥ १०७ ॥
(भविष्य० ब्रा० प०, अ० २)

मिश्र जी के उद्धरण से हम बता आये है कि ५०,००० पद्य संख्या की सर्वथा गप्प ही है इसी प्रकार साथ ही स्कन्द पुराण को लक्ष श्लोकात्मक कहना भी एक झूठ को सिद्ध करने के लिये दूसरा झूठ लिखा गया है।

"**पुनर्वृद्धिं गतानीह**" यह पद सभी पुराणों के विषय में साधारणतया कहा गया प्रतीत होता है इस से ये भी प्रतीत होता है कि वर्त्तमान पुराण के निर्माण या संग्रह काल में सभी पुराण बढ़कर बहुत विस्तृत हो चुके थे। और की समता तक पहुंचाने के लिये भविष्य को भी नाना कथाओं से भरने की आवश्यकता समझी गयी। न्यून से न्यून स्कन्दपुराण अपने महान रूप में प्रगट हो चुका था।

भविष्य वास्तव में सम्पूर्ण संग्रहमय है, इसका प्रारम्भ अघोरकल्प से ही किया गया है। इसके उपलब्ध ग्रन्थ में ४ पर्व हैं, प्रथम ब्राह्म, द्वितीय मध्यम, तृतीत प्रतिसर्गपर्व और चौथा उत्तरखण्ड, क्रमशः इस प्रकार विषय प्रतिपादित हैं।

१ प्रमथ ब्राह्मपर्वः—शतानकि की राजसभा में ऋषियों का आना—भविष्य पुराण का विभाग—ब्रह्मसृष्टि कथन, जात कर्मादि संस्कार कथन, गृहस्थोपयोगि सामुद्रिक कथन—स्त्री पुरुष लक्षण, गृहस्थ धर्म, परस्पर व्यवहार (अ० ५-१६) तिथि व्रत महात्म्यादि कथन (अ० १६—२४)। पुरुष सामुद्रिक कथन (२५-२८) गणेश पूजा, चतुर्थी व्रत, नाग पञ्चमी के प्रसङ्ग से नाग विद्या निरूपण (अ० ३३—३६) स्कन्द षष्ठी प्रसङ्ग से ब्राह्मणादिक वर्णों की गुण कर्मानुसार व्यवस्था (अ० ३९—४४) सप्तमी कल्प प्रसङ्ग से आदित्य महात्म्य

---

(४) **पर्वाणिचात्र पंचैव कीर्त्तितानि स्वयंभुवा।**
प्रथमं कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम्॥ २॥
तृतीयं शैवमाख्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते।
पंचमं प्रतिसर्गाख्यं सर्वलोकैः सुपूजितम्॥ ३॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥ ४॥
चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन।
प्रथमं कथ्यते सर्गो भूमानामिहसर्वशः॥ ५॥

पूजा, और खगोल चक्र का निरूपण (अ० ५२) सूर्य की बलि, पूजा होम रथयात्रा—सूर्य रिण्डि संवाद में ज्ञान दीक्षा और अर्चादि निरूपण । सांबाख्यान कथा प्रसङ्ग से सूर्य का स्वरूप नाम माला इतिहास सूर्य का विराट वर्णन, वार माहात्म्यादि (अ० ५३ ९५) सप्तमी व्रत (अ० ९६-१११) आदित्य महात्म्य तथा सूर्य के उपासक निर्णय प्रकरण में सत्राजितोपाख्यान भोजक जाति की उत्तमता । सूर्य का प्राचीन ऐतिह्य, अनुचर प्रकरण नामनिरुक्ति आदि । व्योम माहात्म्य, भुवन कोश लोक तथा लोकपालों का वर्णन साम्बकृत सूर्योपासना— सूर्य मन्दिर बनाने के प्रसंग में वास्तु विद्या, शिल्प, मूर्ति निर्माण कला आदि निरूपण (अ० १३०-१३२) ।

सूर्योपासक निरूपण प्रकरण से सूर्य पूजक शाकद्वीप वासी मगजाति का विस्तृत वृत्तान्त (अ० १३३-१४७) सूर्य उपासना प्रकरण में सुदर्शन चक्र की व्याख्या सौरधर्म प्रस्ताव सूर्यार्चन (अ० १४९ १५५) सूर्योत्पत्ति, सूर्यावतार, सूर्य पूजा, सूर्य सप्तमी व्रत (अ० १५६-१७०) मगधर्म्म वृत्तान्त, सौर धर्म, सूर्यपूजा, अभिषेकादि, सूर्योक्त पञ्चविधधर्म, पञ्चमहायज्ञ, श्राद्ध, भोजक संस्कार, पातकोपपातक फल, कर्म द्वारा त्रिविधगति, सप्तमी व्रत, व्यास भीष्म संवाद सूर्य पूजा, सप्तमी व्रत, व्यास [illegible] व्यास पूजा ।

(२) द्वितीय मध्यप[illegible] [illegible] भागः—भविष्य प्रशंसा, धर्म स्वरूप वर्णन. विराट् ब्रह्माण्डोत्पत्ति वृत्तान्त, [illegible]ताल भुवनादि वृत्तान्त, खगोल वर्णन, ब्राह्मण प्रशंसा पुराणेतिहास श्रवण माहात्म्य, ग्रन्थ लेखन प्रकार (अ० ७) अन्तर्वेदि बहिर्वेदि, पुण्य करने वालों का निरूपण, नित्य नैमितिक होम वृत्त ।

द्वितीय भागः—सूर्य मण्डलोद्धा, मण्डल निर्माण, लक्षादिस्थापन कालतिथि निर्णय, वास्तु विधान, अग्नि कर्म, गृह प्रतिष्ठा ।

३य भागः—आरादि प्रतिष्ठा विधि, नाना वृक्ष प्रतिष्ठा काल्यादि देव प्रतिष्ठा।

(३) प्रतिसर्ग तृतीयपर्वः—कृतयुग, त्रेता, द्वापर इन तीन युगों के क्रम से वैवस्वत मनु से लेकर सुदर्शन राजा तक सुदर्शन से संवरण तक, संवरण से प्रद्योत राजा तक का वृत्तान्त । म्लेच्छ घातक यज्ञ, प्रसङ्ग में विष्णु का कलि को

वर देना और व्यास जी का भविष्य वृत्त कहना, बाइबिल कुरान में कही आदमहौवा की कथा, ईसामूसा की कथा, नूरासिमहाम याकूतादि की कथा, व्रत, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी (गुरुरप्रभाषा) आदि भाषाओं का निर्देश । (अ० ५—५) । म्लेच्छों के आने का कारण कथन प्रसङ्ग में काश्यप ब्राह्मण की कथा । प्रमर सामवेदी चपहानि यजुर्वेदी इन क्षत्रियों की उत्पत्ति, बौद्धों की शुद्धि, कलिंजरपुर अजमेर द्वारकादि नगरों में इनका बसना उपरोक्त क्षत्रियों का वंश वर्णन और विक्रमादित्य की उत्पत्ति । वेतालोक्त नाना कथासमुच्चय । **इति प्रथम भागः ।**

द्वितीय भागः—प्रथम (१--२२) से बाईस अध्याय तक सद्मावती मधुमती आदि की नाना कथाएं, भर्तृहरि कथा (२३) सत्यनारायण कथा (अ०२४—२९) चौबे लोगों की उत्पत्ति [३०] पाणिनि की कथा [३१] भागवत के बनाने वाले वोपदेव की कथा [३२] चण्डी पाठ के कर्त्ता व्याधकर्म ब्राह्मण की कथा । महाभाष्यकार पातञ्जलि चरित [३५] **इति द्वितीय भागः ।**

तृतीय भागः—१२०० विक्रमाब्द से भारत का इतिहास, कौरव पांण्डवों की अवतार कल्पना, ईसा की पैदायश, शालिवाहनशक युद्ध, शालिवाहन वंश, भोजराज वृत्तान्त, जयचन्द्र पृथिवीराज की कथा, आला ऊदल की कथा, महोबे का युद्ध आदि (अ० ५—३२)

इति तृतीय खंडः

चतुर्थ खण्डः—अग्निवंश वर्णन, प्रमर वंश चरित, अजमेर का वर्णन तोमर वंश शुक्ल, परिहर भूपालों की कथा । देहली के मुगलराजों का वर्णन, देवताओं की परस्पर सलाह, रामानन्द निम्बाचार्यादि की उत्पत्ति [७] मध्वाचार्य श्रीधर, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भट्टो जी दीक्षित, बराह मिहिर धन्वन्तरि सुश्रुत, जयदेव चैतन्य जी, शंकरस्वामी, आनन्दगिरि, वनशर्मा, भारतीश गोरखनाथ, पुण्डीराजा, अघोरपन्थी, भैरवाचार्य, वालशर्मा, रामानुज, रंघणवनिया, कबीर, नरसिया भगत, पीपा, नानक, नित्यानन्द आदि साधु रैदास आदि अर्वाचीन प्रसिद्ध ग्रन्थकारों, उपदेशकों तथा भक्तों की कथाएं । [अ० २०] कराव ब्राह्मण के वंश से उपाध्याय [ओझा] दीक्षित, पाठक शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, दुवे तिवारी त्रिवेदी चौबे आदि की उत्पत्ति, [अ० २१] तिमिरलिंग की कथा, अकबर बाबरादि का शासन, शिवाजी

का वृत्तान्त, मुगलराज्य का नाश, नादिर कथा, गुरुण्ड वानर जातियां, अंग्रेजों का आना, कलकता का वृत्तान्त पार्लियामेन्ट का शासन, अंग्रेजों का नाश, मौनवंश का आना [अ० २२]। विक्रमी २२०० में शिशुनन्दी वंश का वृत्त, २७०० विक्रमाब्द में वैदिक धर्म के भाविउद्धारक पुष्यमित्र का वृत्तान्त । ३१०० विक्रम में भ्रष्टाचार का वृत्तान्त, गुजरात में राजा सोमनाथ की उत्पत्ति, राष्ट्रराज्य में मुसल्मानी मत, सब पृथिवीभर में म्लेच्छों का होना । (अ० २३) वर्णसंकर होना, दो हाथ के आदमी पैदा होना, कलियुग के दूसरे तीसरे चरण का वृत्तान्त (अ० २५) कलि के चतुर्थ चरण का वृत्तान्त, कल्की अवतार, अठारहों कल्पों का संक्षेप, कल्कि की पूजा, सत्ययुग आरम्भ, कल्कि विजय वृत्तान्त ।

इति चतुर्थ खंडः ।

चतुर्थ उत्तर पर्वः—

कृष्णयुधिष्ठिर संवाद, ब्राह्मणोत्पत्ति वर्णन, जन्म संसार अधर्मपाप भेद, शुभाशुभगति, यमयातनादिशास्त्रीय विषय विवेचन । शेष सब पर्व में १२५ से अधिक शंकरादि व्रत माहात्म्य तथा कुछ एक महोत्सव और शेष ७० से दान विधियों का निरूपण है ।

यह पुराण भी साम्प्रदायिक है इसमें सूर्य देवता को अत्यधिक मुख्यता दी गई है सूर्योपासकों को बहुत मान दिया गया है। भोजक और मगजाति जो शाकद्वीप की निवासी और सूर्य तथा अग्नि की उपासक थी, जिसके धर्म और धर्म ग्रन्थों की रचना बहुतसी वैदिक ग्रन्थों से विपरीत थी उस जाति को बहुत ही मान दिया गया है । श्राद्धों तथा सूर्यदेव की उपासना तक में भोजकों को ही अधिकार बतलाया गया है । + इनका नाम भोजक ही इस लिये पड़ा कि ये देवता पर चढ़ाया हुआ नैवेद्य खाते थे और सूर्य को बलि खिलाते थे । * इस

+ **देवानां पूजने राजन् अग्निकार्येषु वा पुनः ।**
अधिकारः स्मृतो राजन् भोजकानामसंशयः ॥ ५८ ॥
नैवेद्यं भुंजते यस्माद् भोजयन्ति च भास्करम् ।
पूजयंतिच देवानां विध्यतन्त्रेण तेगताः ॥ ५६ ॥
(भविष्य, ब्रा० प० अ० २१०)

पुराणकारने सूर्यार्चना और सप्तमीव्रत पर जितना वाङ्मय व्यय किया है उतना पुराणोचित विषय प्रतिपादन करने में नहीं लगाया। धर्म व्यवस्था करते हुवे सब प्रायः मनु के श्लोकों का उद्धरण किया है। वहीं सौर धर्म या मग भोजकों का धर्म बखाना है। इस पुराण के बनाने वाले ने शूद्रों को वेद मन्त्रोच्चारण करने के अपराध में जिह्वाच्छेदन का दण्ड दिया है और ज्योतिषियों की बहुत प्रबल शब्दों में निन्दा की है। उनको अश्रद्धेय और अपांक्तेय बनाया है, क्योंकि ये लोग बिना प्रयोजन दूसरों के ग्रह नक्षत्र देख कर उनके अनिष्ट फलों को कह देते हैं। अतः निष्प्रयोजन दूसरे के दोषों को कहते फिरते हैं। + अपने इष्ट भोजक जातीय व्यक्ति की प्रशंसा में यहां तक लिख दिया है कि जिसके घरमें वह एक बार भोजन कर लेता है उससे ७ वर्ष तक सूर्य देव तृप्त रहता है। ※ उसका सूर्य ही भोजक है, पृथ्वी पर भोजक ही सूर्य रूप है। इस लिये भोजक ब्राह्मणों में दान ही सदा अक्षय होता है। ×

अपने सूर्य देव को ऊंचा बनाने की अभिलाषा से पुराणकार ने भी अन्य पुराणकारों की न्यायीं अन्य देवताओं को नीचा दिखाया है। कि:—

ब्रह्मा को सूर्य की पूजा से ब्रह्मा की पदवी मिली। विष्णु भी सूर्य की उपासना से विष्णु बना, शंकर भी सूर्य को पूजकर जगन्नाथ बना, उसी की कृपा से महादेव बना। इत्यादि +

\+ सांवत्सरेण ज्योतिषा ज्ञान नक्षत्र सूचकः
न स भोज्यो भवेद्राजन् यश्चांगजीविका भवेत् ॥ ५० ॥
निष्कारणं परेषाञ्च परोक्षं दोषकीर्त्तनम्
गुणानांच यथागुप्ति परिवादपरस्तुसः ॥ ५१ ॥
(भवि, ब्रा. प. अ० २१०)

सकृद् भुंक्ते गृहेयस्य भोजको गृहधर्मिणः।
सप्तसंवत्सरोयावत् तृप्तो भवति भास्करः ॥ ३७ ॥
(भवि० ब्रा० प० अ० २१०)

× तत्सूर्यो भोजकः सोत्र भोजकः सूर्य एवहि।
तेनभोजक विप्रेषु दानमक्षय्यमित्यपि ॥ ५८ ॥
(भ. ब्रा. प. अ० १७२)

पूजयित्वा रविंभक्त्या ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः।
विष्णुत्वंचापि देवेशो विष्णुरापत्तदर्चनात् ॥ १ ॥
शंकरोपि जगन्नाथः पूजयित्वा दिवाकरम् ॥
महादेवत्वमगमत् तत्प्रसादात् खगाधिपः ॥ २ ॥

भोजक मगजाति का वृत्तान्त हम अन्यत्र किसी प्रकरण में देंगे । इनका वर्णन भविष्य (सप्त ब्राह्मपर्व के (१४० — १४२) अध्यायों में विस्तार से किया है ।

इस पुराण का भविष्य भाग बनाने के लिये व्यासदेव को भविष्यद्द्रष्टा मान लेने की अपेक्षा भविष्यपुराण को यथासमय ऐतिह्यों का संग्रह मानना अधिक बुद्धिमत्ता है । पुराण कारने भी स्वयं स्थान २ पर इस ही बात को स्वीकार किया है कि सम्पूर्ण भविष्य पुराण लगातार नहीं कहा गया परन्तु बीच २ में सहस्रों वर्षों का विश्राम ले २ कर लिखा गया है और संग्रह किया गया है । प्रतिसर्गपर्व में ही सब कलियुग की कथाओं का समुच्चय किया है । और प्रति अध्याय के अन्त में इसका परिचय दिया है कि यह भाग समुच्चय अर्थात् संग्रह है इसी लिये इस पर्व में पौराणिक सूत दो सहस्र वर्ष की योगनिद्रा लेकर कथा कहते हैं. कथा कहते २ इतनी सहस्रों वर्षों की योगनिद्रा का तात्पर्य सिवाय. काल के विच्छेद से संग्रह होने के और क्या हो सकता है । पुराण की लेखशैली के अनुसार योगनिद्रा का व्याज ही एक सुन्दर कथन प्रकार ही है । ×

अन्य पुराणों की न्यायीं इसमें अश्लील भाग सर्वथा ही नहीं है । पर देवता की निन्दा भी नहीं है । हां एक स्थान पर बौद्धों पर हलकासा आक्षेप है । नाग विद्या, वैद्यक, ज्योतिर्विद्या, वास्तुक आदि कतिपय वैज्ञानिक प्रकरण अति शिक्षाप्रद हैं । कथाओं की रोचकता है । कलियुग की कथाओं का सबका सम्बन्ध देवी

इत्यादि (भवि० ब्रा० प० अ० १७४)

× (क) श्रावयित्वा मुनीन्सूतो योगनिद्रावशंगतः ।
द्विसहस्रे शताब्दान्ते ऽन्तेबुद्ध्वापुनरब्रवीत् ॥ १३ ॥
(भवि० प्रति० प० ३, ख०, अ० ५,)

(ख) सूत उवाच:—
गच्छध्वं ब्राह्मणाः सर्वे योगनिद्रावशोऽह्यहम्
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विष्णोर्ध्यानं प्रचक्रिरे ॥ ६ ॥
पूर्णे द्वेच सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
(भवि० पु० प० ३ ख० १ अ० ७)

देवताओं से जोड़ा गया है । इत्यादि कतिपय बातें एक पौराणिक मस्तिष्क का एक अच्छा चमत्कार का नमूना हैं ।

भविष्य कथन की सत्यता का निर्णय गुरुण्ड जाति के अंग्रेजों के राज्य के बारे में कही हुई भविष्य वाणी के असत्य हो जाने से ही झूठ हो गई । इस राज्य के विषय में भविष्य लिखता है कि गुरुण्ड लोगों ने कालिकाता नगरी में अपना पांव जमा लिया । विकट द्वीप में विकटावती नाम की राजपत्नी (विकटोरिया) अष्टकौशल (पार्लियामेंट) द्वारा भारत पर राज्य करने लगी, उसका पति पुलोमार्चि कुलिकाता में रहा । विक्रमांक १८४० में वह भारत का राजा हुआ । उसके वंश में सात गुरुण्ड राजे हुवे उन्होंने ६४ वर्ष राज्य किया और नष्ट हो गये, आठवें गुरुण्ड राजा के आने पर मुरनामक राजा ने भारत पर आक्रमण किया उसने भारत के आर्यधर्म को नष्ट करने का संकल्प किया, सब देवता (विष्णु) यज्ञांश योगी के पास जाकर बोले कि मुरनाम का दैत्य आगया है । उसने बौद्ध पन्थ के अनुगामी गुरुण्डों को शाप दे दिया और कहा कि जो मुर दैत्य के वश हो जायंगे, वे सब नाश को प्राप्त हो जायंगे । २०००० गुरुण्ड इस शाप से नष्ट हो गये और आठवां राजा का वार्डिल नाम भी नष्ट हो गया । नववां गुरुण्ड राजा मेकल आया उसने १२ वर्ष राज्य किया फिर न्याय पूर्वक शासन करने वाला दशवां राजा लार्डल आया उसने ३२ वर्ष राज्य किया । उसके पश्चात् मकरंद कुल के पैदा हुवे आर्य लोग हिमालय के निवासी बौद्धमत के अनुसरण करने वालों ने देहली वश किया, उनके राजा का नाम आर्जिक था, इस वंश के ११ वें राजा ने ४० वर्ष राज्य किया, इस प्रकार २२०० वर्ष विक्रम के गुजर जाने पर किल किला नगरी में नागवंश का राजा भूतनन्दि ने मौन वंश का विनाश करके स्वयं राज्य किया ।

इस उपरोक्त हिसाब से अभी तक गुरुण्ड वंश का राज्य १८४०+६४+१२ ३२=१९४८ विक्रमी में समाप्त हो जाना चाहिये था और अब मौन राजों में से दूसरा या तीसरा राजा होना चाहिये था । सो अब नहीं है । इस लिये भविष्य झूठा है, और सरासर गप्प है ।

वामन पुराण

मात्स्य वचन के अनुसार जिस पुराण में चतुर्मुख ब्रह्मा ने त्रिविक्रम वामन अधिकार करके त्रिवर्ग धर्म अर्थ काम का व्याख्यान किया है वह १००० श्लोक संख्या से युक्त वामन पुराण कहा जाता है । जिसका प्रारम्भ कूर्म कल्प से किया गया है । +

बृहन्नारद में भी:—

शृणुवत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् ।
त्रिविक्रम चरित्राढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम् ॥
कूर्मकल्प समाख्यानं वर्गत्रय कथानकम् ॥ इत्यादि

सर्वथा मात्स्योक्त ही चिन्ह लिखे हैं और क्रमशः मुख्य विषयों का उल्लेख भी किया है । भेद इतना ही है कि मात्स्य में वक्ता चतुर्मुख ब्रह्मा है । और नारद के अनुसार पुलस्त्य वक्ता है और नारद श्रोता हैं । साथ ही इस के तीन संस्करणों की सूचना भी है कि नारद से व्यास ने सुना, व्यास से सूत ने और सूत से ऋषियों ने । *

मिश्रजी की समालोचना से वामन पुराण के कतिपय संस्करण प्रतीत होते हैं उनकी दी हुई विषय सूची तथा वैंकटेश्वर के छपे वामन पुराण का विषय प्रक्रम

+ **त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः**
त्रिवर्गमप्यधीत्तश्च वामनं परिकीर्त्तितम् ।
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगंशिवम ॥
(मात्स्य० अ० ५३)

* **पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ।**
ततोनारदात् प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ॥
व्यासात्तुलब्धवान् वत्सतच्छिश्यो रोमहर्षणः ।
सुचाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्यएवच ॥
(बृहन्नारदीयम्)

---

* एच. एच. विलसन ने इस शिवशब्द से भ्रान्त हो कर शिव कल्प लिखा है सो सर्वथा अशुद्ध है ।

सर्वथा भिन्न है। उनके अभिमत नारद में पुलस्त्य नारायण संवाद है । वैंकटेश्वर में मुद्रित वामन में पुलस्त्य नारद संवाद है । इसी प्रकार अन्य विषयों में तथा उनके क्रमों में बहुत भेद है। वार्त्तमान प्राप्त पुराण की श्लोक संख्या ५८०० से अधिक नहीं है। मिश्र जी के कथनानुसार इसका उत्तरखण्ड लुप्त हो गया है। और भी साथ की गड़बड़ का परिहार करने के लिये वे कहते हैं।

"श्लोक समूह किस प्रकार नष्ट हुवे सो जाना नहीं जाता प्रत्येक द्वापरयुग में व्यास होते हैं और बहुपुरातन पुराणों को संकलन करते हैं उस में भी श्लोकों का न्यूनाधिक होना सम्भव है और यह भी सम्भव है कि किसी समय व्यास जी ने भी कुछ कथाओं का संग्रह किया हो। और जो पुराण दो द्वापरयुग के विद्यमान रह गये यह दो प्रकार के मिलते हैं।

और व्यास भी एक पदवी है किसी मुख्य का नाम नहीं है, इस समय के पुराण संकलन करने वाले व्यास का नाम कृष्णद्वैपायन है और आगे के अश्वत्थामा व्यास होंगे। इत्यादि अब २८ वां कलियुग इस मन्वन्तर में है । अर्थात् अट्ठाईस बार द्वापर बीत चुका है इसमें २८ व्यास पीछे हो गये हैं और सब ने ही पुराण संकलन किये हैं, कारण कि **"युगान्तेन्तर्हितान् वेदान् ऐतिहासान् महर्षयः लेभिरे तपसा पूर्वम्"** इत्यादि के अनुसार उन्हीं को फिर से सबने लिखा। इसी से कथाओं में भेद पड़गया इस से कथा भेद में शंका नहीं करना। ग्रन्थ बनाने वाला दो बार ग्रन्थ को दोहरावे तो उसमें भेद पड़ जाता है।"

ठीक है। परन्तु यहां तो कृष्ण द्वैपायन के कहे या उनसे भी पुराने व्यास के कहे ये पुराण हैं या किसी और के, यही संदेह बड़ाभारी है। पुराण के अपने लक्षणों को जलाञ्जलि देकर साम्प्रदायिक जाल बिछा लेने से यही प्रतीत होता है कि ये सब लीला गद्दीदार कथक्कड़ व्यासों की है। विदित रहना चाहिये कि पुराण परिभाषा के अनुसार कथा कहने से गद्दीदार का नाम भी व्यास ही है।

ब्रह्मोक्त वामन पुराण का कोई पता नहीं चलता। बृहन्नारदोक्त लोमहर्षण द्वारा कहा गया वामनपुराण वर्तमान ग्रन्थ के २२ वें अध्याय से प्रारम्भ होना चाहिये, और वामन की कथा भी वहां ही से प्रारम्भ होती है। यही कथा वामन पुराण के नाम में हेतु है। वामन पुराण का विषयानुक्रम इस प्रकार से है।

प्रथम हरका दक्षयज्ञ प्रध्वंस, शिव का कालरूप वर्णन, काम दहन, देव दैत्य वा दानव युद्ध प्रसङ्ग में प्रह्लाद युद्ध, अंधक विजय। पुष्करद्वीप, वर्णन, भुवन कोष वर्णन, कर्म विपाक निर्णय, सुकेशिचरित, महिषासुरोत्पत्ति, देवी महात्म्य महिषासुरवध, सरोमहात्म्य, वलिदैत्य वंश वर्णन, वामन कथा (२३-३१) सरस्वती स्तोत्र नाना तीर्थ वनादि माहात्म्य (३२-४२) सृष्टि वर्णन तथा धर्म निरूपण, स्थाणुलिङ्गादि महात्म्य, वेन चरित प्रसङ्ग में कुरुक्षेत्र माहात्म्य, शिवपार्वती वृत्तान्त प्रसङ्ग में विनायकोत्पत्ति, चामुण्डादि वध, कार्तिकेयोत्पत्ति, तारकासुरोपाख्यान। दण्डोपाख्यान में सदा शिव दर्शन मरुदुत्पत्ति, कालनेमिवध, फिर वलि की कथा पुरूरवा उपाख्यान, नक्षत्र पुरुष व्रत, कथाओं सहित तीर्थयात्रा महिमा स्तवादिक, (८३-८८) फिर दूसरी वार वामन कथा (८९-९२) भगवत्स्तुति पुराण सम्पूर्ण।

इस पुराण में प्रायः कथा अलाङ्कारिक रूप में वर्णन करके कतिपय स्थलों पर व्याख्यान करने का प्रयत्न किया गया है, जिस प्रकार वामन और वलिदैत्य की कथा में वामन का विराट्रूप वर्णन, या त्रिविक्रम वामन को '**इदंविष्णोर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्**' इस श्रुति की व्याख्या करने के निमित्त कथा रची गई है। इसी प्रकार दक्षयज्ञ विध्वंसकी कथा के अनन्तर कालरूप शिव की व्याख्या द्वारा अलंकार का घटाना, राशिचक्र को शिवरूप दिखाना, इसी प्रकार नक्षत्र पुरुष व्रत में नक्षत्रमय पुरुष का प्रतिपादन।

इस पुराण में शाक्त सम्प्रदाय का बहुत हाथ है इसी का परिणाम है शिव कामदहन की कथा, स्थाणुलिङ्ग का प्रवेश, देवी और महिषासुर का वृत्तान्त ये बहुत अश्लील रूप में रखे गये हैं। मात्स्योक्त कूर्म कल्प का इसमें कुछ पता नहीं चलता। वलि वामन की कथा दो वार जैसी की तैसी गायी और भी कतिपय विषय दो दो वार पढ़े गये हैं।

एक स्थान पर हमें प्राचीन पुराण का नमूना प्राप्त हुआ है जिसे देख कर अर्वाचीन और पुरातन पुराणों की लेखशैली तथा विचारों को लिपिबद्ध करने के प्रकारों में स्पष्ट भेद जान पड़ता है।

नरकों का निर्णय करते हुवे अर्वाचीन पौराणिक लोग रौरव, असिपत्र वनादि का भयंकररूप दिखाया करते हैं। जैसा कि वामन पुराण में ही कर्म विपाक वर्णन

प्रकरण में (अ० १२) में दिखाया गया परन्तु पुत्र की व्युत्पत्ति के प्रसंग में पुत्र को नरक से बचाने वाला बताया है। इसी प्रकरण के पुंनाम नाम नरक कौन से हैं इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये पुराणकारने श्लोक्त अत्यन्त पुरातन * वचनों का उल्लेख किया है। इसी के साथ वैदिकी श्रुति को नाम भी लिया है। इस विशेष प्रकरण में प्रवक्ता ब्रह्मा है। इसमें प्रतिपादित नरक मनुप्रतिपादित पाप ही है असिपात्र वनादि नहीं हैं। सम्भवतः श्लोक्त वामनपुराण का उद्धरण हो (अ० ६१)

इस पुराण को पुराण कहना कठिन है। माहात्म्यों के साथ लगी कहानियों की अधिक मात्रा है, सर्ग का प्रतिपादक भाग बहुत स्वल्प है, प्रतिसर्ग कथन दक्ष यज्ञ के ध्वंस से किया गया है वंश एक दो के सिवाय शेष नहीं हैं अनुचरित तो सर्वथा लुप्त है।

मिश्र जी का यह कथन बहुत भाग लुप्त है या कुछ एक प्रक्षिप्त है, इसी बात को पुष्ट करता है कि पौराणिकों ने अपने मतलब को साधने के लिये अर्थ को अनर्थ बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। और उलटा सुलटा सब व्यास के नाम मढ़ देने का बड़ा पुण्य कमाया।

* एतत्पुराणं परमं महर्षे संगांगयुक्तं च तथा सदैव
तथैव चोग्रं भयहारिपुण्यं वदामि ते शाम्यति येन पापम् ॥ ७८ ॥
(वामन० अ० ६०)

—:•:-

ब्राह्मपुराण

मात्स्य पुराण के अनुसार यह सब से प्रथम पुराण गिना जाता है । ब्रह्म पुराण प्रथम २ ब्रह्मा ने मरीचि ऋषि के प्रति जितना कहा था, सो ही ब्राह्मपुराण १३००० श्लोक संख्या से युक्त है । इसके लिये और विशेष लक्षण कुछ नहीं बतलाया । बृहन्नारद के अनुसार सब पुराणों से प्रथम यह पुराण व्यासने सब लोकों के हित के लिये नानाख्यान और इतिहास से युक्त धर्म अर्थ काम और मोक्ष को देने वाला दशसहस्र श्लोक संख्या से युक्त कहा है ।

पाश्चात्य विद्वानों के मत से इस में श्लोक संख्या ८००० से अधिक नहीं है परन्तु ब्रह्मोत्तर पुराण के २००० श्लोक और मिलाने से संख्या पूरी हो सकती है ।

पाश्चात्य पण्डितों के मत से इस पुराण में पंच लक्षण नहीं घटते और उड़ीसाके बने हुवे मन्दिरों का इस में उल्लेख होने से यह पुराण १३ वीं शताब्दी की रचना प्रतीत होती है । इस के विपरीत मिश्र जी की सम्मति में यह पुराण ब्रह्मोक्त होने से अत्यन्त प्राचीन है। साथ ही इस में आये हुवे वामन अहल्या, पुरूरवा, उर्वशी, हरिश्चन्द्र शेप कठ आर्ष्टिशेणादिके नाना उपाख्यान ब्राह्मण ग्रन्थ तथा वेदों से उद्धृत हैं, और अन्ताब्दी में रचित हेमाद्रि के ग्रन्थ तथा हलायुद्ध के ग्रन्थों में ब्रह्मपुराण के उद्धरण हैं ।

दूसरा उत्कलदेश के प्रसिद्ध भुवनेश्वर क्षेत्र में भवदेव भट्ट का बनवाया हुवा ११ वीं शताब्दी का अनन्त वासुदेव का मन्दिर अति प्राचीन है। परन्तु ब्रह्मपुराण में उस स्थान पर स्थापित अनन्त वासुदेव की मूर्त्ति का उल्लेख तो है परन्तु मन्दिर का उल्लेख नहीं है । यदि ११ वीं शताब्दी के पश्चात् पुराण रचा जाता तो मन्दिर का वर्णन भी होता ।

तीसरा ब्रह्मपुराणोक्त कृष्ण चरित तथा पुरुषोत्तम माहात्म्यादि कतिपय स्थल ज्यों के त्यों विष्णु और नारद पुराण में अविकल उद्धृत हैं । इस से यही पुराण सब से आदि है ।

इस वर्त्तमान में उपलब्ध होते हुवे ब्रह्मपुराण के साथ मिलता जुलता हुवा एक पुराण आदि ब्रह्मपुराण के नाम से भी विख्यात है। उस में ८००० पद्य ही हैं। प्राय: पुराणों की सूचि में ब्रह्मपुराण की ही प्रथमगणना है। इनबातों पर ध्यान देने से यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मपुराण अतिप्राचीन पुराण है।

परन्तु उपरोक्त सब कथन मिश्र जी के कुछ युक्ति विरुद्ध प्रतीत होते हैं। क्योंकि पहले दिखलाये गये पुराणों के इतना अधिक फेर फार होने पर भी प्राचीन है "अधिक क्या ब्रह्मपुराण में इसी प्रकार उपाख्यान भाग में ऐसी वैदिक कथाएं हैं जिन का अर्थ करने में साधारण पौराणिक लोग अटक जाते हैं।

कतिपय पाश्चात्यों का यह मत है कि बौद्ध धर्म के विनाश के पश्चात् पौराणिकों ने अपने तीर्थ तथा देवमन्दिर बना लिये थे। उन्हीं के माहात्म्य प्रतिपादक भाग पुराणों में अत्यन्त अर्वाचीन काल की रचना है। इस अंश पर मिश्र जी कहते हैं कि "जिन क्षेत्रों और तीर्थों को बौद्धोंने लुप्त कर दिया था पुराणानुसार महात्मा ब्राह्मणों ने फिर उन को विख्यात किया और पुराणों में लिखे उन माहात्म्यों को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रगट किया" जो नवीन माहात्म्य बनाये गये हैं वह अबभी पुराणों में नहीं पाये जाते;।

इसी ब्रह्मपुराण की अति प्राचीनता की पुष्टिमें मिश्र जी का एक प्रमाण यह है कि अनुशासन पर्व में कतिपय अध्याय के अध्याय ब्रह्मपुराण से उद्धृत हैं। इसमें यह सन्देह भी नहीं हो सकता कि महाभारत से पुराण ने लिया है क्योंकि महाभारतमें ही कहा गया है (**म० अनुशा. अ० १४३, १५**)

तथा (ब्र० पु० अ० २६३, २२)

इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणं समुदाहृतम्।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः॥

अर्थात् ब्रह्मा का नाम लेकर उस को उद्धृत किया है।

१३ शताब्दी में इस का रचना काल इस लिये नहीं कि ११ वीं शताब्दी में पुराणों के वर्त्तमान रूप को प्राचीन मानने का आग्रह करना बुद्धि संगत नहीं।

हिमाद्रि आदि के ग्रन्थों में ब्रह्मपुराण के उद्धरण आने से भी यही सिद्ध हो सकता है कि उद्धृत पद्य उस काल में अवश्य ब्रह्मपुराण में परिगणित थे।

मूर्त्ति का उल्लेख होना और मन्दिर का उल्लेख न होना यह कोई हेतु नहीं मन्दिर में भी मूर्त्ति ही प्रधान होने से उस के ग्रहण से मन्दिर का ग्रहण हो ही जाता है। क्या मिश्र जी की सम्मति देवता की स्थापित मूर्त्तियें विना मन्दिर रह सकती हैं।

महाभारतके अनुशासन पर्व के अध्यायों के साथ ब्रह्मपुराण का सम्मेलन भी बहुत विचारणीय है। प्रथम महाभारत में प्रक्षेप नहीं हुवा इस में कोई प्रमाण नहीं है। दूसरा महाभारत से यह उद्धरण नहीं लिया गया, यह सिद्ध करने के लिये उद्धृत पद्य खण्ड न तो महाभारत में है और न पुराण में है। परन्तु उस पद्यार्थ के स्थान पर यह पद्यार्थ है—

"अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते" ॥

परन्तु महाभारत के उस प्रकरण की समाप्ति मे यह अवश्य कहा कि "ब्राह्मं हिमार्गमाक्रम्य वर्त्तितव्यं बुभूषता" ॥ ५५ ॥ परन्तु यही वचन ब्रह्मपुराण में भी है इस से प्रतीत होता है कि वास्तविक ब्रह्मोक्त पुराण इस से भी पृथक् है।

यह प्रकरण महाभारत में वर्णव्यवस्था निर्णय उमामहेश्वर संवाद का है। ठीक ऐसा ही उमामहेश्वर संवाद ब्रह्मपुराण में उद्धृत किया गया है और क्रम से अनुशासन पर्व के अध्याय १४३, १४४, १४५, १४७ सम्पूर्ण ब्राह्मपुराण के अ० २२३, २२४, २२५, २२६ अध्यायों में उद्धृत हैं।

वर्त्तमान उपलब्ध ब्राह्मपुराण का विषय संक्षेपतः यह है।

नैमिषारण्य में सूत ऋषि संवाद, सृष्टि कथन प्रसङ्ग में स्वायम्भुव मनु और शतरूपा के वंश का वर्णन, उत्तानपाद वंश की उत्पत्ति, प्रचेतागण दक्ष की उत्पत्ति, दक्ष सृष्टि, देवसर्ग, पृथुचरित, प्रलय निरूपण, वैवस्वतमनुवंश, कुवलयाश्व धुन्धुमारा प्रसिद्ध राजाओं का चरित, पुरूरवा का वंश, आयु का वंश, कार्त्तवीर्य की कथा (१–१३) वसुदेव जन्म, ज्यामघ चरित, देवकी का सप्तकुमारीलाभ, कंस

का जन्म, सत्राजित चरित, स्यमन्तकोपाख्यान, कृष्ण का सत्यभामा जाम्बवती से विवाह प्रसंग से भूगोल, सप्त द्वीपादि वर्णन, नरक स्वर्ग वर्णन, आकाश पृथिवी परिमाण, सप्तलोका शिशुमार चक्र, ध्रुवसंस्थान, शरीर तीर्थ कथन, (१९-२३)

कृष्णद्वैपायन सम्वाद में भरत खण्ड के गिरि मही प्रान्तादि का सविस्तर वृत्त, औंगदेश के ब्राह्मणों की प्रशंसा, कोणादित्य और सूर्य पूजा माहात्म्य, आदित्य की उत्पत्ति की सम्पूर्ण विस्तृत कथा, (२६-३३) रुद्रमहिमा दाक्षायणी संवाद, पार्वती का आख्यान, मदनदाह, दक्षयज्ञ ध्वंस, शिवकृत ज्वराविभाग, (३४-४१) एकाम्रादिक्षेत्र महात्म्य, विष्णु महीमा प्रारम्भ पुरुषोत्तम क्षेत्रादि का महात्म्य तदन्तरंग पञ्चतीर्थ प्रसंग में मार्कण्डेय का भगवद्दर्शनोपाख्यान, नरसिंह पूजा, श्वेतोपाख्यान, नारायण कवच समुद्र स्नान, विष्णुलोक वर्णन, पुरुषोत्तम माहात्म्य चौबीस तीर्थ वर्णन (४५-७०), गंगोत्पत्ति कथा, तारकासुर प्रसंग में गौरी शिव का विवाह, बलि और वामनावतार के प्रसंग में गंगा का जटा से निकलना, सगर के पुत्रों की कथा, (७१-७८) वाराह तीर्थ, लुब्धक चरित, स्कन्द का विषय विलास, कुमार तीर्थ, पिशाच तीर्थ, क्षुधा तीर्थ, चक्र तीर्थ, इन्द्र तीर्थ, तथा जनस्थान तीर्थ, कथोपकथन, (७९-८८) गरुड़ोपाख्यान, गोवर्धन, धौतपाप कौशिक आदि तीर्थ, शुकोपाख्यान, मालवदेशोत्पत्ति, कक्षीवान की कथा, पुरूरवा उर्वशी संवाद में सरस्वती और ब्रह्मा की कथा। मृग व्याध रूप शिव की कथा, शम्यादि तीर्थ, हरिश्चन्द्रोपाख्यान अजीगर्त्तोपाख्यान, समुद्रमन्थन, इलोपाख्यान, दधीचिलोपामुद्रा का वृत्तान्त, इलातीर्थादि वर्णन (१०८-१७५) वासुदेव माहात्म्य प्रसंग में गंगावतार, रामरावण कथा, फरेषु कथा श्रीकृष्णावतार कृष्ण चरित, (विष्णुपुराणानुसार) कंस द्वारा देवकी के कारागार से लेकर अर्जुन विषाद तक (१८१-२१२) दशावतार वर्णन, नरक और यमलोक वर्णन, व्यासोक्त धर्म्माचरण नानायोनि जन्म, शुभप्राप्ति (२१६-२१८) श्राद्ध कल्प, वर्ण धर्म विचार (२२३-२२६) शुभाशुभगति, वासुदेव महिमा, शंकटदान कथन, सूर्यादि की आराधना, मायाप्रादुर्भाव, महाप्रलय वर्णन कलिग तमविष्य, प्राकृत सर्ग कल्पमान प्रलय के रूप कथन, तापत्रय वर्णन, मोक्षोपाय, आत्मज्ञान सांख्ययोग कथन, व्यास प्रशंसा, श्रवण फलादि । इति ।

इस पुराण में वंश कीर्तन तथा वैदिक उपाख्यान बहुत अच्छे रूप में रखे गये हैं। यद्यपि यह राजस पुराणों में गिना जाता है परन्तु ब्रह्मा की इसमें प्रधानता नहीं है, प्रत्युत विष्णु और सूर्य की है। तीर्थों का इसमें बहुतसा वर्णन है कनखल का वर्णन तथा गंगाद्वार का वर्णन है, परन्तु उस समय हरिद्वार कोई तीर्थ न था।

त्रयोदश अध्याय

(तामसपुराण)

मात्स्य पुराण

इस पुराण की प्राचीनता में बहुत न्यून संदेह है। इसका लक्षण यही पुराण इस प्रकार लिखता है। "जिस पुराण में कल्प के आदि में मत्स्यरूपी जनार्दन ने मनु के प्रति नरसिंह का वर्णन प्रारम्भ कर सात कल्पों का वृत्तान्त कहा है उसी पुराण को मात्स्य पुराण जानो"। इस में १४००० श्लोक संख्या है। देवी भागवत पुराण के अनुसार इस पुराण की श्लोक संख्या १९००० है। बृहन्नारद के अनुसार भी १४००० ही पद्य हैं। वर्तमान उपलब्ध मात्स्य में भी १३००० से न्यून पद्य नहीं उपलब्ध होते।

इस पुराण का विषय विवरण इस प्रकार है:—

ऋषियों का सूत से मत्स्यावतार के कारण प्रश्न, मनु मत्स्य संवाद, मत्स्य द्वारा जल विप्लव काल में मनु का नाव बनाने आदि का उपदेश, जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का वर्णन, ब्रह्मणोत्पत्ति, वेद प्रादुर्भाव, मरीचि नारदाद्युत्पत्ति, ब्रह्मा की उत्पत्ति, आदि सृष्टि विवरण, वाम देवादि सृष्टि, मानवी सृष्टि, देवी सृष्टि, काश्यपान्वय वृत्तान्त, दिति की कथा प्रसंग में मदनद्वादशी माहात्म्य, मरुतों की उत्पत्ति लोकपालाभिषेचन, मन्वन्तरानुकीर्तन, वैन्य चरित, सूर्य वंश निरूपण में अश्वियों की उत्पत्ति, बुध प्रसंग में राजा इलोत्पत्ति, उत्कलादि तीन पुत्रों की उत्पत्ति के अनन्तर इक्ष्वाकु वंश।

वैराज पितृवंश वर्णन प्रसंग में गौरी के शतनाम कीर्तन, अग्निष्वात्त पितृवंश वर्णन, बर्हिषत् पितृवंश वर्णन, श्राद्धकल्प प्रसंग में पिपीलिकावहास कथा, पितृमाहात्म्य पिण्डी करण कल्प, (अ० १६–२२)

सोमवंश वर्णन, चन्द्र बृहस्पति का पुत्र के लिये कलह, पुरुवंश ययाति चरित (अ० २३–४२) प्रसंग से ययाति का इन्द्र तथा गष्टक के साथ ज्ञानमय संवाद,

यदुवंश कीर्तन प्रसंग में कार्त्तवीर्य कथा, वृष्णिवंश स्यमन्तकमणि कथा, कृष्ण चरित, कृष्ण की १६००० स्त्रियों व पुत्रों के नाम आदि, दशावतार वर्णन, (अ० ४३–४७)

देवासुर कथा, तुर्वसुप्रभृति वंश वर्णन, पुरुवंश वर्णन, अग्निवंश वर्णन, पुराणानुक्रम कथन (५३) नाना प्रकार की व्रत परम्परा विधियें पूजोपचारादि कथन (अ० ९४–११२) द्वीपादि वर्णन पुरुरवा की कथा, हिमालयादि का वर्णन, मेरु प्रमाण काल चक्र वर्णन, सूर्य ग्रह नक्षत्रादि वर्णन, मय द्वारा त्रिपुर रचना, देवासुर युद्ध, शिव द्वारा त्रिपुरदहन, तथा तारकाबधादि मन्वन्तरानुकल्प, (१४२) कालमान कथन, युगप्रमाण कथन, यज्ञ विषयक ऋषि वसु संवाद (१४३) तारकावध संक्षेपतः, फिर विस्तार से तारकासुर की कथा, इन्द्र बृहस्पति का राजधर्म संवाद, देवासुर संग्राम, कालनेमि वध, जम्भ बध, इन्द्रादि बन्धन, शिवपार्वती विवाह कथा, कार्त्तिकेयोत्पत्ति,. (१४७–१६०) हिरण्यकशिपु बध प्रसंग में नरसिंहावतार कीर्त्तन (१६१–१६३)

पाद्म कल्प पद्मोत्पत्ति, देवसृष्टि आदि विषयक मनु का मत्स्य के प्रति प्रश्न, मत्स्य का युगधर्म कथन तथा प्रश्न, प्रलय निरूपण, प्रलयानन्तर पुनः सृष्टि, तारकामय आलंकारिक संग्राम, देवासुर संग्राम, विष्णु का कालनेमिआदि दैत्यों के साथ घोरयुद्ध, (१६४–१७९)

वाराणसी आदि नाना तीर्थ माहात्म्य व कीर्त्तन (१८०–१९४)

प्रवरानुकीर्त्तन प्रसंग में भृगुवंश, अंगिरावंश, अत्रि विश्वामित्र, वसिष्ट, पाराशर, कश्यप द्वैपायन, धर्म, आदि वंश कीर्त्तन (११५–२०३)

दान महात्म्य कीर्त्तनादि (२०४–२०७) पतिव्रता माहात्म्य प्रसंग में सावित्री सत्यवान् चरित (२०८–२१४)

मत्स्य का मनु के प्रति राजधर्मोपदेश (२१५–२३९) मत्स्य मनुसंवाद में यात्रा प्रकरण, विष्णुमहात्म्य, वामनावतार कथा (२४४–२४६) वराह चरित कीर्त्तन (२४७–२४८)

समुद्र मथन कथा, देवासुरसंग्राम, अमृतोत्पत्तिकाल, कूर्मोत्पत्ति कथा (२२९–२५२), वास्तुविद्या (२५३–२५७) प्रतिमादि निर्माण (२५८–२६१) लिंग लक्षण, कुण्डादि प्रमाण, प्रतिष्ठा विधि, प्रसाद मण्डपादि के लक्षण, ऐक्ष्वाकमागध भविष्य कीर्त्तन, यवनम्लेछादि का राज्य वर्णन, कलियुग की

उत्पत्ति (२७३) तुला पुरुषदानादि विधि (२७४–२८९) कल्प कथन, मत्स्य का अन्तर्धान, उपसंहार । पुराण समाप्त ।

यह पुराण वास्तव में अति प्राचीन है । यद्यपि इसमें वास्तुविद्या तथा राजधर्म प्रकरण, और कतिपय संवाद अन्यस्थलों से संग्रह करके रखे गये हैं, कुछेक स्थल पद्मपुराण की छाया हैं और व्रत तथा विधान (५४–११२) और नाना तीर्थादि माहात्म्य (१८०–१९४) आदि भाग पीछे मिलाये गये हैं, परन्तु दश अवतारों की आलंकारिक व्याख्या तथा शिव ब्रह्मा विष्णु आदि की दैवी कथाओं के रूप के अनुसार व्याख्या करने का इस पुराण ने बहुत स्थान पर प्रयत्न किया है, इसी से इस पुराण की विशेष महत्ता प्रतीत होती है । इसका विशेष स्पष्टीकरण अवतार सिद्धान्त की समालोचना प्रकरण में लिखेंगे ।

-:o:-

कूर्म-पुराण

मत्स्यपुराण के मत से जिस पुराण में कूर्मरूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म अर्थ काम और मोक्ष का माहात्म्य कहा है। और लक्ष्मी कल्प को साथ रखकर इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से ऋषियों के प्रति कहा गया है वही १८००० श्लोक संख्या युक्त कूर्मपुराण कहाता है। ×

परन्तु नारदपुराण के मत से चार संहिताओं वाला १७००० श्लोक संख्या से युक्त कूर्मपुराण स्वीकार किया है। और मात्स्योक्त लक्षण भी उन्हीं शब्दों में स्वीकार किये हैं। +

इस के विपरीत वर्तमान उपलब्ध कूर्मपुराण के उपोद्घात में लिखा है कि ये १५वां कूर्मपुराण है। जिसके चार विभाग हैं जिसमें क्रम से ब्राह्मी, भागवती, सौरी, वैष्णवी, ये चार संहिताएं धर्म अर्थ काम और मोक्ष को देने वाली हैं। ये ब्राह्मी चारों वेदों के अनुकूल है। इस में ६००० श्लोक संख्या हैं। *

वर्त्तमान में प्राप्तपुराण को ब्राह्मी संहिता पर ही समाप्त किया गया है। शेष तीन संहिता का पृथक् कहीं भी निर्देश नहीं किया है। यातो ये संहिता लुप्त हो गई हैं। या उनका कूर्मपुराण में परिगणन नहीं होता होगा।

× यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः॥
इन्द्रद्युम्न प्रसंगेन ऋषिभ्यः शक्रसंन्निधौ।
अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मी कल्पानुषङ्गिकम्॥
(मात्स्यम् अ० ५३)

+ तत्सप्तदश साहस्रं सुचतुः संहितं शुभम्।
(बृहन्नारद)

* इदन्तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्म्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥ २१॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्त्तिताः।
चतस्रः संहिताः पुण्याः धर्मकामार्थमोक्षदाः॥ २२॥
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता॥
भवन्तिषट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥ २३॥

इसका निर्माण काल उपात्त सामग्री की दृष्टि से अर्वाचीन ही प्रतीत होता है। क्योंकि इसमें यामल तन्त्र, आर्हत धर्म तथा अन्य नाना विधि पंथों को तामस खण्ड कहकर त्याज्य बताया गया है। परन्तु इनका निर्माण काल बहुत ही अर्वाचीन है। जैनियों के काल के पश्चात् पुनः सनातन मत के प्रचार के समय इस पुराण को संगृहीत किया गया है।

इसका सार इस प्रकार है:—

पूर्वार्द्ध:—शौनकादि के प्रश्न करने पर सूत का कथारम्भ। समुद्र से लक्ष्मी का उद्भव, इन्द्रद्युम्न की मोक्ष का वर्णन। कूर्मरूपी भगवान् का लक्ष्मी को मोहनार्थ भेजना, सृष्टि वर्णन, वर्णाश्रम धर्म, प्राकृतसर्ग, काल संख्या, सृष्टि की पूर्ण रचना का नव सर्ग क्रम से कथन, मानवसर्ग, त्रिदेव की उत्पत्ति, इसी प्रसंग में शिव पार्वती कथा, स्वायम्भुव वंश, दक्षयज्ञ कथा, दक्ष वंश, हिरण्यकशिपु नरसिंह कथा। काश्यपवंश, ऋषि वंश, राजवंश, वसु की कथा, इक्ष्वाकुवंश, रामचरित, चन्द्रवंश में विष्णूपासक पुरुरवा आदि की कथा, जयध्वजवंशी राजा दुर्जय की कथा, यदुवंश, कृष्ण का उपमन्यु के साथ शिव विषयक संवाद, शिव लिङ्गोत्पत्ति, कृष्ण के पुत्र साम्बादि के वंश, पार्थ व्यास संवाद, युगवंशानुकीर्त्तन, कलि वृत्तान्त शिव की प्रधानता, काशी माहात्म्य, प्रयाग माहात्म्य (३१-४०) भुवन विन्यास वर्णन प्रसंग में स्वायम्भुव मनुवंश, खगोल निरूपण, भुवन कोषवर्णन, नक्षत्र तारादि गति कथन (४३—५०) व्यासोत्पत्ति और विष्णु माहात्म्य।

उत्तरार्द्ध:—नारायणादि के प्रति महेश्वर का प्रकृति पुरुष विवेक कथन, ईश्वर गीता, हरिहरात्मकमूर्त्तिनिरूपण, ईश्वर विभूति, सांख्य सिद्धान्त, आचार निरूपण, भक्ष्याभक्ष्य, नित्यकर्म, श्राद्धकर्म, व्यासगीता, वानप्रस्थाश्रम धर्म, यतिधर्म, प्रायश्चित प्रकरण, प्रयागादि तीर्थ वर्णन (अ० ३५—४४) प्रलय निरूपण।

पुराण समाप्ति

इसके उत्तरखण्ड में सभी शास्त्रीय विषय हैं। और सभी प्राचीन शास्त्रकारों के शास्त्रों का निष्पक्षपात दृष्टि से विचार किया है। विचित्रता यह है कि शैव और वैष्णवों के परमदेवताओं का प्रथम पूर्वार्द्ध में तो प्रतिपादन तथा प्रशंसा भी की, परन्तु उत्तरार्द्ध में गृहस्थों के धर्म निरूपण करते हुवे कूर्मपुराणकार वैष्णवों और शैवों; दोनों के प्रति अत्यन्त घृणा दिखाता है।

+ "पाखण्डियों, विरुद्धकर्मों में लगे हुवे और वाममार्ग पर चलने वाले तथा वैष्णव और शैवों को वाणीमात्र से भी आदर न करे।"

कृष्ण द्वारा शिव की स्तुति पूर्वार्द्ध में कराई गई है इससे यह शैव प्रधान पुराण समझा जाता है। इसी प्रसंग में देवी माहात्म्य, वाराणसीमाहात्म्य आदि अन्य विषय भी शैव की दृढ़ता में ही हैं।

यदि इस पुराण के पूर्वार्द्ध में से शैव और वैष्णवों के देवताओं की लीला के २३ अध्याय, और उत्तरार्द्ध में से १० अध्यायों को निकाल दिया जावें, तो शेष पुराण ६६ अ० का बहुत ही शुद्ध और पंच लक्षणात्मक आदर्श पुराण का नमूना बन सकता है।

-:०:-

\+ पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथैवच।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १५॥
(कूर्म० उत्त० अ० १६)

लिंग-पुराण

मात्स्यपुराण के अनुसार जिस में अग्नि लिङ्ग में स्थित होकर महेश्वर देव ने धर्म अर्थ काम और मोक्ष का उपदेश किया और अग्नि कल्प से लेकर प्रलय तक वृत्तान्त कहा वह लिङ्गपुराण कहाता है। इस पुराण की श्लोक संख्या ११ सहस्र है।

बृहन्नारद के अनुसार प्रवक्ता महेश्वर नहीं परन्तु व्यासदेव हैं। इस पुराण के दो विभाग हैं, पद्य संख्या ११००० है। वर्तमान में प्राप्त लिङ्गपुराण में ९००० से अधिक नहीं है। शेष लक्षण मात्स्य के अनुसार ही हैं। इस पुराण का बहुतसा विषयांश प्राचीनकाल का प्रतीत होता है, कम से कम योगसाधन, सृष्टि प्रकरण, आचार तथा धर्म प्रतिपादन, वंशानुचरित, खगोल और भूगोल वर्णन, प्रलय प्रकरण ये अत्यन्त प्राचीन रूप से ही उद्धृत प्रतीत होते हैं। शेष सब शैव साम्प्रदायिकों की साम्प्रदायिक कथाएं तथा पारस्परिक द्वेष और माहात्म्य और स्तोत्रादि सब अर्वाचीन है। पारायणमात्र से ही प्रतीत हो जाता है कि प्राचीन और साम्प्रदायिक अर्वाचीन मेल में कितनी असम्बद्धता है।

लिङ्गपुराण में विषय प्रतिपादन इस प्रकार हैं:—

पूर्वार्ध में:—उपोद्घात, सूत ऋषिसंवाद, पुराणोत्पत्ति, ब्रह्माण्डरूप लिङ्ग का सृष्टि स्थिति और लय कथन, कालमान, ब्रह्माण्ड निरूपण, देव पितृ ऋषि आदि की सृष्टि, व्यास शिव प्रसाद प्रसंग से योगाचार्य की कथा और अष्टांग योग का सविस्तर वर्णन (अ० ८, ९) वामदेव का उद्भव, गायत्र्युद्भवाख्यान, अघोर विधान, लिङ्गोत्पत्ति कथा (१७-२२) व्यासों की उत्पत्ति, शिवोक्तस्नान, नित्यकर्म, पञ्चयज्ञ विधान, लिङ्गार्चन, सुदर्शनाख्यान में संन्यास वर्णन, शिवभक्त श्वेत का वृत्तान्त, शिवाराधन व स्तोत्र और माहात्म्य(३०—३४) विष्णुभक्त राजा क्षुप और शिवभक्त दधीचि का परस्पर कलह और दधीच का विजय (३५—३६) कलह करते ब्रह्मा विष्णु को शिव का वरदान, आदि सर्ग निरूपण, युग धर्म, लोकवृत्ति निरूपण, वेदादिविद्या विभाग कलिवृत्त, कल्कि की उत्पत्ति, मन्वन्तराख्यान, शिव की योगमाया से ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति, शिला नन्दिकेश्व-

रादिकी कथा (४१–४३) सूतकृत शिव का विराट् रूप वर्णन, सप्तलोक वर्णन, सप्तद्वीप वर्णन, भूलोक ऊर्ध्वलोकादि वर्णन (४५–५२) खगोल गति विज्ञान, ध्रुवसंसार निरूपण (५३–६२) दक्ष का वशिष्ठ तक वंश वर्णन (६३–६४) सोमवंश और सूर्यवंश, तण्डिकृत स्तोत्र, ययाति का राजा सात्वत तक वंश, यदुवंश में श्रीकृष्ण चरित (.६५–६९) शिव से उत्पन्न आदिसर्ग निरूपण (७०) सालंकार वर्णित त्रिपुर की उत्पत्ति और दाह (७१-७२) लिंगपूजा (७३–७४) योगाङ्गधारणादि कथन (७५) शिवक्षेत्र, भक्ति, माहात्म्यादि वर्णन (७६–७९) पाशुपाशविमोक्षव्रत प्रसङ्ग में लिंगपूजा (८०–८१) स्तोत्र व्रत मन्त्रादि प्रसंग में ध्यानयोग का वर्णन सिद्धपद प्राप्ति, आचार निरूपण, स्त्रीधर्म, दोष प्रायश्चित्त, योगविधि में प्रणव महिमा, शिवोपासना (८७–९१) वाराणसी माहात्म्य, अन्धक हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु आदि का वध करते समय नृसिंह का वीरभद्र शिव द्वारा पराभव (९३–९६) जलन्धर वध, शिव से विष्णु को चक्र लाभ, दक्षयज्ञ विध्वंस, हरगौरी विवाह, गणेश की उत्पत्ति, इन्द्र की शिवभक्ति, उपमन्यु की कथा । कृष्ण का उपमन्यु से शिव दीक्षा ग्रहण ।

उत्तरार्द्ध में:—वैष्णवों का निरूपण लक्षण माहात्म्यादि (१–४) वैष्णवों से शिवों को उच्च बनाना । अम्बरीश्वर चरित में विष्णु की माया, लक्ष्मी की उत्पत्ति, ऐतरेय द्विज कथा. विष्णुमन्त्रापेक्षया शांभवमन्त्र की श्रेष्ठता (५–८) पशुपतित्व वर्णन, पशुपाश मोक्ष, लिंगपूजा, शिव की आठ मूर्त्तियें, सर्वरूप वर्णन रुद्रकृत उपदेश, उमामहेश्वर पूजा, दीक्षाविधि, शिवार्च्चनव्याख्या (२४) तान्त्रिक पूजा, मनु का श्रीजयाभिषेक, नानाप्रकार दान विधियें (२८–४४) जीवित श्राद्ध विधि निरूपण (४५) लिंग माहात्म्य. लिंगस्थापन विधि, प्रतिष्ठा जपहोमादि विधान, वज्रवाहविकाख्य विद्या, आदि तन्त्रसाधन विधि, पुराण श्रवण फल । समाप्ति ।

उत्तरार्द्ध तो सर्वथा साम्प्रदायिक होने से अत्यन्त अर्वाचीन है यद्यपि उस में अर्चनाव्याख्या, अष्टमूर्त्तित्व, प्रकृत्यहंकारादि निरूपण यह सब तत्व प्राचीन हैं । परन्तु रचना सब नवीन है । पूर्वार्द्ध में भी त्रिपुरदाह, नृसिंह पराजय, दधीच की कथा, शिलाद की कथा, कृष्णोपमन्यूपाख्यान, ये सब लीला भी साम्प्रदायिकों की घड़न्त हैं । इसी प्रकार शिव को बड़ा करके शेष ब्रह्मा विष्णु को हर स्थान पर

नीचा दिखाने का यत्न किया गया है। उत्तरार्द्ध में ८ अध्यायों में स्पष्ट ही है। इसी नवीन मिलावट के कारण प्रायः सृष्टिक्रम सृष्टि वर्णन, वंशानुचरित आदि जो अब एक क्रम से कहे हुवे नहीं मिलते प्रत्युत कुछ टूट कर मिलते हैं। यदि इस नवीन रचना के अंशों को सर्वथा उड़ादिया जावे तो शुद्ध पञ्च लक्षण पुराण प्राप्त हो सकता है।

इस पुराण में बहुतसी कथाएँ अलंकार के रूप में भी रखी हैं। जैसे शिव का विराट्रूप अर्चना की व्याख्या वास्तविक योगियों और ज्ञानियों के लिये प्रतिमा पूजनादि का खण्डन आदि कतिपय विषय बहुत विचार पूर्वक रखे गये हैं। खगोल विज्ञान इसका विशेष द्रष्टव्य है।

आग्नेय-पुराण

मात्स्य के अनुसार इस पुराण का लक्षण यह है कि अग्नि देवता ने वशिष्ठ के प्रति ईशान कल्प के वृत्तान्त को प्रारम्भ करके जो उपदेश किया है वही १६००० श्लोक संख्या का आग्नेय पुराण है।

नारद पुराण के अनुसार इसी लक्षण वाला आग्नेय पुराण १५००० श्लोक संख्या वाला है। आग्नि पुराण दो रूप में पाया जाता है। प्रथम में १८१ अध्याय हैं, द्वितयि में ३८३ आध्याय हैं। इनमें दूसरा तो वर्त्तमान में प्रकाशित ही प्राप्त होता है, परन्तु प्रथम अभी कहीं प्रकाशित नहीं हुआ। प्रथम का विषय प्रतिपादन इस प्रकार है:—

प्रथम वह्नि पुराण:—ऋषियों का प्रश्न, अग्नि की स्तुति, ब्रह्मा की स्तुति, स्नान भोजन विधि, आग्निक तप, वेणु कथा, पृथुकथा, गायत्री कल्प, ब्राह्मण प्रशंसा, सर्गानुशासन, गणभेद, योगनिर्णय, सर्गानुकीर्त्तन, सती और रुद्र की कथा, काश्यप सृष्टि, प्राजापत्य सृष्टि, बराह और नरसिंह अवतार वर्णन, देवाम्बरीष संवाद में वैष्णव धर्म निरूपण, व्रत ज्ञान माहात्म्य पूजा आदि (अ०-२९-४९) च्यवन नहुष संवाद में तुला पुरुषदानादि, यज्ञ, आराम वृक्षादि प्रतिष्ठा, वामन की कथा, क्रिया योग, मुञ्जलोपाख्यान, शिव की कथा, दानावस्थानिर्णय, संग्राम प्रशंसा, रोहणी का अष्टमी कल्प (अ० ४९-६७) वैवस्वतानुकीर्त्तन, सगरोपाख्यान, गंगावतार, सूर्यवंश माहात्म्य, सीताशाप, विश्वामित्र यज्ञ रामचरित्र रामायण के अनुसार (अ०७३-१८१) श्रवण फल, अनुक्रम वर्णन तथा पुराण समाप्ति।

इस विषयानुक्रम से इस पुराण को तामस पुराणों में गिनना सर्वथा ही अन्याय है। क्योंकि इसमें दशावतार का क्रम, रामचरित तथा वैष्णव धर्म निरूपण ये सब मुख्य तथा अधिकांश विषय इस पुराण को सात्विक बना रहे हैं। ईशान कल्प की कथा इसमें भी न होने के तुल्य है।

प्रकाशित हुवे आग्नेय पुराण का विषय प्रतिपादन इस प्रकार हैं:—

द्वितीय अग्नि पुराणः -- ऋषि सूत संवाद, आरम्भ प्रश्न, मत्स्य कूर्म और वराह नृसिंह अवतार की अति संक्षिप्त कथा, रामचरित रामायण के अनुसार (अ०-५–१२) हरिवंश कथा, महाभारत की कथा (१२–१५) कृष्णावतार, कश्यप सृष्टि, वैष्णवी पूजा स्नान दान जप दीक्षा अभिषेक मण्डल, ४८ संस्कार, पवित्रा रोहण, देवालयस्थापन, शिल्पज्ञान, प्रासाद लक्षण, मूर्तिलक्षण प्रतिमा लक्षण, ध्वजादि स्थापन, कूपादि प्रतिष्ठा (२१–७०) गणेश पूजा, सूर्यपूजा, शिवपूजा, अग्निपूजा, चण्डपूजा, पवित्रारोहण, दीक्षासंस्कार, कला शोधन, अभिषेकादि कथन, नाना प्रकार की प्रतिष्ठाएं, गृहनगरादि सम्बन्धी वास्तु विद्याज्ञान (७२–१४६) स्वायम्भुव सर्ग कथन, भुवन कोष वर्णन (१०७–१०८) तीर्थादि के माहात्म्य, (१०९–११६) श्राद्ध कल्प (११७) जम्बुद्वीप वर्णन ज्योतिष के अनुसार दिनदशा काल गणना [१२१–१२२] वैद्यक के नानाप्रकार के तान्त्रिक योग, इससे आगे तांत्रिक नाना प्रकार के मन्त्र साधन तथा षट्कर्म साधन, [१२४–१४२] कुब्जिकाआदि देवियों की पूजा [१४३–१४७] मन्वन्तर कथन वर्णाश्रमेतर धर्म कथन, गृहस्थधर्म कथन, आचार प्रतिपादन [१५५–१६२] श्राद्धविधि, ग्रहयज्ञ, नानाधर्म कथन, वर्णधर्मादि कथन, प्रायश्चित्त, [१६९–१७४] व्रत निरूपण [१७५ २०८] दाननिरूपण [२०९–२१३] संध्या विधि, गायत्र्यर्थ, राज्याभिषेक राजधर्म, स्वप्नज्ञान, शाकुनज्ञान, कामशास्त्र, स्त्री पुरुष लक्षण रत्नादि परीक्षा, धनुर्वेद, अस्त्रादि शिक्षा, [२१८–२५२] व्यवहार कथन, दायविभाग, दण्डविभाग, ऋणविभाग, [२५३–२५८] ऋगादि विधान, देवपूजा माहेश्वर स्नान, वेदशाखादि कीर्त्तन, यदुवंश सूर्य और चन्द्रवंश तुर्वसुजनु और द्रुह्यु-वंश, आयुर्वैदिक सिद्धौषधि कथन, हस्त्यश्वादि चिकित्सा, अश्वगजादि शांति दंश सर्पादि चिकित्सा, बाला रोग चिकित्सा [२७९–३००] सूर्यादि की अर्चना, नारसिंहादि का मन्त्रादि कथन, [३०३–३२७] छन्दः शास्त्र काव्यादि लक्षण, व्याकरण, कोष [३२८–३६७] नित्यनैमित्तिक प्रलय, गर्भ निरूपण, यमनियमादि योग के अष्टांग, ब्रह्मज्ञान गीतासार, यमगीता पुराण माहात्म्य । समाप्त ।

—:०:—

यह सब विषयों का एक विचित्रसा कोष है इसमें विषयों का कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं, ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले पुराण संग्रहकार ने जो जहां से भी मिला और जिस क्रममें भी हाथ आया गांठ के धरलिया। और पुराण के सृष्टि और प्रलय विषयक मुख्य २ भाग को कहीं २ डाल छोड़ा है। पुराणों की और गप्पों की सर्वथा उपेक्षा करदी है।

वृक्षायुर्वेद, धनुर्वेद राजधर्म आदि कतिपय विषय पर्याप्त विस्तार से लिखे गये हैं। यदि इस पुराण से अर्चना और महात्म्यादि जिनसे इसका आधे से अधिक भाग भरा हुआ है पृथक् कर दियेजावें तो यह एक अच्छा संस्कृत के विश्वकोष का नमूना बन सकता है। इसकी प्राचीनता के विषय में कोई विशेष प्रमाण नहीं विषय विज्ञान प्राचीन होने पर भी नवीन संग्रह ही प्रतीत होता है। प्रथम अग्नि पुराण के विषयानुक्रम और द्वितीय अग्निपुराण के विषयानुक्रम में इतना अन्तर और हेरफेर है कि दोनों का एक कर्त्ता मान लेना बड़ी अशुद्धि है।

-:o:-

वायुपुराण और शिवपुराण

मात्स्य और नारद दोनों पुराणों ने ही शिवपुराण का सर्वथा उल्लेख नहीं किया। इसी से बहुतों के मत में शिवपुराण की गणना महापुराणों में न करके उपपुराणों में ही की जाती है।

परन्तु वायुपुराणीय रेवा महात्म्य में लिखा है कि पुराणों में सब से उत्तम वायु का कहा पुराण है, जिस के सुनने मात्र से शिवलोक की प्राप्ति होती है। जैसा शिव है उसी प्रकार वायुने शिवपुराण कहा है, शिवभक्ति के समायोग होने से एक ही पुराण के दो नाम रखे गये हैं। +

इसी प्रकार रेवा माहात्म्य का चतुर्थ पुराण, वायु का कहा वायवीय पुराण कहाता है, शिवभक्ति का इसमें समायोग होने से दूसरे नाम से शैवपुराण भी कहाता है। इस में २४००० श्लोक तथा ४ पर्वोंमें बंटा हुवा है। *

यद्यपि वायुपुराण के रेवा माहात्म्यकार का यही मत है, परन्तु शिवपुराण के आरम्भ में तथा वायवीय संहिता के प्रारम्भ में शिवपुराण को ही विश्वेश्वर संहिता आदि १२ संहिताओं से युक्त १ लक्ष श्लोकात्मक कहा गया है उसी का व्यास कृत संक्षेप २४००० सहस्र श्लोकों में ७ संहिता युक्त शिवपुराण माना गया है। इस में वायुपुराण वायवीय संहिता के अतिरिक्त भी कोई है इस का निर्णय कुछ भी नहीं है। शैवपुराण की रचना अत्यन्त आधुनिक तथा सर्वथा साम्प्रदयिक प्रतीत होती है अतः इसको प्राचीन महापुराणों में गिनना भूल है। इस की अपेक्षा वायुपुराण को ही १८ पुराणों की गणना में स्वीकार करना चाहिये।

\+ पुराणेषूत्तमं प्राहुः पुराणं वायुनेरितम्।
यस्य श्रवणमात्रेण शिवलोकमवाप्नुयात्॥
यथा शिवस्तथा शैवपुराणं वायुनोदितम्।
शिवभक्ति समायोगान्नामद्वयविभूषितम्॥

* चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम्।
शिवभक्तिसमायोगात् शैवं तच्चापराख्यया॥
चतुर्विंशति समाख्यातं सहस्राणि तु शौनक चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तम्
(वायुपुराणीय रेवामाहात्म्य)

मात्स्य कथन के अनुसार श्वेतकल्प का आरम्भ करके वायुने जिस में धर्मों का वर्णन रुद्र के माहात्म्य के सहित किया है वही पुराण २४००० श्लोकों से युक्त वायवीय पुराण कहाता है।

बृहन्नारद के अनुसार भी यही वायुपुराण का लक्षण है। परन्तु बृहन्नारद के दिये विषयानुक्रम में श्वेतकल्प को स्थान मात्र भी उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार वायुपुराण में प्रतिपादित विषयानुक्रम भी बृहन्नारद के अनुसार नहीं।

वर्त्तमान वायुपुराण में यद्यपि आरम्भ में श्वेतकल्प नहीं है परन्तु अध्याय २२ से २६ वां श्वेतकल्प प्रारम्भ किया है। शिवपुराण में कही ७ वीं वायवीय संहिता का भी लक्षण श्वेतकल्प को ही माना गया है। और वायुप्रोक्त पाशुपत धर्म का निरूपण किया है। इस का विषयानुक्रम वायुपुराण से बहुत भिन्न है। शैवान्तर्गत वायवीय संहिता के विषयक्रम को हम शैव की विषयानुक्रमणी में दिखायेंगे यहां उपलब्ध वायुपुराण का विषयानुक्रम दिखाते हैं।

वायुपुराण के ४ पाद हैं:—

१ प्रक्रियापाद, २ अनुषङ्गपाद, ३ उपोद्घातपाद, ४ सहारपाद, ब्रह्माण्डपुराण म हम दिखा आये हैं कि ब्रह्माण्डपुराण इसी वायुपुराण की प्रतिछाया प्रतीत होती है। दोनों में मुख्य चारपाद ये ही हैं।

१ प्रक्रियापादः—मंगल, कुरुक्षेत्र में सूत का आगमन, व्यास की उत्पत्ति, ऋषि सूत संवाद में वायुसंवाद, पुराणानुक्रम, विश्वामित्र वसिष्ठ का विरोध, मृगया-व्यसनी पुरुरवा का यज्ञ में प्रवेश और उस का नाश, सत्र वर्णन, प्रजापति की सृष्टि, पुराणलक्षण, भूतसर्ग, प्राकृतसर्ग, हिरण्यगर्भोत्पत्ति, ईश का दिन तथा रात, वराह कल्प।

२ अनुषंगपादः—प्रतिसंधि कीर्त्तन, हिरण्यगर्भ वर्णन, कल्प लक्षण, पृथिवी आदि सन्निवेश, युग और युग धर्म निरूपण, पृथिवी द्रोह, आश्रमधर्म, देवपितृ पक्षिगणादि भूतसंघ की उत्पत्ति, मानससर्ग, रुद्रसर्ग, स्वायम्भुव मनुवंश, धर्मसर्ग, शतरुद्रोत्पत्ति, योगाङ्ग प्राणायाम वर्णन, योग निरूपण (अ० ११-१२)

गर्भोत्पत्ति प्रकार, पाशुपत योग, आचार, भिक्षुधर्म (१६ १८) अरिष्ट (१९) ओंकार प्राप्ति, कल्पनिरूपण, महेश्वर के अवतार (२३)

विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति, शिव की महिमा, शङ्कर से विष्णु को वरप्राप्ति मधुकैटभोत्पत्ति और वध, भृगु के मानसपुत्र, (२४—२५)

स्वरोत्पत्ति, शङ्कर का नीला लोहित नाम, कतिपय आचार, ऋषिसर्ग, अग्नि वंशवर्णन, पितृवंश वर्णन (३०) देववंश वर्णन प्रणव निश्चय युगधर्म निरूपण स्वायम्भुव वंश, सप्तद्वीप सन्निवेश वर्णन (३४ ५३) प्रसङ्ग में सप्तद्वीप वर्णन ज्योतिष् प्रचार, सूर्यगति निरूपण, शिवलिङ्गार्चन (५५) काल परिमाण युग-धर्म निरूपण, वेद व वेदशाखा विभाग, पृथुवंश, मनुवैवस्वत सृष्टि वर्णन ।

३ उपोद्घात पादः—प्रजापति वंशानुवर्णन, भृगुआदिकों की उत्पत्ति, अङ्गिरा, मरीचि और दक्ष का वंश, धर्म, सोमवंश, आदित्य और रुद्रों का वर्णन प्रसङ्ग से वामनावतार, आकूतादि वंश, दनुवंश, गन्धर्व और राक्षस वंश रावणादि का जन्म, पितृसर्ग, श्राद्धकल्प प्रसङ्ग से कार्त्तिकेयोत्पत्ति, अग्निष्वात्तादि पितृ वर्णन पिण्डदान विधि, विश्वेदेवों की उत्पत्ति, शूद्र के पञ्चयज्ञ ७६) पितृश्राद्ध कल्प, (७१ ८३) वरुणवंश, मार्त्तण्ड वंश वर्णन, वैवस्वत मनुवंश वर्णन, वैवस्वत मनुवंश, गीतालंकार निर्देश, इक्ष्वाकु, मान्धाता हरिश्चन्द्र सगर भगीरथ आदि का वंश निमि सोम और भृगुवंश वर्णन, आयु विश्वमित्र दिवोदास नहुष यदु वृष्णि और कृष्णवंश वर्णन, विष्णु के अवतार निरूपण वलि वामन कथा, तुर्वसुवंश वर्णन अङ्गराज पुरु मागधेय, परीक्षित आदि का वंश कथन ।

४ उपसंहार पादः—सावर्ण मनुवंश वर्णन, कालमान भूर्लोकादि व्यवस्था प्र-तिसर्ग वर्णन, वायुपुराण की शिष्य परम्परा, गयामाहात्म्य, गयासुर की कथा, शि-लोपाख्यान, गदाधराख्यान, गयायात्रा, गयाराज का यज्ञ । पुराण समाप्त ।

इस उपरिलिखित पुराण विषय क्रम को देखकर एक संशय बड़ा भारी उठ खड़ा होता है कि यह ४ पादों में विभक्त ब्रह्माण्ड और वायु दोनों पुराणों की समानता ही क्यों है । हमारी सम्मति में वास्तविक वायु पुराण वर्त्तमान में मिलता

ही नहीं है। बृहन्नारद की दी हुई विषय सूची में और इस में बहुत ही भेद है। इसमें चारपाद और उसके दो भाग हैं। इस गड़बड़ को देखकर हम इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि वर्त्तमान उपलब्ध सब प्रकार वायुपुराण संग्रह मात्र है। तथापि इनमें प्राचीन विषयों के साथ साम्प्रदायिक पूजा आदि का क्रम पीछे से अपना २ स्वार्थ साधने के निमित्त जोड़ दिया है। यह सब बौद्ध और जैनों के पीछे पौराणिक धर्म ने प्राचीन ऋषि और देवों के नाम पर उनके ही वंश चरित कीर्त्तन करते हुवे अपने सम्प्रदाय फैलाए हैं।

तथापि इसमें वंश वंशानुचरित, देवताओं और पितरों का निर्णय, कालमान, सर्ग क्रम प्रतिसर्ग वर्णन आदि सभी प्राचीन तथा आर्ष पद्धति को अनुसरण करता है, इसमें संशय नहीं है।

उपसंहार पाद वास्तव में प्रक्षिप्त है और व्यासोक्त भी नहीं हो सकता क्योंकि इसमें सूत अपनी ओर से व्यास की कथा सुनाता है। दूसरा प्रायः पुराणों की समाप्ति पर प्रतिसर्ग या संसार का संहार वर्णन किया जाता है। इसी कारण इस चतुर्थपाद का नाम भी संहारपाद या उपसंहार पाद है। चतुर्थपाद के १०२ अध्याय में प्रलय कहा गया। १०३ में समाप्ति कर के पुराण श्रवण फल, पुराण के कथनोपकथन द्वारा शिष्य परम्परा का निर्देश भी किया गया है। वह इस प्रकार है—ब्रह्मा ने वायु को, वायु ने उशना को, उशना मे बृहस्पति को, उसने सविता को, उसने मृत्युको, उसने इन्द्रको, उसने वसिष्ठ को, उसने सारस्वत को, उसने त्रिधामा को, उसने शरद्वाम् को, उसने त्रिविष्ट को, उसने उन्तरिक्ष को, उसने वार्षी को, उसने त्रय्यारुण को, उसेन धनंजय को, उसने कृतंजय को, उसने भरद्वाज को, उसने गोतम को, उसने निर्यन्तर को, उसने वाजश्रवा को, उसने सोमशुष्मा को, उसने तृणविन्दु को, उसने दक्ष को, उसने शक्ति को, उसने गर्भस्थपराशर को, उसने जातुकर्ण को, उसने व्यासद्वैपायन को, उसने सूत शांशपायन को, उसने अपने पुत्र को सुनाया। इस प्रकार इस पुराण को समाप्त कर दिया है कि यह पवित्रपुराण श्रद्धारहित, पुत्ररहित, अहित करने वाले को न सुनाना चाहिये। तदन्तर अन्तिम मंगल है इसके पश्चात् व्यास के संशय की कथा, गया माहात्म्य, शिलोपाख्यान, गदाधरोपाख्यान आदि ११ अध्याय ये पीछे की मिलावट हैं।

इसी प्रकार मत्स्यपुराण में सारा साम्प्रदायिक भाग निकाल देने पर शेष शुद्ध-पंच लक्षण पुराण शेष रहजाता है।

इसके आगे द्वादश संहिता वाले शिवपुराण की आलोचना करते हैं:—

शिवपुराणकार के मत से यह शैवपुराण साक्षात् शिवने एक लक्ष श्लोकात्मक १२ संहिता में विभाग करके कहा है। संहिताओं के नाम यह हैं—विधेश्वर संहिता, रुद्र संहिता, विनायक संहिता, ओम् संहिता, मातृ सं०, रुद्रैकादश सं०, कैलास सं०, शतरुद्र सं०, कोटिरुद्र सं०, सहस्र कोटिरुद्र सं०, वायु सं०, धर्म सं०, इन बारह संहिताओं को व्यास ने संक्षिप्त कर २४००० श्लोकात्मक सात संहिताएं ही रहने दीं। जिन में विधेश्वर, रौद्र, शतरुद्री, कोटिरुद्रा, औम, कैलास और वायवीय संहिता हैं। प्राचीन सर्गमें तो यह पुराण शतकोटि पद्य (१०००००००००) का कहा जाता था×।

शिवपुराण का विषयानुक्रम इस प्रकार है:—

तदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मतम्।
निर्मितं तच्छिवेनैव प्रथमं ब्रह्मसम्मितम्॥ ४८॥
विद्येशं च तथा रुद्रं वैनायकमौमिकम्॥ ४९॥
मात्ररुद्रैकादशकं कैलासं शतरुद्रकम्।
कोटिरुद्रं सहस्राद्यं कोटिरुद्रं तथैवच॥ ५०॥
वायवीय-धर्मसंज्ञं पुराणमिति भेदतः।
संहिता द्वादशमितोऽमहापुण्यतरामताः॥ ५१॥
तत्रैवं लक्षसंख्याकं शैवसंख्या यभेदतः।
व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्॥ ५५॥
शैवंतत्र चतुर्थं वै पुराणं तत्र सप्तसंहितम्॥ ५६॥
शिवेसंकल्पितं पूर्वं पुराणं ग्रन्थसंख्या।
शतकोटिप्रमाणं हि पुरा सृष्टौ सुविस्तृतम्॥ ५७॥

× विधे० १००००, रुद्र १००००, वैनायक १००००, औम ८०००, मातृपुराण ८००००, रुद्रैकादश, ३१०००, कैलास ६०००, शतरुद्र ३०००, कोटिरुद्र १८००० कोटिरुद्र ११००० वायवीय १००० धर्म १२००० = ११०००००

१. विद्येश्वर संहिता

विद्येश्वर संहिताः—प्रयाग के यज्ञ में आये सूत के प्रति ऋषियों का आगमन, पुराण का उपक्रम, षट् कलीन मुनियों के प्रति ब्रह्मोपदेश, मुक्तिसाधन, लिङ्गेश्वर पूजन, विष्णु ब्रह्मा की लिङ्ग के हेतु खोज, केतकी कूटसाक्षी, ओंकार का उपदेश, शिवक्षेत्र वर्णन, अग्नि यज्ञादि वर्णन, प्रणव पंचाक्षरमन्त्र, पार्थिव पूजा, लिङ्गपूजा, भस्म माहात्म्य, रुद्राक्ष महिमा।

२. रुद्र संहिता

रुद्रसंहिताः—निर्गुण शिव प्रतिपादन प्रसङ्ग में तपोनिष्ठ गर्वित नारद को वानर होने का शाप, विष्णु पर नारद का शाप, इत्यादि शिवलीला, शाप-मुजयर्थ नारद का काशी गमन, नारद द्वारा निर्गुण शिव का प्रतिपादन, महाप्रलय वर्णन, विष्णु की उत्पत्ति, विष्णु का नारायण होना, नाभि कमलोत्पत्ति, ब्रह्मा विष्णु का विवाद, लिंगोत्पत्ति, उन दोनों का विवाद, ओंकारवाद श्रवण, हरिहर का एकरूप वर्णन, शिवार्चन विधि, नाना प्रकार के लिङ्गों की पूजा, नवधा ब्रह्मसृष्टि, गणशिव सृष्टि, पञ्चभूतोत्पत्ति, दक्षयज्ञ, शिवकैलास का सख्य।

इति प्रथमः खण्डः।

---

[१] विद्येश्वर संहिता या ज्ञान संहिताः—सूत के प्रति ऋषि प्रश्न, ब्रह्म नारद संवाद में ज्योतिर्लिंग का आविर्भाव, ओंकार प्रादुर्भाव, विष्णु कृत शिवस्तव, ब्रह्मा और विष्णु की लिंग विषयक हंस और वराह बनकर खोज, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, सृष्टि प्रसंग में ऋषि सृष्टि, दाक्षायणी का देहत्याग, शिव पूजा [१-८]

तारकोपाख्यान, मदनदाह, पार्वतीतप, शिव पार्वती विवाह, कार्तिक का जन्म, तारक वध। [८-१९]

त्रिपुरदाह, विष्णु का दैत्यों को छलना, विश्वकर्मा कृत शिवरथ, युद्धयात्रा, त्रिपुरनाश [१९-२४] शिवस्तव, शिवपूजा विधान, तथा फल, [२४--२१] गणेश चरित्र, गणेश कार्त्तिक का विवाह विषयक युद्ध, कार्त्तिक का पराजय [३६] रुद्राक्ष धारण माहात्म्य, लिङ्ग प्रसंग में कतिपय माहात्म्य, शिवरात्रि का व्रत, काशी माहात्म्य, तथा अन्य क्षेत्रों के माहात्म्य [३७-५८] प्रह्लाद चरित्र में नृसिंह कथा, दुर्वासा और पाण्डव चरित, अर्जुन और किरातवेशी शिव की कथा, शिवपूजा शिवरात्रि व्रत आदि। [६०-७८]

दक्ष यज्ञारम्भ प्रसङ्ग में ब्रह्मा से सृष्टि का पैदा होना, रतिमदन विवाह, सन्ध्या का चरित, कामदहन कथा, दक्षपुत्रों को वैराग्योपदेश, दक्षकन्योत्पत्ति, तथा विवाह, सती शिव विवाह, शिव सती का विषयोपभोग, राम की परीक्षा, दक्षयज्ञ तथा उसे का संहार, वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरश्छेद, दधीचि और राजा क्षुवगु दोनों की परस्पर कलह कथा। **इति सतीखण्डो द्वितीयः।**

हिमालय की पुत्री पार्वती की उत्पत्ति; तपस्या और कामदाह, तारकासुर कथा, कार्त्तिकेयोत्पत्ति के लिये शिव पार्वती विवाह। **इति पार्वतीखण्डः ३।**

शिव पार्वती लीला, देवता कृत शिव पार्वती रतिभंग, कार्त्तिकेय की शरवण में उत्पत्ति, तारकासुर का देवतों के साथ घोरयुद्ध, कार्तिकेय का अलौकिक विक्रम तथा लिंगस्थापन, गणेशोत्पत्ति, मल से गणेश की उत्पत्ति, शिरश्छेद, गजमुख संयोग, गणेश विवाह। **इति चतुर्थः कुमारखण्डः।**

दैत्यों का तप, ब्रह्मा से बलराम त्रिपुर निर्माण, दैत्यों पर देवों का विजय, विष्णु का दैत्यमोहन, जैनधर्म का विस्तार, देवतों की निन्दा, शैव मत से उन को डिगाना, शिवद्वारा त्रिपुर पर आक्रमण तथा नाश, जलन्धर की उत्पत्ति, विष्णु जलन्धर युद्ध, जलन्धर की कामना, पार्वती पर कुदृष्टि, शिव जलन्धर युद्ध, विष्णु का जलन्धर की स्त्री से पापाचार, जलन्धर वध, असुर शंखचूड़ की कथा, देवों का तुमुलयुद्ध, विष्णु को तुलसी का शिला होजाने का शाप, शंखचूड़ वध। हिरण्याक्ष का वध, हिरण्यकशिपु कथा, नृसिंह अवतार, अन्धक वध, शुक्राचार्य का शुक्र रूप से निकलना, शुक्राचार्य कथा, उषा विवाह, अनिरुद्ध कथा, अनिरुद्ध का उषा से विहार, बाणासुर युद्ध, गजासुर वध, उस का चर्म धारण, व्याघ्रेश्वरादि लिंग स्थपान। **इति रुद्रसंहिता।**

३. शत रुद्रसंहिता

शतरुद्रसंहिताः—शम्भु के अवतार प्रसङ्ग में शर्वत्र वा रुद्रादि भेद से शिव की अष्टमूर्ति कथन, अर्द्धनारीश्वर रूप, दक्षगृह में नारी रूप अवतार,

प्रथम द्वापर में श्वेतमुनि का अवतार, नवद्वापरों में नव अवतार, आगे २८ युगियों तक भी शेष अवतार तथा उन के शिष्य, नन्दीश्वर उत्पत्ति, विवाह, काल भैरवावतार, नृसिंह के पराजय के लिये शिव का शरभावतार, शुचिमती नगर में गृहपत्यवतार, अग्निपदवीदान, शर्मोयज्ञेश्वरावतार, महाकालादि दशावतार दत्तात्रेयावतार, विषयासक्त विष्णुबोधनार्थ शिव का पाताल में वृषावतार, विष्णु शम्भु युद्ध विष्णु पराजय, दधीच पत्नी में पिप्पलादावतार, पिप्पलाद चरित, महानन्दा नामक वेश्या की भक्ति से तुष्ट होकर वेश्यानाथावतार, नल दमयन्ती कथा में हंसावतार, सत्यरथ राजा के पुत्र के जिलाने के लिये भिक्षु रूपावतार, पार्वती की तपस्या परीक्षा में वटु अवतार, अश्वत्थामावतार, इन्द्र का लय पर्वत पर तप करते अर्जुन के पास मुकासुर वराह का वध करने के निमित्त भिल्लावतार, द्वादश ज्योति लिंगावतार वर्णन। इति शतरुद्रसंहिता।

४. शतकोटि रुद्रसंहिता

शतकोटिरुद्रसंहिता:—द्वादशज्योतिर्लिङ्ग वर्णन, काशी के लिंगों के नाम, नन्दिकेश्वर, गोकर्ण, हारकेशादि नाना स्थानों के लिंगों का असत्य कथाओं द्वारा माहात्म्य कथन, दक्ष का चन्द्र को क्षयीभव का शाप, सोमेश्वर, महाकाल, केदारेश्वर, भीमेश्वर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर आदि स्थानों पर शिवलिंगों की उत्पत्ति कथा व माहात्म्य, शिवरात्रि व्रत, मुक्ति निरूपण।

इति शतकोटि रुद्रसंहिता।

५. उमासंहिता

उमासंहिता:—कृष्ण उपमन्युसंवाद, राम का शिवभक्ति द्वारा रावण को मारकर सीता प्राप्तकरना, शिवमाया प्रभाव, महापातक निरूपण, यमलोक, नरक यातना वर्णन, दान, जीवतर्पण पुराण आदि महात्म्य, ब्रह्माण्ड वर्णन में द्वीप, सूर्यादिग्रह स्थिति, सात्विकादि तपोवर्णन, मनुष्य जन्म प्राशस्त्य, देह का अशुचि निरूपण, स्त्री स्वभाव वर्णन, मृत्युकाल ज्ञान, काल वञ्चन, शिवप्राप्ति छाया पुरुष दर्शन, आदि सर्ग वर्णन, स्वायम्भुवादि वर्णन, कारयपीय सर्ग, चतुर्दश मन्वन्तरानु-

कीर्त्तन, मानव वंश, इक्ष्वाकुवंश, सगरवंश, पितृश्राद्ध, पितृसर्ग, श्राद्धमाहात्म्य, व्यासपूजन प्रकार, व्यास की शिवभक्ति द्वारा पुराण रचना, देवीचरित, महिषासुर-वध, शुम्भनिशुम्भवध, उमाप्रादुर्भाव, दुर्गादेवी, ज्ञान क्रिया भक्ति योग।

इति उमासंहिता·

६. कैलास संहिता

कैलास संहिताः—काशी में मुनिव्यास संवाद में शैलस्थित हरपार्वती संवाद, ओम् मन्त्र की दीक्षा, पूजा, आह्निक आचार, ध्यान आवाहन, प्रणवोपदेश, वामदेवोक्त ओंकारार्थ प्रकाशन, ब्रह्मयज्ञादि विधि, प्रणव और गायत्री जप, उपासना, शिवशक्ति का स्वरूप, महावाक्य विचार, यतिधर्म, गुर्वाराधना।

इति कैलास संहिता।

७. वायवीय संहिता

वायवीय संहिता-पूर्वभागः—वेदादि सकल विद्याओं की गणना, शिव का परमत्व, वायुनैमिषीय संवाद में शिव की कालरूपता, शिव की काल लीला, लीला से जगत्सृष्टि, ब्रह्माण्डस्थिति, सर्ग प्रतिसर्गोद्भव, मोहमदादि सर्ग, भूतपिशाचादि सर्ग, ब्रह्मा विष्णु प्रादुर्भाव, रुद्रोत्पत्ति, मैथुनी सृष्टि, दक्षोत्पत्ति, दक्षयज्ञध्वंस, मंदरवर्णन प्रसंग में काली का दैत्यवध तथा गौरी बनना, विश्व की अग्निषोमीयता, शिव का ब्रह्म उपनिषत्तत्व रूप से निरूपण, मोक्ष प्रापक श्रेष्ठ धर्म कथन, पाशुपतव्रत, भस्मगति, शिवभक्ति। इति पूर्वभागः।

उत्तर भागः

उत्तरभागः—कृष्ण का भक्ति से सांबपुत्र प्राप्ति, पाशुकृत पाशुपतज्ञान विवरण, उपमन्युकृत विराट् वर्णन, औपनिषदिक दृष्टान्त, शिवका गुरु रूप में योगावतार, अन्य आचार का प्रपञ्च, पञ्चाक्षर मन्त्र, दीक्षादान, शिष्यविवेक, नित्यनैमित्तिक कर्म, सूर्य पूजा, शैवागमविधान, लिंगपूजा माहात्म्य, शिवध्यान योग वर्णन, पुराण माहात्म्य। इत्युत्तरभागः।

इस पुराण की एक बड़ी ही विशेषता यह है कि इसका प्रतिपाद्य विषय बहुत ही उत्कृष्ट है। उपनिषद् के मर्मों का बहुत से स्थानों पर आश्रय लिया है। ध्यानयोग की बहुत महिमा गाई है। साथ ही साम्प्रदायिक कथाएं भी अपने सहोद्योगी सम्प्रदायों को नीचा दिखाने के लिये जोड़ी गयीं हैं। इसीका अनुकरण पूर्व समालोचित शैव पुराणों ने भी स्थान २ पर किया है।

-:०:-

स्कन्दपुराण

सब से बृहत् ग्रन्थ स्कन्दपुराण है मात्स्य के अनुसार "जिस पुराण में स्कन्द ने तत्पुरुष कल्प में नाना चरितों से युक्त इतिहास कहा है वह ८१००० श्लोक संख्या वाला स्कन्दपुराण कहाता है।" शिवपुराण के उत्तरखण्ड में भी लिखा है जहां स्कन्द स्वयं श्रोता और वक्ता महेश्वर है वही स्कन्दपुराण है।

वर्त्तमान में उपलब्ध स्कन्द पुराण में श्लोक संख्या एक लक्ष से भी अधिक है। इस में माहात्म्यों की कमी नहीं।

इस में छः संहिता हैं सनत्कुमार संहिता, सूत संहिता, शंकर संहिता, विष्णु संहिता, ब्रह्मसंहिता और सौरसंहिता।

इन की ग्रन्थ संख्या सूत संहिता के अनुसार निम्नलिखित है:—

सनत्कुमार	संहिता	३६०००
सूत	"	६०००
शंकर	"	३००००
वैष्णव	"	५०००
ब्रह्म	"	३०००
सूर्य	"	१०००
		८१०००

प्रचलित प्रभासखण्ड के मत से स्कन्दपुराण के स्कन्द का उपरोक्त संहिता विभाग नहीं किया गया, प्रत्युत खण्डों में विभाग है जिस को कैलास पर ब्रह्मादिकों के पास बैठे हुवे पार्वती के आगे शंकर ने कहा, पार्वती ने स्कन्द को, उस ने नन्दीगण को, नन्दि ने अत्रिकुमार को, उसने व्यास को, व्यासने सूत को, सूतने ऋषियों को यह क्रम दिखाया है। जिस के खंड भी सात हैं माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, रेवा कल्पार्चन तापीमाहात्म्य तथा सातवां प्रभास है। कतिपय स्थानों में नागरखंड का ही पाठ है। वर्त्तमान में सातों संहिताएं कहीं इकट्ठी नहीं प्राप्त होतीं, परन्तु सात खंडों का पुराण तो इकट्ठा प्राप्त होता ही है। उस का विषयानुक्रम संक्षेप से देते हैं।

माहेश्वरखण्ड

१. केदारखंड

नैमिषारण्य में सूत से ऋषियों का प्रश्न, दक्षयज्ञ विध्वंस प्रकरण में दक्षयज्ञ सतीदाह, वीरभद्र प्रादुर्भाव, १३ ज्वरों की उत्पत्ति, वीरभद्र का देवों से युद्ध, दक्षनाश [१–५] लिंगपूजा प्रसंग में नग्नमहादेव का भिक्षार्थ आगमनादि, शिवलिंगपतन, लिंगपूजा [६–८] समुद्रमन्थन कालकूट का प्रसना, मोहनी का आगमन, देव दैत्ययुद्ध, कालनेमि का वध [९ १४] इन्द्रपुत्र वध, इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप, नहुष को सुरराज्य प्राप्ति, दधीचि से अस्थियाचन, वृत्रवध [१५–१७] वामन का बलिबन्ध, तीनक्रमों में लोकव्यापन [१८–१९] तारकासुर वध में शिव पार्वती विवाह, शिव पार्वती संभोग, देवों द्वारा कृत विघ्न वीर्य का अग्नि द्वारा भोजन देवताओं को गर्भ, उनका उगलना तथा स्कन्द की उत्पत्ति पालन, तारकासुर विजय वा वध [२०–३०] श्वेत भूपति का वृत्त, काल दहन, [३२] चण्ड किरात वृत्त, शिव पार्वती का द्यूत तथा प्रलय कलह।

२. कौमारिकाखंड

पञ्चसर तीर्थ माहात्म्य में अर्जुन तीर्थयात्रा, ब्राह्मण का शाप से ग्राह बन जाना। दान माहात्म्य, महीसागर संगमतीर्थ माहात्म्य कथाएं [१–१५] कुमारनाथ माहात्म्य कथाएं, कुमार चरित, जंभवध, कालनेमि का युद्ध, पार्वती उत्पत्ति, शंकर की सेवा, शिव पार्वती विवाह, रति तथा अग्नि द्वारा रेतो भक्षण और कुमार उत्पत्ति, तारकासुरवध जयस्तम्भ रचना [१६–३५] महीसागर संगम में कोटिलिंग स्थापन, वर्वरी तीर्थ माहात्म्य, जगदुत्पत्ति, ब्रह्माण्ड परिमाण, लोकपाल वर्णन, काल परिमाणकथनादि कुमारिकतीर्थ स्थापन, वर्करेश्वरलिंगमहाकालसिद्ध की कथा, भट्टादित्य सूर्यपूजा, बहूदक कुण्ड स्थापन [३६–४७] सोमनाथ तीर्थ माहात्म्य कथाएं। महीसागरसंगम तीर्थ के पास स्थित नाना तीर्थों के माहात्म्य, घटोत्कच के पुत्र वर्वरीक की कथा, कृष्ण का द्वारका जाना [४८–६१] गणेश्वसेमाल की उत्पत्ति, कृष्णका उससे युद्धादि [६२–६६]

३ अरुणाचल माहात्म्य पूर्वार्द्ध

बड़ाई के लिये लड़ते-हुवे विष्णु ब्रह्मा के मध्य में शिव का अग्निमय लिंग का प्रादुर्भाव और लिंगपूजा [१—८] शोणाद्रीश्वर माहात्म्य देवी महिषासुर कथा [६—१३]

अरुणाचल माहात्म्य उत्तरार्द्ध

शैवागमः—स्थान माहात्म्य-कर्म विपाक, कर्त्तव्य कर्म [३—४] ब्रह्मा विष्णु का गर्व से महत्व के लिये झगड़ा, लिंग प्रादुर्भाव, दोनों का ओर छोर अन्वेषण । ब्रह्मा की शिव स्तुति, शिव पार्वती विवाह, अपनी कालिमा हटाने के लिये पार्वती का तप, महिषासुर की उद्धतता, दुर्गा का महिष मर्दन, वज्रांगद की कथा [५—२४]

-:o:-

वैष्णवखण्ड

१. वेङ्कटाचल माहात्म्य

इसमें सब तीर्थ और माहात्म्यों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। [१–११]

२. जगन्नाथ माहात्म्य

पुरुषों की मुख्यता, कपोतेश कपोतेशी की कथा [१२–१३] इन्द्रद्युम्नकथा [१२–२५] गालदेश के राजाका इन्द्रद्युम्न के साथ मेल [२६] दारुदेह पूजा, नृसिंह का रथ आदि पूजा [२८–३५] कलिकाल निर्णय [३७] कतिपय उत्सव [३८–४९] व्रत आदि माहात्म्य।

३. वदरिकाश्रम माहात्म्य

नाना तीर्थ यात्रा फल, ब्रह्मा के पांचवें शिर का छेदन, नाना तीर्थ यात्रा माहात्म्य [१–८]

४. कार्त्तिक मास माहात्म्य

नाना आख्यान, कार्त्तिक सम्बन्धी स्नान व्रत दानादि निरूपण, तुलसी माहात्म्य, मामा कृष्ण संवाद, तुलसी की कथा, जलन्धर विष्णु युद्ध, शिवजलन्धर युद्ध, जलंधर वध (१३–२३) नाना कथाएं, व्रत माहात्म्यादि (२४–३१) कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय, वर्ज्य नियम।

५. मार्गशीर्ष माहात्म्य

त्रिपुण्ड्रादिधारण, तुलसी काष्ठादि धारण, घंटा नादादि का माहात्म्य, एकादशी व्रत पर कथाएं, भागवत माहात्म्य, मथुरा माहात्म्य (१–१७)

६. भागवत माहात्म्य

वज्रनाभ परीक्षित संवाद, परीक्षित के कतिपय ग्रामादि स्थापन, उद्धव के दर्शन, भागवत श्रवण विधि (१–४)

७. वैशाख मास माहात्म्य

मास प्रशंसा, स्नान फल, वर्ज्योपादेय पदार्थ, हेमांगदराज कथा, माहात्म्य कथाएं, मासधर्मादि निरूपण (१–२५)

८. अयोध्या माहात्म्य

अयोध्या में अगस्ति व्यास संवाद, विष्णु हरि माहात्म्य, सहस्रधारादि माहात्म्य. (१–४) कौत्स वृत्तान्त सीताकुण्डादि माहात्म्य (६) रातिकुण्डादि माहात्म्य (७–१०)

तृतीयं ब्राह्मखण्डम्

१. सेतु माहात्म्य

रामेश्वर क्षेत्र माहात्म्य, सेतुबन्ध वृत्तान्त, गालव विश्वावसु कथा। चक्रतीर्थ, देवीपत्तनादि वर्णन (२–६) महिषासुर वध (७) वेतालवरद तीर्थ कथा (८–९) गन्धमादन माहात्म्य, सीतासरस्तीर्थ, रामनाथ क्षेत्र गत नानातीर्थ हनुमान कुण्ड, अगस्तितीर्थ, रामकुण्ड लक्ष्मण तीर्थ, लक्ष्मी तीर्थादि वर्णन [१०–५२] में अश्लील कथाओं का उल्लेख तथा ४२ तीर्थ।

२. धर्मारण्य खंड

धर्मारण्य माहात्म्य कथन, व्यास युधिष्ठिर संवाद, धर्मदेव की तपस्या, नाना माहात्म्य [१–१०] धर्मारण्य में लोकजिह्वा का उत्पात। घोड़े के खुर से ताल का बनना (१३) हयग्रीव तपस्या, नानतीर्थ माहात्म्य, नानालिंग माहात्म्य (१४–३०) लोहासुर का उत्पात, राम द्वारा उद्धार (३३) पूर्वक लिंग तथा आमभूय वृत्तान्त (३६) जैन धर्म का वर्णन विस्तार, कन्नौज में जैनों का ज़ोर (३७) मारुति के कोप से जैनों का नाश आदि [३८–४०]

३. ब्रह्मोत्तर खंड

शंकर माहात्म्य कथा, दाशार्हादि भूप वृत्तान्त, शिवभक्ति, भस्मादि माहात्म्य (१–२२)

-:o:-

चतुर्थं काशीखण्डम्

पूर्वार्द्धकाशीखंड

नारद का विन्ध्ययात्रा, काशीदर्शन, अगस्त्य विन्ध्यकथा, शिवशर्मा की कथा, नाना कथा वर्णन (६–३५) बानापुरी वर्णन, नाना क्षेत्र वर्णन, सदाचार धर्म वर्णन (३६–४१) दिवोदास भूपवृत्त (४२–५५) पाण्डवों की काशीयात्रा (४५–५०)

उत्तरार्द्धखंड

पुराणादित्य माहात्म्य, नाना लिंग माहात्म्य, काशी में बौद्धों की स्थिति, (५८) वैष्णवों की प्रतिष्ठा (५६–६२) पीछे शिवालिङ्गोपस्थापनादि (६२ ९०) हरि का शोर मचाना काशी से बाहर निकालाजाना, पीछे काशी शैवों का गढ़ बनगई । [९१–९६]

कतिपयों में रेवा खण्ड ५वां है परन्तु वैंकटेश्वर में छपी पोथी में रेवाखण्ड ही नहीं है । तथापि पाठक देखें ।

रेवा खंड में

मत्स्येश्वर गर्दभेश्वरादि नाना तीर्थ हैं, और कतिपय चरित्र तथा सब माहात्म्य हैं । [१–११२]

-:०:—

५ अवन्तीखण्ड

१ आवन्त्यक्षेत्र

महाकालदेव का महाकालवन माहात्म्य, ब्रह्मा का पञ्चमकपालच्छेदन, वैश्वनरोत्पत्ति, नरनारायण का बदर्याश्रम में तप, शिवदर्शनार्थ यज्ञ, लिंगस्थापन कपाल मोचन तीर्थ, नानाकुण्ड तथा मन्दिरों के माहात्म्य (१–३३) स्कन्दजन्म कथा, कामदहन, अग्नि द्वारा वीर्यभक्षण वामन तथा कृत्तिकाओं में प्रवेशादि [३४] अगस्त्येश्वरादि माहात्म्य [३७-४२] उज्जयिनी की उत्पत्ति, चामुण्डा का दैत्य पराजय, सदुद्रमन्थन, शिव का भिक्षादान समय विष्णु की अंगुली में से रक्त प्रवाह, विष्णु शिव का युद्धादि [४९] शिप्रा माहात्म्य, शिप्रोत्पत्ति, शिव का पाताल में भिक्षाटन [५१] वराहावतार (५२) हिरण्याक्षवध, पिशाचमोचन तीर्थ माहात्म्य, गयातीर्थ माहात्म्य (५६–५९) महाकाल वनवासादि नाना माहात्म्य (६०–६५) नृसिंह जन्म कथा (६६) देवप्रयागादि तीर्थ (६७–९१)

२. अवन्तीस्थ ८४ लिंगमाहात्म्य

अगस्त्येश्वर लिंग माहात्म्य, तथा अन्य लिंगों के माहात्म्य [१–७] कपालेश्वर के लिये ब्राह्मणों का निरादर ततः स्वीकार (८) स्वर्गद्वार लिंगादि माहात्म्य [९–८४] तथा कतिपय कथाएं।

३. रेवाखंड

पुराणादि संख्यान [१] जनमेजय वैशंपायनादि संवाद गंगादि, तीर्थ माहात्म्य, प्रलयकाल में मार्कण्डेय का नौका से विहार, नर्मदा की उत्पत्ति [४] सप्तकुल पर्वतोत्पत्ति, नर्मदा स्नान फल, संहार वर्णन [१४–२०] नर्मदा तीर्थ मा-

हात्य [२२] कावेरी संगम माहात्म्य [२६] दारु आदि तीर्थ, याज्ञवल्क्य तप, भगिनी का भाई को ढूंढना, याज्ञवल्क्य का स्वप्नदोष, वीर्य से खराब वस्त्र के संपर्क मात्र से भगिनी का गर्भ धारण करना आदि अश्लील कथा, पिप्पलाद की उत्पत्ति [४२] नाना तीर्थ माहात्म्य [४३-४७] अन्धकासुर से शिव का युद्ध [४८-४९] दीर्घ तथा ऋष्यश्रृंगादि वर्णन, गंगतीरपर स्नानादि माहात्म्य [५०-५८] पुष्करणी तीर्थ माहात्म्यादि नाना कथानक [६०-१३२]

षष्ठनागरखंड

ऋषि आश्रमों में नग्न शिव का प्रवेश, शिव को शाप, लिंगपतन [अश्लील] [१] लिंगोत्पाटन से पाताल से गंगा का आना । त्रिशंकु की कथा, विश्वामित्र का सृष्टि चतुर निर्माण [३-७] हाटकेश्वरादि तीर्थ [८-३१] सप्तर्षि तीर्थ मरेवालको सप्तर्षियों का खाने का लोभादि [३२] अगस्त्य कृत समुद्रपान चित्रेश्वर स्थापन, नाना लिंग स्थापन, [३६-६६] रामह्रद वर्णन में जमदग्नि वध, पितृवध क्रुद्धभार्गव का हैसाधिपका वधादि [६७-६९] कार्तिकेश्वरादि नाना तीर्थ [७०-७२] विष्णु का स्त्री बनना और विप्र कन्या को अश्वमुखी होने का शाप [८१] सुपर्णेश्वरादि माहात्म्य [८२-१९९] भर्तृयज्ञ कृतनागर व्यवस्था, नागरों की शुद्धि, विदेशियों की शुद्धि [२००-२०४] बालमातादि तीर्थ माहात्म्य [२०६-२७०] नाड़ीजंघ की कथा, आयुप्रमाण वर्णन, युगादि काल निर्णय [२४२-२७३] नाना ईश्वर माहात्म्य [२७४-२७६] नाना कथाएं ।

:०:-

सप्तम प्रभास खंड

१. प्रभास माहात्म्य

पुराण श्रवणाधिकारी निर्णय, पुराणोपपुराण कथन, शिव पार्वती संवाद [२] प्रभास क्षेत्र माहात्म्य (३-११) श्राद्ध देवों की उत्पत्ति [१३] नाना लिंगोत्पत्ति [१३-१८] व्यासादि का अवतार वर्णन [१६-२०] प्रह्लाद जन्म, दक्षकी प्रजा [२१] नाना लिंगस्थापन [२२] नाना कथोपक्रम, सोमेश्वर माहात्म्यादि [२३-३६५]

२. गिरिनार (वस्त्रापथ) महात्म्य

गजराजा का ऋषियों के प्रति माहात्म्यादि प्रश्न, माहात्म्य कथन [१-१५] कथाएं, वामन बलि कथा [१४-१६] तत्रत्य स्थान माहात्म्य।

३. अर्वुदमोहात्म्य

अर्वुदाचल पर वासिष्ठ का वास, धेनुपालन, श्वभ्रपूरणादि, अर्वुदाचल माहात्म्यादि [१-९] नाना लिंग माहात्म्य [१०-६३]

४ द्वारका माहात्म्य

कलियुग स्थिति-कृष्ण रुक्मिणी को दुर्वासा का शाप [१-४] चक्रादि तीर्थ [६-४४)

इति स्कान्द विषय संक्षेपः।

पाठकगण स्वयं देख सकते हैं कि स्कन्द पुराण में सिवाय काथाओं और माहात्म्यों से क्या है। इस दिये संक्षेप में संहिता भागों का नाम भी नहीं, इसी का इतना विस्तार हैं कि एकलक्ष श्लोक पूर्ण हो जाते हैं।

इसके साथ यह भी सर्वसाधारण माहात्म्य घड़ने वालों का अधिकार है कि माहात्म्य घड़ कर उसे स्कन्द पुराणान्तर्गत कर सकते हैं।

यह ग्रन्थ सर्वथा अर्वाचीन प्रतीत होता है, हां संहिता क्रम से बद्ध स्कन्द पुराण प्राचीन अव[illegible] जा सकता है प्रचलित सप्त खण्डात्मक माहात्म्य संग्रह या माहात्म्य महाकोश अत्यन्त अर्वाचीन है। इसका उल्लेख प्राचीन किसी पुस्तक में नहीं यह सर्व सम्मत है। इसकी प्राचीनता में पौराणिक पण्डित ज्वाला-प्रसाद मिश्र यह युक्ति देते हैं इसमें जगन्नाथ माहात्म्य से ११ वीं शताब्दी का निर्णय करना ठीक नहीं प्रत्युत "अदोयद्दारुप्लवते" इत्यादि ऋग्वेद में जगन्नाथ के मन्दिर का वर्णन है, इससे यह स्कन्द पुराण प्राचीन है। खूब कहा पण्डित जी वेद ने आपके मन्दिरों का ही तो वर्णन करना था। यह स्कन्द अवश्य जैनियों के भी बहुत पीछे बना है क्योंकि ब्राह्म खण्ड के द्वितीय धर्मारण्य खण्ड में जैनियों का अच्छी तरह से वर्णन है। [स्कन्द ब्राह्मखण्ड में धर्मारण्य ख० अ० ३६-४०] उसे पूर्व कलियुग वृत की आड़ में छिपाया है।

इसी प्रकार पीछे पौराणिकों में भी आपस में बहुत विवाद होता रहता था जिसका प्रमाण अवन्तिखण्ड में आवन्त्य क्षेत्र माहात्म्य खण्ड में ४६ अ० में शिवका विष्णु से युद्ध है। आपसकी लडाईयों के वृत्तान्त लेखक प्रायः अपने देवताओं का लड़ना बताया करते हैं।

९३० विक्रमी की लिखी विश्वकोष कार्यालय में काशी खण्ड की प्रति भी सम्पूर्ण स्कन्द पुराण की प्राचीनता का ठेका नहीं लेती। नैन्डल साहब ने ७म शताब्दी की लिखी हस्तलिखित स्कन्द की पोथी नेपाल के पुस्तकालय में देखी इस का भी इतना ही प्रामाण्य माना जा सकता है कि वह काल स्कान्द पुराण का नियत किया जाय, परन्तु वह भी पर्याप्त अर्वाचीन है जब कि जैन बौद्धों का काल अपेक्षा में रखा जाय।

-:०:-

चतुर्दश अध्याय

मूर्त्तिपूजा

ईश्वर की एकता तथा ब्रह्माण्ड भर में व्यापकता के विषय में गत अध्यायों में पर्याप्त लिखा जा चुका । उसी अजर अमर एक अनादि अज विभु परब्रह्म की उपासना में नाना प्रकार के मत भेद हैं। कोई मूर्त्तिमय देवता का ध्यान करते हैं, कोई मूर्त्ति ही की स्तुति करते और उसी पर धूप दीप चन्दन जल पुष्प घण्टा आदि दिखा कर उस की उपासना करते तथा इष्टदेव को प्रसन्न करते हैं। कोई प्राकृतिक महती शक्तियों को जैसे सूर्य अग्नि आदि को ही देवता मान कर उसी को परम आत्मा स्वरूप स्थिर मान कर जलाञ्जलि आदि देते हैं और अपने को कृतकृत्य मानते हैं । और कोई कल्पित गणेशादि की मूर्त्तियों की कल्पना करके उसी की उपासना मोह से करते हैं। बहुतसे इन पुजारियों की देखा देखी ही भक्तिमात्र से प्रेरित होकर, शेष सत्यासत्य में सर्वथा अज्ञान वश होकर मूर्त्तिपूजा में प्रवृत्त हैं। इस मूर्त्तिपूजा के नानारूप तथा नानाकल्पित देवताओं के होने से नाना सम्प्रदाय प्रवृत्त हुवे हैं। और पन्थचल जाने पर दुराग्रह वश होकर एक देवता को सर्वत्र सर्वोपास्य मानकर नानारूप देवता के मानने में प्रवृत हुवे हैं। इस अज्ञान का मूलकारण केवल वैदिक ज्ञान का विलोप हो जाना ही है। वेद भगवान के मत से सर्वोपास्य एक ही देवता है और वही गुणों के भेद से नाना प्रकारों से कहा जाता है।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमंमातरिश्वानमाहुः"

बस यही कारण एक देवता को नाना देवता मानने में भी हम प्रथम देवताओं की उत्पत्ति प्रकरण में दर्शा आये हैं।

अज्ञान वश साथ ही साथ एक परब्रह्म परमात्मा को मूर्त्तिरूपेण उपासना करने का यह एक और अवैदिक प्रकार प्रचलित हुआ है। इसका प्रक्रम कब से हुआ इसका निर्णय करना यद्यपि कठिन है परन्तु अनुशीलन करने से यही प्रतीत होता है कि यह मूर्त्तिपूजा का आरम्भ जैनियों ही से चला है । क्योंकि

जैनियों ने ही एक व्यापी परमेश्वर की उपासना को त्याग कर क्षुद्र पुरुष को उपास्य परमेश्वर स्वीकार किया है। मूर्त्ति या प्रतिमा का भाव ही उसके चित्त में उत्पन्न हो सकता है जो स्वल्प या प्रतिमामय वस्तु का उपासक हो। जैनियों तथा बौद्धों के पीछे ही पौराणिकों ने उनके सदृश पुराणों का बनाना तथा पुराणों में माहात्म्य और मूर्त्तियों की स्थापना व पूजा आदि का प्रक्रम लगाना भी प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार सनातनी पुराणों में मायामोह की कथा रचकर जैनियों और बौद्धों को दैत्यादि कह कर बहुत कोसा है उसी प्रकार जैनियों ने भी अपने आदि पुराणादि १२ पुराणों में अपने अतिरिक्त अन्य पन्थियों को बहुत बुरा भला कहा है।

इसी पूजा को फैलाने में दूसरा बड़ा भाग तान्त्रिकों और शाक्तों का है। यह वाम पन्थ भी सब प्रकार के अन्धविश्वास तथा पापाचार में बहुत भाग लिये हुवे है।

इसी मूर्त्तिपूजा में तीसरा भाग वीरपूजा का परमात्मा की उपासना को स्थान मिल जाना है। रामकृष्ण आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों की परमात्मरूप में पूजा होना ही परमात्मा की प्रतिमा बना देने में बड़ा कारण है। फिर भक्तों का भक्ति का तो नाटक ही अलौकिक होता है। वे भक्ति में तल्लीन हुवे २ अपने इष्ट की महिमा का पारावार ही बहा देते हैं।

मूर्त्ति के विषय में वैदिक सिद्धान्त यही है कि:—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः" [यजु० ३२,३.]

उस परमात्मा की प्रतिमा नहीं है जिसका नाम और यश बहुत महान है।

हमारे पौराणिक भाई मूर्त्तिपूजा के पक्ष में कतिपय युक्तियें दिया करते हैं कि मूर्त्ति तो ध्यान लगाने के लिये होती है। परन्तु आश्चर्य यह है कि आर्ष उपासना में कहीं भी मूर्त्ति का विधान नहीं है। और जहां मूर्ति का विधान है वहां यह प्रयोजन किसी स्थान पर भी लिखा दृष्टिगत नहीं होता। प्रत्युत शिव

लिंग की पूजा करने आदि से देवता साम्प्रदायिक देवता प्रसन्न होता है यही एकमात्र हेतु कहा जाता है। बहुत न्यून ऐसे स्थल हैं जहां पर इन पूजाओं और उपचारों का विशेष अभिप्राय रखा गया है।

दूसरी युक्ति—शाखा चन्द्र न्याय से मूर्ति या स्थूल रूप को दिखा कर सूक्ष्म रूप परमात्मा के ध्यान का उपदेश कराते हैं। यह बात ठीक है, और यह भाव कतिपय पुराणों में पाया भी जाता है। जैसे मत्स्यपुराण में वामन की कथा, और वराह की कथा का आलंकारिकवर्णन व स्तव में एक कथा द्वारा विराट् रूप का परिचय कराया गया है। यह भी एक प्रकार अवश्य माना जा सकता है, परन्तु आज कल की मूर्तिपूजा को देख कर सिवाय सर्वसाधारण को भ्रमजाल में डालने के और दूसरा इसका कोई अभिप्राय नहीं प्रतीत होता है। योगशास्त्र परमात्मा की उपासना तथा ध्यान का एक वैदिक शास्त्र है उस में किसी स्थल पर भी यह मूर्तिपूजा का आश्रय लेकर इस प्रकार शाखाचन्द्र न्याय नहीं लगाया गया है।

कतिपय युक्ति दिया करते हैं यथाभिमत ध्यान में यदि विष्णुरूप का ही ध्यान करें तो क्या हानि है। यदि इसी प्रकार मूर्ति का ध्यान करें तो भी योग हो ही जायगा।

यह ठीक है कि चित की एकाग्रता तो यथाभिमत ध्यान करने से ही हो जायगी, परन्तु मूर्त्ति की पूजा का विधान इस ग्रन्थभाग से किस प्रकार सिद्ध हो गया यह मति में नहीं आता।

कतिपय व्यक्ति आग्रह में हो कर वेद के कतिपय मन्त्र मूर्त्तिपूजा की पुष्टि में दिया करते हैं। जैसे गणेशपूजा सिद्ध करने के लिये "**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे**" इत्यादि (यजुर्वेद २३,१९) मन्त्र का प्रमाण देते हैं परन्तु यह उनका प्रमाण सर्वथा अयुक्त है क्योंकि गणपति शब्द आना गणेश पूजा का कोई प्रमाण नहीं है। दूसरा जब कि उव्वट और महीधर दोनों भाष्यकार भी स्वयं गणेश को इस मन्त्र का प्रतिपाद्य स्वीकार नहीं करते।

विष्णु का विराट्रूप में तो वेदों में अवश्य वर्णित है परन्तु वर्तमान के सम्प्रदायों के अभिमत विष्णु का स्वरूप नहीं प्राप्त होता है। इसी प्रकार सूर्य के उपासकों ने भी अपने सम्प्रदायस्वरूप में रहकर मोह सूर्य की मूर्त्ति को आश्रय किया हो परन्तु उनके अपने पुराणों में उसका वर्णन वैदिकवर्णन के साथ मेल खाता है।

इसी प्रकार शिव का वर्णन भी आलंकारिकरूप में है, शैव उपासक मानते हैं। और विज्ञानी पुरुष के लिये मूर्त्ति आदि के आडम्बर को भी आवश्यक नहीं मानते। इसी कारण कालरूप शिव का वर्णन बहुधा पुराणों में नक्षत्रों के महाचक्र को समक्ष रखकर किया जाता है।

ज्योतिःशास्त्र के आचार्यों ने भी नक्षत्र राशि व रूप अंगों से बने महाकाल रूप भगवान को ही विराट्रूपदेव समझ कर उसका मंगल किया है।

(वराह मिहिर मंगल)

इसी तत्व को बताते हुये शिवपुराण शिव का इस रूप से प्रतिपादन करता है।

शिव का * न अणुओं से बंध होता है, न माया से, न प्रकृति से, न बुद्धि से और न अहंकार से, न मन से और न चित्त से और न इंद्रियों से, न तन्मात्राओं से और न पञ्चभूतों से, उसका न काल है न कला, न विद्या है न भाग्य, राग है न विद्वेष, न भय है, न कुशल और न अकुशल, न कर्म, न कर्मफल, न

न शिवस्याणवो बन्धः कार्यो मायेय एव वा
प्राकृतो वाथ बौद्धोवा ह्यहंकारात्मकस्तथा ॥ १ ॥
नैवास्यमानसो बंधो नचैतो नेन्द्रियात्मकः।
नच तन्मात्रबंधोऽपि भूतबन्धेन कश्चन ॥ २ ॥
नचकालः कलानैव न विद्या नियतिस्तथा।
नरागो नच विद्वेषः शंभोरमिततेजसः ॥ ३ ॥
न च्चाध्यमितिवेशोऽस्य कुशलाकुशलान्यपि।
कर्माणितद्विपाकश्च सुखदुःखे च तत्फले ॥ ४ ॥
आशयैर्नापिसम्बन्धः संस्कारैः कर्मणामपि।
भोगैश्चभोगसंस्कारैः कालत्रितय गोचरैः ॥ ५ ॥
न तस्य कारणं कर्त्ता नादिरंतस्तथापरम्।
नकर्म करणं चापि नाकार्यं कार्यमेव च ॥ ६ ॥

सुख दुःख, आशय कर्म, और संस्कारों से भी उसका सम्बन्ध नहीं है। भोग, भोग संस्कार तीनों कालों में भी उस के नहीं हैं। न उसका कारण और न कर्त्ता न आदि और न अन्त है। न कर्म है न कारण न कार्य और न अकार्य है। विधि निषेध मुक्ति और बंधन और अकल्याण उसका है ही नहीं, क्योंकि परमात्मा शिव सदा कल्याणमय हैं। वही परमात्मा सब वेदमय ज्ञान का अधिष्ठाता बनकर अपनी शक्तियों से कभी भी च्युत न होकर सदा स्थित है अतः स्थाणु कहाता है। क्योंकि वह परमात्मा शिव सब स्थावर और जंगम संसार में सर्वान्तर्यामीरूप में स्मृतिकार बताते हैं अतः उसका नाम शर्व है वही पुरुष विशेष, परमभगवान्, अन्तक का भी अन्तक, चेतन और जड़ दोनों क्षेत्रों से परे इस संसार से भी परे है, प्रति सृष्टि में होने वाले वेद और सत्यशास्त्रों का वही उपदेश करने वाला है। कालच्छेद में होने वाले गुरुओं का भी वही गुरु है, वही सर्वकालों की उपाधियों से रहित सब का स्वामी है। सब में बढ़ने वाली उसकी ही शक्ति है उसका ज्ञान और शरीर अप्रतिम है अर्थात् जिसकी प्रतिमा नहीं है। उसके ऐश्वर्य के सदृश दूसरे का ऐश्वर्य नहीं है। उसका वाचक प्रणव ओंकार है, शिव रुद्र आदि सब शब्दों से उत्कृष्ट ओंकार ही सब से श्रेष्ठ है। प्रणव ओंकार नाम वाले शम्भु के ध्यान और जप ही से परमसिद्धि प्राप्त होती है। और आगम शास्त्रों के पार गये हुवे विद्वानों ने उसी एकाक्षर ओंकार को देव कहा है। यह मानते हुए कि

नजन्मरणे यस्य नकांक्षितमकांक्षितम्।
न विधिर्ननिषेधश्च नमुक्तिर्नव बंधनम्॥ ८॥
नास्तियद्द् यदकल्याणं तत्तदस्यकथंचन।
कल्याणं सकलं चास्ति परमात्मा शिवो यतः॥ ९॥
सशिवः सर्वमेवेदमधिष्ठाय स्वशक्तिभिः।
अप्रच्युतः स्वतोभावः स्थितः स्थाणुरतः स्मृतः॥ १०॥
शिवेनाधिष्ठितंयस्माज्जगत्स्थावरजंगमम्।
सर्वरूपः स्मृतः शर्वस्तथाज्ञात्वानमुह्यति॥ ११॥
सपुंविशेषः पुरुषः भगवानन्तकान्ततः।
चेतनाचेतनोन्मुक्तः प्रपंचाच्चपरात्परः॥ १२॥
प्रतिसर्गप्रसूतनांब्रह्मणं शास्त्रविस्तरम्।
उपदेष्टा स एवाद्यो कालावच्छेदवर्तिनाम्॥ १३॥

वाच्य और वाचक में कोई भेद नहीं है, वेद के शिरोभाग में इस ओंकार की चार मात्राएं हैं। अकार उकार मकार और नाद, अकार से बह्वृग् ऋग्वेद, उकार से यजुर्वेद, मकार से साम नाद, नाद से आथर्वणी श्रुति समझी जाती है। अकार से महाबीज, रजोगुण, सर्वस्रष्टा ब्रह्मा का ग्रहण होता है, उकार से प्रकृति, योनि सत्व गुण विष्णुपालका ग्रहण होता है। मकार से पुरुष वा तमोगुण संहारक हर का ग्रहण और नाद से पर पुरुष ईश निर्गुण निष्क्रिय शिव का ग्रहण होता है। तीन मात्राओं से ही सम्पूर्ण संसार को बतला कर शेष अर्द्धमात्रा से परमात्मा का स्वरूप बताया है। जिससे पर और अपर कोई नहीं, जिससे अधिक सूक्ष्म और महान कोई नहीं, वह वृक्ष की न्यायी सब भुलोक में स्तब्ध है, उसने ही सम्पूर्ण संसार को व्याप्त किया है।

इस पुराण के वर्णन से कल्पित देवी देवताओं में तो कोई भी गृहीत नहीं होसकता प्रत्युत वेद मन्त्र द्वारा वैदिक महान् परमात्मा ही का ग्रहण होसकता है। एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि यहां तो बड़ी महिमा गायी है। परन्तु वर्तमान सनातन धर्मावलम्बन का अभिमान करने वाले पौराणिक ओंकार से बड़ा विद्वेष करते हैं। श्री आदि शब्दों के प्रयोग को ओंकार से अधिक मान देते तथा अपने

कालावच्छेदयुक्तानांगुरूणामप्यसौगुरुः।
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः॥ १९॥
शुद्धास्वाभाविकी तस्य शक्तिः सर्वातिशायिनी।
ज्ञानप्रतिमं नित्यं वपुरत्यंतनिर्मितम्॥ २०॥
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः॥
शिवरुद्रादि शब्दानां प्रणवः परः स्मृतः॥ २३॥
शंभो प्रणववाच्यस्य भवनात्तजपादपि।
यासिद्धिः सापरा प्राप्या भवत्येवनसंशयः॥ २४॥
तस्मादेकाक्षर द रागमपारगाः।
वाच्यवाचकयोरैक्यंमन्यमानाः मनस्विनः॥ २५॥
अस्यमात्राःसमाख्याताश्चतस्रोवेदमूर्धनि।
अकारश्चाप्युकारश्चमकारोनाद इत्यपि॥ २६॥

पुराणों के अभिमत सिद्धान्त पर भी एक प्रकार का हास्य करते हैं। यह उनकी अत्यन्त मूर्खता तथा अपने पुराणसिद्धान्तों से भी अनभिज्ञता है। इस प्रकार का दुराग्रह केवल साम्प्रदायिक विद्वेष का परिणाम प्रतीत होता है।

ओंकार परमब्रह्म का अपरिमेय रूप ही वास्तव में स्थान २ पर पुराणकारों ने मुक्त कण्ठ से माना है। इस के लिये हम एक उद्धरण स्कन्द तथा एक उद्धरण लिंगपुराण से और देंगे। जिन से स्पष्ट हो जायगा कि लिंगपूजा और हरभक्ति ये सब अलंकार से कही गयी हैं अल्पबुद्धियों के समझाने के लिये, न कि अन्धविश्वास से पत्थर के टुकड़ों पर माथा फोड़ने के लिये।

शिवपुराण में ही पार्वती की महेश्वर को वरने के लिये तपस्या की कथा, महेश्वर खण्ड के भारिक खण्ड में इस प्रकार वर्णित है।

तपस्या करती हुई पार्वती की परीक्षार्थ भिक्षुवटुरूप में शिव स्वयं आये और बोले हे रम्भोरि! इस नयी उमर में यह दुश्चर तप करना क्यों प्रारम्भ किया है यह तुम्हारे अनुकूल नहीं है। गिरिराज के बड़े घराने में जन्म लेकर दुर्लभ भोगों को त्याग कर क्यों शरीर को कष्ट देती हो, जिसकी तुम इच्छा करती हो उसका वंश भी

अकारं वह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते।
मकारो सामनादोऽस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृता॥ २७।
अकारश्च महाबीजं रजस्स्रष्टा चतुर्मुखम्॥
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्वंपालयिताहरिः॥ २८॥
मकारः पुरुषो बीजं तमः संहारको हरिः॥
नादः परपुमानीशो निर्गुणोनिष्क्रियः शिवः॥ २७
सर्वैतिस्त्रभिरेवैदं मात्राभिर्निखिलं त्रिधा।
अभिधाय शिवात्मानं बोधयंत्यर्धमात्रया॥ ३०॥
यस्मात्परंनापरमस्तिकिञ्चिद्।
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्तिकिञ्चिद्॥
वृक्षइवस्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः।
तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥ ३२॥
(शिव पु० वायुसं०, उ० ख०, अ० ६)

ज्ञात नहीं, वह सदा नंगा रहता है, हाथ में शूल है और भूत गणों का राजा है, श्मशान उसके रहने का स्थान है, उसके शरीर पर राख भबूत लगी रहती है, बैल उसके चढ़ने की सवारी है पहनने को हाथी की खाल है। सांप ही उसके सजने के आभूषण हैं। उसकी बड़ी २ जटाएं हैं, ऐसा विगड़ी हुई टेड़ी आखों वाला निर्गुण तेरे योग्य बर किस प्रकार हो सकता है। इस लिये ऐसे बानर की आंख-वाले शंकर से अपना मन हटाले।

यह सुनकर कुपित हो कर पार्वती बोली कि शंकर के विषय में ऐसी उलटी वाणी मत निकालो, परमात्मा की निन्दा करने से मनुष्य घोर अन्धकार में पड़ जाता है। उस महादेव के चरित्र को तुम नहीं जानते। अब सुन इस निन्दा से पैदा हुये पाप से तू किस प्रकार मुक्त होगा। सब जगत् का आदि मूल कारण है तो उसका अन्वय या वंश कौन जान सकता है। उसका सम्पूर्ण जगत् ही रूप है इस लिये उसे दिग्वासा या दिगम्बर कहा जाता है। प्रकृति के तीन गुणों का बना हुआ ही उसका त्रिशूल है उसको वह अपने वश में रखता है इस से वह त्रिशूली कहलाता है। बन्ध से मुक्त हुये हुवे ऋषिमुनि गण ही भूत कहाते हैं वह उनका भी स्वामी है। इसी से वह भूतपति या भूतगणाधिपति कहाता है। यह संसार जिसमें सम्पूर्ण नित्य मरते हैं श्मशान है इस संसार में अपने भक्तों पर कृपा करके इसमें ही सर्वत्र व्यापक होने से रहता है। विभूतिएं सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य ही विभूत या भस्म कहाती है। वही सब ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होने से भूतिभृत् कहाता है। वृष धर्म कहाता है। उस धर्म पर ही वह परमात्मा आरूढ़ है इससे वह वृषी कहाता है। क्रोध आदि सब दोष ही सर्प हैं उनको वह रुद्र होने से धारण करता है। नाना प्रकार के कर्मयोग ही उसकी जटाएं हैं तीन वेद ही उसकी तीन आंखें हैं त्रिगुणों से बना देह ही त्रिपुर कहाता है

किमर्थमिति रम्भोरुनवे वयसि दुश्चरम्।
तपस्त्वया समारब्धं वायुरूपं विभाति मे ॥ ५५ ॥
दुर्लभं प्राप्यमानुष्यं गिरिराजगृहेधुना।
भोगांश्चदुर्लभान्देवि, त्यक्त्वाकिं क्लिश्यतेवपुः ॥ ५६ ॥

वह उस देह को नाश करके देह बन्ध से रहित हुआ हुआ है इसी लिये त्रिपुरघ्न कहाता है। इस प्रकार के महादेव को जो सूक्ष्मदर्शी पुरुष जानते हैं वे किसप्रकार महादेव का भजन नहीं करते।"

अब देखिये यह पार्वती के मुख से शिव का वास्तविक रूपवर्णन कितना ही वैदिक रहस्य खोलता है। यह पार्वती या हैमवती हिमवान् की पुत्री उमा क्या केनोपनिषद् की हैमवती उमा का स्मरण नहीं कराती। जिसप्रकार वहां देवताओं और ब्रह्मविद्या को अलंकार रूप में रखकर ब्रह्म का स्वरूप बताया है उसी प्रकार यहां भी उमा को ब्रह्मविद्या का रूप देकर शिव का वास्तविक रूप दिखाया गया है। इस प्रकार के वर्णन के अनुसार चलते हुवे प्रतिमा पूजा या मूर्त्तिपूजा का लेशमात्र भी पुष्ट नहीं होता। वेद भगवान में आये हुवे भी रुद्र के विशेषण इस व्याख्या से स्पष्ट तथा संदेह मुक्त हो जाते हैं।

अविज्ञातान्वयो नग्नः शूलीभूतगणाधिपः।
श्मशानानिलगो भस्मोद्धूलनो वृषवाहनः॥ ६०॥
गजाजिनो द्विजिह्वाद्यलंकृतांगोजटाधरः।
विरूपाक्षः कथंकार निर्गुणः स्यात्स्वबोचितः॥ ६५॥
गुणा ये कुलशीलाद्याः वराणामुदिता बुधैः।
तेषामेकोऽपि नैवाऽस्ति तस्मिंस्तन्नोचितःसते॥ ६६॥
निवर्तय मनस्तस्मात्स्मात्सर्वविरोधिनः।
मृगाक्षि मदनारातेः मर्कटाक्षस्य प्रार्थनात्॥ ६७॥
निशम्य कुपिता देवी प्राह वाचा सगद्गदम्॥ ६८॥
मामाब्राह्मण भाषिष्ठाविरुद्धमिति शंकरे।
महत्तमो यातिपुमान् देवदेवस्य निन्दया॥ ६९॥
नसम्यगभिजानासि देवदेवस्य चेष्टितम्॥
शृणु ब्राह्मण त्वंपापाद्यथा त्वंपरिमुच्यसे॥ ७०॥
सत्रात्रि सर्वजगतां कोऽस्यवे दान्वयंततः॥
सर्वं जगद् यस्य रूपं दिग्वासा कोर्त्यतेततः॥ ७१॥
गुणत्रयमयं शूलं शूलीयस्माद्बिभर्त्ति सः॥
अबद्धाः सर्वतोमुक्ताः भूताएव च तत्पतिः॥ ७२॥
श्मशानं चापि संसार तद्वासी कृपयाऽर्थिनाम्॥
भूतयः कथिता भूतिस्तां विभर्त्ति सभूतिभृत्॥ ७३॥
वृषोधर्म इतिप्रोक्तस्तमारूढस्ततो वृषी॥
सर्पाश्चदोषाः क्रोधाद्यास्तान्बिभर्त्ति जगन्मयः॥ ७४॥

लिंगमूर्त्तिपूजा के विषय में लिंगपुराण ने मूर्त्तिपूजा को इस दृष्टि से देखा है कि ज्ञानसम्पन्न पुरुष मूर्त्ति को नहीं पूजते प्रत्युत अज्ञानी लोग जड़ पूजन में प्रवृत्त होते हैं। इस विषय में वह लिखता है कि 'मुनि लोग उस परमात्मा से कर्म से संगति करते हैं और अपनी कल्पना से उस का रूप कल्पित करके स्वयं ही अपनी इच्छा से हटा देते हैं' *

वह रूप इस प्रकार का बताते हैं "उस परमात्मा का द्यौमूर्धा या शिरोभाग है, आकाश नाभि है। सूर्य और अग्नि तथा चन्द्र ये तीन नेत्र हैं, दिशाएं ही श्रोत्र हैं, पाताल चरण हैं समुद्र उसका पहनने का कपड़ा है सब देवता ही उस की भुजाएं और सकल नक्षत्रमण्डल उस के भूषण हैं। उसकी पत्नी प्रकृति है पुरुष लिंग है उसके मुख से ब्रह्मा और ब्राह्मण पैदा हुवे, उसकी भुजाओं से इन्द्र वा उपेन्द्र और क्षत्रिय पैदा हुवे हैं और उरुप्रदेश से वैश्य और पैर से शूद्र पैदा हुवे हैं। पुष्करावर्त्तकादि प्रलय के मेघ ही उस परमात्मा के केश हैं। वायु उसके प्राण हैं श्रुति और स्मृति ही उस की (२) ज्ञानमय गति है, इसी ज्ञान संकल्पमय गति से

नानाविधाः कर्मयोगाः जटारूपाः बिभर्त्ति सः ॥
वेदत्रयीत्रिनेत्राणि त्रिपुरंत्रिगुणं वपुः ॥ ७५ ॥
भस्मीकरोति तद्देवः त्रिपुरघ्नः ततः स्मृतः ॥
एवं विधंमहादेवं विदुर्येसूक्ष्मदर्शिनः ॥ ७६ ॥
कथंकारं हि ते नाम भजंते नैव तं हरम् ॥ ७७ ॥
(स्कन्द० माहेश्वर ख०, कौ० ख० २, अ० २५)

वदंतिमुनयः केचित् कर्मणातस्यसंगतिम् ।
कल्पना कल्पितं रूपं संहृत्यस्वेच्छयैव हि ॥ ६ ॥
द्यौर्मूर्धा नु विभोस्तस्य खंनाभिः परमेष्ठिनः ॥
सोमसूर्याग्नयोर्नेत्रं दिशः श्रोत्रं महात्मनः ॥ ७ ॥
चरणौचैवपातालं समुद्रस्तस्य चाम्बरम् ।
देवास्तस्यभुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥ ८ ॥
प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते ।
वक्त्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान् प्रभुः ॥ ९ ॥
इन्द्रोपेन्द्रौ भुजाभ्यांतु क्षत्रियाश्चमहात्मनः ।
वैश्यश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्रापादात्पिनाकिनः ॥ १० ॥
पुष्करावर्त्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्त्तिताः ।
वायवो प्राणजास्तस्य गतिश्चैतंस्मृतिस्तथा ॥ ११ ॥

कर्म स्वरूप होकर प्रकृति का प्रवर्त्तक है । वह परमात्मा पुरुष केवल ज्ञान द्वारा ही जाना जासकता है । सैकड़ों कर्म यज्ञों की अपेक्षा तपोयज्ञ अधिक उत्कृष्ट है सहस्रों तपो यज्ञों से उत्कृष्ट जपयज्ञ है सहस्रों जपयज्ञों से ध्यान यज्ञ उत्कृष्ट है ध्यान से परे कुछ नहीं और ध्यान यज्ञ ही ज्ञान का साधन है । जब समाधि में बैठा हुवा योगी ध्यान से दर्शन करता है तब ध्यान यज्ञ करते हुवे के शिव सदा प्रत्यक्ष होता है । परम आनन्द रूप ही विशुद्ध शिव अक्षर स्वरूप लिंग कहाता है वही निष्कल सर्व व्यापी और योगियों के हृदय में स्थित ज्ञेय है । लिंग दो प्रकार का होता है एक बाह्य और दूसरा स्थूल, बाह्य स्थूल और आभ्यन्तर सूक्ष्म होता है कर्मयज्ञ में लगे हुए-स्थूल जड़ बुद्धि लोग स्थूल लिंग के पूजन में लगे हुवे हैं । असत् पुरुष अर्थात् अज्ञानियों की भावना के निमित्त ही यह स्थूलरूप बनाया जाता है दूसरा इसका कोई प्रयोजन नहीं । जिस के अध्यात्मिक लिंग प्रत्यक्ष नहीं होता वह मूढ़ बाहर ही सब कुछ कल्पित करके पूजता है । ज्ञानियों के तो सूक्ष्म मल रहित अव्यय ही प्रत्यक्ष होता है ।

मूर्त्तिपूजा के महोत्सवों में शिवरथ यात्रा जगन्नाथ की रथ यात्रा से प्रायः सभी भारत वासी अच्छी तरह से परिचित हैं इस रथयात्रा को मूल पुराणों में किस प्रयोजन

---

(२) **अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्त्तकः ।**
पुंसा तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो न चान्यथा ॥ १२ ॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यः तपोयज्ञो विशिष्यते ।
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥ १३ ॥
जपयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानयज्ञात्परोनास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥ १४ ॥
यदास्मरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति ।
ध्यानयज्ञस्तस्यास्य तदासन्निहितः शिवः ॥ १५ ॥
परानंदात्मकं लिंगं विशुद्धं शिवमक्षरम् ।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥ १८ ॥
लिंगंतुद्विविधं प्राहुर्बाह्यमाभ्यंतरंद्विजा
बाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्माभ्यंतरं द्विजाः ॥ २० ॥
कर्मयज्ञरता स्थूला स्थूललिंगार्चने रताः ॥
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः ॥ २० ॥

से लिखा है परन्तु अब उसका लेशमात्र भी ध्यान में नहीं आता। अब तो निष्कारण महात्म्य मात्र ही शेष रहगया है। यदि मूढ़ व्यक्तियों की भावना ही के लिये मूर्त्ति पूजा को सप्रयोजन मान लिया जावे तो वह प्रयोजन भी वर्तमान में पूरा नहीं होता। वास्तव में शिव की रथयात्रा का पौराणिक इतिवृत्त इस प्रकार है:—

देवताओं की प्रार्थना पर त्रिपुर बनाकर बैठे हुवे दैत्यों को विनाश करने के लिये शंकरयुद्धयात्रा करने पर सम्मत हुवे विश्वकर्मा ने उनका रथ तय्यार किया। जिस पर चढ़कर दैत्यों के तीनों पुरों का नाश किया। विश्वकर्मा के बनाये हुवे रथ का पुराणकार इस प्रकार वर्णन करता है जिसकी प्रतिमा या प्रतिकृति जगन्नाथ का यात्रारथ बनाया जाता है।

१ "देवता ध्यान पूर्वक विश्वकर्मा से मिल कर रथ तय्यार करने लगे। विश्वकर्मा ने देव रुद्रका दिव्यरथ बनाया जिसका स्वरूप तीनों लोकों का बना हुवा था। वह रथ सर्व लोकमय, सर्व देवमय, सर्व भूतमय, सुवर्ण से बना हुवा बहुत मनोहर था, उसका एक दायां चक्र सूर्य और बायां चक्र चन्द्र था, पहले में १२ अरे थे और दूसरे में १६ अरे थे। दांये चक्र के १२ अरे १२ आदित्य वा मास ही थे, चन्द्र के १६ कला ही १६ अरे हैं। बांये चक्र में नक्षत्रतारागण ही भूषण रूप में लगे थे। छः ऋतु उसके चक्र धारण थे। मध्यभाग (दुष्वार) अन्तरिक्ष था। मंदर पर्वत सारथि के बैठने की गद्दी थी। दायें और बायें

अध्यात्मिकं च यल्लिंगं प्रत्यक्षो यस्य नो भवेत् ॥
असौमूढो बहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ॥ २१ ॥
ज्ञानिनां सूक्ष्ममलं भवेत् प्रत्यक्षमव्ययम् ॥
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥ २२ ॥
(लिंगपुराणम् पूर्वा० अ० ७१)

(१) अथरुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥ १ ॥
सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः ॥ २ ॥
रथांगं दक्षिणं सूर्यः वामांगं सोम एव च ॥
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् ॥ ३ ॥
अरेषु तेषु विप्रेन्द्राश्चादित्याद्वादशैव तु ॥
शशिनः षोडशारेषु कलावामस्य सुव्रताः ॥ ४ ॥

लगाये हुवे जुए ही अस्ताचल और उदयाचल दोनों पर्वत थे। महामेरु और उसके आश्रय भूत अन्य पर्वत अन्दर के बैठने का मुख्य गद्दा था, संवत्सर उसका वेग था अक्ष के प्रान्त भाग दोनों अयन दक्षिणायन और उत्तरायण थे। मूहूर्त्त ही बिछाने के और लपेटने के पर्दे वा चादरें थीं, कलाएं उसकी चक्र २ फट्टियें थीं, रथ के टेकने की नाक काष्ठा (कालपरिमाण) की बनी थी, चक्र के आधार रूप अक्षदंड क्षण थे, नीचे लगी टेकें निमेष थीं जुए और अक्ष को जोड़ने वाली लम्बी लकड़ी में लव नामक काल भाग थे, द्यौ उस रथ की छतरी थी, मोक्ष और स्वर्ग दोनों झण्डे थे धर्म ही इसका दण्ड था, यज्ञ दण्ड की भी टेकें थीं, यज्ञ में दी जाने योग्य दक्षिणाएं लोहमय ५० जोड़ थे, धर्म और काम जूए पर लगने वाली किनारों की खूंटिएं हैं। अव्यय प्रकृतिएं ही उसके मुख्य धारक दण्ड हैं, अक्षों को सींचने के लिये उपयुक्त तेल या बांस का बना तेल बुद्धि है। कोण अहंकार है बल भूत या प्राणिसंघ हैं। चारों तरफ के भूषण इन्द्रिय हैं श्रद्धा उस की गति और वेद उसके घोड़े हैं; वेदों के पदच्छेद उन के भूषण हैं छहो अंग उनके उपभूषण हैं, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्रादि ये सब अश्वों के अयाल में लगे हुए बाल तथा ऊपर डाले सुन्दर वस्त्र हैं। मन्त्र, वर्ण, पाद, तथा ब्रह्मचर्यादि साधन ये सब उन वस्त्रों की कोर में लगी घन्टिएं हैं अनन्त शेष ही बांधने की रज्जु हैं। इस रथ के पैर दिशाएं तथा उपदिशाएं हैं। पुष्कर आदि नभोभाग सब उस रथ की सोने की बनी झण्डियें हैं। चारों समुद्र उसके

ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैव तु भूषणम्।
नेम्यः षड्ऋतवश्चैव तयोर्वै विप्रपुंगवाः ॥ ५ ॥
पुष्करं चान्तरिक्षं वै रथनीडश्च मन्दरः ॥
अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौतौ कूबरौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केसराचलाः ।
वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसंगमौ ॥ ७ ॥
मुहूर्ताः बंधुरास्तस्य शम्याश्चैव कलास्मृताः ।
तस्य काष्ठास्मृता घोणाश्चाक्षदण्डाः क्षणाश्च वै ॥ ८ ॥
निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषाचास्य लवाः स्मृताः ।
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौध्वजौ ॥ ९ ॥

ऊपर डालने के कम्बल आदि पर्दे हैं। गंगादि सब नदियें रथ पर अलंकारों से सजी चामर हाथ में लेकर झलने वाली स्त्रियें उस रथ को सुशोभित करती हैं। आवह प्रवहादि सात वायुएं उसकी सात सोने की बनी पौड़ियें हैं।

देव ब्रह्मा सारथि है अन्य देवता लगाम पकड़ने वाले सईस हैं। ब्रह्मदेवता की सूचना देने वाला ओंकार प्रणव ब्रह्मा के हाथ में एक हांकने का हन्टर है। लोकालोक पहाड़ उसकी उतरने की सीढ़ी है। मानसादि अन्दर की पौड़ी है। शेष सब पर्वत उस की नाक भाग हैं। सात तल कपोतरूप होकर इर्द गिर्द उड़ते हैं। मेरुमहा छत्र है। मंदर पास बजाने के लिये बड़ा नक्कारा है, हिमालय पर्वतवाला एक धनुष है। उसकी तांत स्वयं शेषनाग है। वेदवाणी रूपी देवी सरस्वती धनुष में लगी घन्टियें हैं। बाण विष्णु है, चन्द्र बाण का फला है, कालाग्नि उस बाण की तेज धार है, कालकूट ही से पैदा हुआ बल है वायु ही पिच्छ है। इस

धर्मो विरागो दण्डोऽस्य यज्ञाः दण्डाश्रयाःमताः।
दक्षिणाः संधयस्तस्या लौहाः पञ्चाशदग्नयः॥ १० ॥
युगांतकोठी तौ तस्य धर्मकामावुभौ स्मृतौ॥
ईषा दण्डस्तथाऽव्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः॥ ११ ॥
कोणस्तथा ह्यहंकारो भूतानि च बलंस्मृतम्॥
इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समन्ततः॥ १२ ॥
श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्यहयाः स्मृताः।
पदानि भूषणान्येव षडङ्गान्युपभूषणम्॥ १३ ॥
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि सुव्रताः
बालाश्रयाः पटाश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः॥ १४
मंत्राघण्टाः स्मृतास्तेषां वर्णाः पादास्तथाश्रमाः।
अवच्छेदोह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः॥ १५॥
दिशः पादारथस्यास्य तथाचोपविश्चह॥
पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णारत्नभूषिताः॥ १६॥
समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकम्बलिकाः स्मृताः॥

प्रकार दिव्यरथ, दिव्यशर तथा दिव्यधनुष बनाकर, ब्रह्मा को सारथि बनाकर, रणके आभूषणों को धारण करके भवरूपी शंकर दिव्यरथ पर चढ़ गया। "

ये वर्णन है शंकर के रथ का। भव कहते है संसार को, संसार रूपी संहारक शिव का यह रथ एक विचित्र ही है इसका अनुकरण प्रायः सभी देवताओं के भक्तों ने किया है विष्णु के उपासकों ने नक्षत्रमय पुरुषोत्तम, शैवोंने नक्षत्रमय काल, वैष्णवों ने, विराट्रूप नृसिंह और त्रिविक्रम तथा यज्ञमय• बराह, द्यावापृथिवी रूप कूर्म, आदि को विस्तार पूर्वक वर्णित कर अपने इष्टदेव का परमात्मा के विराट्रूप• से कम नहीं रखा है। इसी प्रकार देवीभागवत वाले ने देवी को बनाया है। और अपने वास्तविक देवता की स्तुतिएं तथा प्रतिपादन शुद्ध औपनिषदिक शब्दों में करके पीछे से अपने साम्पदायिक जाल को विस्तारा गया है। इन सब की अवैदिकता इसी से सिद्ध है कि इनका परस्पर का बहुत विरोध है। पारस्परिक लड़ाई झगड़ों का कोई अन्त नहीं है। उपरिनिर्दिष्ट सब अलंकारों को सप्रमाण हम आगे अन्य प्रकरण में स्पष्ट करेंगे। और अन्य भी कतिपय अलंकारों को स्पष्ट करके पाठकों के चित्त में मूर्त्तिपूजा की अल्पसारता को दर्शाएंगे।

गंगाद्याः सरितः श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः ॥
चामरासक्तहस्ताग्रा सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः ॥ १७ ॥
तत्रतत्र कृतस्थानाः शोभयांचक्रिरे रथम् ॥
आवहाद्यास्तथासप्त सोपानं हैममुत्तमम् ॥ १८ ॥
सारथिर्भगवान् ब्रह्मा देवाभीषुधरास्मृताः ॥
प्रतोदोब्राह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ॥ १९ ॥
लोकालोकाचलस्तस्य ससोपानः समंततः ॥
विषमश्चतदा बाह्योमानसाद्रिः सुशोभनः ॥ २० ॥
नासासमन्ततस्तस्य सर्वएवाचलाः स्मृताः ॥ २१ ॥
तलाः कपोलाः कापोताः सर्वेतलनिवासिनः ॥
मेरुरेव महाच्छत्रं मन्दिरः पार्श्वडिण्डिमः ॥ २२ ॥
शैलेन्द्रः कार्मुकंचैव ज्याभुजंगाधिपः स्वयं ॥
कालरात्र्यांतथैवेहतथेन्द्रधनुषापुनः ॥ २३ ॥
घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी ।
इषुर्विष्णुर्महातेजाः शल्यंसोमः शरस्यच ॥ २४ ॥
कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षात्तीक्ष्णः सुदारुणः ॥
अनीकं विषसम्भूतं वायवो वाजकाः स्मृताः ॥ २५ ॥
एवंकृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकंच शरंतथा ॥
सारथिं जगतां चैव ब्रह्माणं प्रभुरीश्वरम् ॥ २६ ॥
आरुरोह रथं दिव्यं रणमंडनधृग्भवः ॥
सर्वदेवगणैर्युक्तं कम्पयन्निव रोदसी ॥ २७ ॥

कतिपय व्यक्ति यह तर्क उठा सकते हैं कि महामहिम महान आत्मा परम आत्मा स्वयं विराट् सम्पूर्ण संसार में फैले हुवे और अपनी लीला, से या सर्व शक्तिमत्ता से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चक्र को चला रहे हैं। उसी को ध्यान में रख कर अलंकार रूप से वर्णित किये रथ का हम भक्ति से अनुकरण करें तो अच्छा ही है और इस प्रकार मूर्तिपूजा साभिप्राय होजायगी परन्तु यह तर्क भी निराश्रय है। कवि के आलंकारिक वर्णनमय लेख के अनुसार पूजा अवश्य करनी चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है यदि ऐसा ही होता तो उपनिषदों में दूरदर्शी ऋषियों के कहे अलंकारों की भी पूजा सनातन से प्रचलित होनी चाहिये थी क्योंकि इन पुराणों की अर्वाचीन रचना की अपेक्षा उपनिषदों की प्राचीन रचना अधिक मान्यास्पद है उपनिषदों में भी वैश्वानर का विराट्वर्णन शिव के गतउद्धरण का मूल है। इसी प्रकार **'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा"** इत्यादि अहंकार भी कृत्तिक के पूजने योग्य होवे और इसी प्रकार **"ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखा"** इत्यादिक अद्भुत अलंकार भी पूजने योग्य होजावेंगे। परन्तु ऐसा किसी भी प्राचीन काल में हमें उपलब्ध नहीं होता। रथयात्रादि यह सब मूर्तिपूजा का प्रकार सीधा जैनियों का अनुकरण है इस में संदेह नहीं।

—:o:

पंचदश अध्याय

अवतार कल्पना

"द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥"

पुराणकारों का यह मत है कि देवता परमात्मा अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये समय २ पर अवतार लेकर दर्शन देता है। इसी सिद्धान्त का प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष और योरोप दोनों स्थानों पर समानभाव से ही है। भारतीय लोग परमात्मा को मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह इन तिर्यग् योनियों और जामदग्न्य, राम, कृष्ण और बुद्ध और भाविं में कल्कि इन मनुष्य योनियों में अवतार लेकर आया हुवा विश्वास करते हैं। इसी प्रकार दैत्यों का संहार करने के लिये भगवान् नानारूप धर कर पृथ्वीतल पर आता है और पृथ्वी का भार हटा कर फिर चला जाता है। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा तथा अन्य देव और इसी प्रकार दैत्य भी नाना अवतार लेकर इस जगत् में अपनी लीला का नाटक दिखाते हैं।

पुराणों का सारा कथा क्रम अवतार के सिद्धान्त पर स्थित है। इन कथाओं में से अवतार सिद्धान्त की शृंखला के निकाल देने पर ये कथाएं सिवाय एक औपन्यासिक वर्णन के कुछ नहीं रह जातीं। अब हम पुराणों में माने गये अवतार सिद्धान्त की समालोचना करेंगे और दिखाएंगे कि इन का वास्तविक तात्पर्य क्या उसी रूप में है जिस रूप में स्थूल वर्णन तथा सर्वसाधारण का अन्ध विश्वास है या कुछ दूसरा है।

भक्तों का वास्तव में यही विश्वास है जैसा कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् हे भारत! जब २ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब

मैं साधुओं की रक्षा और दुष्टों के नाश करने के लिये और धर्म संस्थापन के लिं अपने आप पैदा होता हूं। अर्थात् अवतार लेता हूं।

कृष्ण के इस वचन को ही अवतार की पुष्टि में प्रमाण रूप से सनातनी भाई दिया करते हैं।

परन्तु उन का यह कथन ठीक नहीं। क्योंकि इसमें अवतार का गन्धमात्र भी नहीं है। इस में केवल सृजामि शब्द है जिस का अर्थ अवतार लेना किया जाता है। यह अर्थ सर्वथा असंगत है। क्योंकि गीतामयी उपनिषद् का यह पद भी उसी अर्थ का वाचक होना चाहिये जिस अर्थ में मुण्डकादि उपनिषदों में सृजा, (सृजामि) शब्द प्रयुक्त होता है।

उसी प्रकार यदि संगति लग सके तो लगाना उचित है। यदि जन्म लेने के विषय को प्राधान्य देकर "आत्मानं सृजामि" का अर्थ अपने को पैदा करता हूं ऐसा भी अर्थ करने पर कोई दोष नहीं कृष्ण अपने को परमात्मा से अतिरिक्त ही ज्ञानवान् जीव मानते हुवे ऐसी उदारता का वचन कह सकते थे। और अधर्म के नाश और धर्म का उद्धार करने के लिये इस प्रकार का अनुग्रह वचन कहते हों इस में संदेह क्या है।

अवतार को मानने वाले कतिपय अन्य भी गीता के वचनों को अपने पक्ष में उद्धृत करते हैं हम पाठकों के समक्ष उन की भी समालोचना संक्षेप से करते हैं। जैसे:—

गीता में आता है, "**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**" अर्थात् जीव रूप से जीवलोक में भी मेरा ही अंश है। इस से भगवान् जीवरूप से अवतार ले सकता है।

परन्तु यह कहना ठीक नहीं क्योंकि परमात्मा सत् चित्त और आनन्द है और जीव केवल चित् है। इस चित् की अपेक्षा करके ये वचन लिखे गये हैं। यदि इससे अवतार भी मान लिया जाय तो अवतारवादी को आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त सकल जीवलोक के प्राणिमात्र तक को भगवान् का अवतार मानना पड़ेगा। फिर अवतारों की असंख्यता हो जायगी, इस से विशेष २४ या १० अवतार संख्या का नियत करना किसी प्रयोजन का नहीं। अनुग्राह्य और अनुग्रहीता ये दोनों ही

भगवान् के अवतार होंगे । भगवान् भगवान् पर ही अनुग्रह करे यह कैसा हास्यास्पद है ।

उपरोक्त प्रकार की सर्व व्यापकता का परिचय तो अन्यत्र भी बहुत से स्थानों पर दिया गया है जैसे "**मामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा**" पृथ्वी के अन्दर और सब भूत प्राणियों को मैं परमात्मा ही) अपने बल से धारण करता हूं।

प्राणिरूप में आने के विषय में तो, केवल एक प्रकार ही और दृष्टिगत होता है वह यह कि —

"**अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः**"

मैं वैश्वानर रूप (जाठराग्नि) होकर प्राणियों के देह में बैठा हुवा हूं ।

कई कहते हैं गीता में लिखा है कि—

"**यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।**

तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंशसम्भवम् ।"

"जो जो भी प्राणि ऐश्वर्य से सम्पन्न लक्ष्मी और बल से युक्त हैं वेही मेरे अंश से पैदा हुवे २ समझना ।" इससे दसों अवतार या २४ अवतार ईश्वर के ही हैं ।

यह कहना भी निराधार है क्योंकि अपनी विभूतिएं दिखाते हुए श्रीमद् और विभूतिमत् रूप दिखाए हैं जैसे:—

"**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः, प्रजनश्चास्मि कंदर्पः**" इत्यादि ।

अर्थात् मैं जलों में रस हूं, शशि सूर्य की प्रभा हूं उत्पन्न करने वाला कंदर्प हूं । इत्यादि ।

कोई कहते हैं कृष्ण ने कहा है कि—

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥

अर्थात् "मानुषी तनु में आये हुवे लोग मेरा अपमान करते हैं । अर्थात् मुझे अवतार नहीं मानते ।"

यह कहना ठीक नहीं । क्योंकि कृष्ण ने ठीक ही कहा है कि मूढ लोग मुझे मनुष्यरूप में आया हुवा समझकर मेरा अपमान करते हैं इसी भावाशय को लेकर कृष्ण अन्यत्र ईश्वर का रूप बताते हुवे कहते हैं ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम्
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

सब भूतों में समानभाव से व्यापक, नष्ट होने वाली वस्तुओं में अविनाशी परमात्मा को देखने वाला वास्तव में देखता है। सब स्थानों पर समभाव से व्याप्त परमात्मा की सत्ता को जानने वाला अपने आत्मा का नाश नहीं करता और अन्त काल में परमगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार गीता में से भी अवतारवाद सिद्ध नहीं होसकता। परन्तु रामकृष्ण आदि वीरों के उपासकों ने इनकी देवता रूप से उपासना करदी। भावना के प्रबल होजाने से उन में परमात्मा का अंश प्रतीत होने लगता है।

रामकृष्णादि का किया बड़े से बड़ अद्भुत कार्य ऐसा नहीं जो कि मनुष्य साध्य नहो। गोवर्धनादि पहाड़ का उठाना आदि गप्पें भी बहुत बताई गयीं हैं। इसी प्रकार विरोधियों को वर्णन करने वालों ने केवल अपने देवता का नाम रखने के लिये असुर व दानव नाम से पुकारा है। अनुग्राहक परमात्मा को अनुग्रह करने के लिये और बहुत से प्रकार हैं। स्वयं न आकर विद्वान् योगी निष्ठा-शील व्यक्तियों को भी जगत् का उद्धार करने के निमित्त भेज सकता है फिर ऐसे स्थान में पौराणिकों ने अपने स्वामी से भी अपने नौकर या भृत्य कासा कार्य करा कर बिना विचारे अपने देवता को नीच बना लिया। पृथिवी उद्धार करने के लिये वराह का आना आदि ये सब सर्वथा गप्प ही हैं, जबकि अब भी पृथिवी शेष नागादि किन्हीं पौराणिकों के बताए आधार पर न खड़ी होकर स्वतः परमात्मा की सूक्ष्म शक्ति पर स्थित है। न नीचे को जाती है और न ऊंचे ही उठती है। इसी प्रकार मन्दर को अपने पीठ पर रख लेने के प्रयोजन से कछुआ बनना, वृत्र को मारने के लिये इन्द्र के वज्र में से फट कर निकल आना, इत्यादि सब कपोल कल्पना तथा अल्प ज्ञानियों को भ्रममें फंसाने के लिये जालमात्र है।

यदि इन में आलंकारिक सत्यता मान भी ली जाय तो कोई हानि नहीं क्योंकि इससे तो सब अपना ही इष्ट सिद्ध है अब यह अवतार क्या है— और

किन २ पहचानों और गुणों को देख कर भगवान के अवतारों का निर्णय किया जाता है इसका विवेचन कुछ एक पुराणों के उद्धरणों से ही दिखाया जाता है।

देवी भागवत में कर्मों की नाना गति बतलाते हुए व्यासदेव जनमेजय के प्रति बोले कि मनुष्य और देवता आदि प्रारब्ध कर्मों के अनुसार पुण्यकर्म और पाप कर्म करते हैं, इसी नारायण और ये दोनों धर्म से पैदा हुवे हुवे नारायण का अंश होकर भी कृष्ण और अर्जुन के रूप में पैदा हुवे। यही पुराणों की परम्परा से प्रसिद्ध है।

इसके आगे देवता के अंश की पहचान कहते हैं। जिसमें अधिक विभव "अर्थात् ऐश्वर्य शाली" होता है वही देवांश है। ऋषि के बिना बने काव्य की रचना नहीं करता, बिना रुद्र के बने रुद्र की पूजा नहीं करता, बिनादेवांश के हुवे दान नहीं देता, बिना विष्णु के राजा नहीं, इन्द्र अग्नियम विष्णु कुबेर इन देवताओं से प्रभुत्व और प्रभाव, तथ पराक्रम को प्राप्त करके निश्चय से अपना शरीर धारण करता है जो कोई लोक में बलवान् भाग्यवान् और भोगवान् विद्यावान् दानशील होता है उसी को देवांश में कहा जाता है उसी प्रकार ये पाण्डव भी हैं और वासुदेव भी नारायण के तुल्य कान्ति वाला होने से देवांश कहा गया है ×

× तत्प्रारब्धवशात् पुण्यं करोति च यथा तथा ॥ २० ॥
पापं करोतिमनुजस्तथा देवादयोऽपिच।
तथानारायणोराज नरश्चधर्मजावुभौ ॥ २१ ॥
जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौनारायणस्य तौ।
पुराणपीठिकेयं वैमुनिभिः परिकीर्त्तिता ॥ २२ ॥
देवांशः सतुविज्ञेयो यो भवेद्व विभवाधिकः।
नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते ॥ २३ ॥
नादेवांशोददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः।
इन्द्राद्ग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥ २४ ॥
प्रभुत्वं च प्रभावश्च कोपश्चैव पराक्रमम् ॥
आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥ २५ ॥
यः कश्चिद्ध बलवान् लोके भाग्यवानथ भोगवान्।
विद्यावान् दानवान् वापि स देवांशः प्रयच्यते। २६ ॥
तथैवैते समाख्याताः पाण्डवाः पृथ्वीपते।
देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥ २७ ॥
(देवी भागवत, स्कं० ६ अ० १०)

इसी की पुष्टि में साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि श्रीकृष्ण कोई परमात्मा नहीं था, प्रत्युत इन उपरोक्त दिव्यगुणों के होने से देवांश कहा सकता था। परन्तु कर्म श्रृंखला से वह वैसा ही बद्ध था जिस प्रकार अन्य मनुष्य।

व्यास बोले:—"प्राणियों के देह के सम्बन्ध में कर्मों की गति बड़ी गहन है वासुदेव भी अतिकष्टमय कारागार में पैदा हुआ, वसुदेव ने उसे गोकुल में भेजा ११ वर्ष वहां रहा, फिर मथुरा में जाकर उसने उग्र के पुत्र कंस को मारा, और अपने पिता माता को कारागार से छुड़ाया, मथुरा में उग्रसेन को राजा बनाया, म्लेच्छों के डर से द्वारवती नगरी में भाग गया। यह सब पौरुष के कार्य कृष्ण ने भावि भाग्य के वश होकर किये, फिर अनेक कार्य द्वारका में करके सकुटुम्ब प्रभासतीर्थ में देह त्याग करके स्वर्ग में गया, यह मैंने तुझे कर्म गहन गति कही वासुदेव भी व्याध के वाण से मृत्यु को प्राप्त हुआ +

फिर जनमेजय को स्वाभाविक शंका हुई कि भीष्म द्रोण आदि कौरवों के नाश करने पर भी श्रीकृष्ण ने आभीरशकम्लेच्छ निषादादिकों का नाश क्योंकि नहीं किया, वेभी पृथ्वी के भार थे।

\+ प्राणिनां देहसंबन्धे गहना कर्मणो गतिः।
दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैः मानवानां तु का कथा।
वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसंकटे ॥ ३६ ॥
नीतोऽसौ वसुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम्।
एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत ॥ ३७ ॥
पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात्।
मोचयामासपितरौ बंधनाद् भृशदुःखितौ ॥ ३८ ॥
उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरा पुरे।
जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः ॥ ३९ ॥
सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान् पौरुषं महत्।
कृत्वाकार्याण्यनेकानि द्वारवत्यांजनार्दनः ॥ ४० ॥
एवंतेकथिता राजन् कर्मणो गहना गतिः।
वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥ ४१ ॥
(देवी० भा० पु० स्कं० ६, अ० १०)

इस पर व्यासने यह कहा कि—क्योंकि कलियुग में पापियों ने होना ही था—अतः काल धर्म से, और कलियुगप्रभाव से वे रह गये। *

देखिये कैसा विचित्र समाधान है।

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से अवतार सिद्धान्त मानने वालों का न तो पृथ्वी का भारावतरण प्रयोजन ही सिद्ध होता है और न भक्तानुग्रह ही सिद्ध हुआ। परन्तु हां देवांश निर्णय का प्रकार जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में दिखाया गया है उस रीति से वीर उपकारी सर्वप्रिय जनों की वीरों के और देवताओं के सदृश पूजा ही के वे कारण तथा हेतु हो सकते हैं।

यह प्रथा भारतवर्ष में ही नहीं प्रत्युत सभी देशों में होती रही है। यूनान और रोमदेश के कितने ही वीर पुरुष बहुत काल तक देवता समझे जाते रहे। असभ्य जातियों में अब भी प्रायः उन के देवता उन के वीर पुरुष ही हैं। पर्वत प्रान्तों में जमदग्नि वसिष्ठ गौतम व्यासादि ऋषियों की मूर्त्तियों को मन्दिरों में रख कर अब तक देवता के सदृश पूजा होती है। राम कृष्ण, बुद्ध तथा जैनियों के २४ तीर्थङ्करों की पूजा, ये सब वीर पूजा के उपलक्षण हैं। प्रथम प्रथम यह पूजा या श्रद्धा का भाव पुरुष के गुणों के अन्दर अनुराग होने से पैदा होता है परन्तु पीछे से वही भाव परिपक्व होकर तन्मय देवता की उपासना में परिणत हो

---

* जनमेजय उ० (देवी भा० स्कन्द ६ अ० ११)
हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा।
बाल्हीको सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्त्तनस्तथा ॥ ८ ॥
यैर्लुण्ठितं धनंसर्वं हतांश्च हरयोषितः।
कथंननाशिताः दुष्टाः ये स्थिताः पृथ्वीतले ॥ ११ ॥
आभीराश्च शका म्लेच्छानिषादाः कोटिशस्तथा।
भारावतरणं किंकृतं कृष्णेनधीमता ॥ ११ ॥
संदेहोऽयं महाभाग न निवर्त्तति चित्ततः ॥
कलावस्मिन् प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥
व्यास उवाचः—
राजन् यस्मिन् युगे यादृक् प्रजाभवति कालतः।
नान्यथातद् भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥ १२ ॥
युगधर्मस्तुराजेन्द्र नयातिव्यत्ययंपुनः
कालः कर्त्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः १४ ॥

जाता है । फिर विशेष व्यक्ति या पुरुष का भाव सर्वथा लुप्त होजाता है और देव तथा परम ईश्वर को ही उसका नाम दे दिया जाता है । उपास्यदेव और परमेश्वर में भेद स्वतः नष्ट हो जाता है । यही मूर्त्तिपूजा और अवतार कल्पना की प्रथम सोपान है । जिससे प्रेरित होकर नर कच्छ मच्छादि रूप में अपने इष्टदेव को ही अवतीर्ण हुवे समझते हैं । यह अवतार कल्पना का सिद्धान्त तीनों देवता के उपासकों ने माना है । ब्रह्मा की उपासना नहीं के सदृश है । शेष दो देवतों प्रायः मनुष्य व पशुयोनि में अवतार लिये हैं, जिन की समालोचना क्रमशः करते हैं ।

वैष्णव-अवतार

वैष्णवों के मत से निम्नलिखित अवतार विष्णु के हुवे हैं।

(१) पृथिव्युद्धार तथा हिरण्याक्ष बध के लिये यज्ञमय **वराहावतार।**

(२) रुचि प्रजापति का उस की पत्नी आकूति में पुत्रसुयज्ञ हुवा उस ने १०० यज्ञ करके इन्द्र की उपाधि प्राप्त की, तब मातामह मनु ने उसे हरि की पदवी दी **हरि या शक्रावतार।**

(३) कर्दम प्रजापति के घर में उस की देवहूति में उत्पन्न कपिल ऋषि जिसने अपनी माता को ब्रह्मविद्या का उपदेश देकर मुक्ति दी थी, **कपिलावतार।**

(४) अत्रिऋषि के गृह में भगवान् के वरदान से प्राप्त महायोगी **दत्तात्रेयावतार।**

(५) ब्रह्मा के तप से पैदा हुए सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातन, ये चार भगवान् के अंश समझे जाते हैं इन्होंने प्रलय के पश्चात् भी योगविद्या का ऋषियों को उपदेश किया, **चतुःसनातनावतार।**

(६) धर्म की भार्या मूर्त्ति में ऋषि नर और नारायण, जिन के तप में उर्वशी आदि भी विघ्न नहीं कर सकीं, **नरनारायणावतार।**

(७) माताओं के कटाक्षों को सुनकर विरक्त होकर दुश्चर तप करने से ध्रुव पदवी प्राप्त करने वाला, **ध्रुवावतार।**

(८) अत्याचार से पीड़ित हुवे हुवे ऋषियों द्वारा भविष्यत वेन के शरीर से पैदा हुआ पुत्र पृथु जिसने पृथ्वी का दोहन किया। **पृथ्वावतार।**

(९) नाभि का सुदेवी या मेरुदेवी में उत्पन्न पुत्र ऋषभदेव जिसने अपने तप से जड़ परमहंस की पदवी पाई। **ऋषभावतार।**

(१०) ब्रह्मयज्ञ में हयके शिर को धारण करके वेदों का उपदेश करने वाला यज्ञमय पुरुष, **हयग्रीवावतार।**

(११) वैवस्वतमनु से देखा गया पृथ्वीमय, मत्स्यावतार ।

(१२) देवदानवों के समुद्रमथन के काल में मन्दराचल को पीठ पर उठाने वाला, कूर्मावतार ।

(१३) हिरण्यकशिपुनामक दैत्य को नखों से फाड़ने वाला, नृसिंहावतार ।

(१४) हाथियों के जत्थे में से एक हाथी को घड़ियाल ने पकड़ लिया था सो विष्णु के स्मरण करने से शंख चक्र गदा धर हो कर चक्र द्वारा नक्र का मुख फाड़ कर गज की रक्षा की, चक्रधरावतार ।

(१५) वामन दैत्य के यज्ञ में जाकर तीन कदम भूमि की याचना के छल से तीन ही कदम में तीनों लोकों का माप कर जिसने बलि को बाँध लिया वह, वामनावतार ।

(१६) नारद को भगवान् विषयक उपदेश करने वाला हंसावतार ।

(१७) दश दिशों में प्रथितयश होकर जिसने सम्पूर्ण राजाओं को अपने बश किया वह, मन्वन्तरावतार ।

(१८) अपने नाममात्र से सकल प्राणियों के रोगों को हरने वाला, धन्वन्तर्यवतार

(१९) भार्गव पर हैहय और तालजंघों का अत्याचार देख २१ बार क्षत्रियों का नाश करने वाला जामदग्न्य, परशुरामावतार ।

(२०) पिता की आज्ञा से बनवास करने वाला और रावण को संहार करने वाला दाशरथि, रामावतार ।

(२१) असुर अंशों से पैदा हुए राजाओं का विनाश करने वाला, ब्रज का उद्धार करने वाला वसुदेव का पुत्र वासुदेव, कृष्णावतार ।

(२२) वेदराशि को व्यासरूप से विभाग करने वाला, वेदव्यासावतार ।

(२३) वैदिक मार्ग का अनुसरण करने वाला दैत्यों का धर्म भ्रष्ट करने वाला तथा नास्तिक पाखण्ड मत का चलाने वाला, बुद्धावतार ।

(२४) अत्यन्त घोर अधर्म के समय खड्ग के ज़ोर पर कलिकाल का शासन करने वाला, कल्की अवतार ।

इन सब अवतारों में से कच्छपावतार, वराहावतार, मत्स्यावतार, नृसिंहावतार और वामनावतार ये पांच अवतार अमानुष। राम, राम कृष्ण बुद्ध ये मानुष और कल्की भावीपुरुष अवतार ये दश मुख्य समझे जाते हैं। इन में कोई एक कला के अवतार कोई दो कला कोई तीन कला के और शेषों में कृष्णावतार १६ कला के पूर्णावतार समझे जाते हैं। आश्चर्य यह है कि जिस में परमात्मा को पूर्णरूप से अवतीर्ण माना गया उसी के चरित्र को पतित से पतित मनुष्यों से भी नीचे गिराने का प्रयत्न किया गया है।

जहां भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ईश्वरावतार माना, साथ ही साथ धर्मनिष्ठ दैत्यों को अधर्म तथा पाखण्ड के जालों में डालने और उन्हें धर्मच्युत करने के लिये बुद्धावतार को माना गया है। साम्प्रदायिक लीला इसी प्रकार होती है। वे हरेक स्थान में द्वेषभाव से विचार में प्रवृत्त होते हैं।

वेदव्यास, ध्रुव, कपिल आदि तपस्वियों के तप को देख कर अवतार माना है राम कृष्ण कल्की आदि क्षत्रियों में वीरता के दिव्यांश को देखकर देवांश माना है। परन्तु मत्स्य कच्छवराह (शूकर) वामनादि अवतारों का क्या मूल है इस की कुछ विवेचना पाठकों के समक्ष करनी उचित है।

विकास दृष्टि:—

पाश्चात्य विद्वानों में बहुत से प्रकृति विज्ञान की गवेषणा करते हुवे इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि जीव संसार भी पहले किसी एक मूल से प्रारम्भ करके परिवर्तन शील अवस्थाओं के अनुसार जीव संसार में परिवर्तन होता रहा, अन्त में प्राथमिक बीजभूत जीवनांश ही परिणाम में मनुष्यरूप में आगया। शेष तिर्यग्योनि में केवल वह मध्यकी लड़ियें हैं जिन में से कि मनुष्य को पहले युगों में गुज़रना पड़ा है। इस विकास सिद्धान्त का संस्थापक डार्विन है उसके अनुयायी उस के इस पक्ष का पोषण करते हैं। इस पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धान्त को मान कर कतिपय पौर्वात्यविचारकों ने भी अपने प्राचीनधर्म शास्त्रकारों के सिद्धान्तों को भी उसी दृष्टि से लगाने का प्रयत्न किया है। इसी दृष्टि से इस अवतार परम्परा की व्याख्या की गयी है।

विकास के अनुसार सब से प्रथम जीवन का विकास जल में हुआ है और मच्छी आदि सब से प्रथम पैदा हुए हैं।

अतः पुराणकारों ने भी तदनुसार मत्स्य को ही भगवान का आदि अवतार माना है।

विकास के अनुसार तदनन्तर ऐसे जीव की सृष्टि हुई जो जल में और स्थल दोनों में जीसके इस विषय में पौराणिकों ने कूर्म को भगवान का अवतार माना है, कूर्म ही उपरोक्त प्रकार के जीवों का प्रतिनिधि है।

इस अवस्था के पश्चात् विकासवादियों के अनुसार दूध पिलाने वाले जानवरों की सृष्टि की बारी आती है। इस श्रेणी का प्रतिनिधि पुराणकारों ने वराहावतार स्वीकार किया है। इसके अनन्तर विकास के अनुसार पशु सर्ग तथा मनुष्य सर्ग के बीच का कोई रूप होना चाहिये। इस का प्रतिनिधि पुराणकार नृसिंहावतार का वर्णन करते हैं जो आधा पुरुष तथा शेष पशु सिंह का भाग है।

तदनन्तर विकास के अनुसार प्रारम्भिक मनुष्य के मार्ग में आने वाले प्राकृतिक असुरों को नष्ट करने का दृश्य उपस्थित होता है। उसका प्रतिनिधिभूत वामनावतार है जो स्वयं स्वल्पकाय हो कर भी महाकायदैत्यों को अपनी अलौकिक माया से वश करता है।

तदनन्तर जांगलिक तथा अन्य नीच जातियों से संहारक युद्ध करने की अवस्था उपस्थित होती है। क्रमशः विकसित जीवन को बहुत ही वीरता करनी पड़ती है। यही अवस्था दिखाने के लिए पुराणकारों ने परशुधारी जामदग्न्यराम की कल्पना की है।

अभी तक विकसित होते हुवे मनुष्य समाज में घोर गुणों की ही अधिकता रहती है। परन्तु इस से ऊपर की सीढ़ी में कुछ सौम्य गुणों का भी लेश हो जाता है। उस में परउपकार के निमित्त अपना त्याग तथा शौर्य कर्म प्रारम्भ हो जाता है। इस को दिखाने के लिए राम के अवतार की कल्पना है।

इस के अनन्तर सब गुण अपनी २ उन्नति पर होते हैं । इस को दर्शाने के लिए षोडशकलावान् कृष्ण का अवतार है ।

इस के अनन्तर प्रत्युत्पन्न दोषों का अतिक्रमण स्वाभाविक है । इस का प्रतिनिधि बुद्धभगवान् है ।

इतने तक तो विकास की दृष्टि से इस अवतार परम्परा को लगा लेने की चेष्टा की जाती है । परन्तु यह सर्वथा प्रतिकूल तथा पौराणिक आधारों के विरुद्ध कल्पित किया गया है । क्योंकि इस में भक्तानुग्रह का भाव ही लुप्त हो जाता है । कल्कि अवतार का कोई सम्बन्ध ही नहीं जुड़ता । २४ अवतारों का उद्धृत प्रकार तो किसी अंश में भी पुष्ट नहीं हो सकता है । दूसरा विकास को मानने से पुराण के कर्त्ताओं का कर्मभेद तथा ८४ लक्ष्य योनियों का सर्वथा पृथक् २ मानना तथा स्थान २ पर सृष्टि क्रम में प्रथम २ ऋषि तथा देवगण मानना ये सब बातें विकास के चरणों को जमने नहीं दे सकतीं । ऐसी अवस्था में पौर्वात्य विकासानुसारी विचारकों की यह व्याख्या हठ और दुराग्रह तथा अज्ञान के वश हो कर शास्त्र के तात्पर्य के अर्थ का अनर्थ करना मात्र ही है ।

अब हम मत्स्यादि चार अवतारों को क्रम से प्राचीन ग्रन्थों से मूल दिखाते हुवे पुराणों के वर्णनों की समालोचना तथा विवेचन करेंगे ।

मत्स्य अवतार ।

मत्स्यपुराण में मत्स्य अवतार के विषय में इस प्रकार कथा वर्णित है ।

+पूर्व काल में राजा मनु ने बड़ा भारी तप किया, पुत्र को अपने राज्य पर बिठा कर रवि का पुत्र वैवस्वत मनु मलयाचल के एकान्त देश में सब आत्मा के गुणों से सम्पन्न होकर सुख दुःख को समदृष्टि से देखता हुआ श्रेष्ठ योग का साधन करता था । उसके तप से प्रसन्न होकर १०००० वर्ष के पश्चात् वर देने के लिये ब्रह्मा प्रकट हुवे । और बोले "वर मांग" ।

+ पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः ।
पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः ॥ ६ ॥

राजा यह सुन कर बोले कि मुझे केवल एकही वर चाहिये वह यह कि स्थावर और जंगम सब प्राणिसमूह की मैं प्रलय काल में भी रक्षाकर सकूं। यह वर देकर ब्रह्मा छिप गये, आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। एक बार मनु भगवान् अपने आश्रम में पितृतर्पण × कर रहे थे पानी के साथ ही एक छोटी मच्छी उन के हाथ में आगयी। उस मच्छी को देख कर मनुको दया हुवी। और उसकी रक्षा के लिये उसे मनुने एक ठीकरे में रख दिया। एक दिनरातभर में बढ़कर पाहि पाहि का शब्द करती हुवी १६ अंगुल लम्बी हो गई। मनुने उसे लेकर कूंडे में डाल दिया। पुनः वह एक ही रात में बढ़कर तीन हाथ होगयी। फिर वह मत्स्य वहां पाहि पाहि करने लगा वैवस्वत मनु ने उसे एक कूए में डाल दिया। जब वहां भी न समासका तो उठाकर तालाब में डाला गया वहां एक योजन बढ़ गया। वहां भी पाहि पाहि का आर्त्त नाद सुना गया, फिर गंगा में डाला गया वहां से राजा ने उसे समुद्र में डाल दिया वह सारे समुद्र में व्याप्त हो गया मनु ने भयभीत होकर पूछा तू कौन असुर है। क्या तू वासुदेव तो नहीं, नहीं तो तू ऐसा कैसा होता। बीस हजार योजन शरीर किस के हो सकता है। हे केशव! तू मुझे मत्स्य का रूप धर के खिन्न करता है। यह सुन कर मत्स्य रूपी जनार्दन मनु को साधु साधु! कहता हुवा बोला, तुमने मुझे अच्छी प्रकार जान लिया। थोड़े ही काल में सब पृथिवी शैल और वनों से पानी में डूब जायगी। सब देवताओं के सार से यह नाव सर्वजीव समूहों की रक्षा के लिये बनाई गई है। स्वेदज अण्डज और उद्भिज्ज आदि जितने जीव हैं इन सब अनाथों की रक्षा करो।

× कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्
पपातपाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥
दृष्ट्वातच्छफरीरूपं सदयालुर्महीपतिः।
रक्षणायाकरोद्यत्नं सतस्मिन् करकोदरे ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशांगुलविस्तृता।
सोऽभवन् मत्स्यरूपेण पाहि पाहीतिचाब्रवीत् ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः।
यदा न मातितत्राऽपि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥
क्षिप्तोसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मितम्।
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत ॥

युग के अन्त में प्रलय काल की घोर प्रचण्ड वायु से जब यह नाव डोलने लगे तब हे राजन्! इस को मेरे सींग से बांध देना। प्रलय काल के पश्चात् इन सब प्राणियों के तुम राजा बनजाना। इस प्रकार कृतयुग के आदि में तू सर्वज्ञ धृति शील, मन्वन्तर का राजा देवताओं से भी पूजित होगा।

यह सुनकर मनु बोले कि कितने वर्षों में यह अन्तर गुजरेगा। हे नाथ! प्राणियों की मैं किस प्रकार रक्षा करूंगा। और फिर तुम मुझे कब मिलेगे। मत्स्य बोला कि आज से पृथ्वीतलपर अनावृष्टि अर्थात् वर्षा नहीं गिरेगी। पहले १०० वर्ष अनिष्टकारक दुर्भिक्ष पड़ेगा। फिर सूर्य की किरणों से तप्त होकर छोटे २ प्राणि मर जायंगे, फिर और्वानल, विषाग्नि तथा शिव का दाहक नेत्र सब प्रकुपित होजायंगे इस प्रकार सारी पृथिवी जलकर राख होजायगी, आकाश घर्म से तप जायगा सब नक्षत्र नष्ट होजायगे प्रलय काल के मेघ उमड़ेंगे और सारी पृथ्वी पर जल ही जल होजायगा। सब समुद्र एक हो जायंगे। उस समय वेदमयी नाव को लेकर सब प्राणियों के बीजों को उस पर लादकर मेरी दी हुयी रस्सी से मेरे सींग से बांधकर मेरे द्वारा रक्षित तू देवताओं के दग्ध होने पर भी स्थिर रहेगा। मन्वन्तर के नाश होने पर भी चांद, सूर्य, मैं ब्रह्मा, चारोलोक, नर्मदा नदी महर्षि मार्कण्डेय भव देव, पुराण और सब विद्याओं से युक्त यह विश्व स्थिर रहेगा। इस प्रकार सब एक

यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः।
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः॥
तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽसि त्वमसुरेश्वर!।
अथवा वासुदेवस्त्वमन्यईदृक् कथं भवेत्॥
एवमुक्तः सभगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः।
साधुसाध्विति प्रोवाच सम्यग् ज्ञातस्त्वयानघ!
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते।
भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना॥
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्म्मिता।
महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते॥
स्वेदजोद्भिज्जो ये वै ये च जीवाः जरायुजाः।
अस्यां निधायसर्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत!॥
युगान्तवाताभिहता यदा भवतिनौर्नृप।
शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि॥

समुद्र हो जानि पर तेरी सृष्टि के आदि में वेदों को प्रकट करूंगा। यह कहकर वह वहीं लुप्त हो गया। मनु भी अपने तप में लग गया। मत्स्य के कहे काल होजाने पर शृंगधारी मत्स्यरूप में जनार्दन प्रकट हुआ, रज्जु बन कर भुजंग मनु के समीप आगया। योग बल से सब भूत प्राणियों की नाव भुजंग रूपी रज्जु से मच्छी के सींग में बांधदी। इसी नाव पर चढे हुए मनु द्वारा किये प्रश्न के उत्तर में कहे पुराण को मैं तुम से कहूंगा। *

ये कथा भाग है। जिस को पुराण ने इस रूप में वर्णित किया है। यह शतपथ में मनुमत्स्य के अर्थवाद की छाया लेकर लिखा गया है। परन्तु जिस की यह विचित्र छाया है कुछ उस का स्वरूप भी देखिये और तुलना कीजिये कि किस प्रकार से नयी गप्पें घड़ कर जोड़ी जाती हैं।

शतपथ का मत्स्योपाख्यान इस प्रकार है। *

---

* (मत्स्य पुराण अ० १—२)

* "मनवे हवै प्रातरवनेज्यमुदकमाजह्रुः। यथा इदं पाणिभ्यामवने निजानाया हरन्ति। एवं तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। सह अस्मै वाचामुवाद: "बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वा इति"। "कस्मान् मा पारयिष्यसीति"। "औघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढ़ा, ततस्त्वा पारयिताऽस्मि" इति। "कथं ते भृतिरिति"। सहोवाच "यावद्वैक्षुल्लका भवाम बह्वीवैनस्तन्नाष्ट्राभवति। उतमत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यां मा अग्रे बिभरासि"। सयदातामतिवर्धा "अथ कर्षूखात्वातस्यां मा बिभरासि"। सयदातामतिवर्धा" अथ मांसमुद्रमभ्यवहरासि। तर्हि अतिनाष्ट्रो भवितास्मि"। इति।

शश्वद्ध झष आस सहि ज्येष्ठं वर्धते अथेति। "स मांतमा औघआगन्ता तन्मांनावमुपकल्प्य उपासासै। सम औघउत्थिते नावमापद्यासैथौ ततस्त्वां पारयितास्मि' तमेवंभृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। सयतिथीं समां परिदिदेश सतिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे। स औघ उत्थिते नावमापेदे। तं समत्स्य उपन्यापुप्लुवे। तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच। तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव सहोवाच, "अपीपरं त्वां। वृक्षेनावं प्रतिबध्नीष्व। तंतु त्वा मागिरौसन्तमुदकमन्तश्छैत्सीत्। यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति। सहतावत्तावदन्ववससर्प। तदप्येतदुत्तरस्यगिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघोहताः सर्वाः प्रजाः निरुवाह। अथ इह मनुरेकः परिशिशिषे। सोऽर्चन् श्राम्यंश्चचार प्रजाकामः॥"

(शतपथ कां १, अ० ८, ब्रा० १, १—७)

भृत्य लोग हाथ धोने के लिये प्रातःकाल जल ला जिस प्रकार किसी को हाथ धुलाया करते हैं, उसी प्रकार धोते हुवे राजा के हाथ में मच्छी आ पड़ी। उस ने राजा के प्रति कहा—"मुझे तू बचा, मैं तुझे बचाऊंगा"।

राजा—मुझे तू किस से बचावेगा।

मत्स्य—इन सब प्रजाओं को जब जलविप्लव रूढ़ा कर ले जायगा तब मैं तुझे बचाऊंगा।

राजा—किस प्रकार से तेरी रक्षा करूं।

मत्स्य बोला—"हम सब जितनी छोटी २ हैं उन सब को बड़ी नाश कर देती और खा जाती हैं। मच्छी ही मच्छी को निगल जाती है। पहले मुझे घड़े ही में पाल। मच्छ जब उस से भी अधिक बढ़ गया तो बोला "गढ़ा खोद कर उस में मुझे पाल। मत्स्य जब उससे भी अधिक बढ़ गया तो बोला—अब मुझे समुद्र में ले चल। अब मैं भी बहुत नाश करने वाला हो गया हूं। वह बहुत बड़ा झष नाम का मत्स्य बन गया, और बड़ा ही होता चला गया। फिर वह बोला अब जल पूर आवेगा। तब नाव बना कर मेरा आश्रय लेना। पूर आने पर नाव बना कर तू बैठना मैं तुझे बचाऊंगा। इस प्रकार मनु ने उसे पाल कर समुद्र में छोड़ दिया। जिस वर्ष उसने जलप्लव का समय कहा था उसी वर्ष मनु नाव बनाकर तय्यार हो गया। जलप्लव आने पर वह नाव पर चढ़ गया, मच्छ तैरता हुवा उसके पास आया। मनुने उस के सींग में अपनी नाव का फांसा डाल दिया। वह उत्तर गिरि के प्रति नाव लेकर दौड़ा। मत्स्य बोला मैंने तेरी रक्षा की, अब नाव को वृक्ष में बांध ले। पहाड़ों में जितना पानी चले उतना ही तू भी आगे बढ़ते जाना। वही मनु का अवसर्पण कहाता है जलप्लव ने आकर सब प्रजाएं बहा लीं। केवल एक मनु मात्र बच गया। वह तप करता हुवा तथा प्रजा की इच्छा करता हुवा भ्रमण करने लगा।

इस मनु की ब्राह्मणग्रन्थ की कही कथा में, पुराणकारने मत्स्य का अवतार अपनी तरफ से घड़ कर बनाया है। मनु का पितृ श्राद्ध ब्रह्मा का वर, नाव में सम्पूर्ण जीवों का रखना मत्स्य का भागते२ पुराण का कहना ये सब कपोल कल्पित तथा निराधार है।

इस अलंकार से सूचित क्या है सो भी सुनिये ।

व्यवस्था के नष्ट हो जाने पर जन समुदय में मत्स्य न्याय प्रवृत होता है और दुर्बल मनुष्य को सबल मनुष्य ग्रस लेता है । इस अव्यवस्था में व्यवस्था करने वाला महाबुद्धिमान् पुरुष अपनी ज्ञानमयी नौका के आधारपर चढ़ा हुवा उस विनाश समय में भी अपनी रक्षा करता है और अन्त में शतरूपा बुद्धि द्वारा पुनः राज्यस्थापन करता है। एक भावार्थ तो यह कि जो इस उपाख्यान से प्रतीत है क्योंकि शतरूपा से सब से प्रथम इला की उत्पत्ति ब्राह्मण ग्रन्थ में बताई गयी है । इला पृथ्वी की प्रतिनिधि है । पाकयज्ञ भी दुष्टों को रुद्र भाव से दण्ड देने के अतिरिक्तदूसरा नहीं है । जिनमें घृत दधि मस्तु आमिक्षा यह सामदान दण्ड और भेद इन चार नीतिशास्त्रोक्तउपायों के प्रतिनिधि हैं ।

दूसरा मन्वन्तर परिवर्त्तन की वास्तविक घटना को क्रमबद्ध किया है । वह यह है कि प्रति मन्वन्तर संधि में जलविप्लव आता है यहां कालचक्र के विद्वानों का दृढ़ सिद्धान्त है

इसी जलविप्लव का प्रायः सभी वैदेशिक प्राचीन साहित्य तथा धर्म पुस्तकों में भी वर्णन आता है । परन्तु किसी स्थान पर भी मत्स्य आदि किसी जन्तु को परमात्मा का अवतार नहीं माना ।

मन्वन्तर संधि में आये हुवे जलविप्लव में मनुने वेदमयीनाव बनाई । यह पुराणकार का ही मत है इस ज्ञानमयी नौका में काठ आदि का संयोग नहीं हो सकता। इसी कारण उसमें बांधने को शेषनाग का रस्सा भी अप्राकृत है फिर उसको बड़े मच्छ द्वारा खेंचे जाने की कथा तो सर्वथा अनुपयुक्त है इस का तात्पर्य यह है कि सूर्य ही स्वतः मनु है जो शेष रहा, और बाद जलमयी पृथ्वी को पाक यज्ञ से शोषण करके शतरूपा वाष्पद्वारा पुनः पृथ्वी [इला] को उत्पन्न [व्यक्त] किया और नये सिरेसे पृथ्वी पर सृष्टि बसी ।

मत्स्य केवल काल का प्रतिनिधि है जिसका सब से छोटा रूप क्षण है और क्रमशः बढ़ कर पल घण्टा दिन पक्ष मास ऋतु संवत्सर आदि रूप में बढ़ता जाता है । और अन्त में महान् हो जाता है । बड़ा कालपरिमाण छोटे काल के

परिमाण को अपने अन्दर लेलेता म.नोग्रस लेता है । इस प्रकार उस मत्स्यरूपी काल की गति पर जो ज्योतिर्विद् विद्वान् सदा विचार करते तथा अनुशीलन करते हैं वे उसकी क्रमशः रक्षा ही करते हैं और वही काल उनको भविष्यत् की घटनाओं के ज्ञान का भी साधन होता है। इन सब घटनाओं को समक्ष रख कर विवस्वान् के पुत्र मनु की यह कथा अलंकार रूप में वर्णित की है।

कालरूपी मत्स्य को कालरूपी भगवान् मानकर यदि मत्स्यावतार की कल्पना की हो तो कोई आश्चर्य नहीं । पुराणकार ने शेषनाग को नाव के बांधने की रस्सी बनाया यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ के उद्धरण में नहीं है। अतः यह भी प्रक्षिप्त ही है ।

मत्स्य को सींग वाला बनाना तथा जनार्दन नाम रखना यह दोनों विशेषण सकल संहारक काल ही में घटित हो सकते हैं । इससे हमारा ही पक्ष पुष्ट होता है ।

कूर्म-अवतार

दूसरा अवतार कूर्म है। इस के विषय में कूर्म पुराण और मत्स्य पुराण तथा अन्य सभी पुराण इस कथा में सहमत हैं कि*देव तथा दानव अमर होने के लिये समुद्र मन्थन करने पर तय्यार हुवे। उन्होंने मन्दराचल को मन्थनदण्ड बना कर शेष को घुमाने के लिये रज्जु बना कर विष्णु से मन्दर को धारण करने की प्रार्थना की। विष्णु ने स्वयं ही कूर्म का रूप धर कर मन्दराचल को धारण किया और समुद्र मथन किया। और फिर चन्द्र, श्री, सुरा, उच्चश्रवा अश्व, पारिजात वृक्ष कौस्तुभ रत्न, निकले और फिर सब आकाश में धूम ही धूम फैल गया। देव और दैत्य अग्नि में जलते भुनते भागने लगे फिर महासर्प पैदा हुवे और आयुर्वेद के प्रजापति अमृत का कलश हाथ में लिये धन्वन्तरि पैदा हुवे। *

इस अवतार का आधार शतपथ में इस रूप में कहीं भी नहीं है। परन्तु फिर भी यह कल्पना बहुत बुद्धिमत्ता की है।

शतपथ ब्राह्मण के छठे काण्ड के प्रारम्भ से ही सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकरण प्रारम्भ किया है। वह इस प्रकार है।

* [क] पुराऽमृतार्थं दैतेय दानवैः सहदेवताः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम्॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दनः।
बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया॥
(कूर्मपुराण अ० १, २५-२६)

[ख] मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलो मन्थकार्ये प्रवर्त्तताम्॥
(मात्स्य पु० अ० २ ४९)

"प्रजापति"* ने कामना की कि मैं फिर हो जाऊं। और प्रजा उत्पन्न करूं उसने श्रम और तप किया। प्रथम ब्रह्म को ही पैदा किया। साथ ही तीन वेदों को भी। वेही तीन वेद इसकी प्रतिष्ठा हुई। प्रजापति ने वाग् लोक से अपः की सृष्टि की वह सर्ग सर्वत्र व्याप्त होगया अतएव अपः कहाया। उसने सोचा इन अपः से सृष्टि पैदा करूं वह प्रजापति इन तीनों वेदों के साथ उन अपः में प्रविष्ट होगया तब वह **आण्ड** अर्थात् अण्डाकार होगया। उसने देखा, कहा ठीक है। त्रयीविद्या से ही प्रथम ब्रह्म को पैदा किया था इसी से श्रुति कहती है ब्रह्म इस संसार में सब से प्रथम पैदा हुवा। उस अण्डे के गर्भभाग में अन्दर जो था वह अग्नि बन गया। क्योंकि वह सब के आगे बना इससे वह अग्नि कहाया। और वह अग्नि ही अग्नि कहाता है। उसमें से जो आंसू वहां वह **अश्रु** बनगया। अश्रु ही अश्व कहाता है। जो रससा बना वह रासभ बना। अब भी जो कपाल में रस लिपा पुता रहा वह अज बन गया। अब जो शेष कपाल था वह पृथिवी बन गया। उस

---

* असद्वा इदमग्र आसीत्। साऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत भूयान् स्याम प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत् तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत। त्रयीमेव विद्याम्। सैवाऽस्मै प्रतिष्ठाऽभवत्।·········सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकाद्। वागेवाऽस्य साऽसृज्यत। सेदं सर्वमाप्नोद्यदिदं किञ्च। यदाप्नोत्तस्मादापः। सोऽकामयत आभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेय। सोऽनयात्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत् ततः आण्डं समवर्त्तत तदभ्यमृशदस्त्वित्ति।

ततो ब्रह्मैवप्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजम् इति। ······ अथयो गर्भअन्तरासीद् सोऽग्निरसृज्यत तस्मादग्निः अग्रिर्ह वै एतमग्निरा चक्षते·········अथ यदश्रु संक्षरितमासीत् सोऽश्रुरभवत्। अश्रुर्ह वै तमश्वइत्या चक्षते।······ अथ यद्रसदिव सरासभोऽभवदथ यः कपाले रसोलिप्त आसीत् सोऽजोऽभवत्। अथयत्कपालआसीत् सापृथिवी अभवत्। सोऽकामयत आभ्यो अद्भ्योऽधिमां प्रजनयेयमितितांसंक्लिश्यासुप्राविध्यत् तस्मैयद्पाङ्रसोऽत्यक्षरत् सकूर्मोऽभवत्। अथ यदूर्ध्वमुदौक्षत इदंतद्यदूर्ध्वमद्भ्योऽधिजायते। सेयंसर्वा पयवानुव्यैत्॥

तदिदमेवंरूपं समदृश्यतापएव। सोऽकामयत् भूयएवस्यां प्रजायेयेतिसोऽश्राम्यत् सतपोतप्यत् सश्रान्तस्तेपानः फेनमसृजत। सोवेदन्यद्वाएतद्रूपं भूयोवै भवति। श्राम्याणि एवेति। स श्रान्तस्तेपानो मृदंशुष्कापमूषसिकतं शर्करामश्मानं हिरण्यमोषधिवनस्पत्यमसृजत। तेनेमांपृथिवीमच्छादयत्। तावाएतानववस्त्रयः॥ (*शतपथ कां० ६ अ० १ ब्रा० १, क १-१५)

प्रजापतिने इच्छा की इन अपः से ही मैं पृथिवी में प्रजा पैदा करूं। उसने पृथिवी को पीड़ कर अपः को निचोड़ा। उसमें से जो नीचे रस निकला वह कूर्म हुवा। जो रूप उमड़ आया वह यह जो पानी के ऊपर आजाता है सब पानी ही पानी हो गया। उसने और भी प्रजा की इच्छा की, उसने श्रम किया और तप किया। श्रम और तप करने से फेन पैदा हुवा। उस ने जाना कि यह अपः का दूसरा ही रूप है। और भी कुछ बनेगा और श्रम करूं। फिर श्रम और तप करके मृद्-शुष्क जल, उषा, सिकता, शर्करा, पत्थर, लोहा, सोना, वनस्पति आदि पैदा हुवीं। इसी से उसने इस पृथ्वी को ढक किया। तो ये नवसृष्टियें कहाती हैं।"

इसी ब्राह्मणभाग में नीचे क्षरितरसकूर्म कहा है। पुराणकार को कदाचित् इस सर्ग प्रकरण का कूर्म रस कूर्म शब्द से अभिप्रेत नहीं है।

इसी प्रकरण को और भी विशद करने के अभिप्राय से ७ वें काण्ड में लिखा है रस ही कूर्म है जो अपः में लिपटे हुवे लोकों का रस नीचे की ओर बहा था उस रस के नीचे का कपाल यह लोक और ऊपर का कपाल द्यौलोक है। और भी कि:—यह जो कूर्म है। कूर्म का रूप धरकर ही प्रजापति ने प्रजा को बनाया था जो सर्जन किया वही क्रियारूप में बनाया। जो किया गया वही कूर्म कहाता है। वह कश्यप ही कूर्म है इसीसे काश्यपी प्रजाएं कहाती हैं। वही यह वही कूर्म वही आदित्य। ×

इस उद्धरण से कूर्म प्रजापति की बनाई सृष्टि का एक रूप कृति होने से कूर्म कहाया। आगे वही श्रुति कहती है "द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः" अर्थात् द्यौ और पृथिवी ये ही दोनों मिलकर कूर्म कहाती हैं।"

× रसो वै कूर्मः।............योवैसएषां लोकानामप्सुप्रविद्धानां पराङ्रसोऽत्यक्षरत् सएष कूर्मः। ....यावान उ वै रसस्तावान् आत्मा सएषइमएव लोकाः। तस्ययदधरं कपालं अयं स लोकः......यदुत्तरं, साद्यौः तद्व्यवगृह्यान्तमिवभवति। अथयदन्तरातदन्तरिक्षं। सएषइमएव लोकाः (शत० का० ७, अ० ५, ब्रा० १,१) स यत्कूर्मो नाम एतद्वै रूपंकृत्वा प्रजापतिः प्रजामसृजत। यदसृजत् अकरोत्तद्। यदकरोत्तस्मात्कूर्मः। कश्यपो वै कूर्मः। तस्मादाहुः, सर्वाः प्रजाः काश्यपाः" इति। (शत० ७, ५, १, ४,)

"कूर्म का निर्णय तो यह हो गया । शेष कथा के समुद्र के विषय में ब्राह्मण कहता है "ये तीन समुद्र हैं स्वर्ग लोकादि उनमें ही कूर्म का रूप धारण करके व्याप्त हुआ है ।" *

बस अब सब रहस्य स्पष्ट हो गया द्यावापृथिवी का मण्डलमयकूर्म ऊर्ध्व अधः मध्य तीनों लोकों में व्याप्त है । इसीसे अवतार का वास्तविक रूप परमात्मा के वेदों में वर्णित विराट् रूप से अतिरिक्त नहीं है । देवताओं और असुरों का मिलकर अमृत मथन पुराणकारों की अर्वाचीन रचना मात्र है । एक पुराणकार के समुद्र मथन का वृत्तान्त दूसरे पुराणकार के इसी वृत्तान्त से बहुत ही भिन्न है । बहुतों ने इस कथा को वर्णन करते हुये माया विष्णु का प्रादुर्भाव करके शिव के कामवश वीर्यपातादि की कथा का टंटा जोड़ कर अत्यन्त अश्लील कर दिया है ।

अब प्रश्न यही है कि क्या वास्तव में द्यावा पृथिवी ही कूर्म है जो प्रजापति का विराट् रूप है या कोई पुराण की कथा के अनुसार मन्दराचल को उठाने के लिये विशेष कूर्म का रूप धारण करने के लिये विष्णु ही आया था । इस का श्रुत्यनुसार उत्तर प्रथम ही है । यहां हम पुराणों के उद्धरणों से सिद्ध करते हैं ।

मार्कण्डेय पुराण में कूर्म का रूप इस प्रकार बतलाया है:—

क्रौष्टकि बोला:—+हे भगवन् आपने सम्पूर्ण भारत का वर्णन तथा नदी, पर्वत और देशों का वर्णन कह सुनाया परन्तु भारत के आख्यान में आपने कूर्मरूपी भगवान् हरि का वर्णन किया था उस की बनावट किस प्रकार की है । कूर्मरूपी जनार्दन किस प्रकार बैठा है उससे मनुष्यों का शुभाशुभ कैसे जाना जाता है और जिस प्रकार पैर हों और जिस प्रकार मुख हो वह सब मेरे प्रति कहिये ।

इस पर मार्कण्डेय बोले:—कूर्मरूपी भगवान् देव प्राची दिशा में मुख किये हुये हैं और सम्पूर्ण भारतवर्ष को ढांप कर बैठे हैं । और नौ प्रकार से उस में नक्षत्र और देशों की स्थिति है ।

* "महीद्यौ पृथिवीचन इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।" यजु० ।
द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः (शत० ७, ५, १, १०)
त्रीन्समुद्रान् समसृपत्स्वर्गान् । इमे वै त्रयः समुद्राः
स्वर्गालोकाः तानेषकूर्मो भूत्वानुसंससर्प । (शत० ७, ५, १,)

+(मार्कण्डेय पुराण अ० ५८)

वदमन्त्र, विमायडव्य, शालनीप, शक, उज्जिहान, घोषसङ्घ, खश, और मध्य में सारस्वत देश, मत्स्यदेश, शूरसेन, मथुरा, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक, वैदेहक, पाञ्चाल, साकेत, कंकमारुत, कालकोटि, पाखंड पारियात्र के निवासी, कापिंगल, वाह्यकुरु, उदुम्बर लोग गजाह्वय ये देश तथा देशवासी इन के योग्य शुभ नक्षत्र कृतिकारोहिणी और सौम्या ये तीन नक्षत्र और वृषध्वज, अंजन, जम्बू, मानव, सूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख खर्मक, कर्वटाशन, चन्द्रशेखर, खश और मगधदेश के पर्वत शुभ्रमैथिल, प्राग्ज्योतिष के दन्दवाड़े पुरुष, लोहित और समुद्र के नर भक्षक वासी पूर्णोत्कट, भद्रगौर और उदयगिरिकशाप मेखलामुष्ट ताम्रलिप्त और एक पादपदेश, वर्द्धमान और कोशलदेश ये सब ऊपर गिने गये देश देशवासी पर्वत आदि उस कूर्म के मुख में स्थित हैं। रुद्र पुनर्वसु और पुष्य ये ३ नक्षत्र मुख में हैं ।

दायां पैरः—कलिंग, वंग कोशल मूषिक चेदि ऊर्ध्वकर्ण विन्ध्य निवासी मत्स्यादिदेश विदर्भनारिकेल धर्मद्वीप ऐलिक, व्याघ्रग्रीव महाग्रीव, दाढ़ी मूछों वाले त्रिपुरवासी, किष्किन्धा निवासी, हेमकूट निवासी, निषधदेश, कटकस्थल, दशार्ण हारिक, नंगे निषाद, कूरकुलालक, पर्णशवर ये पूर्व दक्षिण पैर में बसे हैं। आश्लेषा, पैत्र्य, फल्गुनी नक्षत्र मण्डल ये तीन नक्षत्र भी इसी चरण में हैं।

दक्षिण कुक्षिः—लंका, कालाजिन, शैलिर, निकट, महेन्द्र मलय और दर्दुरपर्वतवासी लोग। कर्कोटक वन के वासी, भृगुकच्छ और कौंकण देश आभीरवेणो नदी के तीर वासी, अवन्ति, दासपुर, आकणी, महाराष्ट्र कर्णा गोनर्द चित्रकूट, चोल, कोलगिरि के वासी, क्रौञ्चद्वीप के वासी जटाधर, कावेरी ऋष्यमूक नासिक आदि के वासी, शंख शुक्ति वैदूर्य आदि से युक्त पर्वत प्रान्त के वासी जल के वासी कोल चर्मरद के वासी, गणवाह्य तथा कृष्णद्वीपके वासी। सूर्य पर्वत और कुमुद पर्वतके वासी औरवन, पिशिक आदि के वासी दक्षिण कौरूप, ऋषिकनामक तपस्वियोंके आश्रम, स्थान ऋषभ, सिंहल और काञ्ची देश निपुंग कुञ्जर और दरी कच्छु के वासी और ताम्रपर्णीय उस कूर्म का दायीं कोख है। और नक्षत्रों में उत्तरा फल्गुनी, हस्त, चित्रा ये तीन नक्षत्र हैं।

दांया दूसरा पैरः—काम्भोज, पल्हव, बड़वा मुख सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, वनितामुख, द्रवेण, आर्गीर्ग कर्ण प्राधेय और वर्वर किरात पारद पाण्ड्य, तथा पारशवेकल, धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धुकालक, वैरत, सौराष्ट्र दरद द्राविड़ महार्णव, ये दूसरे दांयें पैर में स्थित देश हैं। नक्षत्रों में स्वाति, विशाखा, मैत्र ये तीन नक्षत्र हैं।

पुच्छ—मणिमेघ, क्षुरार्पित, खञ्जन, अस्ताचल, ऊपान्त हैहय, शान्तिक विप्रशस्तक, कोंकण, पञ्चदक, वमन तारखुर, अङ्गतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फल्गुणक, वेणीमतीकेतट, फलगुलुक, गुरुह, कल, एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव चूलिक, अश्वकेश ये जातियें तथा देश कूर्म की पुच्छ में स्थित हैं।

इन्द्रमूल उत्तराषाढ़ा तथा पूर्वाषाढ़ा ये तीन नक्षत्र भी पुच्छ में ही हैं।

१. वायां पैरः—माण्डव्य, चण्डखार, अश्वाकालनत, कुन्यतालडह, स्त्री बाह्य वालिक, नृसिंह वेणुमती के तट पर रहने वाले वलावस्थ, धर्मवृद्ध आलूक, उरुकर्म वासी जन ये सब कूर्म के वाम पैर में रहते हैं।

आषाढ़ा श्रवण और धनिष्ठा ये तीन नक्षत्र हैं।

वामकुक्षिः—कैलास, हिमवान्, धनुष्मान् वसुमान् क्रौञ्च, कुरुवक, क्षुद्रवीणा, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यमुना के किनारे के प्रदेश अन्तर्द्वीप त्रिगर्त अग्निजीव और अग्नि के निवासी, अश्वमुख, केशधारी चिविड़, दासेरक, वाटधान, शरधान, पुष्कल अधम, कैरात और तक्षशिला के वासी, अम्बाल, मालव मद्रवेणुक, वदन्तिक, पिङ्गल, मानकलह, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमति नदी के तटवासी, गान्धार क्षरसागर के वासी, यौधेय, दासमेय राजन्य, श्यामक, और क्षेमधूर्त्त ये कूर्म की बायीं कोख में स्थित हैं। इसी ओर वारुण तथा दोनों प्रोष्ठपदा नक्षत्र हैं।

द्वितीय वाम पादः—किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचकदेश कश्मीर राष्ट्र अभिसाजन, दरद, अंगनाकुलटावन राष्ट्रसमूह, सैरिंध, ब्रह्मपुर, वनवाह्यक, विशात कौशिकानन्द, पल्हयलोचन, दार्वादत, मरक, कुरट अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, सर्वभौम, अनवधक यवन, हिंग, चीर प्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, गन्धर्व ये पूर्वोत्तरपाद में स्थित हैं। रेवती अश्विनी और याम्य नक्षत्र हैं।

जिस प्रकार यह पृथ्वी तल कूर्म के शरीर में बंटा हुआ है इसी प्रकार नभो-भाग भी बंटा हुआ है।

इस नभोलोक या द्यौलोक को जिस प्रकार बांटा है सो भी देखिये। मारकण्डेय बोले कि+"यह मैंने कूर्म रूपी जनार्दन का अवस्थान भारत प्रदेश में जिस रूप से था सो वर्णन कर दिया। यही भगवान् अचिन्तनीय रूप नारायण हैं जिस में सब कुछ आश्रित है। प्रत्येक नक्षत्र के अधिष्ठाता रूप लेकर सभी देवता इस नारायण में स्थिर हैं। मध्य में अग्नि, पृथिवी और चन्द्र हैं मेषादि तीन मध्य में हैं मिथुनादिक दो मुख में हैं। मर्क और सिंह यह प्राची और दक्षिण के एक चरण में हैं। कोख में सिंह कन्या और तुला ये तीन राशियें स्थित हैं। तुला और वृश्चिक ये दोनों दक्षिण पाद में हैं। वृश्चिक के साथ मिलकर धनु राशी पृष्ठभाग में स्थित है। वायव्य उपदिशा की तरफ के पैर में धनुष और मकर हैं। उत्तर कुक्षि में कुम्भ और मीन हैं। मीन और मेषमितक पूर्व और उत्तर पादमें है। कुर्म ही में देश तथा नक्षत्र, और देश तथा नक्षत्रों में ही राशियें हैं और राशियों में ही ग्रह स्थिर हैं।

यही विराट् रूप कूर्म है जिस का यह एक प्रकार से वर्णन करके पुराणकारने **"द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः"** इस श्रुति को चरितार्थ किया है।

ब्राह्मणकारने सूर्य को भी कूर्म कहा है। परन्तु उसका इस अलंकार से सम्बन्ध नहीं है।

प्राकृतिक शक्ति से हिरण्यगर्भ का घूमना तथा उस से फट २ कर अन्य मण्डल बनना तथा नव प्रकार का सर्ग बनना आदि यही समुद्र मथन माना गया है। इसी मथनरूप विक्षोभ से यह सम्पूर्ण सूर्य चन्द्र तारा ग्रहनक्षत्रादि बने इस में सन्देह नहीं।

इस प्रकार कूर्म की भी व्याख्या हमने पर्याप्त करली। अब वराहावतार की संक्षेप से समालोचना करेंगे।

(मारकण्डेय अ० ५२, श्लो. ७३-८०)

वराह अवतार

मत्स्यपुराण में वराह अवतार का वर्णन सृष्टिप्रकरण में इस प्रकार लिखा है। "पहले × यह दिव्य हिरण्मय अण्ड था। यही प्रजापति की मूर्ति थी यही वेदकी श्रुति है। हजार वर्ष के अनन्तर ऊपर का मुख फूट गया। सृष्टि के निमित्त नीचे से भी फूटा वही विष्णुरूप से ब्रह्माण्डलोकों को उत्पन्न करने वाला २ स्थानों से फूट गया। विभाजकृत् परमात्मा ने उसका विभाग किया। जो ऊपर छेदसा होगया था वह तो आकाश बनगया और जो नीचे से फूटा था वह रसातल बनगया। लोकों के बनाने की इच्छा से जो पहले अण्ड बनाया था उसका चुआ हुआ रस काञ्चनमय मेरु बनगया, सहस्त्रों पर्वतों के कारण पृथिवी बहुत ऊंची नीची होगयी। इन सहस्रों योजनों तक फैले हुवे पर्वतसमूहों से पीड़ित होकर पृथिवी बहुत दुःखित हुवी और स्वर्णमय नारायणरूप तेज को छोड़ कर पर्वतों के भार उठाने में सर्वथा असमर्थ होकर रसातल में ही धसती चली गयी उसको इस प्रकार धसते हुवे देख कर मधुसूदन भगवान् ने उसके उद्धार का निश्चय किया। भगवान् बोले कि मेरे तेज को पाकर यह विचारी कीचड़ में गाय के सदृश रसातल में प्रवेश करती जाती है। पृथिवी ने नारायण की स्तुति करके अपने उद्धार की प्रार्थना की। इस पर नारायण प्रसन्न होकर पृथिवी को सान्त्वना दि और अपना मनसे दिव्यरूप सोचकर वाराह या शूकरका रूपही धारण किया। वह शूकरका रूप सर्व भूतोंसे अप्रतिस्पर्धनीय, वाङ्मय, शतयोजन लम्बा और उससे दुगना ऊंचा नील मेघ सदृश गर्जन वाला, पर्वत के तुल्य भीम, श्वेत तीखी दाढ़ों से युक्त, बिजली के सदृश चमकने वाला नर शूकर का रूप धारण करके नारायण पृथिवी के उद्धार के लिये रसातल में गये। वह नारायण ऐसा था कि "जिसके *चार वेद हो चार पैर थे यूपस्तम्भ दंष्ट्रा थीं, क्रतु दन्त था, चिति [चयनक्रिया

× मत्स्य पुराण अ० २४८।

*वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्त श्चितीमुखः ॥ ६७॥
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ ६८॥
आज्यनास स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥
सत्यधर्ममय श्रीमान् कर्म विक्रम सत्कमः ॥ ६९ ॥

कुण्ड] मुख था। अग्नि ही जीभ थी, कुशा उसके रोम थे ब्रह्मा शिरोभाग था। दिन और रात ये दो आँखें हैं वेदाङ्ग उसके कान के भूषण थे, आज्य उसकी नाक थी। स्रुवा उसकी थूथन थी, साम नाद ही उसका घोष था। सत्यधर्म का बना श्री शोभा से युक्त, क्रिया काण्ड द्वारा गति करता हुवा था। उसके +प्रायश्चित्त ही नख, पशु ही जानु भाग थे। ऐसा मखनाम यज्ञके आकार वाला, उद्गाथ होम रूप लिंग से युक्त बीज और औषधि को फल रूप में पैदा करने वाला वायु रूप अन्तरात्मा से युक्त दक्षिणामय हृदय वाला उपाकर्म रूपी ओठों से सुशोभित प्रवर्ग्य इष्टि के भूषण पहने हुवे नानाच्छन्दरूपी गति के मार्गों में प्रवृत्त गुह्यविद्यामय उपनिषदों पर ही आसन लगाये हुवे छाया रूप पत्नी के साथ मणिशृङ्ग को अत्यन्त उन्नत महावराह ने रसातल में मग्न पृथिवी को लोक हित के लिये अपनी दाढ़ के बल से उद्धरण किया। इस प्रकार यज्ञ वराहने सागर के पानी में से डूबी हुवी पृथिवी का उद्धरण किया।

इस प्रकार से स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि यह यज्ञमय वराह था जिसने ओषधिफल और फूलादि समृद्धि करके उजाड़ पृथिवी को बसाया जिस में सब लोकों का हित या कल्याण हुआ। यह यज्ञ नादमय होने से ज्ञान स्वरूप है। वेद इसके पैर अर्थात् आश्रय हैं और वेदांग इसके भूषण हैं। यज्ञ क्रिया इस का घोष

+प्रायश्चित्तमहानखोघोरः पशुजानुर्मखाकृतिः।
उद्गाथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः॥ ७० ॥
वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान्॥ ७१॥
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥ ७२॥
उपाकर्मोष्ठरुचक प्रवर्ग्यावर्त्त भूषणः॥
नानाच्छन्दोगतिपथः गुह्योपनिषदासनः॥ ७३॥
छायापत्नी सहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः।
रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम्॥ ७४॥
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम्॥
(मात्स्य० अ० २४८)

अंग सुवादि हैं अर्थात् ... को क्रियामक रूप में देखा गया है । "यज्ञो विष्णुः" यही ब्राह्मणों का सिद्धान्त है इससे वराहमय कल्पना भी विष्णु से ही सम्बद्ध की गयी है ।

तैत्तरीय ब्राह्मण में वायु को वराह बनाया है वही सलिल में प्रविष्ट होकर पृथिवी का उद्धार करता है । उसी को ध्यान में रख कर इस को भी वायवन्तरात्मा लिखा है ।

इस रूप से भी सिद्ध यही है कि वास्तव में परमात्मा का ही यज्ञमय रूप वराह से गृहीत होता है । शेष तो केवल प्ररोचना मात्र के लिये कवि की मानसिक कल्पनामात्र है । अवश्य ही कोई महाजन्तु अस्थिचर्ममय पृथिवी उद्धरण के लिये आया था इस में कोई भी प्रमाण नहीं पुराण भी इस पक्ष को पोषण नहीं करते हैं, पुराण प्रतिपादितरूप की कल्पना ही बताती है इस का ज्ञानमय और क्रियामय यज्ञ ही रूप है ।

इसी प्रकार यदि कुछ विचार भी किया जाय तो प्रतीत होता है कि पुराणकारोंने इसे यज्ञ महिमा को बढ़ाने के लिये यह कल्पना की । अन्यथा पृथिवी का रसातल मात्र से उद्धार करना विश्वशक्ति के लिये कौनदुर्लभ बात थी । पृथिवी से सहस्रों गुणा बड़े आकाशीय अनन्त नक्षत्र और ग्रहमण्डल अनायास द्यौलोक में उद्धृत हैं तो इस कणतुल्य पृथ्वी के उद्धरण के लिये परमात्मा शरीर धारण का प्रयास करे यह बहुत ही हास्यास्पद है ।

अल्प बुद्धियों के चित्त में एक अत्यन्त स्थूल दृष्टान्त जमाने के लिये यह कथा अपनी असम्भवता के कारण रोचक हुई हुई कोई ऐसी बुरी नहीं है । परन्तु सृष्टि के विज्ञान नियमों के विरुद्ध होने से इस का आदर सर्वथा ही न करना चाहिये ।

भागवतादि कतिपय पुराणों ने हिरण्याक्ष दैत्य के वध के लिये वराह का दूसरा अवतार भी माना है परन्तु उस का रूप भी यज्ञमय ही स्वीकार किया है । उसमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं, धन मद से मत्त हुवे के चित्त की आसुरी तृष्णा को शान्त करने के लिये यज्ञमयपरस्वार्थ त्याग के कर्त्तव्य से बढ़िया और कोई साधन ही नहीं । इससे बहुतों के बड़ आलंकारिक वर्णन हैं ।

नृसिंह अवतार

लौकिक किंवदन्ती है कि "मैथिलों ने भगवान् के तीन अवतारों को सुअर मच्छी, कच्छु ग्रास२ करखालिया यह जानकर भगवान ने नरसिंहावतार लिया, तथा:—

अवतारत्रयं विष्णोर्मैथिलैः कवलीकृतम् ॥

इति विज्ञाय भगवान् नारसिंहवपुर्दधौ ॥

इसी प्रकार हमभी तीन की समालोचना करके अब चौथे नरसिंह की आलोचना करते हैं।

मत्स्यपुराण में नरसिंह अवतार का वर्णन इस प्रकार किया है:—

दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपुने अत्यन्त अधिक तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया, और वर मांगा कि मनुष्य पिशाच देव असुर गन्धर्व यक्ष उरग राक्षस मुझे न मार सकें और ऋषि भी मुझे शाप न देसकें यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे यही वरदो। न अस्त्र से न शस्त्र से न वृक्ष से न पहाड़ से न सूखे से न गीले से न दिन को न रात को मैं मरा जा सकूं। मैं ही सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, पानी, अन्तरिक्ष, दशो दिशाएं, क्रोध, काम, वरुण, वासव, कुबेर, यक्ष, किन्नर, सभी हो जाऊं। ब्रह्माने प्रसन्न होकर ये सब वर दे दिये। इन सब वरों को सुनकर सब देवता ब्रह्मपितामह के पास आये और बोले कि आप के दिये वर से मत्त होकर हिरण्यकशिपु मार देगा। अतः इसके वधका कोई उपाय सोचो। ब्रह्मा ने उनका वचन सुनकर आश्वासन देकर कहा कि इसके तप का फल इसे अवश्य प्राप्त होना था तप के फल के अनन्तर इसका भगवान् विष्णु वध करेगा। यह सुनकर देवता सब अपने स्थान पर चले गये।

वरों के मद में आकर हिरण्यकशिपु ने आश्रमों में जाकर सत्यधर्म परायण सब मुनि ऋषियों का अपमान किया तीनों लोकों के दैत्यों को पराजय करके उस ने सब देवताओं को यज्ञों से निकाल कर दैत्यों को यज्ञ के योग्य पदों पर रखा। सब देवता इस प्रकार अपमानित होकर यज्ञमय सनातन भगवान् की शरण में गये। और कहा, कि हम तेरी शरण में आये हैं कृपा करो और हिरण्यकशिपु को मार दो और हमारी रक्षा करो। विष्णु ने अभय दान करके दैत्येन्द्रके मारने

का बचन दिया। और देवताओं को विदा किया। तदनन्तर विष्णु हिरण्यकशिपु के वध का संकल्प करके ओंकार का सहाय्य लेकर अत्यन्त उज्वलरूप बना कर आधा नर का शरीर और आधासिंह का शरीर बना कर इस प्रकार नरसिंह बन कर हिरण्यकशिपु के स्थान पर पहुंचा और शतयोजन विस्तीर्ण हिरण्यकशिपु का सभाभवन देखा। सुसज्जित सभा भवन में सब दैत्यों के मध्य में अलंकृत होकर मानपूर्वक हिरण्यकशिपु बैठा था। उसके देखते २ यह नरसिंह भी सभा में पहुंचा और भरी सभा को देखा। तब इस के अनन्तर काल चक्र के सदृश आते नरसिंह रूप में छिपे हुवे महात्माभगवान् को देखकर हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लादने सिंहरूप में आते देव को पहचान लिया, और अन्य सब दानव अत्यन्त चकित हुवे। प्रह्लाद ने उस को देखकर उस का विचित्र गुण गान किया। प्रह्लाद के इस वचन को सुनकर दैत्येन्द्र ने आज्ञादी कि इस सिंहको पकड़लो और यदि इस पर कुछ संशय हो तो मार भी दो। सबने उस पर सहसा धावा बोल दिया। हिरण्यकशिपुने भी स्वतः सहस्रों अस्त्रों का प्रयोग किया। दोनों में घोर तुमुल युद्ध हुआ। अन्त में सिंह ने अपने तेजनखों से ओंकार की सहायता लेकर उस को पेट फाड़ कर मार डाला, सब देवता व नरनारी प्रसन्न हुवे। और खूब हर्ष ध्वनि की गयी। फिर समुद्र के उत्तर किनारे पर अपना पौराणिक रूप धारण करके भूत युक्त अष्ट चक्र रथपर चढ़कर अपने स्थान पर चलागया।

भागवत के अनुसार हिरण्यकशिपु अपने विष्णुभक्त पुत्र प्रह्लाद को विष्णु की भक्ति से हटाने के लिये अनेक दण्ड तथा कष्ट देरहा था। उसकी रक्षा करने के लिये सभा का थम्भा फाड़ कर नृसिंह निकल आया।

अस्तु। कुछ भी कथा हो कथा वास्तविक नहीं है। देवताओं का दूसरों की उन्नति को न सहकर राग द्वेष कृत दैत्यों से वैमनस्य था। दैत्य शिव तथा ब्रह्मा के उपासक समझे जाते हैं और देवता विष्णु के। सो यह देव दैत्यों का नाम धर कर शैव वैष्णवों के द्वेष का चित्र खींचा जाता है। इसी कारण से शैव पुराणों में इस नृसिंह का दर्प भंग करने के लिये शिव का अंशावतार वीरभद्र कल्पना

किया गया है जैसा कि हमने लिंगपुराण की समालोचना में दिखाया है। अस्तु इस साम्प्रदायिक स्पर्द्धा को त्याग कर यदि सूक्ष्मदृष्टि से नृसिंह की समीचीन आलोचना करें तो प्रतीत कुछ और ही होता है इस नृसिंह का रूप देखकर प्रह्लाद ने जिस प्रकार का नृसिंह देखा उसका वर्णन वह अपनी स्तुति में इस प्रकार करता है :—

"हे महाराज दैत्येन्द्र ! ऐसा नरसिंह शरीर हमने न कभी देखा और न कभी सुना है। इसरूप का उत्पत्ति स्थान प्रतीत नहीं है। मेरे चित्तमें सन्देह है कि यह हम दैत्यों का विनाश करने वाला है। इसके शरीर में ही सम्पूर्ण सागर स पूर्ण नदियें हिमवान् पारिमात्र आदि अन्य कुल पर्वत विराजते हैं। नक्षत्र आदित्य और वसुओं सहित चन्द्रमा, कुबेर, वरुण, यम इन्द्र, देवता, गन्धर्व, ऋषि, नाग, यक्ष, पिशाच, राक्षस, ब्रह्मा, पशुपति, सबही इसके ललाट=मस्तक में बैठे हुऐ घूम रहे हैं। सब दैत्यों सहित आप भी इसी के साथ हैं। सैकड़ों विमानों सहित सभा भी सम्पूर्ण त्रिभुवन तथा शाश्वत लोक धर्म और समस्त जगत् इसी नरसिंहरूप में दीखता है ×।

× महाबाहो महाराज दैत्यानामादिसम्भव !
न श्रुतं न च नो दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ॥ ४ ॥
अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमागतम् ॥
दैत्यान्तः करणं घोरं शंसतीव मनो मम ॥ ५ ॥
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्चयाः ।
हिमवान् पारिमात्रश्च येचान्ये कुलपर्वताः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह ॥
धनदो वरुणश्चैव यम : शक्रः शचीपतिः ।
मरुतो देवगन्धर्वाऋषयश्च तपोधनाः ॥
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ।
ब्रह्मा देवः पशुपतिः ललाटस्था भ्रमन्ति वै ॥
स्थावराणि च सर्वाणि जंगमानि तथैवच ।
भवांश्चसहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः ।
विमानशतसंकीर्णातथैवभवतः सभा ॥

यही परमात्मा का विराट् रूप है। जिस को लक्ष्य में रख कर इस नृसिंह की कल्पना की गई है।

हिरण्यकशिपु अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न भोग साधनों से युक्त प्राकृतिक संसार के मालिक का प्रतिनिधि है। ऐसे बड़े ऐश्वर्य वाले को भी कालचक्र मारमिटाता है। इसी को आलंकारिक रूप में हिरण्यकशिपु की कथा बनाया गया है। नृसिंह को काल का रूप दिया। जैसा कि मात्स्यकार ने "कालचक्रमिवायतम्" इस उपमा से सूचित किया।

इसी सर्वव्यापी परमेश्वर की व्याख्या नृसिंहतापनीयोपनिषत् में ओंकार की व्याख्या करते हुवे की है। उग्र भीषणादि शब्दों को परमात्मा के विशेषणरूप में विस्तार से व्याख्या किया है। वही परमात्मा इस नृसिंह से भी लिखित प्रतीत होता है परन्तु अंशावतार से अवतार मानना किसी प्रकार भी संगत प्रतीत नहीं होता।

सर्वं त्रिभुवनं राजन् लोकधर्माश्चशाश्वताः
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिन् तथेदमखिलं जगत् ॥ ११ ॥
इत्यादि (मात्स्य अ० १६२)

मानव-अवतार

वामन की कथा प्रायः सभी पुराणों में समान है। दैत्यों ने तप, दान, यागादि के बल पर सम्पूर्ण त्रैलोक्य वश किया था, बलि दैत्यों में बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। महाराजा बलि कुरुक्षेत्र में अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। इन्द्र का आसन उस समय हिल चुका था। देवताओं की प्रार्थना तथा अदिति की भक्ति से विष्णु ने बलि को बांधकर पाताल में कैद करने का वचन दिया। यज्ञ के शुभावसर को देखकर विष्णु वामन का रूप धर कर यज्ञ में आया। यज्ञमें आते हुवे उससे सम्पूर्ण पृथ्वी कांपगयी, नक्षत्र मण्डल में विक्षोभ हुवा और दैत्यों के हृदय कंप-कंपाने लगे। बलि ने शुक्राचार्य से इन उत्पातों का कारण पूछा। उस ने विष्णु का वामन रूप धरकर यज्ञ में आना ही कारण बतलाया।

बलि ने उसका आतिथ्य करने का दृढ़ संकल्प किया। इतने में वामन रूप ब्राह्मण वेश धर विष्णु भी यज्ञ वेदि में प्रविष्ट हुवा। जिसको देखकर सब दैत्य चकित हुवे। बलि ने अर्घपाद्य आसनादि देकर स्वागत किया और यथेष्ट दक्षिणा मांगने को कहा। वामन ने अपने योग्य तीन चरणही मांगे। दान विधि के अनुसार बलि के जल स्पर्श करते ही वामन विराट्रूप हो गया। बलि को कुरुक्षेत्र तथा त्रैलोक्य राज्य छोड़कर पाताल जाने को कहा साथ ही बिना विधि के दान, बिनाश्रोत्रिय के श्राद्ध, बिना श्रद्धा के हवन आदि धर्म विरुद्ध उपदेशों को श्रेय कहकर उपदेश दिया। इसके पुण्य का भावी में वररूप फल यह दिया कि भावी सावर्णिक मन्वन्तर में वह इन्द्र बनेगा।

यह सब वामनीभूत विष्णु के बलि को बांधने के लिये किये गये छल थे जिससे इन्द्र को फिर से खोइ हुवी अमरावती की गद्दी प्राप्त हुई।

यह वामन का अवतार क्या है इस का समझना कठिन नहीं। प्रथम तो साम्प्रदायिकों की इसमें षड्यन्त है कि बलि दैत्य को दान यज्ञ श्राद्धादि विरुद्ध विधि के करने पर भी फल मिलेगा। यह केवल विष्णु को छल बल कर किसी भी युक्ति से अपने विरोधी का अकार्य करना था इस बात को दर्शाने के लिये किया गया। ऐसा करने में धार्मिक दृष्टि का कोई भी निर्णय नहीं रखा। दैत्यों के साथ अकारण छल रखा गया है।

अब पुराणकार **वामन** का क्या रूप मानते हैं वह इस कथा ही से स्पष्ट है। "वामन दान देने के समय विराट् होगया" यह तो कथा का प्ररोचना भाग है। परन्तु वास्तव में कर्म काण्ड में पड़े यज्वा के लिये देवता वास्तव में बहुत गौण हो जाता है। परन्तु सर्वस्वदक्षिणा देते हुवे तन्मय हो कर वही वामनी भूत विष्णु का यज्ञमयस्वरूप विराड्रूपेण दीखने लगता है। यही इस कथा का आशय हो सकता है।

वह विराट् रूप पुराण के अनुसार इस प्रकार लिखा है:—

"बलिका हाथ दान विधि के लिए जल में पड़ते ही वामन अवामन होगया। वामनने अपना सर्व देवमय रूप दिखाया। चन्द्र सूर्य उसकी आंखे थी। द्यौ मूर्धा था, पृथिवी चरण थे। पाद की अंगुलियें पिशाचजन और हाथ की अंगुली गुह्यक थीं। विश्वेदेव उसके गोड़ों में थे। साध्यदेव उस की जंघा में, यक्ष नखों में थे। रेखाएं अप्सराएं थीं, नेत्रस्थानीय सर्व नक्षत्र थे। केश सूर्य की किरणें थीं। तारे रोम कूप थे। महर्षि लोग रोम थे। विदिशाएं उसकी बाहुएं और दिशाएं उसके कान, अश्वियुगल उसके श्रवण, वायु नाक थी। प्रसाद चन्द्रमा और मन धर्म था तथा सरस्वती उस की वाणी थी। ग्रीवा अदितिथी। विद्या भूषण था। मित्र देवता ही स्वर्गद्वार था। त्वष्टा और पूषा दोनों भ्रुऐं थीं। मुख वैश्वानर था अण्डकोष तथा हृदय परब्रह्म था, उसकी पुंस्त्व काश्यप मुनि था, पृष्ठ में वसु, सान्धियोंमें रुद्र, सब सूक्त उसके दांत, ज्योतियें उसकी विमल प्रभाएं थीं, उसके वक्षस्थल में महादेव, धैर्य में महासागर, उदर में गन्धर्व थे लक्ष्मी मेधा, धृति कान्ति और सर्व विद्याएं उसकी कटि भाग थीं।

इस देवमय रूप को देखकर दैत्य लोग आग में पतंगों की न्याई उसके पास आये। परमात्मा ने उनको हाथों और पैरों से पीस कर महाकाय रूप बनाकर सम्पूर्ण पृथिवी को व्याप्त किया। भूमि को मापते हुवे के छाती पर चन्द और सूर्य थे, आकाश को मापते हुवे के गोड़ोंमें चान्द और सूर्य थे। पर द्यौलोक को मापने पर गोड़ों से भी नीचे होगये। इस प्रकार तीनों लोकों का विजय कर इन्द्र को विष्णुने कर दिया×।"

×(मत्स्य पुराण अ० २४८)

इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि वह वामन भी एक कल्पित प्ररोचनारूप कथा में आकर वह बौना ही चाहे था परन्तु पुराणकारने उसे फिर भी सर्व देवमय विराट् ही सिद्धान्ततः स्वीकार किया है।

शेष सब राम कृष्ण जामदग्न्य बुद्धादि अवतार वीर पूजा के परिणाम तथा पूर्वोद्धृत देवीभागवत के देवांश के लक्षणों के अनुसार भक्तिके आधारपर देवता रूप बन गये हैं।

इस भक्तिके अतिशय होने के कारण ही अर्वाक् काल के ग्रन्थकारों ने परमात्मा के प्रचलित नाम राम, कृष्ण आदि रख लिये हैं और एक के विशेषण बिना किसी भेद के दूसरे अवतार के विषय में भी कहे गये हैं*। देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण एवं अन्यान्य पुराणों में भी अपने अभिमत देवता के प्रसिद्ध नामों की वही व्युत्पत्ति की है जो परमात्मा और प्रकृति के नामोंकी की जाती है। इस प्रकार उनका देवता शारीरिक तथा व्यावहारिक सत्ता से सर्वथा मुक्त हो कर पारमार्थिक सत्ता मात्र शेष रहजाता है।

इतना ही इस विषय पर पर्याप्त समझ कर, विष्णु के अवतारों का क्रम समाप्त करके अब शैव अवतारों के विषय में दिग्दर्शन मात्र कराते हैं।

शैव अवतार

जिस प्रकार विष्णुकी उपासना करने वाले भक्तोंका अवतार विषयक आविष्कार आप पहले ग्रन्थ में देख आये हैं उसी प्रकार शिवोपासकोंने भी अपने देवता को अवतार परम्परा में डाल कर अद्भुत आविष्कार किये हैं।

१. १६सवें कल्पमें ब्रह्म को योगशास्त्र की शिक्षा देने के लिये सब से प्रथम **सद्योजातावतार** हुवा।

२. २०वें कल्पमें वामदेवका अवतार **धररक्तवासा**ने ब्रह्माको उपदेश किया।

३. २९ वें कल्प में **पीतवासा** ब्रह्माने तत्पुरुष शिव का ध्यान किया और उसने प्रकट होकर योग का उपदेश किया। **तत्पुरुषावतार**॥

४. शिव कल्प में ब्रह्माने कृष्णपिंगल शिव का ध्यान किया। इस अवसर पर ब्रह्मा को उपदेश देने के लिए **अघोरेशावतार** हुवा।

५. विश्वरूप कल्प में ब्रह्माने ईशान शिव का ध्यान किया उस कल्प में **ईशानावतार** लेकर शिवने उपदेश किया।

६. शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव ये आठ शिव की मूर्त्तियें कही गयी हैं उन में ही सम्पूर्ण जगत् सूत्र में मणिगण की तरह पिरोए हुवे है। विश्वंभरात्मक विश्वरूप परमात्मा ही चराचर जगत को धारण करता है यही शास्त्र का निश्चय है।

समस्त जगत को प्राण देने वाला सलिलरूप **भव** कहाता है।

७. सकल विश्व में जगत् अन्दर बाहर और जो स्वयंगति करता है इस को सज्जन **उग्रशङ्कर** का उग्ररूप कहते हैं। यह सब को अवकाश देने वाला सर्वव्यापक गगनरूप है यही भीमरूप परमात्मा का भीषण या उग्ररूप है जो पहाड़ों को भी भेदन कर देता है।

८. सब आत्माओं का एक मात्र आश्रय, सब क्षेत्रों में निवास करने वाला पशुओं (जीवों) केपाश को काटने वाला **पशुपत्ति** का रूप है।

९. सब संसार को प्रकाशित करने वाला, दिवाकर या सूर्य नामक **ईशान** भी महेश के रूपसे द्यौलोक में गति करता हैं।

१०. अमृत के समान किरणों वाला चन्द्रमा, जो सकल विश्वको तृप्त करता है वही **महादेव** नामक महादेव का रूप है।

११ आत्मा ही महादेव का आठवां रूप है जो सब के अन्दर बसता है।

१२. ब्रह्मा की मानससृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण होजाने पर शिव **अर्धनारीश्वरावतार** लेता है।

१३. वाराहकल्प के वैवस्वतमन्वन्तर के, प्रथम द्वापर में **श्वेत** नाम का मुनि हुवा।

१४. द्वितीय द्वापर में सत्यव्यास के साथ **सुतार** नाम से।

१५. तृतीय द्वापर में **दमन**। यह व्यास की सहायता करेगा।

१६. चतुर्थ द्वापर में **सुहोत्र**।

१७. पांचवे द्वापर में **कंक**नामक योगी।

१८. छटे द्वापर में **लोकाक्षि** नामक।

१९. सातंव द्वापर में **जैगीषव्य** मुनि।

२०. आठवें द्वापर में **दधिवाहन**।

२१. नवंव द्वापरमें **ऋषभ** इसने भद्रायुनामके मरे हुए राजपुत्रको जिलाया और फिर से राजगद्दी दिलाई थी।

२२. दशन द्वापर में **त्रिधमा** नामक मुनि।

२३. ग्यारहवें द्वापर में **तप**नामक मुनि।

२४. बारहवें द्वापर में **अत्रि**नामक ऋषि।

२५. तेरहवें द्वापर में **बलि**नामक मुनि।

२६. चौदहवें द्वापर में **गौत्तम** मुनि।

२७. पद्रहवें द्वापर में **वेदशिरा** मुनि, जिसके पास वेदशिरा नामक अस्त्र तथा शीर्ष नामक पर्वत रहा।

२८. सोलहवें द्वापरमें **गोकर्ण** जिसके नाम पर गोकर्णवन प्रसिद्ध हुआ इसी-के पुत्र काश्यप उशना च्यवन और बृहस्पति थे।

२९. सतरहवें द्वापर में **गुहावासी** नाम मुनि।

३०. अठारहवें द्वापर में शिखरा मुनि।

३१. १९वें द्वापर में जटमाली नाम मुनि।

३२. २०सवें द्वापर में अट्टहास नाम मुनि, जिसके शिष्य भी अट्टहास और निवास भी अट्टहास पर्वत हैं।

३३. २१सवें द्वापर में दारुक नाम मुनि।

३४. २२सवें द्वापर में वाराणसी में लाङ्गली नामक मुनि।

३५. २३सवें द्वापर में श्वेतनामक मुनि, कालिञ्जर पहाड़ पर।

३६. २४वें द्वापर में नैमिषारण्य में शूली नाम मुनि, इसके शिष्य शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु।

३७. २५वें द्वापर में दण्डी मुण्डीश्वर।

३८. २६वें द्वापर में भद्रवापुर में सहिष्णु नामक मुनि।

३९. २७वें द्वापर में प्रभास तीर्थ में सोम शर्मा।

४० २८वें द्वापर में लंकुली नामक ब्रह्मचारी।

इसी प्रकार और भी शिष्यों की गिनती करने पर ११२ अंशावतार योगी हुए।

४१. नंदिकेश्वरावतार।

४२. अरैवावतार।

४३. नृसिंह के दर्दको शमन करने वाला राम भद्रावतार।

४४. अग्निरूप तेजस गृहपत्यवतार।

४५. यक्षेश्वरावतार।

४६———

४७. महाकाल शाक और महाकाल शक्ति आदि दश अवतार। महाकाल शक्ति तारा, बालशिरा, त्रिपिंश, श्रीविद्या, भैरव, भैरवी, छिन्नमस्ता, अधिछिन्नमस्तक, धूमवान् धूमावति शिव और बगलामुख, मातङ्ग और शर्वाणी कमल, कमला।

४८. कश्यप सुरभि में ११अवतार हुए कपाल पिंगल भीम, विरूपाक्ष, विलोहित शास्ता, अजपाद, अतिबुध्न्य, शंभु, चण्ड, भव,। इन्हों ने दैत्यो का नाश किया।

४९. ब्रह्मपुत्र ब्राह्मणका पुत्र दुर्वासा।

५०. अञ्जाना का पुत्र हनुमान।

५१. महेशावतार, वेषावतार, पिप्पलादावतार, वैश्यानाथ, द्विजेश्वर यतिनाथ, कृष्ण दर्शन, अवधूत, भिक्षुवर्य, सुरेश्वर, जटिल, सुनतकनट, साधुवेश, अश्वत्थामा, किरात।

इतने अवतारों का वर्णन शतरुद्र संहिता में शिव के माने गये हैं। इनमें प्रथम पांच अवतारों की विशेष व्याख्या अध्यात्म परक की गई है जो इसी संहिता में उपलब्ध हैं। ६ से १२ तक के सब अवतार प्राकृतिक शक्तियें हैं। भव, शर्व, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेवादि आठ मूर्तियें ब्राह्मणकार ने भी प्राकृतिक शक्तियें ही मानी हैं। जैसा कि पुराण भी स्वयं ही स्वीकार करता है। शेष ४० संख्या तक लिखे ११२ अवतार योगमार्ग के प्रतिष्ठापर की गणना में मुख्यप्रवर्त्तक हुऐ हैं। क्योंकि उन सब के ४ शिष्य तथा पुत्र होने से यह संख्या पूर्ण हो जाती है।

रामभद्र कल्पित अवतार वैष्णवों के विरोध में खड़ा किया है। भैरवावतार शाक्तों की उपासना का आधार है। गृहपति अवतार अग्निहोत्र को लक्ष्य में रखकर कल्पित किया। महाकालादि दश अवतार वामियों के हैं।

शेषों में पिप्पलाद औपनिषदिक आचार्य हुआ, हनुमान राम का सहायक है। अश्वत्थामा द्रोणका पुत्र, ये ऐतिहासिक पुरुष हैं।

शेष सब साधु ब्राह्मण नट भील आदि जिनको अपने चित्तसे ही अवतार का नाम धर दिया। इनका न कोई ऐतिहासिक मूल्य है और न कोई वास्तविक सत्ता मानी जा सकती है। प्रत्युत भक्ति खींचने के लिये एक केवल कथाके पात्र मात्र प्रतीत होते हैं।

षोडश अध्याय

पितरों का श्राद्ध

मनुभगवान् पञ्चमहायज्ञों का विधान करते हैं—

"ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ। ऋषियज्ञ स्वाध्याय तथा आर्ष ग्रन्थों के पठन से, देवयज्ञ नित्य कर्मानुष्ठान संध्या अग्निहोत्र से, बलिवैश्वदेव कर्म से भूतयज्ञ, और अन्नदान करके नृयज्ञ, श्राद्धों से पितृयज्ञ किया जाता है। अध्यापन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलि भूतयज्ञ, अतिथि पूजा नृयज्ञ कहाता है।*"

इसी प्रकारकी शास्त्रकारों की आज्ञाको ध्यानमें रखकर एक स्थल पर जगद्गुरु भगवान् दयानन्द जी अपने मान्य पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं "अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्रपुरुष वा वृद्ध हों उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम वस्त्र अन्न सुन्दरयान आदि देकर अच्छे प्रकार से तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।"

(स० प्रकाश स० ४, पृ० १०२ दशम बार)

प्राचीन काल में इसी प्रकार की श्रद्धा को आधार रखकर पितृश्राद्ध की रीति भारतवर्ष में प्रचलित हुयी जिसमें प्राचीन श्रद्धा की मर्यादा के रखने के लिये अपने पिता, पितामहआदि के नाम पर श्रद्धा और प्रेम से विद्वान् ब्राह्मणों तथा सर्व प्राणियों के हित में लगे हुये उपकारी सज्जनों को अन्न वस्त्रादि से तृप्त करना पितृ श्राद्ध का एक मुख्य अंग हुवा।

मध्यकाल में इसी श्रद्धा से प्रेरित होकर पितरों के तर्पण के लिये तीर्थों में जाकर तिलाञ्जलि देना और संकल्प द्वारा भावना करके पिता पितामहादि के

---

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनु० ३, ७०)
स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैः भूतानि बलिकर्मणा॥ [मनु० ३, ८१]

नाम पर पिण्ड देना इत्यादि स्मार्त्त विधियें भी प्रचलित हुई । पुराणकारों ने इस के माहात्म्य को इतना बढ़ाया कि सर्व साधारण का यही विश्वास हो गया कि वास्तव में उनके पितर उनके दिये पिण्ड को खाते हैं ब्राह्मणों को जिमा देने से वास्तव में उनके पितरों के पेट ही में अन्न चला जाता है । ऐसा श्राद्ध करने से उनके पितर नरक (स्थान विशेष) से निकलकर स्वर्ग को पहुंच जाते हैं अन्यथा वे घोर नरक में प्रविष्ट हो जाते हैं । इत्यादि नाना भ्रममूलक विश्वास आर्यजनता में फैल गये जिनसे बहुत ही अज्ञान का आवरण आगया । और आंख के अन्धे गांठ के पूरों ने भोले भाले लोगों को अपना मनमाना जाल फैला कर यथेष्ठ लूटना प्रारम्भ करदिया । अपने पितरों को तृप्त करने के लिये मांस की बलि भी इसी प्रकार प्रारम्भ होगयी इसी प्रकार यज्ञ में पशु हिंसा ने अधिक बल पकड़ा । और इन्हीं स्वार्थों को पूरा करने के लिये स्मृतियों और शास्त्रों तक में प्रक्षेप जोड़ देने का बड़ा प्रयत्न किया ।.

इसमें सब से बड़ा प्रमाण यही है कि जीव को किये शुभाशुभ कर्म के फल निर्णय में कोई व्यवस्था नहीं । प्राचीन शास्त्रकारों ने कर्म तथा कर्म फल को बड़ी भारी मुख्यता दी है परन्तु श्राद्ध के वर्तमान रूप के मान लेने से कर्मफल व्यवस्था सर्वथा टूट जाती है । पापकरके नरक में गये पिता को पुत्र श्रद्धापूर्वक दिये तिलों से स्वर्ग में भेजदेगा । इसी प्रकार यज्ञ करके स्वर्ग में गये पिता को पुत्र ही केवल तिलों की अञ्जलि न देकर नरक में डाल सकता है । इसी प्रकार ब्राह्मणों को दान देने में हुए हुए पुत्र के सब अपराधों का दण्ड सात पीढ़ी पहली और सात पीढ़ी भावी इन सब को भोगना पड़ेगा । बस यही कर्म सिद्धान्त पर कुठार हैं । प्रत्येक पुराण में कर्म सिद्धान्त को मुक्त कण्ठ होकर स्वीकार किया । परन्तु श्राद्धका उल्लेख सब पुराणों में नहीं है भागवतपुराण आदि पुराण वामनपुराण देवी-भागवतपुराण शिवपुराण आदि कतिपय पुराणों में श्राद्धका उल्लेख, नाममात्र भी नहीं है । यद्यपि इन उपरोक्त सभी पुराणों में ब्राह्मणादि वर्ण धर्म तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रम धर्म सभी का याथातथ्येन उल्लेख है । यदि यह श्राद्ध अत्याधिक आवश्यक होता तो वर्णाश्रम धर्मों में अवश्य ही उल्लेख होता ।

शेष पुराणों में से जिन २ में श्राद्धका उल्लेख है वह भी दो प्रकार से उद्धृत किया है। प्रथम तो पितृवंश वर्णन के साथ ही पितृ श्राद्ध के भी दो एक अध्याय जोड़े गये हैं। या द्वितीय वर्णाश्रम धर्म के अनन्तर स्वतंत्र जिज्ञासा उठा कर श्राद्ध कल्प कहागया है। परन्तु प्रथम प्रकार अधिक अवलम्बन किया है। तीसरा कहीं २ तीर्थ प्रकरणों में भी कहा गया है।

महाभारत और पुराण के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि यह पितृश्राद्ध और श्राद्ध पिण्डकल्पना और शेषभी सब क्रियाएं जो मृतदेह दाह के अनन्तर की जाती हैं सर्वथा अर्वाचीन हैं प्राचीन बिलकुल नहीं हैं।

अनुशासनपर्व में भीष्म युधिष्ठिर के संवादमें श्राद्धके प्रकरण को छेड़ा गया है। भीष्म पितामह से युधिष्ठिर श्राद्ध की उत्पत्ति के विषय में प्रश्न करता है जिस के उत्तर में पितामह दत्तात्रेयनिमि की कथा सुनाते हैं।

"दत्तात्रेय का बड़ा सौभाग्य शाली श्रीमान् नामक पुत्र हुआ हजार वर्ष के अनन्त दुष्कर तप कर के उसका पुत्र मर गया, शास्त्र के अनुसार निमिराजाने शौचस्नानादि करके भी पुत्र के लिए अत्यन्त शोक किया सब श्राद्ध के उचित सामग्री अपने मन से कल्पना करके अमावस्या के दिन ब्राह्मण भोज कराया। और उस के बाद अपने पुत्र के नाम गोत्रादि कह कर पिण्डभी दान किया। परन्तु इस अवसर में उसने धर्मभंग देखकर विचार किया और पश्चात्ताप किया कि "*पहले मुनियोंने कभी ऐसा नहीं किया, मैंने क्यों किया, इस भय से इसने आदि वंश कर्त्ता का ध्यान किया और इतने में अत्रि आ उपस्थित हुवे। और अत्रि ने उस के प्रतिश्राद्धविधि का उपदेश किया।

इस आख्यायिका को ही कुछ परिवर्तन कर के वराह पुराण के कर्त्ता ने भी यही बात नारद निमिसंवाद से प्रतिपादन की है।

पुत्र शोक से व्याकुल हुवे हुवे निमि को नारदने बहुत सा आध्यात्म उपदेश देकर शान्त किया तिस पर निमि राजा अपने श्राद्धसंकल्प के विषय में इस प्रकार कहता है कि "यह सब मैंने शोक के प्रभाव से किया इस को आर्य पुरुष

---

*अकृतंमुनिभिः पूर्वं किंमयेदमनुष्ठितम्।
कथंनुशापेन मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति। महा. अनु. अ ९॥

अच्छा नहीं समझते यह बड़ा आश्चर्य जनक है। मेरा सुध बुध कुछ भी ठि-
काने नहीं है। इस प्रकार श्राद्ध कार्य प्राचीन ऋषियों और देवताओं ने भी कभी
नहीं किया था'। मुझे बहुत भय है कि कहीं मुनि जन कठोर शाप न दे दें। इस
पर नारद ने भी उसे पिता के पास जाने की अनुमति दी और वह पिता के पास
गया पिता ने उसे वैदिक रीति से मृत शव के दाह की विधि का उपदेश किया।

इस अध्याय की समाप्ति में एक मात्र पद्य है जिस में लिखा है कि नेमिने
मृत के नाम परपिण्ड भी दिया। इस के अगले अध्याय में अत्रि का उपदेश समाप्त
तथा पुनः वराह धरणी संवाद प्रारम्भ होता है। इस पिछला पद्य तथा सारा अध्याय
पीछे का प्रक्षेप दीखता है*।

अस्तु कुछ भी हो इन दोनों कथाओं से हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि
प्राचीन कालके देव तथा ऋषियों ने पिण्ड दान श्राद्ध कभी नहीं किया था। शेष
कथा घड़ना मात्र है। किसी का नाम भी लेकर कथा कही जासकती है। यही
पुराणकारों की शैली है। महापुरुषों के नाम पर संवादरचना एक अपने प्रति-
पाद्य विषय का गौरव मात्र दिखाने के लिये होता है।

इसी कारण मृत को सम्यक् प्रकार से दाहकरना यह ब्राह्म विधि या स्वायम्भव
विधि कहाती है और श्राद्ध विधि नैमि श्राद्ध कहा जाता है+।

प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से तो यह उत्पत्ति का क्रम प्राप्त होता है प-
रन्तु माननीय पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ अन्य कतिपय लौकिक दृष्ट आधारों पर
श्राद्धोत्पत्ति अपने श्राद्ध निर्णय प्रकरणों में इस प्रकार दिखलाते हैं। जिस का
सार यहां उद्धृत करते हैं।

शोकस्य तु प्रभावेण एतत्कर्मकृतंमया।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरणं द्विज॥ ७५॥
नष्टबुद्धिस्मृतिसत्वो ह्यज्ञानेनविमोहितः।
*यच्च तंमयापूर्वं न देवैः ऋषिभिः कृतम्॥ ७६॥
भयंतीव्रं प्रपश्यामि मुनिशापात्सुदारुणम्॥ ७७॥
*देखो वराह पुरा० अ० १८७ श्लो० ७७-१२२ तथा १२४ श्लो०
+ देखो वराह पु० अ० १८९ श्लो० ९९-१०१)

"हिन्दुओं का सब से अधिक मान्यतीर्थ गया है। गया में दिये पिण्ड की भी बहुत महिमा है पहले इस स्थान पर बौद्धों का बड़ा भारी विहार था इसी से इस देश का नाम भी विहार पड़ गया। यहां बौद्ध धर्म के अनेक चिन्ह हैं, जैसे गया का विष्णु पद बुद्ध के चरणचिन्ह हैं। बुद्ध भी पौराणिक विष्णु का अवतार माना गया है। इसी से पौराणिक भी उसकी पूजा करते हैं।

बौद्धकाल में बौद्धमत का चीन, जापान और भारत में बड़ा विस्तार था। चीन के लोगों में मृतक-श्राद्ध तथा पशुहिंसा और मांस का खाना बहुत प्रचलित था, वे ही यहां अपने मान्य बोधगया तीर्थ में अपने मृतपितरों के नामपर पिण्ड दिया करते थे। उनका विश्वास था कि मृत मनुष्य के नाम पर जो कुछ बलि करदी जाय वह उसको दूसरे लोक में पहुंच जाती है। इसी से प्रेरित हो कर वे प्रतिवर्ष नाना भोग्य पदार्थ तथा कागजों के घोड़े, हाथी, बैल, दास, दासी, वगैरा मृत पितरों के नाम से जलाते तथा जीते दासदासों तक मारकर बलि कर देते थे। श्मशान में मृतों के नाम सुन्दर २ चबूतरे बनवाते और प्रति वर्ष महोत्सव करते थे। ये ही लोग भूत प्रेत पिशाचादिक सब दुःख मृतपितरों के कोपका हेतु समझते थे। ये ही चीन के लोग बड़ी धूमधाम से आकर गया में उत्सव करते थे। यहां के बौद्धों ने चीनी लोगों की इस प्रथा को अतिथि के मान के आधार पर स्वतः मान किया। पौराणिकपण्डों ने भी बौद्ध पण्डों को माला माल होते देख इस प्रचलित श्राद्ध का स्वयं अनुकरण किया, तथा सब प्राचीन ग्रन्थों में भी किसी न किसी बहाने को रख कर श्राद्ध का प्रकरण मिलाया, एवं सब को मृतक पूजक बना दिया। प्रथम २ इस देश में इस प्रथा का बहुत विरोध किया गया; मृतकश्राद्ध करने वाला महाब्राह्मण या महापात्र अतिनिकृष्ट माना गया। ब्राह्मण कहलाने पर भी यह अस्पृश्य कहाया! अस्तु इसी लिये मृतकश्राद्ध की बहुत महिमा कही गयी तो सर्वसाधारण पर्याप्त जाल में फंस गये। इसी प्रकार नाना प्रकार सैकड़ों प्रत्यक्ष गप्पों के उदाहरण भी पाये जाते हैं जो सिवाय धूर्त्तता के और कुछ नहीं हैं। भारत के प्राचीन समय में जीवित पितृयज्ञ तो प्रचलित था ही जो प्रतिपार्वण काल में दर्शपूर्णमासेष्ठि तथा दानादि के स्वरूप में किया जाता था परन्तु इसी की आड़ ले कर वेद मन्त्रों को जोड़ तोड़ कर मनमाना अर्थ करके मृतकश्राद्ध की भी पद्धतियें बना २ कर शास्त्रों के माथे जड़ दीं।"

* अग्निष्वात्ता और सौम्य ये सब विप्र के ही पितर हैं। पितृ लोगोंके ये गण मुख्य हैं आगे इन के भी पुत्र पौत्रों की अनन्त संख्या है । ऋषियों से पितर हुवे और पि रों से देवता और देवताओं से स्थावर तथा जंगम संसार हुवा ।

यही आर्ष पितर हैं इनके अतिरिक्त लौकिक पितर जन्मदाता, अन्नदाता, आचार्य, बड़ा भाई, तथा भयत्राता ये भीं पांचप्रकार के पिता ही समझे जाते हैं ।

पौराणिक श्राद्धपिण्ड में नामथा भोक्ता पिता पितामह तथा प्रपितामह ही पितर शब्द से ग्रहण होते हैं । परन्तु मनुस्मृति के अनुसार ये भी खण्डित हैं जो आगे दिखावेंगे ।

वर्तमान मनुस्मृति में पिण्डदान पूर्वक श्राद्ध विधि का इस प्रकार निर्देश है ।

+"पवित्र एकान्त प्रदेश को गोवर से लीपकर ऐसी वेदी तय्यार करे जिसका दक्षिण की ओर का भाग कुछ झुका हुवा हो । खुले शुद्ध स्थानों में नदी के किनारों पर तथा एकान्त में दिये श्रद्धादिक से पितर तृप्त हो जाते हैं । कुशाओं

---

* अग्निष्वात्ताश्चासौम्याश्च वि्र ाणामेव निर्दिशेत् ॥ १९९ ॥
यएते तुगणामुख्या पितृणांपरिकीर्त्तिताः ॥
तेषामपीहविज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥

\+ शुचिंदेशं विविक्तञ्च गोमयेनोप लेपयेत् ॥
दक्षिणा प्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥
अवकाशेषुचोक्षे पु नदीतीरेषुचैवहि ॥
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्ते न पितरा सदा ॥ २०७ ॥
आसनेषूपक्लृप्तेपु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् ॥
उपस्पृष्टोदकान् सम्यग् विप्रान्स्तानुपवेशयेत् ॥ २०८ ॥
उपवेश्य तु तान् विप्रान् आसनेष्वजुगुप्सितान् ॥
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्विधिपूर्वकम् ॥ २०९ ॥
तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ॥
अग्नौकुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

के साथ२ आसनों को बिछाकर ठीक प्रकार हिरण्य गर्भ के पुत्र मनु के पुत्र मरीची आदि ७ सात ऋषि हैं उन ऋषियों के पुत्र पितृगण कहाते हैं। विराट् के पुत्र सोमसुत साध्यों के पितर कहाते हैं। अग्निश्वात्त जो मरीची के पुत्र थे वे देवों के जगत्प्रसिद्ध पितर हैं। दैत्य दानव यक्ष गन्धर्व उरग और राक्षस सुवर्ण और किन्नर— इनके पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद् हैं विप्र अर्थात् ब्राह्मणों के पितर सोमपा हैं क्षत्रियों के पितर हविर्भुग् हैं, वैश्यों के आज्यप हैं, शूद्रों के सुकाली हैं। सोमप कवि के पुत्र हैं हविर्भुग् आङ्गिरा के पुत्र, हैं, आज्यप पुलस्त्य के पुत्र हैं। सुकाली वसिष्ठ के पुत्र हैं।

अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद् से ब्राह्मणों को बैठा देवे। आसनों पर बैठा कर भद्र ब्राह्मणों को गन्ध माल्यादिक देवता की तरह से पूजा करे। उन ब्राह्मणों का पवित्रा सहित और तिलों सहित पानी लेकर एक ब्राह्मण अन्य सब ब्राह्मणों से अनुज्ञा लेकर अग्नि में हवन करे। प्रथम सोम और यम को तृप्त करके फिर विधि पूर्वक पितरों को तृप्त करे।

× मनोर्हैरण्यगर्भस्य येमरीचाद्यः सुताः ॥
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः। १९४ ॥
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानांपितरः स्मृता ॥
अग्निश्वात्ताश्चदेवानां मारीचालोकविश्रुताः ॥ १९५ ॥
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥
सुपर्ण किन्नराणाञ्च स्मृता बर्हिषदोत्रिजाः १९६ ॥
सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥
सोमपास्तुकवेः पुत्राः हविष्मन्तोङ्गिरसः सुताः ॥
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्राः वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥
अग्निदग्धाननग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदस्तथा ॥ १९९ ॥
अग्नेः सोम यमाभ्यां च कृत्वा प्यायनमादितः ॥
हविर्दानेन विधिवत् पश्चात्संतर्पयेत् पितॄन् ॥ २११ ॥
अग्न्यभावे तुविप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
योह्यग्निः सद्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥
अक्रोधान्सुप्रसादान् वदन्त्येनान्पुरातनान् ॥
लोकस्याप्यायने युक्ताञ्श्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥ २१३ ॥
अपसव्यमग्नौकृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ॥
अपसव्येनहस्तेन निर्वपेदुदकंभुवि ॥ २१४ ॥
त्रींस्तु तस्माद् हविः शेषान्पिण्डान् कृत्वा यथा विधि ॥
औदकेनैवविधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ २१५ ॥

यदि अग्नि न हो तो ब्राह्मण के हाथ ही में देवे। क्योंकि मन्त्रदर्शक ऋषियों ने अग्नि को ही ब्राह्मण कहा है। लोक भर को तृप्त करने के लिये प्रसन्नता क्रोध रहित पुरातन द्विज श्रेष्ठों को ही श्राद्ध देव कहा है।

अग्नि की प्रदक्षिणा करके भूमि पर दायें हाथ से जल छिड़के। फिर हवि-शेष में से तीन पिण्ड करके जल विधि से ही दक्षिण की ओर मुख करके कुशाओं पर धर दे।

लेपभागी पिता पितामह प्रपितामह के नाम पर रखे हुवे पिण्डों पर हाथ फेरे।

फिर आचमन कर उत्तर की ओर मुख कर और तीन बार प्राणायाम करके छह ऋतुओं को नमस्कार कर शेष पानी पिण्डों के पास रखकर पिण्डों को सूंघे। और तीनों पिण्डों से थोड़ी मात्रा लेकर बैठे हुवे ब्राह्मणों को यथा शास्त्र खिलावे। पिताके जीते हुवे इस से पहले तीन के नाम पर ही वह पिण्ड देवे। या ब्राह्मण की न्याईं जीते पिता को ही वह पिण्ड खिलादेवें + ।

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ॥
तेषुदर्भेषुतंहस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ २१६॥
आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्यशनैरसून् ॥
षड् ऋतूंश्चनमस्कृत्य पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ २१७ ॥
उदकंनिनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥
अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथा न्युप्तान्समाहितः ॥ २१८ ॥
पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः ॥
तानेव विप्रानासीनान् विधि पूर्वमाशयेत् ॥ २१९ ॥
ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेवनिर्वपेत् ॥
विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥
परिवेशयेत प्रयतो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥
नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥
नपादेनस्पृशेदन्नं नचैतदवधूनयेत् ॥ २२९ ॥
यद्यद् रोचेत विप्रेभ्यः तत्तद्दद्यात् विमत्सरः ॥
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात् पितॄणामेतदीप्सितम् ॥ २३१ ॥
स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च ॥ २३२ ॥

जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीता हो वह अपने पिता का नाम लेकर पितामह और प्रपितामह को पिण्ड देवे। या उस श्राद्ध को पितामह ही खालेवें ऐसा मनु भगवान् ने कहा है।

उन के हाथ में पवित्रतासहित तिलोदक देकर 'स्वधा पितरों को हो' ऐसा कह कर पिण्ड देवें।

×स्वयं सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणों को हर्षित करे यत्नसे भोजन करावे। आसन के स्थान में नेपाल का कम्बल बिछावे और पृथ्वी पर तिल बिछा देवे। दोहता, कम्बल और तिल ये तीन ही पवित्र समझे जाते हैं सम्पूर्ण अन्न बहुत गरम होना चाहिये ब्राह्मण लोग चुपचाप भोजन करें, यदि अन्न दाता अन्न या हविके गुणों को पूछे भी तो न कहें। जबतक अन्न गरम रहता है तबतक ब्राह्मण चुप चाप खाते हैं और जबतक हवि (भोज्य अन्न) के गुण नहीं कहे जाते तबतक पितर लोग खाते हैं। पगड़ी पहन कर दक्षिण की तरफ मुख करके, या जूता पहन के खाये हुए वे अन्न को राक्षस खाते हैं (इन खाते हुवे ब्राह्मणों को चाण्डाल, सूकर, कुक्कुट, कुत्ता, रजस्वला और हीजड़ा न देख पावें।

होम, दान, भोज, या देव या पितृयाग में इनका देखा कर्म नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण भिक्षुक या जो कोई उस समय भोजन के लिये आया हो उसे

× हर्षयेद् ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्चशनैः शनैः ॥
अन्नाद्येनासकृच्चैतान् गुणैश्चपरिचोदयेत् ॥ २३३ ॥
व्रतस्थमपिदौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥
कुतपं चासनेदद्यात् तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ २३४ ॥
त्रीणिश्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलः २३५ ॥
अत्युष्णं सर्व मन्नं स्याद् भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः
नचद्विजातयोब्रूयुः दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥ २३६ ॥
यावदुष्णंभवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ २३७ ॥
यद्वेष्टितशिरा भुंक्ते यद् भुंक्ते दक्षिणामुखः ॥
सोपानत्कश्चयद् भुंक्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ २३८ ॥
चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ॥

श्राद्धपात्र ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर यथा शक्ति पूजा करें । सब प्रकार के अन्नों को लेकर पानी में भिगो कर खाते हुवे ब्राह्मणों के आगे पृथिवी पर बखेरे । दर्भों पर रखे हुवे उच्छिष्ट (बचे हुवे) अन्न में संस्कार से रहित बालकों का कुल को छोड़ कर गयी कुल स्त्रियों का हिस्सा रहता है । भूमि पर बखेरे गये अन्न में अकुटिल सरल सूधे भृत्य वर्ग का भाग होता है ।"

ब्राह्मणों के × तृप्त हो जाने पर 'स्वादितम्' (चाख लिया) इस प्रकार पूछ कर आचमन करा कर 'अभिरम्यताम्' (आनन्द रहो) कहे । उस के बाद ब्राह्मण यजमान के प्रति 'स्वधाऽस्तु' (स्वधा हो) ऐसा कहें। सभी पितृकर्म में स्वाधा ही परम आशीर्वाद है उन के खा चुकने पर शेष अन्न भी उन्हीं ब्राह्मणों के सामने रख दे, वे जैसा कहें वैसा करें । पितृयज्ञ में **स्वदितम्**, गोष्ठी में **सुश्रुतम्**, उत्सव या दैवभाग में **सम्पन्नम्** या **रुचितम्** ऐसा ही कहा जाता है । अपराह्ण काल, दर्भ, गृहादि संशोभन, तिल, अन्नादि का खुले हाथों दान, और उच्चकुल के ब्राह्मण, यही श्राद्ध की सम्पत्ति हैं ।

ब्राह्मणों को बिसर्जन करके स्वयं चुप चाप हो कर दक्षिण दिशा को देख कर इन वरों को पितरों * से मांगे ।

× रजस्वला च षण्ढश्चनेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥ २३९ ॥
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ॥
दैवे कर्मणि पित्र्ये च तद्गच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥
ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितं ॥
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४१ ॥
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।
समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ २४४ ॥
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥
उच्छिष्टंभागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ २४५ ॥
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ॥
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥
पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥
आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यताम् इति ॥ २५१ ॥
स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुः ब्राह्मणास्तदनंतरम् ।
स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २५२ ॥
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ २५३ ॥

"हमारे कुल में दाता बढ़ें, वेद और सन्तति बढ़े, हम से श्रद्धा दूर न हो, हमारे पास बहुत सा धन हो।" इस प्रकार फिर पिण्डों को बना कर गौ को या ब्राह्मण को या बकरी को या अग्नि को खिला दे या पानी में फेंक दें।

कतिपय जन ब्राह्मभोज के पहले ही पिण्ड रख देते हैं और कोई पक्षियों को खिला देते हैं या आग या पानी में फेंक देते हैं। मध्यम पिण्ड को पुत्र की इच्छा करने वाली यजमान की पत्नी खा लेवे। इस से पुत्र श्रेष्ठ पैदा होता है। फिर सब अपने बान्धवों और सम्बधियों को भी भोजन करावे। जब तक ब्राह्मण न चले जावें तब तक अन्न शेष पड़ा रहे फिर नित्य की वैश्वदेव बलि करदे यही गृहधर्म की नियत व्यवस्था है।

पित्र्येस्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम् ॥
सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ २५४ ॥
अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः।
सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्म सुसम्पदः ॥ २५५ ॥
विसृज्यब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः
दक्षिणां दिशमाकांक्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन् ॥ २५६ ॥
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥
श्रद्धा च नो माव्यगमत् बहुधेयं च नोऽस्त्विति ॥ १५७ ॥
एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डास्तांस्तदनन्तरम्
गांविप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सुवाक्षिपेत् ॥ २६० ॥
पिण्डनिर्वपणं केचित् पुरस्तादेव कुर्वते ॥
वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ १६१ ॥
पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी ॥ ३६२ ॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥ २६३ ॥
ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वाबान्धवानपि भोजयेत् ॥ २६४ ॥
उच्छेषणं तुयत्तिष्ठेद् यावद्विप्राः विसर्जिताः ॥
ततोगृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ २६५ ॥ (मनु अ ३)

पितृ श्राद्ध में हवियों के तृप्त करने की शक्तिका माप मनु इसप्रकार लिखते हैं ।

तिल, धान, जौ, उड़द की दाल, पानी, मूल और फल से एक मास तक तृप्ति होती है। मच्छी के मांस से दो मास, हरिण के मांस से तीन मास, मेढे के मांस से चार मास, पक्षी के मांस से पांच मास, बकरे के मांस से छै मास, चीतल मृग के मांस से सात मास, बारह सिंगे के मांस से आठ मास, रुरु मृग के मांस से ९ मास, सूअर और भैंसा के मांस से दसमास, शशक और कच्छु के मांस से ११ मास पितरों की तृप्ति होती है गाय के दूध या खीर से १२ मास तक और वार्ध्रीणस के मांस से १३ मास तक तृप्ति होती है। काल शाक महाशल्ककी मच्छी गैंडा और लाल बकरेका मांस या शहद और मुनियों की नीवारादि धान से अनन्त कालतक तृप्ति होती है । त्रयोदशी के दिन शहद से मिला कर दिया अन्न अक्षय होता है ।

इसप्रकार मनु महाराज के नामपर प्रसिद्ध हुई मनुस्मृति में श्राद्ध की विधि लिखी है । यही विधि तथा अनुष्ठान प्रायः श्राद्ध को स्वीकार करने वाले पुराणों में माना गया है जिसमें पुराणों में स्थान २ पर किये हुए श्राद्धका दाताकी भूलों के कारण पितरों को अनन्त कष्टका भागी होना पड़ता है ।

---

(१) तिलैर्व्रीहि यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेनवा ॥
दत्तेनमासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् ॥ २६६ ॥
द्वौमासौमत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेनतु
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथपञ्चवा ॥ २६७ ॥
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनु चसप्तवै ॥
अष्टावेणस्यमांसेन रौरवेण नवैवतु ॥ २६८ ॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ॥ २६८ ॥
शशकूर्मयोस्तुमांसेनमासानेकादशैवतु ॥ २६९ ॥
सम्वत्सरं तुगव्येन पयसापायसेनच ।
वार्ध्रीणसस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २७१ ॥
कालशाक महा शल्काः खड्गलोहो मिषंमधु।
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानिच सर्वशः ॥२७२॥
यत्किञ्चिन्मधुनामिश्रं प्रदद्यातुत्रयोदशीम् ।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासुचमघासुच ॥ २७३ ॥

(मनु० अ० ३)

इसप्रकार विचार करने से प्रतीत यही होता है कि यह सर्वथा अवैदिक घृणित प्रथा है। जिन वराह आदि का श्राद्ध में दर्शनमात्र भ्रष्ट तथा पाप जनक माना है उसी के मांस से ११ मास की पितृतृप्ति लिखना सर्वथा पाखण्ड है। ये सब पेट पूजकों का धूर्तचक्र है। जिन्होंने पितरों के नामों पर इतने पशु और पक्षियों का वध कराकर अपने उदर को श्मशान बनाया है। ये सब कृति मांसलोलुपों के हृदय का आविर्भाव है।

पितरों के नाम पर पिण्ड बलि करने की उस समय इतनी रीतियें प्रचलित थीं, कि कोई बैल बकरे को खिलाते थे। कोई पक्षियों को देते थे, कोई आग या पानी में देते थे। वास्तव में ये सब रीतियें बलिवैश्वदेव का भाग हैं। इनको व्यर्थ पितरों के नाम चढ़ाना कोई लाभकर नहीं। शेष रहा ब्राह्मणभोज यह वास्तव में मृतपितरों का श्राद्ध नहीं क्योंकि यह साक्षात् ब्रह्मविद्या की शिक्षा देने वाले आचार्य श्रोत्रियादि जीवित पितरों ही का श्राद्ध है। इनसे मृतों की तृप्ति होना तो असम्भव है प्रत्युत इनकी तृप्ति हो ही जाती है। इसी से यदि इन जीवित पितरों में श्रद्धा पूर्वक दान करने की यह प्रथा चली हो इस में कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि अपने माता पिता गुरु आचार्य याज्ञिक श्रोत्रिय तथा अन्यमान्य पुरुषों को भोजन पान शयनादि सुख की सामग्री को दान भेंट देकर तृप्त करना गृहस्थी का परम धर्म है। पर्व में या यज्ञ के बाद दान करना या भोज देना भी कुल मर्यादा को बनाये रखने के लिये बहुत अच्छी रीति है। इसी से पिता पितामह प्रपितामह का अर्थ करते हुये मनु भगवान् स्वयं कहते हैं:—

"वसु पिता कहाते हैं रुद्र पितामह, और आदित्य प्रपितामह कहाते हैं।" +

वसु २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करने हारा, रुद्र ३६ वर्ष तक और आदित्य ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने हारा सदाचारी विद्वान् कहाता है। वास्तव ज्ञान और तप से यही वास्तविक पितर हैं×। "दत्तपुराण में भी यही श्लोक पितृ प्रकरण में उद्धरण किया है कि वसुस्वरूप पितर हैं और रुद्रपितामह हैं और

\+ वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥ २८४॥

× छान्दोग्योप० प्रपा ३, ख० १६।

आदित्य प्रपितामह हैं यही वैदिकी श्रुति है। इसी को आधार रखकर प्राचीन काल के श्राद्ध होते थे जिन को वृद्धि श्राद्ध कहा जाता है जो अभ्युदय या मंगल और आनन्दोत्सवों में ब्राह्मभोजादि देकर किया जाता था। इस में प्रथम माताओं की पूजा फिर पिताओं की पूजा मातामहों की पूजा फिर विश्वेदेव अर्थात् अन्य अभ्यागत विद्वानों की पूजा दधि अक्षत फल आदि द्वारा की जाती थी। इसमें कपड़े सोने आदि का दान, जौ का बखेरना, ब्राह्मणों के समक्ष कथा आदि का पाठ हुवा करता था। ये श्राद्ध चतुर्वर्ग कर सकता था। यद्यपि इस में मृतकों का कोई सम्बन्ध नहीं तो भी मृतक पक्षपातियों ने इस में भी मृतकों के पिण्ड भरवा लिये हैं।

शंयु बृहस्पति संवाद में ब्रह्माण्डपुराण और वायुपुराण में पितरों का निर्णय इस प्रकार किया है:—

संतानक× नामक लोकों में देवों का भी देवता वैराज नाम प्रसिद्ध हैं। येही आदि देव कहाते हैं इन के सात गण हैं जिनमें से पहले तीन अमूर्त्त और शेष चार सुमूर्त्त हैं। उन से भी ऊपर भाव मूर्तिमान हैं। फिर देव और भूमि यही लोकों की परम्परा हैं। वे ही इस लोक में वर्षा करते हैं। वर्षा से अन्न होता है। अन्न से प्रजाएं उत्पन्न होती हैं क्योंकि वेही सोम और अन्न को बढ़ाते हैं इससे ये ही पितर कहलाते हैं।

येही सुदर्शन लोकों को प्राप्त होकर १००० यज्ञों के पश्चात् ब्रह्मवादी पैदा होते हैं। श्राद्ध से ये पितर तृप्त होकर उस योग द्वारा लोक को तृप्त करते हैं जिससे लोक प्राण धारण करता है। इस लिये योगियों को यत्न से श्राद्धान्न देना चाहिये, पितर का योग ही बल है। योग ही से सोम पैदा होता है। एक भी वेद मन्त्रों को जानने वाला सब से अधिक पूजनीय है सब मन्त्रज्ञों से भी अधिक विद्याव्रत स्नातक पूजा के योग्य है।

× लोकाः सांतानिका नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः।
ते वैराजा इति ख्याताः देवानांदवि देवताः॥ ५२॥
आदिदेवा इति ख्याता महासत्वा महौजसः॥ ५३॥
तेषांसप्तसमाख्याता गणास्त्रैलोक्यपूजिताः।
अमूर्तयस्त्रयस्तेषां चत्वारस्तु सुमूर्त्तयः॥ ५५
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां वर्त्तन्ते भावमूर्त्तयः।

*सहस्रों मन्त्रज्ञों और स्नातकों से भी अधिक फलदायक एक योगी को श्रद्धा से देना बहुत फल देता है। सहस्रों गृहस्थ और सैकड़ों वानप्रस्थ तथा सहस्रों ब्रह्मचारियों से योग का जानने वाला श्रेष्ठ है, जो एक पैर से खड़ा हुआ सैकड़ों वर्षों तक भी वायु मात्र पर आहार करता है उस से भी अधिक ध्यानयोगी है। अमित वीर्यवान् पितरों का प्रथम गण है। इसी प्रकार वर्हिषद् सोमप आज्यप आदि भी पितर हैं।

इसी प्रकार वायुपुराण के श्राद्धकल्प में बृहस्पति के वचन में भी योगात्मा महात्मा विपाप्मा महौजा आदि विशेषण देते हैं।

तेषा मधस्ताद्वर्त्तन्ते चत्वारः सूक्ष्ममूर्त्तयः।
ततोदेवास्ततो भूमिरेषा लोकपरम्परा।
लोके वर्षन्ति ते ह्यस्मिंस्तेभ्यः पर्जन्यसम्भवः।
वृष्टिर्भवति तैर्दृष्ट्वा लोकानां सम्भवः पुनः॥
आप्याययन्ति ते यस्मात्सोमञ्चान्नं च योगतः॥
ऊचुस्तान्वै पितॄंस्तस्मा ल्लोकानां लोकसत्तमाः॥ ५० ॥
मनोजवाः स्वधा भक्षाः············ ॥ ५१ ॥
ततो युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः॥ ६१ ॥
श्राद्धे प्रीताः पुनः सोमं पितरो योगमास्थिताः।
आप्याययन्ति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति॥ ६५ ॥
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा॥
पितॄणां हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्त्तते॥ ६६ ॥
सहस्रशस्तु विप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान्।
एकस्तु योगवित्प्रीतः सर्वानर्हति तच्छृणु॥ ६७ ॥
कल्पितानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च।
योगाचार्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात्॥ ६८ ॥
गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च॥
ब्रह्मचारी सहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते॥ ६९ ॥
यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतं समाः॥
ध्यानयोगी परस्तस्माद् इति ब्रह्मानुशासनम्॥ ७३ ॥
आद्यपक्षगणः प्रोक्तः पितॄणाममितौजसाम्॥ ७८ ॥
इसी प्रकार अन्य पितृगणों का वंशानुक्रम
प्रायः सभी पुराणों में दिया है।
(वायु०, अ० ७२०) तथा
(ब्रह्माण्ड० उपो ३, अ० ९)

कहने का तात्पर्य यह है कि पितरों से अपने मरे बाप दादों को लेलेना सर्वथा अर्वाचीन ढकोसला है।

इन पितरों को पुराण साहित्य में देवसूनू अर्थात् देवताओं का पुत्र कहागया है। वायुपुराण में इनके सम्बन्ध में ये कथा आती है।

"ब्रह्मा* ने देवों को पैदा किया। देवताओं ने यज्ञ नहीं किया। ब्रह्मा ने उन को शाप दिया कि तुम अपनी सुधबुध भूलजाओ।" वे फिर नमस्कार करके अनुग्रह की आकांक्षा करने लगे इस पर ब्रह्मा बोला कि तुमने व्यभिचार किया है इससे प्रायश्चित करो, जाओ अपने पुत्रोंसे जाकर ज्ञान विषयक प्रश्न करो तब तुम्हें ज्ञान होजायगा।" यह वचन सुनकर वे सब अपने पुत्रों से प्रश्न करने गये। उससे उन्हें फिर ज्ञान हुआ वे बोले तुम हमारे वास्तविक पिता हो, जिन्होंने हमें फिर से ज्ञान का उपदेश किया है। तभी से पुत्र तो पितर बन गये और पितर पुत्र बन गये।"

तेनैतत्सर्वथासिद्धम् दानमध्ययनंतपः ॥ ३३ ॥
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ॥
इत्येते पितरोदेवाः देवाश्च पितरः पुनः ॥
अन्योन्यपितरोह्येते देवाश्च पितरश्चह ॥ ३४ ॥ (वायु०अ०१)
मन्वन्तरेषु जायन्ते पितरो देवसूनवः ॥ १५ ॥
देवानसृजत् ब्रह्मा नायजन्तिति वै पुनः ॥ १७ ॥
तमुत्सृज्यतदात्मानमसृजंस्ते फलार्थिनः ।
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढाः नष्टसंज्ञा भविष्यथ ।
नस्म किञ्चिद् विजानन्ति ततो लोको ह्यमुह्यत ॥ १९ ॥
तेभूयः प्रणताः सर्वे याचन्तिस्म पितामहम् ॥
अनुग्रहाय लोकानां पुनस्तानब्रवीत् प्रभुः ॥ २० ॥
प्रायश्चित्तं चरध्वं व्यभिचारो हि वः कृतः ।
पुत्रान् स्वान् परिपृच्छध्वं ततोज्ञानमवाप्स्यथ ॥ २१ ॥
तेपुत्रानब्रुवन् प्रीताः लब्धसंज्ञा दिवौकसः ।
यूयं वै पितरोऽस्माकं ये वयं प्रतिबोधिताः ॥ २३ ॥
तेनैव वचसा पुत्राः ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः ॥ २६ ॥
तस्मात्ते पितरः पुत्राः पितृत्वंतेपुतत्स्मृतम् २७ ॥
एवमाज्ञाकृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।

इस आख्यायिका से भी यही सार निकलता है कि ज्ञानदाता पितर कहा सकते हैं।

इसे आगे दृष्टान्त के लिये ब्राह्मण ग्रन्थ से हम प्रत्यक्ष जीवित पितरों का वर्णन सुनाते हैं ये पितर लोग मनुष्यकृत सौत्रामणि यज्ञ में आते थे और अभिषेक के समय राजा के सामने उपस्थित होते थे।

अश्व को छोड़ कर वेदी भाग में सोने से मढ़े हुवे गद्दे बिछाकर यजमान, राजा, ब्रह्मा, उद्गाता और अध्वर्यु बैठ जाते हैं। अध्वर्यु कहता है कि हे होता! भूतवर्ग का वर्णन और यजमान राजा को इसका पढ़ बताओ। इस प्रकार प्रतिदिन एक विभाग प्राणियों का बताया जाता है। और यह पारिप्लव विधि १० दिनों में समाप्त होती है। उन में दूसरे दिन के प्राणिवर्गों में पितरों का ग्रहण है। सो ध्यान देने योग्य है।

दूसरे दिन उपदेश हुवा अध्वर्यु कहता है:—

"यम + वैवस्वत राजा है उसके पितर ही प्रजाएं हैं वे ये बैठे हैं" इस पर वृद्ध उपस्थित हो जाते हैं। उनको उपदेश किये जाते हैं कि यजुर्वेद तुम्हारा वेद है। इस पर यजुर्वेद के एक अनुवाक की व्याख्या की जाती है।'

इस वाक्य से बहुत से व्यंग निकलते हैं।

पौराणिक साहित्य में यम को मृत्यु का अधिष्ठातृ देवता माना गया है। इस से यमराज मृत्यु ही का नाम है। सो मृत्यु की अवस्था आसन्न होने से स्थविर अर्थात् वृद्ध लोग यम के ही वश में रहते हैं और वे अपने गृह के बन्धनों का भार युवक पुत्रों को सौंप कर स्वयं वानप्रस्थादि लेकर यज्ञ योगादि में रत रहते हैं, इस से सामान्य वृद्ध जन तृतीय तथा चतुर्थाश्रम सेवी पितर कहे गये हैं। राजनीती के शास्त्रों में तथा लौकिक साहित्य में दण्डधरमय, शासिता ये शब्द सब राजा के लिये प्रयुक्त होते हैं। इसी राजनीति की व्यवस्था को देख यम और चित्रगुप्त यम की नरक व्यवस्था का रचाका पौराणिकों की कल्पना है जो वास्तव में सर्वथा गप्प है। अस्तु राजा का नाम यम है। सो राजा के साथ सम्बन्ध देश की रक्षा

+ यमो वैवस्वतोराजा इत्याह। तस्यपितरो विशः। तइमे। समासते इति स्थविरा उपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति यजूंषि वेदस्तेऽयम्। इतियजुषामनुवाकं व्याचक्षाणः॥

(शतपथ का० १३ प्रपा० ३ ब्रा० १-६)

करने वाले क्षत्रिय भी पितर कहाते हैं। वैदिक अनुशीलकों को यह भले प्रकार विदित है कि यजुर्वेद को ही क्षत्रियों का वेद कहा गया है। वास्तव में राजधर्मों के इस में बहुत अधिक प्रकरण हैं।

इसी प्रकार यम नियम आदि पालन करने वाले तथा यज्ञयागादि के अनुष्ठान करने वाले तपस्वी महर्षि भी यम से न्यून नहीं, वे भी सतत दण्ड धारण करने से दण्डधर कहाते हैं। उनकी प्रजाएं भी उन्हीं के दिखाये मार्ग पर चलते तथा कुल धर्मों को पालते हुए गृहस्थादि का निर्वाह करते हैं। अतः वे भी शुभ पुत्र संन्तान पैदा कर, ऋणमुक्त होकर स्वयं पितर बन जाते हैं।

इन सभी प्रकार की आलोचनाओं से पितर लोग जीवित ही सिद्ध हो सकते हैं। मृतों के लिये पितर शब्द ही प्रयुक्त नहीं होता प्रत्युत प्रेत शब्द मृत के लिए आता है।

पुराणकारों ने पितरों के अन्न को स्वधा कहा है। उपरोक्त प्रदर्शित पितरों ही में स्वधा का प्रयोग भी हो सकता है। वानप्रस्थी तथा सन्यासी और स्नातक ये स्वतः ही भिक्षापात्र लेकर अपने जीवन धारण योग्य मात्र अन्न को खाते हैं। राजपदधिकारी अपने जीवन धारण के लिये प्रजा का शासन कर के अपने ही बलके आधारपर कर या बलि का षष्ठांश स्वधा रूप में लेते हैं। मर्यादा को रखने वाले गृहस्थ भी अतिथि भृत्य तथा तीन आश्रमों का पोषण करता हुआ स्वधा का ही आस्वादन करता है। इस से स्वधा को अन्न कहना या इनके अन्न को स्वधा कहना कोई विशेष नहीं है।

वैदिक साहित्य में नमः और स्वधा ये दोनों ही शब्द अन्न वाचक हैं।

स्वधा के बारे में पुराणों ने इसको पितरों के साथ विवाह किया है। ब्रह्मवैवर्त्त के पुराणकार ने इस स्वधा को भी कृष्ण की एक गोपी बनाया है। इत्यादि बहुत गप्पें चलाई हैं। यदि स्वधा पितरों का अन्न है तो क्या कभी खास पदार्थ भी किसी की स्त्री होसकती है। अपनी स्त्री को खा लेना यह महान्नृशंस दोषारोपण पितरों पर करने का साहस पुराणों का हो सकता है। जिन की उच्छृंखल लेखनी ने देवताओं को पापलिप्त, उपास्य देव को घृणित चरित, अपरिमेय को वामन बनाने का साहस किया उन के लिये ये भी करना कौनसी बड़ी बात है।

यदि स्त्रियों को उपभोग का साधन मान कर भी उस अन्न का मुख्यार्थ न लेकर उपभोग्यमात्र वस्तु की लक्षणा करेंगे तो भी गृहिणी को जूती और भोग्य जड़ पदार्थ से परे न मान कर गृहस्थ धर्म की बड़ी मान मर्यादा का नाश किया है। इसी मर्यादा के भ्रष्ट कर लेने पर ही उतनी निर्लज्जता की रचनाएं की जा सकती हैं।

पौराणिक लोगों का विश्वास है कि पितरलोग यद्यपि मूर्तिमान् प्रत्यक्ष नहीं दीखते तथापि श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों के पास आकर खड़े हो जाते हैं और उनके खाते हुए पितर खाते और तृप्त होते २ पितर भी तृप्त हो जाते हैं। यह बड़ी गुरुकल्पना है। जिसमें प्रथम आक्षेप तो पितरों को ब्राह्मणों का जूठा खाना यही अपरिहार्य है। अपने कर्मफल को भोग न करके ब्राह्मण के खाये या पुत्र के किये पुण्य के फल को भोग करना यह कर्मसिद्धान्त का घात तथा कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष भी आ जाता है। इसी प्रकार पुत्रकी की गई विक्रिया या अपराधों में पितरों के विष्ठा या मूत्र में चिरकाल तक वासादि यातनायें परमात्मा के राज्य में महाअन्याय है। और दूसरा बालिग् या व्यवहाराभिज्ञ गृहस्थ के किये अपराध पर उसके निर्दोष बुड्ढे को दण्ड देने को लौकिक बुद्धि भी अन्याय स्वीकार करती है। फिर यह पौराणिक धर्मव्यवस्था में निर्दोष मरे पिता पर इतना महा प्रकोप करना बड़ा भारी पाखण्ड है। यदि यह भय या पितरों पर काल्पित दण्ड वास्तविक नहीं प्रत्युत श्राद्ध की महिमा जतलाने को है, तो इससे स्पष्ट ही है कि ये अवास्तविक और बहकाने वाली धर्मव्यवस्था सर्वसाधारण जनता में कितने अन्धविश्वास तथा अज्ञानता का कारण हुई है।

पद्म पुराणकार लिखता है। "पितरों के नाम गोत्र ही पितरों के नाम से दिये हव्य कव्य को उन तक पहुंचा देते हैं। श्राद्ध का वास्तविक तत्व भक्ति से उपलब्ध होता है।

---

* नामगोत्रे पितॄणां तु प्रापके हव्यकव्ययोः ॥
श्राद्धस्य मन्त्रतस्तत्वमुपलभ्यते भक्तितः ॥ ३८ ॥
अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥
नामगोत्रास्तथादेशा भवन्त्युद्भवतामपि ॥ ३९ ॥
प्राणिनः प्रीणयन्त्येवदर्हणं समुपागतम् ॥
दिव्यो यदि पिता माताशुभकर्मानुयोगतः ॥ ४० ॥

पितरों के अधिपति अग्निष्वात्तादि हैं। नाना गोत्र तथा देश, ये प्राणियों के होते ही रहते हैं इन्हीं द्वारा किया श्राद्ध प्राणियों को तृप्त करता है। यदि पिता माता देव योनि में है तब उन के नाम पर दिया अन्न अमृत बनकर जाता है। दैत्य योनि में हों तो भोगरूप से, पशु योनि में हों तृणरूप से, श्राद्ध में दिया हुवा अन्न ही वायु रूप बन कर नाना प्रकारका बन कर उपस्थित हो जाता है, यक्ष योनि में हो तो मदिरा बन कर, राक्षस योनि में हो तो मांसबनकर, *दानव योनि में हो तो मदिरा बन कर, प्रेत हो तो रुधिर बन कर, मनुष्य ही हो तो अन्न जल रूप बनकर स्त्रियें हों तो रति शक्ति बनकर पितरों को तृप्त करता है। इस कल्पना से पूर्वोक्त कल्पना भी स्वतः खण्डित हो जाती है। और पितरों के नाना योनि में होते हुवे अपने देह को त्याग कर के भोग लगाते हुवे ब्राह्मणों के समीप अपना भाग लेने के लिये आना ये सर्वथा असम्भव है। फिर एक शंका साथ ही ये भी पैदा होती है कि क्या पुत्रादि के दिये पिण्ड और ब्राह्मणभोज से हुवी हुई तृप्ति पितरों को प्रतीत भी होती है, कि ये हमारे पुत्रों की दी हुवी है।

यदि नहीं पता लगती तो उनका प्रकुपित होकर * रोष करना असम्भव है। यदि पता लगता है इतने सहस्रों और लक्षों पौराणिक मनुष्य योनिको स्वीकार किये हैं क्या इनके गत जन्म के पुत्रों में से किसी के श्राद्ध का भाग इन तक नहीं पहुंचा और पता लगा।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से विचार किये जाने पर श्राद्ध से पितरों की तृप्ति नहीं बनती।

तस्मात्तदमृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति ॥
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणंभवेत् ॥ ४१ ॥
श्राद्धान्नं वायु रूपेण नानात्वेनोपतिष्ठति ॥
पानंभवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् ॥ ४२ ॥
दानवत्वे तथा पानं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नाना भोगवतां भवेत् ॥ ४३ ॥
रति शक्तिः स्त्रियःकान्त भोजनशक्तिताः ॥ ४४ ॥
(पद्म, सृष्टिः अ० १०)

* द्वाविंशके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह ॥
निःश्वस्य प्रति गच्छन्ति शापं दत्वा सुदुःसहम् ॥ ५१ ॥
(ब्रह्म, अ० २२०)

मान्य पण्डित जी का यह विचार बहुत ही उचित है। क्योंकि वेद की चारों संहिताओं का विनियोग क्रतुओं तथा महायज्ञों में शाखाओं ने कर लिया है शेष उन्हीं में से फिर मन्त्रों को उद्धरण करके दूसरे विनियोगों में लगाना अवश्य अर्वाचीन कल्पना का पोषक है।

प्राचीन वैदिक साहित्य में किस प्रकार का श्राद्ध था और बिगाड़ कर तथा भ्रष्ट प्रथा का अनुकरण करके किस प्रकार का श्राद्ध कर लिया, इस की विवेचना वैदिक साहित्य तथा स्मृति उद्धरणों पर की जाती है।

पितृलोगः—

मनु में पितरों का निर्णय इस प्रकार किया है:—

क्रोध से रहित पवित्राचार से युक्त सदा ब्रह्मचारी, युद्धादि न करने वाले, त्यक्तशस्त्र महाभाग पूर्व हा से देवता के सदृश पितर कहाते हैं। *

ब्रह्मपुराण में योन्यन्तर या इष्टलोक को छोड़ कर गये हुवे पितरों की तृप्ति का इस प्रकार उपाय बतलाया जिस के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि श्राद्ध की प्रक्रिया नृयज्ञ और वैश्वदेव यज्ञ के सम्मेलन से यह श्राद्ध की कल्पना की गई है। और मरकर योन्यन्तर में प्राप्त पितरों को इस प्रकार तृप्त किया गया है। +

---

* अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥
(मनु० ३ । १९२)

\+ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ८४ ॥
पिण्डसम्बन्धिनोह्येते विज्ञेया पुरुषास्त्रयः ।
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥ ८५ ॥
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ।
इत्येषंमुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः ॥ ८६ ॥
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ।
ततोऽन्ये पूर्वजाः सर्वे येचान्ये नरकौकसः ॥ ८७ ॥
येऽपितिर्यक्त्वमापन्नाः येचभूतादिसंस्थिताः ।
तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन् यथाविधि ॥ ८८ ॥
स समाप्याययते विप्रा येन येन ववामि तत् ।
अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥ ८९ ॥
तेन तृप्तिमुपायान्ति येपिशाचत्वमागताः ।
यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौपतति वै द्विजाः ॥ ९० ॥
तेन ये तरुतां प्राप्ताः तेषां तृप्तिः प्रजायते ।
यास्तुगन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥ ९१ ॥

"पिता पितामह और प्रपितामह ये पिण्ड सम्बन्धी कहाते हैं। और पितामह के पितामह तक लेप सम्बन्धी कहाते हैं। सातवां यजमान होता है मुनियों ने सात पौरुष सम्बन्ध कहा है। यजमान से आगे आने वाले अनुलेप सम्बन्धी कहाते हैं। इन के अतिरिक्त शेष सब पूर्वज जो नरक में गये हों या तिर्यग् योनि में गये हों, या अन्य प्राणि योनि में गये हों उन सब को श्राद्ध करता हुआ यजमान इस प्रकार से तृप्त करता है। मनुष्य जो श्राद्ध में अन्न बखेरते हैं उस से पिशाच योनि में प्राप्त पितर तृप्त होते हैं। नहाने के कपड़ों से निचोड़े हुवे पानी से वृक्षयोनि गत पितर तृप्त होते हैं। पृथ्वी पर फेंके गये सुगन्धित जल से देव पितर तृप्त होते हैं। रखे गये पिंडों में डाले पानी की पृथ्वी पर पड़ी जल की बूंदों से तिर्यग् योनि में गये पितर तृप्त होते हैं। ब्राह्मणों के खा चुकने पर आचमनादि कर लेने पर जो जल शेष रहे, या पैर धोने का शेष पानी हो, उस शिष्ट भाग से बिना दांत कुल के बालक जिन का कर्मकाण्ड में अधिकार नही या जो बीमार हैं या धोबन के पानी को पीनेवाले हैं वे तृप्त होते हैं। इसी प्रकार यजमान और ब्राह्मणों का कुछ शुद्ध या उच्छिष्ट शेष जल तथा अन्न है उस से अन्य योनियों में गये पितर भी तृप्त हो जाते हैं। अन्याय पूर्वक उपार्जित धन से किये गये श्राद्ध से चांडाल और पुल्कसादि योनिगत पितर तृप्त होते हैं।

ब्रह्मपुराण के इस वचन से भी सिद्ध यही होता है कि पितर खाते हुवे ब्राह्मणों के पास या पिण्डदाता के पास अपनी तृप्ति करने के निमित्त से नहीं आते हैं।

ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुलेगताः।
उद्धृतेष्वथपिण्डेषु याश्चाम्बुकणिकाः भुवि ॥ ९२ ॥
ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वमुपागताः
येचादन्ताः कुलेबाला क्रियायोगाद्बहिष्कृताः ॥ ९३ ॥
विपन्नास्त्वनधिकारा संमार्जितजलाशिनः।
भुक्त्वाचाचमतां यच्च यज्जलंचांघ्रिशौचजम् ॥ ९४ ॥
ब्राह्मणानां तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै।
एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥ ९५ ॥
कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा।
तेनान्ये कुले तत्र येच योन्यन्तरंगताः ॥ ९६ ॥
भवत्याप्यायनं विप्राः सम्यक् श्राद्धक्रियावताम्।
अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ॥ ९७ ॥
तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु।
एवंमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवैः ॥ ९८ ॥
(ब्रह्मपुराण अ० २२०)

प्रत्युत श्राद्ध प्रक्रिया के विधानों से ही नाना योनि में रहते हुवे पितर भी तृप्त हो जाते हैं। इस से यह भी सिद्ध हो जाता है कि श्राद्ध मृतक का नहीं होता प्रत्युत जीतों का ही होता है। क्योंकि यद्यपि वे इन बान्धवों के साथ नहीं रहते फिर भी योन्यन्तर में जी रहे हैं।

तीसरा मृतक श्राद्ध की व्यर्थता भी प्रतीत होती है क्योंकि यदि सभी पितर देवयोनि से लेकर तरु कीट पतंगादि योनियों में से कहीं न कहीं हैं। तो तिर्यक् योनि-गतों के लिये वैदिक विधि बलिवैश्वदेव, देवों के लिये देवयज्ञ, अन्य मनुष्य योनि-गत के लिये नृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा जीवित पितृयज्ञ ही से सम्पूर्णों की तृप्ति सम्भव है। फिर ब्रह्मपुराण के अनुसार सांशयिक तृप्ति पर मृतपितृश्राद्ध को सत्य मानना सर्वथा अवैदिक है।

चतुर्थ जब सभी पितर किसी न किसी योनि में ही हैं और अपने कर्मों के फलों को भोगते हैं तब पुत्रों के या पिण्ड देने वाले के अपराधों से पितरों को फल भोगना भी असम्भव है। जैसे कि जो श्राद्ध की तिथियों में श्राद्ध देकर या खाकर मैथुन करता है उस के पितर वीर्य में मास भर सोते हैं *। इत्यादि किसी प्रकार की सभी बातें केवल श्राद्ध करने कराने वाले के आचार को बचाने के लिये भयरूप हो सकती हैं परन्तु सत्यता तिलमात्र भी नहीं।

अब हम उन वेद मन्त्रों को लेते हैं जिनको प्रायः मृतकश्राद्ध करने के पक्ष के विद्वान् अपना पक्ष साधन तथा मृतकश्राद्ध को वैदिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं।

(१) (ये जीवाः ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः। तेभ्यो घृतस्य कुल्यै तु मधुधारा व्युन्दती।" (अथर्व० १८, ४ ५७।)

"इस मन्त्र का शब्दार्थ है जीवित, मृत, उत्पन्न, यज्ञ करने वाले सब के लिये घी की नहर और मधु की धारा प्राप्त हो।"

---

* श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति।
पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ॥ १०७ ॥
गत्वा च योषितं श्राद्धे योभुङ्क्तेयश्च गच्छति।
रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः ॥ १०८ ॥
(ब्रह्मपु० अ० २२०)

इसमें पता नहीं किस स्थान पर मृतकश्राद्ध का प्रतिपादन है। श्राद्ध का नाम न होने से तथा श्राद्ध में मृतपितरों के नाम पर केवल आटे का पिण्ड तथा जल की अञ्जलि और तिल देने से ही मृतकों के नाम पर यह श्राद्ध का पोषण नहीं कर सकता। मृत शब्द आने पर भी वैदिक सिद्धान्त के अनुसार देहदाह करने के लिये घृत और मधु की पुष्कल धारा तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य आवश्यक हैं। जीवित और उत्पन्न और यज्ञियों को भी घृत और मधु की धारा जीवन में सुखकारी होने से प्राप्त होनी चाहिये।

(२) ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः। सर्वास्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ (१८, २, ३४,)

"जो गाड़े गये, जो दूसरों द्वारा गाड़े गये, जो जलाये गये और जो ऊपर रखे गये हैं, हे अग्ने! तुम उन्हें हविरूप भोजन को प्राप्त कराओ।"

इस मन्त्र में भी कोई मृतक श्राद्ध को आश्रय नहीं प्रत्युत मुर्दों को गाड़ना या ऊपर टांगना आदि नहीं प्रत्युत हवि या चरुद्वारा सब को अग्नि में भस्म कर देना यही वैदिक विधान है, इसी के लिये यहां प्रार्थना है।

इस प्रकार यह सारा का सारा १८ वां काण्ड ही अग्नि और पितर सम्बन्धी दाह संस्कार में लगाता है श्राद्ध और पिण्ड का गन्ध भी नहीं है।

यजुर्वेद के १९ वें अध्याय में आते हैं। ये सभी मन्त्र अथर्व वेद के पूर्वोक्त काण्ड में भी यथा तथा है। उन में से भी कतिपय निदर्शन पाठकों के समक्ष रखते हैं।

(१) ये अग्निष्वात्ता येऽनग्निष्वात्ताः मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते तेभ्यः स्वराड् असुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥ [यजु० १९, ६०]

उव्वट और महीधर के अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार है:—

जो अग्नि द्वारा स्वादित अर्थात् श्मशान कर्म प्राप्त हैं और अनग्निष्वात्त जो श्मशान कर्म को प्राप्त नहीं हुवे अर्थात् परिव्राजकादि, वे द्युलोक में अपने उपार्जित कर्मफलरूप स्वधा से सुख को प्राप्त होते हैं। उनके लिये स्वयं प्रकाशित होने वाला यम फिर उन को चिरजीवन युक्त यथेच्छा से शरीर देवे।

इस में भी श्राद्ध का नाम नहीं। पिण्डीकरणादि द्वारा पितरों का क्षणिक शरीर भी इससे सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि शरीर देना स्वराट् परमात्मा के हाथ में है। ये भी मन्त्र श्मशान के समय सद्भावना करने के लिये है।

(२) अग्निष्वात्ताः पितर इह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिषि अथ रयिं सर्ववीरं दधातन॥ यजु० १९, ५९,।

हे अग्निष्वात्त पितर! तुम प्रतिगृह में बैठते हो, और भली प्रीतियों से युक्त हो तुम आओ बैठो और फिर रागद्वेष मोहादि को छोड़ कर बनायी गई हवि और बर्हि अन्नों को खाओ और सर्व वीर धन को धारण करो।

इस मन्त्र में तो स्पष्ट ही ऐसे पितर दीखते हैं जो जीते हैं न कि मरे हुवे क्योंकि प्रतिगृह में मरों का बैठना और अन्नों को खाना बहुत असम्भव है।

अब हम एक मन्त्र निदर्शनार्थ ऐसा देंगे जिस से प्रतीत होजायगा कि प्रथम महीधर के अनुसार श्राद्ध में खाने वाले ब्राह्मण ही पितर कहाते हैं दूसरे नहीं। दूसरा मन्त्र वर्णित विषय भी मृतों में घट नहीं सकता।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम। यजु० १९, ६२।

महीधर लिखता है कि श्राद्ध में ब्राह्मणों के खाते हुवे गृहपति इसका पाठ करता रहे। यह दस ऋचाओं का अनुवाक है पितर बायां गोडा गिराकर और दायें से बैठकर इस यज्ञ की स्तुति करें। सभी सोम पीथी बर्हिषद् और अग्निष्वात्तादि पितर कोई हिंसा न करें। यद्यपि हम किसी प्रकार से भी चलचित्तता होने से कोई अपराध करें, तो हम पर रोष न करें।

इसके अगले मन्त्र भी ऐसे ही हैं। हम विस्तारभय से यहां उद्धृत नहीं करते। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि महीधर का इस मन्त्र को श्राद्ध में घसीट लेने का प्रयत्न सर्वथा असंगत है क्योंकि इसमें स्वतः ही यज्ञ शब्द का पाठ है। श्राद्ध से पितृ यज्ञ लेना भी ठीक नहीं क्योंकि इस पितृ मन्त्र समूह का विनियोग सौत्रामणि याग में शतपथकार ने किया है।

इस प्रकार सामान्यतः वेद मंत्रों का अनुशीलन करने से श्राद्ध और यह भी मृत पितरों का अर्थात् मृत पिता पितामह और प्रपितामह अर्थात् पिण्डभुक् पितरों का किसी स्थान पर भी उपलब्ध नहीं होता।

कर्मकाण्ड के प्रकरण की समाप्ति में शतपथ में श्मशान क्रिया करने का विधान है उस में श्मशान की व्युत्पत्ति शवान्न की है क्योंकि श्मशान पितरों के खाने वाले कहते हैं। उनका शव अन्न है। इससे भी अग्नि तथा मुर्दों के खाने वाले पक्षी तथा जङ्गली पशु और मिट्टी सब श्मशान कहाते हैं। क्योंकि श्मशान की व्युत्पत्ति निरुक्तकार यास्क भी यही करते हैं कि जिसमें शव सोये।

इसप्रकार शतपथकार सब यजुर्वेद का कर्मकाण्ड रूपेण व्याख्या करके मृतक श्राद्धका किसी स्थान पर उल्लेख नहीं करते इससे यह विधि अवैदिक तथा अर्वाचीन है।

शेष यही प्रश्न रहगया कि मृत श्राद्ध प्रक्रिया श्रौत नहीं तो स्मार्त्त ही है। इस के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि स्मृतिग्रन्थों में प्रक्षेपों की कमी नहीं, सभी ने अपना मनमाना सिद्धान्त मिलाने का प्रयत्न किया है। इस लिये इन स्मृतिकारों की प्रामाणिकता भी श्रुति के आधार पर ही है न कि स्वतः। बौधायनगृह सूत्र में पितृमेधसूत्रों के द्वितीय प्रश्न में श्राद्धका और सपिण्डीकरण का विस्तार वर्णन है। परन्तु यह सब हमें प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। क्योंकि तृतीय प्रश्न में "अथातो द्विजातीनां दहनकल्पं व्याख्यास्यामः" इस प्रकार से अन्त्येष्टि का उपक्रम बांधा है। उसही में बोधायन मुनि लिखते हैं "तस्माज्जातस्य वै मनुष्यस्य द्वौ संस्कारौ ऋण भूतौ भवतः जातसंस्कारः मृतसंस्कारश्च, जातसंस्कारेण इमं लोकं जनयति मृतसंस्कारेण अमुं लोकम्"।

अर्थात् पैदा हुए के दो संस्कार ही ऋण होते हैं एक मृत संस्कार और एक

जातसंस्कार, आतसंस्कार से यह लोक उत्कृष्ट होता है, और मृतसंस्कार से परलोक इत्यादि रूप से दहन कल्प अर्थात् अन्त्येष्टिसंस्कार का ही प्रतिपादन किया है।

रन्तु अर्वाचीनों से रहा न गया उन्होंने शेष सूत्रों को पीछे से मिला श्राद्धको पीछे से जोड़ा हुआ प्रतीत होता है।

इसप्रकार श्राद्ध का विवेचन हम यहां समाप्त करते हैं

सप्तदश अध्याय

वर्ण-व्यवस्था

महाभारत काल की वर्णव्यवस्था के सिद्धान्तों को दिखाने के लिये हमने तृतीय अध्याय में प्रयत्न किया था और यक्षयुधिष्ठिर संवाद, भृगु भारद्वाजादि संवाद से यही दिखाया था कि महाभारत के निर्माण काल में भी विद्वानों का यही सिद्धान्त था कि वर्णव्यवस्था गुणकर्मों से होनी ही उत्तम है न कि केवल जातिमात्र से। पुराणकारों के जमाने में जाति अर्थात् जन्म की प्रधानता अधिक मानी जाने लगी। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में जातिभेद करते करते सहस्रों भेद कर दिये गये हैं और वर्णव्यवस्था का आदर्श सिद्धान्त सर्वथा लुप्त हो गया।

जाति या जन्म के ही वर्ण के व्यवस्थापक रहजाने पर देश में ब्राह्मणों ने अपना उच्च अधिकार पैतृक समझ कर वेदादि सच्छास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सर्वथा छोड़ दिया, और शूद्रोपग्राह्यतन्त्र और पुराणों को ही अपना वेद सदृश मान्य ग्रन्थ समझ कर सात्विक अवस्था से गिरकर तामस अवस्था में आ पड़े, और वैदिक धर्म कर्म भूल कर मनमाना अविद्या का प्रसार करके यथेष्ट पापाचार की वृद्धि की। और कलियुग को पूरा चरितार्थ कर दिखाया। वर्णव्यवस्था का वास्तविक सिद्धान्त यही है जैसा पहले आपस्तम्बमुनि कह आये हैं कि:—

"धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं २ वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ"
अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णः जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ" ॥

अर्थात् "धर्मानुकूल वर्त्ताव करने से नीचवर्ण उच्चवर्ण हो जाता है और उच्चवर्ण अधर्माचरण से नीचवर्ण होजाता है, और जाति के परिवर्त्तन होने पर भी वर्ण परिवर्त्तन होता है।"

कतिपय इस स्थल पर यह शंका उठा सकते हैं कि जाति परिवर्त्तन होने पर ही वर्ण बदल सकता है यही आपस्तम्ब का आशय है। परन्तु वास्तव में ऐसा आशय नहीं है। प्रत्युत सामान्यतः नियम यह है कि धर्मचर्या से जघन्य वर्ण उच्चवर्ण हो जाता है यह निर्धारण कर देने पर भी आसन्नमरण धर्मचर्या करने वाला किस प्रकार एक ही जन्म में उच्च वर्ण को पावेगा इस विशेष जिज्ञासा को शमन करने के

लिये कहा जाता है "जातिपरिवर्तनी" अर्थात् जन्मान्तर में वह भी उच्चवर्ण को पा सकता है।

इसी सिद्धान्त को पुराणकारों में से भी बहुतों ने स्वीकार किया है और जन्म को कुछ भी प्रधानता न देकर गुण और कर्म की ही वर्णव्यवस्था में मुख्यता मुक्तकण्ठतया स्वीकार की है। जैसेः—

(१) राजर्षि विश्वामित्र अपने तप के बल से ब्रह्मर्षि बन गये॥

(२) इसी प्रकार कर्म की गति को लक्ष्य में रख कर व्यासमुनि संवाद में मुनिगण व्यासदेव से प्रश्न करते हैं कि:—

"किस कर्म से वर्णों की अधम गति होती है और किस कर्म से उत्तम होती है। हे महामते ! कहो किस कर्म से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और ब्राह्मण भी किस कर्म से शूद्र बन जाता है। यह हम सुनना चाहते हैं।" +

+ मुनयः ऊचुः—
कर्मणाकेन वर्णाना मधमाजायते गतिः।
उत्तमाचभवेत्केन ब्रूहितेषां महामते ॥ २ ॥
शूद्रस्तुकर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥ २ ॥
(ब्रह्मपुराण अ० २२३)

शिव उवाचः—
ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद् ब्राह्मणः शुभे ॥
क्षत्रियोवैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥ १२ ॥
कर्मणा दुष्कृतेनेहस्थानाद् भ्रश्यति स द्विजः ॥
श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥ १३ ॥
स्थितोब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ॥
क्षत्रियोवाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ १४ ॥
यश्च विप्रत्व मुत्सृज्य क्षत्रधर्मान् निषेवते ॥
ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ १५ ॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ॥
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥ १६ ॥

इस पर व्यासदेव मुनियों के प्रति महाभारतान्तर्गत शिव उमासंवाद का उद्धरण करते हैं। जिस में उमा के प्रति शिव कहते हैं "हे देवि स्वभाव से ही ब्राह्मण्य बहुत दुर्लभ है। दुष्कृतकर्म से द्विज अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है, और श्रेष्ठ वर्ण को प्राप्त करके भी द्विज गिर जाता है। क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मण धर्म से ब्राह्मणता का जीवन बिताते हैं और ब्रह्ममय होजाते हैं। जो ब्राह्मणता को छोड़कर क्षत्रधर्मों का सेवन करता है वह ब्राह्मणता से भ्रष्ट होकर क्षत्रयोनि में पैदा होता है। जो ब्राह्मण लोभ मोह के वश होकर दुर्लभ ब्राह्मणता को पाकर भी वैश्यकर्म को करता है वह द्विज वैश्य बनजाता है, और वैश्य शूद्र बनजाता है। अपने धर्म से च्युत होकर ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त हो जाता है। वहां वह नरक को प्राप्त होकर वर्ण से भ्रष्ट होकर और ब्रह्मलोक से भी परिभ्रष्ट होकर शूद्र योनि में उत्पन्न होता है।"

इस प्रकार कर्म द्वारा योनि परिवर्त्तन, या जन्म परिवर्त्तन में वर्णपरिवर्त्तन के सिद्धान्त के मर्म को खोला गया है। परन्तु तिस पर भी कर्म को ही अधिक प्रधानता दी गई है, और वही कर्म ब्रह्मयोनि में उत्पन्न हुये ब्राह्मण को ब्राह्मणता से भ्रष्ट कर सकता है। इस के अनन्तर शूद्र के साथ बहुत घृणा दिखलाई है यहां तक कि शूद्र का अन्न ब्राह्मण को शूद्र बना + सकता है। परन्तु इस के अनन्तर नीच वर्णों को एक ही जन्म में उच्चवर्ण प्राप्त करने का प्रकार भी बताया है कि, दो ÷ काल अग्निहोत्र करता हुआ गौ और ब्राह्मण के हित के लिये रण में वीरता

स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ॥
स्वधर्मात् प्रच्युतो विप्र स्ततः शूद्रतामियात् ॥ १७ ॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ॥
ब्रह्मलोकात् परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ प्रजायते ॥ १८ ॥

+ तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ॥
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्त्यत्र विचारणा ॥ २६ ॥

÷ द्विकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधिः ॥
गो ब्राह्मण हितार्थाय रणे चाभिमुखोहतः ॥ ५० ॥
त्रेताग्नि मन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजोभवेत् ॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संस्कृतो वेदपारगः ॥ ५१ ॥

से प्राण देकर अग्नि मन्त्र से पवित्र होकर द्विज होता है। ज्ञान विज्ञान से युक्त संस्कारों से संस्कृत वेदों का विद्वान् वैश्य भी अपने कर्म से क्षत्रिय हो जाता है। हे देवि ! इन कर्म फलों से न्यून जाति और न्यून कुल में पैदा हुवा हुवा शूद्र भी आगम (शास्त्र) से युक्त होकर संस्कार से संस्कृत होकर द्विज हो जाता है, और ब्राह्मण भी असदाचारी सर्व नीचों से भोजन करने वाला अपनी ब्राह्मणता को छोड़ शूद्र हो जाता है। हे देवि ! शुद्ध कर्मों से शुद्धात्मा जितेन्द्रिय शूद्र भी द्विज की तरह सेवा करने योग्य है। ऐसा स्वयं ब्रह्माने कहा है। स्वाभाविक कर्म से ही जहां शूद्र भी अन्य वर्णों से उच्च हो जाता है वहां शूद्र ब्राह्मणों से शुद्ध जानना चाहिये यह मेरा मत है। ब्राह्मणता का कारण न योनि है न संस्कार और न श्रुति है न सन्तति परन्तु सदाचार ही कारण है। लोक में यह सब ब्राह्मण वृत्ति के कारण ही ब्राह्मण बनाए जाते हैं इसी प्रकार सदाचार में स्थिर शूद्र भी ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। जन्म, दान, और आदान और कर्मों से शूद्र द्विज

वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा।
एतैः कर्मफलैः देवि न्यून जाति कुलोद्भवः ॥ ५२ ॥
शूद्रोप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः।
ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकर भोजनः ॥ ५३ ॥
सब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः।
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥ ५४ ॥
शूद्रोपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत् स्वयम्।
स्वभाव कर्मणाचैव यत्र शूद्रोधितिष्ठति ॥ ५५ ॥
विशुद्धः स द्विजातीयेभ्यो विज्ञेय इति मेमतिः।
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुति र्न च संस्थितिः ॥ ५६ ॥
कारणानि द्विजत्वस्य वृतमेवतु कारणम्।
सर्वोयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥ ५७ ॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोपि ब्राह्मणत्वं स गच्छति।

किसप्रकार हो जाता है, धर्म से च्युत होकर ब्राह्मण शूद्र कैसे होजाता है यह गुह्य रहस्य मैने तुम्हें कहा"+ ।

* सदाचारी ही की पुष्टि में मार्कण्डेय पुराण भी ऐसा ही कहता है।

"ब्राह्मण की ब्राह्मणता इतनी ही है कि वह अपने सत्य का परिपालन करे। दक्षिणा वाले यज्ञों से वा अन्य किसी कर्म से ब्राह्मण इतना पुण्य नहीं पाते जितना सत्य परिपालन से।

इसी प्रकार देवी भागवत पुराण में भी गुण हीन ब्राह्मण को किसी प्रकार का भी उच्च पद देने की अनुमति नहीं प्रकाशित की । प्रत्युत संस्कार हीन, गुण-हीन, ज्ञानहीन जाति से ब्राह्मण को भी शूद्र ही कहा है। राजधर्म के बन्धन भी ऐसे शूद्र सदृश ब्राह्मण के लिये वे ही हैं जो जाति शूद्र के लिय हैं। तृतीय स्कन्ध में देवदत्त ब्राह्मण की कथा लिखते हुवे देवीभागवत कहता है कि मूर्खपुत्र की अपेक्षा पुत्र के न होने को ही वेद के जानने वाले अच्छा समझते हैं। तथापि ब्राह्मण होकर मूर्ख हो तो सभी से अधिक निन्दा योग्य है।

पशु और शूद्र की तरह मूर्ख ब्राह्मण भी किसी काम का अधिकारी नहीं। हे द्विज सत्तम ! मुझे मूर्ख पुत्र से क्या लेना है ? जिस प्रकार का शूद्र है उसी प्रकार का मूर्ख ब्राह्मण है इस में कोई सन्देह नहीं। वह न पूजा के योग्य न दान के योग्य परन्तु सर्वत्र निन्दा के योग्य है। देश में रहते हुवे, वेद से रहित ब्राह्मण पर राजा को कर लगाना चाहिये और शूद्र की तरह समझना चाहिये। पितृ कार्य और देव कार्यों

\+ योनि प्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मृते।
एतेन गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेत् द्विजः॥
ब्राह्मणो वाऽच्युतो धर्मात् यथा शूद्रत्वमाप्नुयात्॥६५॥

ब्रह्मपुराण अ० । २१ ।

* एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्षते।
यावत् पतगजात्यग्र ससत्यपरिपालनम्॥ ४७॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिः तत्प्रसमं प्राप्यते महत्।
कर्मणान्येन वा विप्रैः यत्सत्य परिपालनात्॥ ४८॥

मार्कण्डेय० अ० ३।

में भी फल की वाञ्छा करने वाले मूर्ख ब्राह्मण को आसन पर न बैठाना चाहिये। राजा भी उसको किसी काम में न लगा कर वेद से रहित ब्राह्मण को शूद्र के समान समझ कर किसान बना देवे। बिना विप्र के खाली कुशासन धर के श्राद्ध कर लेना अच्छा है परन्तु मूर्ख ब्राह्मण से कभी श्राद्ध न कराना चाहिये। उस राजा के राज्य को धिक्कार है जिस में मूर्ख लोग रहते हैं और मूर्ख ब्राह्मण दान मान से पूजित होते हैं + ।

इस उपरोक्त उद्धरण से कर्म की ही प्रधानता प्रतीत होती है। कर्म की ही प्रधानता को देवी भागवत में दशवें स्कन्ध में गाया है। सावित्री की कथा:—

"कर्म ही से जन्तु पैदा होता है और कर्म ही मे लीन होता है। सुख दुःख भय शोक कर्म ही के बनाये बनते हैं कर्म से इन्द्र होता है और जीव कर्म से ही ब्रह्म पुत्र होता है अपने कर्म से ही हरि का दास और कर्म से ही जन्मादि रहित होता है। कर्म ही से विष्णु देव मनु और राजेन्द्र शिव गणेश मुनीन्द्र और तपस्वी बनता है। अपने कर्म से ही क्षत्रिय म्लेच्छ वैश्य बनता है। कर्म से राक्षस

\+ मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेद विदोविदुः ।
तथापि ब्राह्मणोमूर्खः सर्वेषां निन्द्यएवहि ॥ ३१ ॥
पशुवत शूद्रवच्चैव न योग्यःसर्वकर्मसु ।
किंकरोमिहमूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम ! ॥ ३२ ॥
यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्रसंशयः ।
न पूजार्हन्नदानार्हो निन्द्यश्च सर्वकर्मसु ॥ ३३ ॥
देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः ।
करदः शूद्रवच्चैव मन्तव्यःस च भभुजा ॥ ३४ ॥
नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः ।
मूर्खः समुपवेश्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता ॥ ३५ ॥
राज्ञा शूद्रसमोज्ञेयो न योग्यः सर्वकर्मसु ॥
कर्षकस्तु द्विजः कार्योब्राह्मणो वेदवर्जितः ॥ ३६ ॥
विना विप्रेण कर्त्तव्यं श्राद्धं कुशकटेनवै ।
नतु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन ॥ ३७
धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधाजनाः ।
पूज्यन्ते ब्राह्मणा मुर्खाः दानमानादिकैरपि ॥ ३८

दे० भा० पु० स्कं० ३ अ० १० ॥

किन्नर योनि मिलती हैं। स्थावर जंगम कृमि कीटादि योनियां भी कर्म से ही होती हैं+।"

"चारों वर्ण अपने कर्म में लगे हुये शुभ कर्म के भोगी होते हैं।"

ब्राह्मण का अधः पतन

आश्चर्य है कि पुराणकारों के कर्म का इतना पक्षपात करते हुवे भी उन के अनुयायी कर्म को सर्वथा मुख्यता न देकर सब प्रकार के ब्राह्मण के गुणों को त्याग कर भोजन पाक तथा म्लेच्छसेवादि नीच कर्मों को करते हुवे भी अपने ब्राह्मणपने का मिथ्या अभिमान करते हैं इसी स्कन्ध में पुराण कहता है कि:—

"म्लेच्छ की सेवा करने वाला, मसी से आजीविका करने वाला, जो ब्राह्मण भारतवर्ष में है वह अपने शरीर के रोमों की संख्या के बराबर इतने वर्षों तक मसी कुण्ड में दुःख पाता है। फिर यमदूतों से पिट कर तीन जन्मों के बाद काले जन्म का पशु, फिर तीन जन्मों के बाद काले रंग का बकरा बनता, फिर ताड़का वृक्ष बनता है *

पतित विप्र

जो शूद्र के सदृश भोजन पकाकर अपनी आजीविका करता है वह सूपकार कहलाता है। और वह सन्ध्या वन्दन से रहित और प्रमाद से युक्त होकर पतित कहलाता है"+।

\+ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रलीयते॥ १७॥
कर्मणोग्रः भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा हरिर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥ १८॥
सुरत्वं च मनुष्यंच राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः।
कर्मणा च शिवत्वंच गणेशत्वं तथैव च॥ १९॥
कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वञ्च कर्मणा।
स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥ २१॥
कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्रसंशयः।
(दे० भा० स्कं० ९ अ० २७) इत्यादि सम्पूर्ण अध्याय।
स्वधर्मनिरताएव वर्णाश्रमचार एव च।
भयस्यैव शुभस्यैव कर्मणः फलभोगिनः॥ ३८॥
(दे० भा० स्कं० ९ अ० २८)

* म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रोभारतेभुवि
वसेत् स्वलोममानाब्दं मसिकुण्डे स दुःखभाक्॥ ४॥
ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजीतत्रतिष्ठति।
ततः त्रिजन्मनि भवेत् कृष्णवर्णः पशुः सहि॥ ५॥
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णः त्रिजन्मनि।
ततः स ताल वृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ६॥
दे० भा० स्कं० ९ अ० ३३।

\+ शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः।
सन्ध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः॥ ९०॥

'शूद्रा के साथ गमन करने वाला ब्राह्मण वृषलीपति होता है। वह ब्राह्मण जाति से भ्रष्ट होकर चाण्डाल से भी नीचा कहलाता है, उसका दिया पिण्ड मल के सदृश और उसका किया तर्पण मूत्र के सदृश होता है' * ।

सब से अधिक वर्णव्यवस्था निर्णय भविष्यपुराणकर्त्ता ने किया है। क्योंकि यह रचना एक शाकद्वीपी ब्राह्मण की है और वहां के ही देवता सूर्य भगवान् की उपासना को बहुत महात्म्य मानते तथा उसके उपासक भोजकों को बड़े आदर से देखते हैं।

स्कन्द शिवजी का पुत्र है परन्तु तारकासुर के बहुत उच्छृंखल होजाने पर देवताओं की प्रार्थना को शम्भुने स्वीकार किया और तदनुसार शिव पार्वती का विवाह होगया। शिव पार्वती के एकान्त रहस्य काल में देवताओं ने विघ्न कर दिया। ऐसे अवसर पर शिवजी का अमोघ वीर्य पार्वती धारण न कर सकीं प्रत्युत अमोघ होने से वह सब अग्नि को अपने मुख में ही धारण करना पड़ा। देवता अग्नि मुख होते हैं अतः वह शिव का तेज सभी देवताओं में बंटगया। काल पूर्ण होने पर सभी देवताओं के पेट में गर्भ हुआ और पीड़ा प्रारम्भ हुवी इस पर ब्रह्मा के कथनानुसार शरवण में सब ने प्रसव किया। कृत्तिका माताओं ने उन सब खण्डों को जोड़ कर षण्मुख स्कन्द की रचना की इस प्रकार यह कार्त्तिकेयस्कन्द कहलाया। अब संदेह यह उत्पन्न होता है कि स्कन्द पूजनीय है कि नहीं? यदि योनि श्रेष्ठता में कारण हो तो शूद्र देवोंके पेटसे भी वह पैदा हुवा अतः वह पूज्य नहीं, इसी शंकाका समाधान करने के लिये भविष्य ने कतिपय अध्यायों में बहुत विशदता से जन्म से वर्णव्यवस्था वादियों का मुखमर्दन किया है जिस को हम भी विस्तार से उद्धृत करते हैं। (देखो भविष्यपुराण अ० ४०)

* यदि शूद्रां व्रजेद् विप्रो वृषली पतिरेव सः।
स भ्रष्टोविप्रजातेश्च चाण्डालात् सोधमः स्मृतः ॥ ७२ ॥
विष्ठासमश्च तत् पिण्डो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥ ७३ ॥
दे० भा० स्क ११ अ २४।

शतानीक प्रश्न:—"कार्तिकषष्ठीव्रत निःसन्देह बहुत कठिन है परन्तु हृदय में कार्तिकेय का जन्म सुन कर बहुत संशय उठता है कि अनेकों से उत्पन्न कार्तिकेय का इतना बड़ा महात्म्य किस प्रकार हो सकता है। हे वीर सुमन्तु! कार्तिकेय को देख कर संशय होता है कि जाति श्रेष्ठ होती है कि कर्म श्रेष्ठ होता है कर्म और जन्म में जो बड़ा हो उसी को इस प्रकार कहो जिससे संशय न हो।

सुमन्तु उवाच:—

यही बात ऋषियों ने पुराकाल में ब्रह्मा से पूछी थी उस ने जो कहा था सो कहता हूं। विश्वामित्र की ब्राह्मणता को देख कर ऋषियों ने ब्रह्मा से प्रश्न किया था कि हे ब्रह्मन्! आदि कल्प में ब्राह्मणता का जो स्वरूप था सो कहो, जाति अध्ययन देह और आत्मा का संस्कार, आचार और कर्म, इन्हों का ही बाहर और अन्दर का समान्य विशेष धर्म यदि कृत्रिम हैं और मन वाणी कर्म शरीर तथा इन के जाति गुण, द्रव्यगुण स्वरूप कुछ अव्यक्त वस्तु जति भेद में कारण हैं तो ये तो अनुमानादि से कभी निर्णीत नहीं। यदि अव्यक्त आगम से जाति भेद सिद्ध है तो इससे भी आपकी बुद्धि का बल पुष्ट नहीं होता। इस पर ब्रह्मा बोले:—जैसा आपने कहा सच है। सुनो योगेश्वर का वाक्य जो उसने तर्कसहित अपने शिष्य के काम के लिये कहा:—

योगेश्वर बोले:—यदि पुरुष में ही ब्राह्मणतादिक जाति भी रहती हैं क्योंकि दो वर्णों में भी जातिभेद दीखता ही है तो यह ठीक नहीं। गौओं के समूह में गया हुवा जिस प्रकार घोड़े को बुद्धिमान लोग अपनी बहुदर्शिता से पहचान लेते हैं इसी प्रकार द्विज को शूद्रों से पृथक् नहीं किया जासकता क्योंकि उन सब में मनुष्यत्व यही सामान्य जाति है। मनुष्य जाति से परे कोई दूसरा धर्म नहीं जो सब में जाति रूप से रहे। संस्कारों सहित की गयी क्रिया ब्राह्मणों को शूद्र से पृथक् करने में विशेष कारण है।

जिन तत्व को न जानने वालों ने जीव को ब्राह्मण मान रखा है वे भी ठीक नहीं कहते क्योंकि विरुद्ध संग करने में ब्राह्मणता से आत्मा भ्रष्ट होजाता है यही जीव जरा जन्मन्तार के क्लेश रूप दुष्ट ग्राहों के भय से भी नर तिर्यग् सत् और शूद्र योनि आदि दुख तरंगों से भीषण, निकलता, रोग शोक दुःखादि से

युक्त जनसमूहमय भंवरों से भरा हुआ, कुत्ता, सूअर, चाण्डाल कीट कच्छू आदि से युक्त घोर संसार सागर में मग्न होकर भटकता हुवा बहुत पापों के भार से दबा हुवा यह जीव ब्राह्मण किस प्रकार होसकता है।

ब्रह्मा बोले——हे ऋषियों ! सात व्याधकी कथा मनु ने भी कही है, कि जाति का मद सर्वथा छोड़दो दशार्ण स्थान पर वही सातव्याध कालिंजरपहाड़ में सात मृग बने और सरिद्वीप में चकवे और मानस में हंस और कुरुक्षेत्र में फिर वेदज्ञ ब्राह्मण बने तुम्हें तो अभी बहुत राह चलनी है अभी क्यों घबड़ा गये इस से जीव में ब्राह्मणता नहीं रहती है।

(३) जिस प्रकार हाथी, घोड़ा, बकरा, ऊंठ गधा आदिकों की शरीर रंग आदि धर्मों से जाति स्पष्ट प्रतीत होती है। इसी प्रकार शस्त्रादि वाले भार्गव जाति से युक्त ब्राह्मण हैं। इसप्रकार भी ब्राह्मण जाति मनुष्यों में कोई उपलब्ध नहीं होती। क्योंकि उसके भी उपभेद हो ही सकते हैं।

(४) श्वेत पीतादि वर्णों से भी जाति प्रतीत नहीं होती, क्योंकि ये भी अनिर्णय ही है, इससे वर्ण भेद भी सनातन नहीं।

यह ब्राह्मणता नित्य नहीं क्योंकि बनावटी है बनाई गई है। समयकी अपेक्षा करके इसमें अकृत्रिमता आ जाती है। पुण्यलेश विशेष होने से बनिये और वैद्य आदि जातियों के सदृश ही ब्राह्मणता आदि जातियें भी सांकेतिक अर्थावगम ही के लिये है। पुण्य को छोड़ने वाले ब्राह्मण कैसे। लोक की रक्षा न करने वाले क्षत्रिय कैसे, अपने वाणिज्य व्यापार को छोड़ने वाला वैश्य कैसा, और अपनी मुख्य क्रिया को त्याग करने वाला शूद्र भी कैसे हो सकता है। इस से गाय घोड़े की तरह कोई जाति भेद नहीं है, कार्य सामर्थ्य को निमित रखकर ही ब्राह्मणादि संकेत सब कृत्रिम है।

इसप्रकार शास्त्रोक्त न्याय अनुकूल मार्ग से भ्रष्ट हुए २ विशेष गोत्रसंस्कार आदि से युक्त होकर भी वेदों को श्रुति क्रम से पढ़ और पढ़ाते हुए भी दुराचारी ब्राह्मण ब्राह्मणता से भ्रष्ट होजाते हैं, इस से एक स्थान में स्थित कोई ब्राह्मणादि जाति नहीं है। क्योंकि मनु भी कहते हैं:—'मांस लाख

लवण और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है। पशु पालने वाले व्यापार करने वाले तथा कारु और कुशील, दास और महाजनों के पेशे वाले सबको मनु ने शूद्र ही कहा है। शूद्र ब्राह्मण और क्षत्रिय बनजाता है क्षत्रिय ब्राह्मण और वैश्य भी बन जाता है। इति चत्वारिंशोऽध्याय: ।।

(५) फिर ब्रह्मा बोले:— वेद का अध्ययन करना ही ब्राह्मणता समझी जाती है । परन्तु यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण के सदृश वैश्य, क्षत्रिय रावणादि राक्षस श्वपच चांडाल दास शिकारी व्याध गवाले धीवर और भी जो वृषल हैं वे भी वेदों को पढ़ते हैं। शूद्र भी दूसरे देश में जाकर ब्राह्मण क्षत्रिय बन जाते हैं। काम और ऊपरका आकार ब्राह्मणादि के सदृश बना लेते हैं। और एक या दो वेद क्रम से पढ़कर शूद्र ब्राह्मण कुल से उत्पन्न कन्या को विवाह लेते हैं । या वेदों को पढ़कर वानर जाति के लोग क्षत्रिय और वैश्यपने को छोड़ कर दाक्षिणात्यगौड़ जाति के बन गये । यदि उनकी शूद्रता का पता न चले तो यथेच्छ ब्राह्मण बनजाते हैं । इससे वेदाध्ययन भी ब्राह्मणता का विशेष चिन्ह नहीं है। और इसी प्रकार न्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले शास्त्रकारों ने भी कहा है । वे सज्जन साधुमत को सुनकर इसी द्वेर नहीं करते, वेद आचार से हीन को पवित्र नहीं करते चाहे उनको छहों अंगो सहित क्यों न पढ़ा जाय । वेदाध्ययन करना तो ब्राह्मणों का शिल्प [पेशा] है ब्राह्मण का लक्षण वृत्त ही कहा है । चारों वेदों को पढ़कर यदि वह सदाचार से नहीं रहता तो उससे कोई प्रयोजन नहीं ।

(६) शिखा, ओंकार, सोलह संस्कार, सन्ध्योपासन, मेखला, दण्ड, मृगचर्म, पवित्री आदि वस्तु शूद्रों में बिना किसी रोक टोक के देखी जाती हैं। इससे भी मनुष्यों में कोई विलक्षण चिन्ह नहीं है । यदि यज्ञोपवीत संस्कार मेखला चोटी आदि तथा आभिचारिकमन्त्रों के साथ दुर्लभ भाषण वर शापादि ये भी यदि ब्राह्मण ही का सामर्थ्य हो तो अब किसने नाश कर-दिए, तप और सत्य आदि के माहात्म्य से देवतादि का प्रसाद तथा मनुष्यों को मन्त्र शक्ति सभी को प्राप्त हो जाती है । कटु भाषी की बात भी लोग मान ही लेते हैं इससे यह भी कोई विप्रता का चिन्ह नहीं है । इससे शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है ।

(७) शाप और अनुग्रह करना भी ब्राह्मण में कोई विशेष शक्ति नहीं मानी जासकती। चोर उचक्के तथा राजा और डाकू आदि से लोगों के दुःखित और और पीड़ित होने पर अपने दुख का उपाय और अपने इष्टों की रक्षा जिस प्रकार शूद्र नहीं कर सकते उसी प्रकार ब्राह्मण भी नहीं कर सकते, यह शक्ति इस कलि काल में और इस भारत भूमि में किसी कुकार्यकारी ब्राह्मण में भी पैदा नहीं हो सकती किसी अन्य काल और देश में सब जन संख्या से बढ़कर ऊंची श्रेणी के मनुष्यों में भले ही हो। कोई लोग ब्राह्मणता का चिन्ह इस को ही समझते हैं। संसार में रत चित मोहान्धकार से आवृत कुमार्ग में प्रवृत्त गढ़ों में गिर जाते हैं जैसे आग में पतंगा।

(८) जाति धर्म या वेद संगति से कुछ और ही विशेषता जो शूद्रों में नहीं दीखती पर ब्राह्मण जातियों में दीखती है। या संस्कार और जन्म योनि से उत्पन्न होने वाला या विशेष सामग्री से उत्पन्न होने वाला कोई ब्राह्मणों में सामान्य गुण हो जो उन में शूद्रों से अधिकता रखता है इस प्रकार पण्डित लोग पांच प्रकार से कल्पना करते है। परन्तु यह ठीक नहीं।

जाति से उत्पन्न या वेद से उत्पन्न कोई विशेष धर्म नहीं है क्योंकि इस में प्रमाण ही बाधक है। सनातन आत्मा का क्रमाक्रम क्रिया भी नहीं बनती। अपने अन्तःकरण की वृति में स्थित श्रुति के योग से जो विशेष उत्पन्न होता है। उस के अन्तःकरण स्वयं ही जानता है उसे और बाहर का कोई अन्य व्यक्ति नहीं जान सकता।

(९) यदि विशिष्टाध्ययन से ही ब्राह्मणता में कोई विशेषता हो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि ब्रह्म (वेद) की संगति इस प्रकार से कृत्रिम (बनावटी) है। जिसका अन्य भी आश्रय हो ही सकता है।

(१०) ब्राह्मणता कहो तुम को दृष्ट रूप स्वीकार है या अदृष्ट रूप आप दृश्यरूप ही मान सकते हैं इससे दूसरा आप मान ही नहीं सकते।

(११) शूद्रादि के पास सामग्री न होने से ब्राह्मणों के देह में अवश्य विशेषता है इसी ब्राह्मणों की आत्मा में पुण्य तथा शूद्रों में पाप है। यह कहना भी

उचित नहीं क्योंकि समाग्री बना लेने से समाग्री पूर्ण हुवे शूद्र भी द्विजों के बराबर हो जाते हैं। इस से केवल शूद्र और द्विज इन दोनों नामों में ही विशेषता रह जाती है। और आध्यात्मिक और बाह्य निमित्त वाली विशेषता कोई नहीं।

(१२) यदि संस्कार से यह विशेषता है तब वह सभी संस्कृत पुरुष में हो सकती है। जैसे विप्र गणों में मुख्य व्यसादिकों में कम ~~मह~~ बराबर नहीं।

इस से जाति आदि ये असंभव होने से जाति के कृत्रिम होने से और अध्ययन से विशेष संस्कार न होने से, शरीर के भौतिक होने से। ब्राह्मणादि जाति नहीं बन सकती।

(१३) नास्तिक म्लेच्छ यवनादि लोगों में भी वेदोक्त मार्ग से पृथक् दुष्ट चरित लोगों में भी चोर डाकू आदिकों में भी धर्म के कारण विशेषता प्रतीत होती है। इससे वह विशेषता ब्राह्मणों में जाति आदि से उत्पन्न होने वाली नहीं है।

(१४) इस लिये न बाहर न अन्दर, न सुख में न ऐश्वर्य में। न आज्ञा में न भय में, न वीर्य में न आकार में, न आखों में न क्रिया में, न आयु में न शरीर में, न पुष्टता में न दुर्बलता में, न स्थिरता में न चपलता में, न प्रज्ञा में न वैराग्य में, न धर्म में न पराक्रम में, न त्रिवर्ग में न निपुणता में, न रूप में न औषध में, न स्त्रीगर्भ में स्त्रीगमन में, न देह के मलमूत्रादि में न अस्थियों के छिद्रों में, न प्रेम में, न प्रमाण (कद) में कहीं भी ब्राह्मण और शूद्रों में रहने वाली विशेषता बहुत प्रयत्न से भी ढूंढने पर नहीं मिलती, सब धर्मों में भी कोई विशेषता देवता लोग भी न पासके यह बात अकाट्य है। ब्राह्मण चांद की किरण के सदृश श्वेत नहीं होते। क्षत्रिय ढाक के फूल के सदृश लाल नहीं होते, वैश्य हड़ताल के सदृश पीले नहीं होते, शूद्र कोयले के सदृश काले नहीं होते। पैर, गति, देह वर्ण, केश, सुख दुःख, रक्त त्वचा मांस मज्जा रस इन सब में समान होते हुवे भी ४ भेद किस प्रकार होते हैं। वर्ण प्रमाण आकार गर्भवास वाणी बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, जीवन, बल तीनवर्ग, रोग, औषध इत्यादिकों में जाति के

कारण कोई विशेषता नहीं है। जब प्रजापति ही सबका एक मात्र पिता है। तब जातिकृत भेद ही किसप्रकार हो सकता है। इसको युक्तियों और तर्कों से परे करने पर सिद्धान्त ही बिगड़ जायगा। चार पुत्र एक ही पिता के हैं तो उनकी एक ही जाति है। इसीप्रकार सबप्रजाओं का एकही परमात्मा पिता होनेसे जातिभेद नहीं है। जिस प्रकार गूलर एक वृक्ष की जाति से कोई फल आगे कोई पीछे और मध्य में उत्पन्न हों और वर्ण आकार स्पर्श और रस में समान ही हों उसी प्रकार सब को एक जाति समझना चाहिये। कौशिक का शाप, गौतम, कौण्डिन्य, माण्डव्य, वासिष्ठ आत्रेय कौत्स, आंगिरस, मौद्गल्य कात्यायन, भार्गव, आदि नाना प्रकार के गोत्र और नाना प्रकार की जातियें आपस में भाई पुत्र वधू आदि सम्बन्धों से उत्पन्न होकर परस्पर सम्बन्धी बनने पर उनका वर्ण भेद नहीं होता प्रत्युत यह भेद केवल उनका शिल्प (पेशा) मात्र है।

(१५) कोई पण्डित लोग देह को ब्राह्मण मानते हैं उनकी आंख का तिमिर रोग हटा कर उन पर दया करके न्यायरूप अंजन और दिव्यौषधों से उनको नये सिरे से चक्षु देते हैं। ब्रह्म देह मूर्तिमान न होने से नाश वाला है जैसे अन्य प्राणियों का देह। इसी प्रकार उनका एक २ अवयव भी ब्राह्मण नहीं होसकता। अनेक अवयवों का समूह भी ब्राह्मण नहीं हो सकता क्योंकि सभी का देह पृथिवी अप, तेज वायु आकाश से बना होने के कारण सभी प्राणियों का देह ब्राह्मण होजायगा। जो तत्त्व को न जानने वाले देह में ब्राह्मणता मानते हैं, उन संस्कार करने वालों के शरीर में भी बहुत खोज करने पर भी ब्राह्मणता नहीं पाई जाती। इससे न तो देह में ब्राह्मणता है और न देह स्वरूप ब्राह्मणता है। देह को ब्राह्मण। मानने पर नीच वर्ण चाण्डाल श्वपच इत्यादिकों के भी देह सामान्य होने से ब्राह्मण होजायंगे।

इति भविष्य एकचत्वारिंशोऽध्यायः।

(१६) सदाचार और योग से युक्त महापुरुषों ने जो कुछ सुभाषित कहा सो भी सुनो। कर्मों से बद्ध जन्तु बहुत से वनस्पति शंख, भौंरा हाथी आदि जाति में पड़ कर नट की तरह अज्ञान में नाचा करता है रूप ऐश्वर्य, ज्ञान, कुल तथा सम्पत्तियों के कवच में लिपट कर भी यदि तू धर्म पथ को छोड़ता है, जाति कुल रूप वा वर्ण अनेक विद्या आदि के मद में अन्ध हुवे परलोक और इहलोक दोनों में हित को नहीं देखते हैं। संसार के परिवर्तन में करोड़ों जातियों में ऊंच नीच

को जानकर कौन विद्वान् अपने जन्म का मद करे। कर्म के वश होकर ही जन्तु नाना प्रकार की जातियों में उत्पन्न होता है। वैसी शाश्वत जाति कोई किसी की नहीं।

(१७) जो विद्वानों की सभा में यह कहे कि ब्राह्मण संस्कार से होता है, न्याय को जानने वाले उसका इस प्रकार विरोध करेंगे। कि गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तो अयन, जातकर्म, नाम, तथा अन्नप्राशन, चूडा, उपनय, व्रत आदेश समावर्तन विवाह इत्यादि संस्कारों से जिन का संस्कार किया गया है वे ही ब्राह्मण हुवे और शेष नीच लोग नहीं, क्योंकि संस्कारों से युक्त ब्राह्मणों से उत्पन्न भी ब्राह्मण ही हैं यह ठीक नहीं, क्योंकि आयु शक्ति कान्ति आदि कुछ विशेष नहीं झलकता। और एक ही गात्र से उत्पन्न हुवे दो संस्कृत और असंस्कृत भ्राताओं की इष्ट प्राप्ति और अनिष्टाप्राप्ति में भी कोई भेद नहीं प्रतीत होता, ज्ञान अध्ययन मीमांसा नियम इन्द्रिय निग्रह इत्यादिकों से संस्कार के न होने पर भी मनुष्य शूद्र से भिन्न नहीं। वेश्या और सर्प के सदृश ममूयें आये पुरुष सदाचार से भ्रष्ट होकर ब्राह्मणता से गिर पड़ते हैं। संस्कार को लेकर भी दुराचार करने वाला मनुष्य नरक को जाता है। निःसंस्कार भी सदाचारी पुरुष सदा विप्रोत्तम है। आचार को रख कर ही व्यासादि मुनि जन गर्भाधानादि संस्कारों के न होने पर भी विप्रोत्तम बने। लक्ष्मी को प्राप्त हुवे और सबने उनके आगे सिर झुकाया। व्यास धींवरी से, पराशर भंगन से, शुक शुकी से, कणाद उल्लुनी से, ऋषिशृंग, हरिणी से, वसिष्ठ वेश्या से, मन्दपाल मुनि कैवटन से, माण्डव्य मंडूकी से, और और भी कितने ही सब द्विज बन गये। सदाचारियों के पूज्य वचनों को विचार कर तदनुकूलाचरण करके हरिणी के पेट से पैदा हुवा ऋष्यशृंग महामुनि तप से ब्राह्मण हुवा इस में संस्कार कारण है। व्यास का पिता भंगन से पैदा होकर तप से ब्राह्मण हुवा। इत्यादि पूर्वोक्त सभी तपस्वियों की राम कहानी है। देह के संस्कार होने पर भी लोग महापातकि हुवे क्योंकि उनकी ब्राह्मणता नष्ट होजाती है। इससे ये सब सांकेतिक हैं।

इतिभविष्ये चत्वारिंशोऽध्यायः।

(१८) ब्रह्मा बोले:—

हे ऋषियो! आपतो मन्त्रों के जानने वाले हो, आप से ही पूछता हूं कि संस्कार किसका किया जाता है? क्या देह का संस्कार होता है? जिस देह से यह स्वभाव

मलिन, शुक्र शोणित से पैदा हुवा, गन्दगी से पैदा हुवे कीट के सदृश है। कोई लोग इस देह का ही गर्भाधान से लेकर श्मशान तक संस्कारों से संस्कार मानते हैं। अब उन के पक्ष पर भी मैं दूषण देता हूं। वैदिक संस्कारों के सारभूत विप्र भी आजकल सब काम करने वाले वृषलों से भी बढ़कर हैं। चण्डकर्मा विकर्म में स्थित ब्रह्मघाती गुरुशय्या शायी, चोर गोघाती, सुरापायी परदारागामी, मिथ्यावादी दंमन, नास्तिक वेदनिन्दक ग्रामयाजक निषिद्धाचार सेवी चोर उचक्का धूर्त नट शठ पापी सर्वभक्षी सर्वविक्रयी इत्यादि जो इन काय के पापों से पापी ब्राह्मणाधम सैकड़ों यज्ञ करके शुद्ध होजाते हैं। जो ही पाप या पातक शूद्रों में पाये जाते हैं वे ही ब्राह्मणों में पाये ही जाते हैं इस से मन्त्र अग्निहोत्र या वेदिपर पशुवध ये विप्रता में कोई हेतु नहीं। क्योंकि ये क्रियाएं तो शूद्रों में भी हो सकती है। जो जन्तु कर्म के वन्धनों से बंधे हुवे संसार की अग्नि से संतप्त और विकलचित होकर दुःखित होते हैं वे ही जन्मभर की अन्धकार मय बनमाला में सुखामृत को पीना चाहते हैं फिर भी कृपण (कंजूसों) के पीछे मारे २ फिरते हुवे सुख नहीं पाते चारों वर्णों के नर अबअत्यन्त निर्वल हैं अतः वे सब ही अब अपने में धर्मसाङ्कर्य को देख रहे हैं। इससे शूद्र और विप्रादि जन्म से या योनि से भिन्न नहीं है। इस से संस्कार के सभी धर्मों में समान होने से संस्कारादि निरर्थक हैं। संस्कार का होना विधवापना, वियोग मरण असेव्यसेवनादि सभी शूद्र और विप्रो में समान हैं।

(१९) ब्रह्मा आगे वर्त्तमान ब्राह्मणों के नीच कर्मों को लिखते हुवे लिखते हैं वे ब्राह्मण जो वेद वाद को पढ़ते हुवे प्राणिहिंसा की प्रशंसा करते हुवे, कपट से धन कमाते हुवे वेदों को बेचते हुवे अधम मायावीमत्सर ग्रस्त लोभी मोही मत्त, चाटुकार कपटी क्रूर कदर्य कलह प्रिय, वाचाट, दुष्ट कुल २ में घूमने वाले भाट के साथ घूमने वाले भांडों की पूजा के पात्र गुस्से वाले लुटेरे भाटों के सदृश आजीविका करने वाले, न बेंचने योग्य वस्तुओं को बेंचने वाले, अभक्ष्य द्रव्य को खाने वाले, शूद्रों के कामों को करने वाले, तपोहीन नराधम सेवा अध्यापन किसामी आदि कार्यों में फंसे पतितों से भी धनधान्यादि संपत्तियें लेते हुवे पृथिवी पर किस प्रकार होसकते हैं।

जो घोड़े गधे और बैलों के जातिभेदके सदृश वर्णों में भेद मानते है, उनका पारिहार करने के लिऐ ब्रह्मा जी कहते हैं।

दुःशीलता और दुर्मनस्कता से तुल्यजाति के बन्धन होने ही से शूद्रा कामिनि को भी विप्र ब्राह्मण उपभोग करता है। कामदुःख की निवृत्ति होनेपर वह कामिनि गर्भ धारण भी करती है कामातुरा उच्च कुल की स्त्रियों को शूद्र भी अच्छे लगते हैं और वे भी परस्पर संग करते हैं। परन्तु जो जाति आदि से भिन्न गाय, घोड़ा, ऊंट, हाथी हैं वे विभिन्न जातियों में सुखार्थी होकर भी गर्भ को धारण नहीं करते बैल गायके साथ और घोड़ा घोड़ी के साथही संग करता है। इसी तरह से ऊंठ ऊंटनी से और हाथी हथनी से सुखोपभोग करता है। परन्तु मनुष्य तिर्यग् योनियों से मैथुन करके भी उसको गर्भ नहीं धारण करा सकता। इसी प्रकार मनुष्य स्त्री भी तिर्यग्योनि से संग करके भी गर्भ धारण नहीं कर सकती। इससे तिर्यग् योनि और मनुष्य योनि का मैथुन ही असंगत है। परन्तु मनुष्य स्त्री के संग में कोई ऐसा नियम नहीं जिससे शूद्र और ब्राह्मण का भेद साफ् २ प्रतीत होवे।

इससे यह मनुष्यों का भेद संकेत मात्र के आधार पर किया गया है। इससे ये जात्यादि कल्पना सब झूटी कल्पना है।

इति व्यवस्थावर्णने चत्वारिंशोऽध्यायः।

(२१) अन्त में ब्रह्मा स्वयं ब्राह्मणादि का लक्षण करते हैं। हेय उपादेय तत्व को जानने वाले, अन्याय मार्ग को छोड़ने वाले, जितेन्द्रिय, सदाचारी, हितैषी, संसार की रक्षा के उपाय सोचने वाले, एकान्त वासी, सुख दुःख में सम, व्रतादिनिष्ठ धार्मिक, पाप से भय खाने वाले, निर्गम निरहंकार, शाश्वत ब्रह्म को जानने वाले, शास्त्रज्ञों को ही स्वयम्भु परमात्मा ने कृतमर्याद ब्राह्मण बनाया। बृहत् होने से ब्रह्मा कहलाता है उसके भक्त लोग ब्राह्मण हैं। ब्रह्मवादी लोग भी फल की प्रशंसा करते हैं। और शम दम, क्षमा, दान, सत्य, शौच, धृति मृदुता ऋजुता तप, धर्म ज्ञान अपिशुनता ब्रह्मचर्य ध्यान आस्तिकता वैराग्य पाप से भीरुता मत्सररहितता, तृष्णा रहितता, गुरुशुश्रुषा मन, वाणी इन्द्रिय का वश, इसप्रकार के आचार को जो करे वही सदा ब्राह्मण है।

इसी प्रकार ब्रह्मा ने जिन को अधिक बल वाला देखा उनको क्षत (नाश) से बचाने वाला देखकर क्षत्रिय बनाया । और जो बल शून्य थे उनको वैश्य बनाया । वे पृथिवी में कीलों और फालों से खोदते और कृषि करते थे और शोक करते हुए उनसे भी निर्बल जो नौकरियों में भागते थे वे शूद्र कहाये। अपने स्वभाव से उत्पन्न वर्णों के अनुसार ही उनके काम भी बंट गये ।

शम, दम, तप क्षमा ऋजुता ज्ञान विज्ञान आदि ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं । शौर्य तेज, धृति, युद्ध में दक्षता तथा न भागना दान और ईश्वरभाव ये क्षत्रिय के स्वाभाविक काम है । कृषि गोरक्षा वाणिज्य ये वैश्य का स्वाभाविक काम है । सेवा ही शूद्र का स्वभाव सिद्धकाम है ।

योग तप दया दान सत्य धर्म श्रवण, घृणाज्ञान विज्ञान आस्तिकता यही ब्राह्मण के चिन्ह हैं जिस के ज्ञानमयी शिखा और तपोमय यज्ञोपवीत है उसकी निष्कलंक ब्राह्मणता है । वह जिस किसी वर्ण में भी होता है वही पाप कर्मों से निवृत्त हो कर ब्राह्मण बनाया जाता है । शील से युक्त शूद्र भी ब्राह्मण से अधिक है ब्राह्मण आचार से हीन होकर शूद्र से भी नीचा है ।

इति चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

इस प्रकार हम ने पाठकों के समक्ष सम्पूर्ण भविष्य के मुख्य चार अध्यायों को संक्षेप से उद्धृत कर दिया । इसका मूल ग्रन्थविस्तार वास्तविक भविष्य में खोल कर देखें और संशय निवृत्त करलेवें । कि किस उदारता से जाति का झूठा बन्धन तोड़कर वास्तविक वर्णव्यवस्था का निर्णय किया है ।

इस विषय के बाद स्वाभाविक शंका यह हृदय में उठती है कि क्या वर्त्तमान में पतितों को शुद्ध करना तथा भ्रष्टों का उद्धार करना किसी शास्त्र से संगत है कि नहीं ? इस के निर्णय के लिये शुद्धिव्यवस्था का अग्रिम प्रकरण देखिये ।

—:०:—

अष्टादश-अध्याय

शुद्धि व्यवस्था

गत अध्याय में वर्ण व्यवस्था का मूल सिद्धान्त तथा तदनुसार पुराण प्रतिपादित वर्णों को जाति मान कर बने हुवे दर्प वालों का दर्पभङ्ग किया जा चुका है। इस में संदेह नहीं कि सब मनुष्यों का अधिकार है कि वे अपनी नीच अवस्था से ऊपर उठने का प्रयत्न करें। ये सत्य है कि शुभकर्मों से उच्चगति और अशुभ कर्मों से नीचगति होती है। संसार में उत्पन्न प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा ने भोग योनि में डालकर कर्म योनि में इसी लिये उत्पन्न किया है कि वह अपनी स्वतन्त्रता से शुभकर्म करके स्वर्ग तथा मोक्ष सुख का भागी बने। जो मनुष्य जाति की इस बड़ी ईश्वरदत्त स्वतन्त्रता का प्रतिरोध करते हैं वे एक प्रकार से परमात्मा के न्यायालय में उसी प्रकार के अपराधी हैं जिस प्रकार यज्ञ करने वाले ऋषियों के यज्ञक्रिया में विघ्न करने वाले राक्षसगण थे। इस से प्रत्येक सत्य धर्मावलम्बी को चाहिये कि वह मनुष्य समाज में रहकर कभी किसी की उन्नति में बाधक न हो प्रत्युत सहानुभूति द्वारा स्वयं भी उन्नत हो और गिरे हुवे को हस्तावलम्ब देवें।

धन विद्या आयु जन्म आदि के मद में आकर मनुष्य अपने सदृश दूसरे मनुष्य को न समझ कर दूसरे से घृणा करता है उस के अधिकारों को दबालेता है और नाना प्रकार की नियन्त्रणाएं बना देता है जिस से जन समाज के निर्बल भागपर सदा ही अत्याचार का प्रकोप रहता है। परन्तु बुद्धिमान सहानुभूती पुरुष प्रेम के रंग में रंगे हुए सबको अपने सदृश समझकर अपने से अधिक गुणशाली और उच्चपदों को विनय पूर्वक अनुकरण करते हैं। और अपने से नीचे लोगों का प्रेम से उद्धार करते हैं इसी सौहार्द और प्रेम ने संस्कारों और प्रायश्चित्त का आविष्कार किया है पापों से मलिन आत्मा प्रायश्चित करके निष्पाप हो जाते है। और संस्कारों में दीक्षित होकर शुभ गुणों से युक्त हो जाते है इस में सन्देह नहीं।

पुराण मत के मानने वाले अपनी जन्म से उच्चता के गर्व में अन्ध हो कर इस प्रकार का आग्रह करते हैं कि नीच वर्णों और अन्त्यज लोगों की शुद्धि नहीं

हो सकती क्योंकि विधाता ने ही उन को नीच बनाया है । उनका अधिकार वेद पढ़ने का नहीं है उन का संस्कार भी सर्वथा वर्जित है । उनके कान में वेद मन्त्र सुनाई पड़ने पर वह दण्डनीय हैं उन के कानों में सिक्का ढलाकर डलवा देना चाहिये । वेद मन्त्रोच्चारण करने पर उन का जिह्वाच्छेद कर लेना चाहिये । इस प्रकार के भयंकर अत्याचार जन्म के मद में आकर मानव समाज का एक भाग दूसरे पर करता रहा है । यह मार्ग किसी प्रकार भी मानव जाति के लिये श्रेयस्कर नहीं है । इस अत्याचार की आज्ञा पुराणकार भी वास्तव में नहीं देते हैं । फिर यह दोष अपने प्राचीन काल के परमकारुणिक ऋषियों पर लगाना एक ज्वलन्त मिथ्या वचन का निदर्शन है इस प्रकार का अत्याचार पशुओं तक पर करने को महापाप कहा है । फिर मनुष्य योनि में परमात्मा के पैदा किये पुत्र पर यह निर्यातना का अकारण कठोर दण्ड सिवाय स्वार्थपरायण शिश्नोदर भोग लिप्त-कुमतिकों के अतिरिक्त कोई भी सत्पुरुष दूसरे को देने को उद्यत नहीं हो सकता ।

गतअध्याय में यहदिखाया जाचुका है कि वेदाध्ययनादि तो राक्षस जाति श्वापचचाण्डलादि में भी सम्भव है । इसी से सम्पूर्ण जन्म धारि मानवों का वेद में अधिकार रहा है यही प्रमाणित है । इस के अतिरिक्त सामान्य बुद्धि से विचार ने पर भी प्रतीत होता है कि पशु पक्षी आदि जो मनुष्य योनि से भी नीच योनि है उन के करणों में वेदमन्त्र की ध्वनि चले जाने पर जब उन के कानों में सिक्का आदि का ढालना संगत नहीं तब उन की अपेक्षा भी अधिक सम्बद्ध मानव जाति के नहीं एक ही संगठित जन समाज के एक भाग का बिना दोष के यह असह्य दण्ड कब न्यायानुसार हो सकता है । परमात्मा परमकरुणा से सब को ज्ञान का अधिकारी समझकर अपने माननीय ज्ञान भण्डार की पुस्तक में आज्ञा देते है कि:—

> यथेमां वाचंकल्याणी मावदानि जनेभ्यः
> ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्रायचार्याय स्वायचारणायच ॥ (यजु. अ. २६, २)

मैं समान भाव से जिस प्रकार के वेद रूपी वाणी को ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए लिये कहता हूं उसी प्रकार शूद्र और वैश्य तथा अपने और अन्त्यज के लिये भी कहता हूं ।

इसी प्रकार यज्ञ में भी सभी का अधिकार है क्योंकि वेद भगवान् आज्ञा देते है "**मग्नहोत्रं पञ्चजनाजुषध्वम्** पांचों जन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा निषाद सभी भाग लेवें। इस प्रकार की उदार वाणी ही प्राचीन ऋषियों के उदार हृदयों में प्रकाशित हो सकती थीं। ये ही उदारता उन को शोभा देती ही है।

आर्यभद्रपुरुषों ने यह शुद्धि कार्य अपने कन्धों पर लिया है कि सभी संकुचित वर्णव्यवस्था को गुण कर्मों से सगठित करके तथा अन्धविश्वास से जमे हुवे जन्म के मिथ्या गर्व को सर्वथा भग्न करके सब की उन्नति का कार्य समान भाव से खोलदें तथा आब्राह्मणनिषाद सभी संस्कृत होकर उन्नति का मार्ग आरोहण करें। इस के लिये वैदिक संस्कार तथा प्रायश्चित द्वारा कृत पापों का मल प्रक्षालन करने का उत्तम साधन महर्षियों ने बतलाया है पुराणकार भी इस को चिरकाल से मानते चले आये हैं इस में सन्देह नहीं। संस्कार से शुद्ध करना बहुत प्राचीन है। इसी से राक्षस जाति तथा वानर जाति इत्यादि नाना जाति प्राचीन काल में भी दीक्षित होकर उच्च ज्ञान तथा यश के भागी होते थे, सभी तपश्चर्या करके वरादि से सम्पन्न होते थे। मध्यकाल में भी कितने ही ऋषि श्याम जातियों के द्वीपान्तर में से शुद्धकर के लाये। जैसा कि भविष्यपुराण में लिखा है।

कश्यप मुनिने देवी चण्डी की उपासना की कि तू संस्कृत भाषा को म्लेच्छ भाषा कर दे और संसार को शीघ्र मोहदे। इसपर देवी प्रसन्न हो गई और कश्यप के चित्त में उसने वास किया वह मुनि फिर मिश्र देश में गया। उसने वहां के सब वासियों को मोहित करके द्विज बना लिया। उन शुद्ध कियों में से १००० हजार द्विज बनाये २००० वैश्य तथा शेष शूद्र बनाये। वह उनको सरस्वती प्रसाद से आर्य देश में लेकर आया। देवी के वरदान से उस आर्य समूह की वृद्धि हुई और सब नर नारी मिलकर ४ करोड़ हो गये। उनके बेटे पोते हो गये। उन सबका स्वामी मुनि कश्यप रहा। उनका १२०वर्ष भारत में राज्य रहा। राजपूताने देशमें ८००० शूद्रों को बसाया। उनका राजापृथु को बनाया। उसका पुत्र मागध हुआ। मुनि उसको ही राजगद्दी देकर चला गया। सूत पौराणिक की यह बात सुनकर शौनक को बहुत हर्ष होगया। शौनक सूत को

नमस्कार करके परमात्म ध्यान में लग गया । फिर चार वर्ष के बाद ऋषि लोग जागे । भविष्य प्रतिसर्गपर्व अ० ६ ॥ (१)

इससे प्रतीत होता है कि शुद्धकरके अन्य जातियों तथा भिभिन्न जातियों को भी द्विज अर्थात् उच्चवर्ण का अधिकारी बनाये जाने का सिद्धान्त ऋषियों के चित्तों में सदा जागरूक रहा है। इस में सन्देह नहीं कि पुराण भी इस सिद्धान्त को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करता है । नहीं तो प्रथम सूत स्वयं ऋषियों को उपदेश देने का अधिकारी किस प्रकार बनता है। द्वितीय ऐसे ज्वलन्त शुद्धि के प्रमाण का इस उज्वलता से उद्धार क्यों करता। यही मिश्रदेश के शुद्धकिये ब्राह्मण शाकद्वीप ब्राह्मण कहलाते हैं।

भविष्य पुराण की इस युक्ति के अनन्तर हम शेष प्रमाण उद्धृत करते हुये स्कन्दपुराण नागरखण्ड के सम्पूर्ण शुद्धि प्रकरण का ज्योंका त्यों उल्लेख करते हैं, जो वैदिक धर्म के अभिमान जीवियों को विशेष रूप से द्रष्टव्य तथा ध्यान देने योग्य है । और उसी प्रकार उस के क्रम से शुद्धि क्रिया का कर्म काण्ड करने से एक अच्छे प्रकार से सम्पूर्ण सनातन धर्माभिमानी आर्यजातिका ह्रास बन्द हो सकता है और प्रतिदिन आन्तरिक प्रेम और संगठन सहित उन्नति होना सम्भव है ।

---

(१) उत्तम संस्कृतभाषां त्वंकुरु म्लेच्छांस्त्वंमाहये शीघ्रम् ॥ १० ॥
तदा प्रसन्ना देवी सा मोमुनेस्तस्य मानसे ॥ ११ ॥
धासंकृत्वा ददौक्षःनंमिश्रदेशेमुनिर्गतः ।
सर्वान्म्लेच्छानमोहयित्वा कृत्वाथतान्द्विजन्मनः ॥ १२ ॥
संख्यादशसहस्रश्च नरवृन्दांद्विजन्मनाम् ॥
द्विसहस्रं स्मृता वैश्याः शेषाशूद्रसुताः स्मृताः ॥ १३ ॥
तैः सार्द्धमार्यदेशे स सरस्वत्याः प्रसादतः ।
अवसद्वै मुनिश्रेष्ठो मुनिकार्यरतः सदा ॥ १४ ॥
तेषामार्यसमूहानां देव्याश्च वरदानतः ।
वृद्धिर्भवनियद्बुला चतुष्कोटिनरास्त्रियः ॥ १५ ॥
तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च तद्भूपःकश्यपोमुनिः ।
विंशोत्तरशतं वर्षं तस्यराज्यंप्रकीर्त्तितम् ॥ १६ ॥
राज्यपुत्रार्यदेशेच शूद्राश्चाष्टसहस्रकाः ।
तेषांभूपश्चार्यपृथु स्तस्माज्जातः स मागधः ॥ १७ ॥
[इत्यादि भविष्य प्रतिसर्गपर्व]

नगरनिवासियों के परस्पर श्राद्धादि भोज तथा खानपानादि के करने तथा हुगग करने के निमित्त बिरादरी में मिला लेने के लिये और सार्वजनिक शुद्धता तथा सदाचार के विश्वासयुक्त प्रमाण उपस्थित करने के निमित्त आवश्यक शुद्धि व्यवस्था के प्रतिपादन करने के लिये स्कन्दपुराण के नागर खण्ड में एक कथा की इस प्रकार की उपपादना है कि:—

एक ब्राह्मण की कुरूपा कन्या हुई, नवयौवन आने पर भी किसी ने उस कन्या से विवाह करना स्वीकार न किया। उसी स्थान पर कोई दूरदेश से चाण्डाल पुत्र आ निकला। उसने अपने को झूठ मूठ ब्राह्मण गोत्रादि बताकर उस कन्या से विवाह कर लिया।

पीछे से पता लगने पर बिरादरी के भय से वह लड़का तो भाग गया और सब ने पंडित भर्तृयज्ञ के पास प्रायश्चित्त किये। तब से यह नियम किया कि सब नागरों का नियमों से शुद्धि संस्कार होना चाहिये। शुद्धि के बिना किसी से श्राद्ध विवाहादि व्यवहार न किया जाय नागर का सामान्य पद (Citizen ship) शुद्धि संस्कार करने के अनन्तर दिया जाना चाहिये। तिस पर सब लोगों ने भर्तृयज्ञ से नागरों का व्यवहार योग्य संस्कार शुद्धि की प्रक्रिया के विषय में पूछा:—

"सब नागरों की या देशान्तर में गये की, या देशान्तर में पैदा हुवे की या, वहां ही के वासी की, या ऐसे की जिसका पितृवर्ग का पता ही न चले, परन्तु वह सामान्य (व्यवहारोचित) पद की इच्छा करता हो किस प्रकार शुद्धि करनी चाहिये। यह सब विस्तार से हमें कहो।" *

---

* नागराः—कथं शुद्धिः प्रकर्तव्या तदस्मभ्यं ब्रवीहि नः।
नागरस्य समस्तस्य देशान्तरगतस्य च॥
देशान्तरप्रजातस्य तत्रजातस्य वा पुनः॥
अज्ञातपितृवर्गस्य सामान्यं च मिच्छतः॥
एतन्नः सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते॥
भर्तृयज्ञः—ब्राह्मणानांवचः श्रुत्वाभर्तृयज्ञोऽब्रवीदिदम्।
प्रश्नभारोमहानेव भवद्भिः समुदाहृतः॥
तथापि कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवम्॥

इस पर भर्तृयज्ञ बोले:—

"यह बड़ा भारी प्रश्नभार आपने मुझ पर रख दिया, तथापि स्वयम्भू को नमस्कार करके जिसका पितृवंश पता न हो, दूर से आया हो, सामान्य पद की इच्छा करता हो और अपने को नागर (नगरवासी) कहता हो उसको भी शुभ, शान्त, मुख्य द्विज किस प्रकार शुद्धि दें, यह सब कहूंगा। नागतीर्थ के पैदा हुवे ब्राह्मण को आगे करके शुद्धि की प्रार्थना करते हुवे पुरुष को यदि ब्राह्मण लोग काम से या क्रोध से या द्वेष से या अपने भ्रष्ट हो जाने के डर से उसको शुद्धि नहीं देते तो सब को ब्रह्महत्या का महापाप होता है। इस लिये जो अभ्यागतसूक्त अग्निसूक्त, पुरुष सूक्त, शांतिपात्र, शिवकल्प, ऋषिकल्प, मण्डल भाग, ब्राह्मण ग्रन्थ और गायत्री ब्राह्मण, पुरुष सूक्त, मधु ब्राह्मण, और रुद्र सूक्त इनको अध्वर्यु पढ़े। फिर सामवेदी देवव्रत, गायत्र, सोमसूर्यव्रत, २१ रथन्तर, सुव्रत विष्णु पिकाज्येष्ठसाम सामवेदोक्त रुद्र तथा भाद्र सामों का गायन करे। फिर पौराणिक गर्भोपनिषद् स्कंदसूक्त नीलरुद्र प्राणरुद्र नवरुद्र इनका पाठ करे। इसके अनन्तर शुद्धि की इच्छा करने वाला उस स्थान पर आवे जहां ब्राह्मण लोग बैठे हैं। वह बीच में खड़ा हो कर सब को सिर झुका कर प्रणाम करे। फिर अधिष्ठाता के प्रति वह कहे कि हे ब्राह्मण! मेरे लिये इन सब ब्राह्मणों से प्रार्थना कर जिससे मुझे शुद्धि देवें। फिर विनय से उठकर अधिष्ठाता नागतीर्थ का ब्राह्मण ब्राह्मणों से शुद्धि प्रार्थना करे और गोचर्म पर खड़ा होवे। और शुद्धि की आज्ञा सब ब्राह्मणों

अज्ञातपितृवंशो दूरादपि समागतः।
सामान्यं वाञ्छते पदं नागरोऽस्मीति कीर्त्तयन्॥
तस्यशुद्धिः प्रदातव्या मुख्यैः शान्तैः शुभैर्द्विजैः॥
विशुद्धिं याचमानस्य यदि यच्छन्ति नो द्विजाः।
कामाद्वा यदि वा क्रोधात्प्रद्वेषाद्वा च्युतेर्भयात्॥
ब्रह्महत्योद्भवंपापं सर्वेषांतत्रजायते।
तस्मादभ्यागतोयस्तु दूरादपि विशेषतः॥
तस्यशुद्धिः प्रदातव्या प्रयत्नेन द्विजोत्तमैः।
शुद्धिंतु त्रिविधां प्राप्तो समवाप्य समुच्चयाम्॥
स शुद्धो नागरोयो जातो देशान्तरेष्वपि।
(देखो स्कन्दपुराण नागरखं० अ० २०१)

से कहे कि यह नागर द्विज शुद्धि के लिये आया है इस को यदि आप चाहते हैं तो शुद्धि दी जाये + ।"

इस के अनन्तर सब ब्राह्मण एक वेद का सूक्त अनुमति प्रकाश करने के निमित्त बांचे । यदि वे ब्राह्मण मूर्ख हों और वेद पाठ न कर सकें तो मौन ही रह कर एक २ फूल देदें । यदि संतोष न हो और शुद्धि न चाहते हों तो केवल शी ऐसा करदें । सब के निर्णय हो जाने पर जिस प्रकार साधारण जन कृत्रिम वचनों से दिखाया करते हैं उसी प्रकार से बीच के बैठे मुख्य ब्राह्मण ३ बार (Cheers) या करतालिकाध्वनि करें । *

पूर्वं विशोधयेद्वंशं ततो मातृकुलस्थितम् ।
ततः शीलं त्रिभिः शुद्धं सामान्यं पदमिच्छतः ॥
ततः पुण्याहघोषेण शीतवादित्रनिस्वनैः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लचन्दनचर्चितः ॥
शुद्धिकामो व्रजेत्तत्र यत्रते ब्राह्मणाः स्थिताः ।
प्रणम्य शिरसा तेषां ततो वाच्यस्तु मध्यमः ॥
मदर्थं प्रार्थयस्वेह सर्वानेतान् द्विजोत्तमान् ।
यतः शुद्धिंप्रयच्छन्ति प्रसादं कर्त्तु मर्हसि ॥
ततस्तु प्रार्थयेद्विमान् तदर्थं च विशुद्धये ।
गर्त्ता तीर्थोद्भवोविप्रो विनयावनतः स्थितः ॥
गोचर्मणि समालग्नः शुद्धिकामस्य तस्य च ।
प्रष्टव्यास्तु ततस्तेन सर्वएव द्विजोत्तमाः ॥
एष शुद्धिकृते प्राप्तः सुदूरान्नागरो द्विजः ।
अस्यशुद्धिः प्रदातव्या युष्माकं रोचते यदि ॥
अथतैर्वेदसूक्तेन निषेधो वा प्रवर्त्तनम् ।
वक्तव्यं वचसा नैव ममवाक्यमिदं स्थितम् ॥
अथये तत्रमूर्खाः स्यु र्नवेदपाठनेरताः ।
पुष्पदानं तु वक्तव्यं तैः संतुष्टैर्द्विजोत्तमैः ॥
सीत्कारः कुपितैः कार्यः संतोषेण विवर्जितैः ।
प्राकृतैर्वचनै श्चैव यथा कुर्वन्ति मानवाः ॥
तथैव निर्णयस्यांते मध्यगेनविपश्चिता ।
देयं तालत्रयं सम्यक् सर्वेषां निर्णयोद्भवे ॥
(स्कन्द पुराण, नागर०, अ० २०२)

* एवं मध्यस्थवचनात् समुदायेस्थिरे सति
सम्प्रष्टव्यःपितु र्माता कतमा ते बभूवनः ॥
प्रष्टव्याचततोमाता तस्याश्चापि च या भवेत् ।
ज्ञातव्यासापियत्नेन अथवैः शुद्धिमर्हसि ॥

इस प्रकार फिर मध्यस्थ के कहने से सब समुदाय के शान्त हो जाने पर शुद्धि की इच्छावाले से पूछा जाय कि तुम्हारे पिता या माता कौन है उनका और कौन सम्बन्धी है । इस प्रकार माता की माता और उस की भी माता तक को पूछ कर शुद्धि के समय कर लेनी चाहिये । और उसके पिता, पितामह और प्रपितामह इन सभी की शुद्धि कर लेनी चाहिये । इसी प्रकार पितामही मातामह, उसका पिता और उसका पिता माता, मातामही, और उस की भी माता, इन सब को इन के पतियों सहित शुद्ध कर लेना चाहिये ।

इस प्रकार शाखा प्रशाखाओं से उन का आगमन जान कर यथा क्रम मूल वंश और मूल स्थान सभी वट की जड़ों के सदृश जान कर सिन्दूर का तिलक लगा कर शुद्ध कर लेना चाहिये । तब फिर मध्यस्थ मुख्य ब्राह्मण उठ कर उस के आगे तीन बार करताली बजा कर आघोषित कर देवे कि यह नगर वासी द्विज अब शुद्ध हो गया है । अब यह सामान्य पद के योग्य हो गया है ।"

पाठकगण ! इस प्रकार वे लोग शुद्ध किये जाते हैं जो अपने से किन्हीं कारणों से अज्ञान पूर्वक भ्रष्ट हो गये हों । जैसे कि हमारे ही रजपूत तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग अपनी एक दो पीढ़ियों से मुसलमानों में या क्रिस्तानों में मिल गये हैं उन को इस नियम और आधार पर इसी विधि से शुद्ध कर लेना सनातन क्रम है ।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
शोधनीयाः प्रयत्नेन त्रयश्चैतेऽपि तस्य च ॥
तथा पितामही पश्च त्रयपत्ने द्विजोत्तमाः ।
मातामहस्ततस्तस्य पितातस्यापियः पिता ॥
माता मातामही चैव तथैवान्याप्रपूर्णिका ॥
पितामह्यश्च या मातासापि शोध्या सभर्तृका ॥
एवं शाखागमंज्ञात्वा तस्यसर्वं यथाक्रमम् ॥
मूलवंशादधिष्ठानं न्यग्रोधस्यैव सर्वतः ।
ततः शुद्धिः प्रदातव्यासिन्दूरतिलकेनतु ॥
ततो वाच्यःनृप श्रेष्ठ मध्यस्थेनतदग्रतः ।
कृत्वातालत्रयं राजन् शुद्धो यं नागरोद्विजः ॥

ब्राह्मणों×ने फिर पूछा:—शीलसे शुद्धि किस प्रकार की जावे। जो नष्ट वंश हो। जो पितामह और मातामही को भी नहीं जानता हो। और नागर बनना चाहे तो उस की शुद्धि किसप्रकार की जावे। भर्तृयज्ञ बोले कि:—"नष्टवंश हो कर भी जो सभा में आकर नागर होना स्वीकार करे उसका शील आचार जानना चाहिये और फिर शुद्धि देनी चाहिये। नागरों के जो धर्म और व्यवहार हैं यदि उनके अनुकूल वह नित्य वर्ताव करता है तो उसे नागर ही समझना चाहिये।"

इस प्रकार भर्तृयज्ञ द्वारा शुद्धि की व्यवस्था पुराण सम्मतस तथा सनातन से चली आई है। इस में अब संदेह का अवलेष भी शेष नहीं रहता। इसी आधार पर भविष्य पुराण के कहे प्रजापति पिता की सभी सन्तानों को शील कुलादिका तन्तु जानकर प्रेम तथा संगठन द्वारा शुद्ध किया जासकता है। इसी के उदाहरणार्थ हम महर्षि कण्व का सहस्रों म्लेछों को शुद्ध करलेन का दूसरा दृष्टान्त सुनाते हैं।

"मुनि कण्व दस हजार म्लेच्छों को संस्कृत पढ़ाकर अपने वंश करके ब्रह्मावर्त में लाया। उन सभों ने तप से सरस्वती को संतुष्ट किया। पांच ही वर्ष में देवी प्रादुर्भूत हुई और उन सब को उन की पत्नियों सहित प्रथम शूद्र बनाया। सब शिल्प और कारुओं का पेशा करने लगे। उनके बहुत से पुत्र हुवे। तिस पर उनके बीच में से २००० वैश्य हुवे। उन में से काश्यप के सेवक पृथु ने महामुनि की भक्ति की। इस पर उसने उन को राजपुत्र का स्थान दिया और वहां का राज्य उसे दिया। फिर बौद्धों ने कश्यप के मरने पर उन से शास्त्रार्थ किया और उन्हे पराजित करके उन से वेद खोस लिये। तो बहुत से बौद्ध

× सांप्रतं शीलजां ब्रूहि नष्टवंशश्चयो भवेत्।
पितामहं न जानाति च मातामहीं निजाम्।
तस्य शुद्धिः कथं कार्यानागरोऽस्मीतियोवदेत्।

भर्तृयज्ञ उ०:—
नष्टवंशस्तुयोब्रूयात् नागरोऽस्मीति संसदि।
तस्य शीलं प्रविक्ष्यं ततः शुद्धिः समाविशेत्।
नागराणांतुये धर्मा व्यवहाराश्चकेवलाः।
तेषुचेद्वर्त्तते नित्यं सज्ञाध्योनागरोहि सः॥

म्लेच्छ बन गये और शेष वेद को धारण करने वाले सरस्वती के प्रभाव से बहुत से आर्य बन गये। +

[भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व चतुर्थ खण्ड, अ० २१]

इस लिये अन्यत्र भी भविष्य में लिखा है कि कश्यप ने मिश्र देश के पैदा होने वाले म्लेच्छों को शासन करके शूद्र वर्ण से संस्कार करके ब्राह्मण बनाया और उन्होंने भी शिखा सूत्र धारण करके उत्तम वेद का अध्ययन करके यज्ञों से देवता की पूजा की थी"।

इन सब प्रमाणों से प्राचीन-काल का जातीय गौरव तथा ऋषियों का मनुष्य जाति के प्रति उदार भाव प्रगट होता है। अवश्य वह ज़माना एक ऐसा होगा जिस समय भारत को यह अनुभव होता था कि यहां के अग्रजन्मा से दश देशान्तर के लोग शिक्षा लेकर सदाचार की दीक्षा ग्रहण करेंगे जिस प्रकार कि मनुभगवान् लिख गये हैं कि:—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

\+ सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।
म्लेच्छान् संस्कृतमाभाष्य तदादशसहस्रकान्॥
वशीकृत्यस्वयंप्राप्तः ब्रह्मावर्तेमहोत्तमे॥
तेसर्वे तपसादेवीं तुष्टुवुश्चसरस्वतीम्॥
पंच वर्षान्तरेदेवी प्रादुर्भूतासरस्वती॥
सपत्नीकांश्चतान्म्लेच्छान्शूद्रवर्णायचाकरोत्।
कारुवृत्तिकरासर्वे बभुवुः बहुपुत्रकाः।
द्विसहस्रास्तदा तेषांमध्ये वैश्याः बभूविरे॥
तन्मध्ये चाचार्यपृथुः नाम्नाकाश्यपसेवकः।
तपसा सच तुष्टाव द्वादशमेकं महामुनिम्॥
तदाप्रसन्नो भगवान् कण्वोदेवनराद्वरः।
तेषाञ्चकार राजानं राजपुत्रं पुरंदरो॥
म्लेच्छा बभूविरे यौद्धा स्तदन्ये वेदतत्पराः।
सरस्वत्याः प्रभावेण तत्रार्याः बहवोऽभवन्॥
(अ० २१ प्रतिसर्गपर्व चतुर्थखण्ड)

एकोनविंशोऽध्याय:

तीर्थ निरूपण

भारतवर्ष की पवित्र भूमि सम्पूर्ण तीर्थमय है। प्रथम सम्पूर्ण वसुधा में भारत स्वयं एक पवित्रभूमि है जहां प्राचीन ऋषियों की अहिंसा सत्य शम दमादि साधनों से युक्त घोर तपस्याओं से सम्पूर्ण वायुमण्डल उनकी पवित्रता का अद्यापि गान कररहा है। तिसपर भी नदियों की अनेक संख्या तथा उनपर स्थान २ पर अधिष्ठित सहस्रों तीर्थस्थान अद्यापि अपने पवित्रभूमि, होने और यह लोक से तराकर मनुष्य जीवन को सफल कर देने का दमभरते हैं। धन्य है वह प्राचीन पवित्रता जिसका गौरव इस घोर कलिकाल में समस्त आबालवृद्ध जनता के चित्तों को धर्म का स्मरण तथा प्राचीन ऋषियों की तपस्या का अनुकरण कराने में बाधित करता है। उन्हीं ऋषि महात्मा और धर्मात्माओं के दर्शन के लिये प्राचीन काल में श्रद्धाभाव से प्रेरित होकर सहस्रों नहीं २ लक्षों नर नारी अनेक कष्टों को झेलते हुए भी सम्पूर्ण प्रकार की आपत्तियों को धार्मिक आनन्द के रूप में अनुभव करते हुए दुर्गम पर्वतों तथा अलङ्घ्य मार्गों को पार करके पुण्यमय जंगम तीर्थों का दर्शन करते थे। उनके हृदय को पवित्र और जीवन को सफल कर देने वाले सत्य धर्मोपदेशों को श्रवण करके अपने जीवन को कृतार्थ करते थे। उसी धर्म प्रेरणा से प्रेरित होकर अद्यापि सहस्रों नर नारी उस प्राचीन काल की धर्म पिपासा को शमन करने के लिये तीर्थाटन करना अपने जीवन का मुख्य अंग समझते हैं। परन्तु अब तीर्थों का रूप ही बदल गया। साधु सन्तों की मात्रा शून्य हो गई। गुण्डे लबार धर्मध्वजी ठग और पाखण्डियों की संख्या ने सभी तीर्थों को व्याप्त कर लिया। धनके लोभी अपने २ उलटे जाल में फंसा २ कर नदियों के किनारे मच्छीमारों की तरह अपने अड्डे जमाये हुए बैठ गये हैं। परोड जातिके ब्राह्मण होकर अपना सत्शास्त्रों का स्वाध्याय तथा यमनियमादि सदाचार का पालन छोड़ धर्म के नामपर धन इकट्ठा करना मात्र एक पेशा बनाकर बैठे

है। जहां कोई पाप न था वहां अब पापों की अगणित संख्या विद्यमान है। उदाहरणार्थ भारत के सब से बड़े स्थावरतीर्थ काशी से लेकर छोटे से छोटे तीर्थ का यही हाल है। भक्तजनों में यद्यपि श्रद्धा की मात्रा अब भी बहुत कुछ है। तथापि जितने ही भोले भक्त हैं उतनी ही ठगों की भी कुटिलता का अधिक विस्तार है, पोपलीला खूब बैठाई जाती है। कुम्भादि महोत्सवों पर तो इस धूर्तता की पराकाष्ठा है। इन तीर्थों की जितनी ही प्राचीन कालमें साधु महात्माओं के संग से पवित्रता थी उससे भी बढ़कर अब पापी जनों के निवास से पापिष्ठता भी है। वे जंगम तीर्थ अब लुप्त हो गये। पानी के किनारे कृत्रिम पौड़ियें तथा घाट ही अब तीर्थ नाम से विख्यात होते हैं। जिन स्थानोंपर पहले महात्माओं की कुटी मात्र ही आवास और धर्मोपदेश ही अमृत तथा जिसमें रहकर और स्नान करके सब कृतार्थ होते थे। अब उन स्थानोंपर ईंट पत्थरों के अनल्प प्रासाद तथा धूर्त्त जनों की वञ्चकता जीवन को रसातल में पहुंचाने को पर्याप्त हैं।

इस घोर दृश्य को देख कर करुणापूर्ण हृदयों के चित्त में दया का आविर्भाव होता है परन्तु भारत के घोर अज्ञान से इतना गहरा अन्ध विश्वास और अन्धी श्रद्धा जमी है कि गंगा तथा ईंट पत्थरों के बने कुण्डों में गोते मारने मात्र को भी सकल श्रेय तथा परमगति समझ रखा है इसी अन्ध विश्वास से धूर्त्तता यहां तक राज्य जमा बैठी है कि सकल जीवन पापमय होने पर भी हरिद्वार, प्रयाग और काशी के निरक्षर पण्डे भी केवल छल बल से द्रविण का उद्धार करके धर्म का ठेका लेकर परमगति प्राप्त कराने के लिये दम्भ करते हैं। पुराणों के तीर्थों के महात्म्य इन्हीं के हाथ की मनघडन्तपोल है। इन्हीं हथकण्डों से लक्ष्मी सम्पन्न निर्बुद्धी भोगवान तथा ज्ञान रहित भोले भूपालों को ऐसा वश किया कि अभी तक भी इनके चक्रपर चढ़ा भारत अपनी स्वस्थता को प्राप्त करने में विलम्ब कर रहा है। इस घोर रात्रि में चारों तरफ से पूरे छल बल से अपने छल छन्द रचते हुवे पाखण्डी धनापहारियों के प्रवृत्त होते हुवे, ज्ञान का महाप्रदीप लेकर सच्छास्त्रों का नाद बजाता हुवा इस जमाने का गुरु महर्षि दयानन्द सकल भारत में जागृति का कारण बतला गया है कि जलमय जड़ तीर्थ, तीर्थ नहीं, प्रत्युत जंगम तीर्थ सज्जन महात्मा ही हैं।

पौराणिक सनातन धर्मावलम्बियों का इन मिट्टी पत्थर के बने घाटों और हिमालय के पार्श्व से ढले पानी और नदियों के प्रकृत संगमों में बड़ी भारी श्रद्धा और इनकी सर्व पापों से तरा देने के मिथ्या तथा असम्भव सिद्धान्त के मानने में बड़ा आग्रह है। जिस में यद्यपि कोई धर्मशास्त्र प्रमाण नहीं, सिवाय पौराणिकों के कहे कल्पित पुराण ग्रन्थों और असत्य माहात्म्यों को पुराण और महात्म्यों का बहुत सारा अंश सिवाय इनके असत्य गुणों के विज्ञापन मात्र के और कुछ नहीं है। तथापि इन की प्रयोजकता और यत्किञ्चित् लाभ इतना अवश्य स्वीकार किया जासकता है कि इन से लोगों में श्रद्धा की दृढ़ता अवश्य ही रही है। सर्व साधारण का देश प्रेम तथा स्वकीय धर्मप्रेम, ऋषि और महर्षियों के सदाचार, उपदेश, और प्रथाओं में दृढ़अनुराग रहा है। जो कि एक जाति को सदा ही मरने से बचाता तथा मरती जाति की रग२ में भी जोश का रसायन फूंक देता है इस लिये इस महाकार्य साधन के लिये इन सब प्रथाओं का हमें बहुत उपकार मानना ही पड़ेगा। परन्तु इस की ओट में फैलाया गया पाखण्ड तथा छल तथा पाप का राज्य भी इतना विस्तृत है कि जिसकी अपेक्षा कल्पित उपकार बहुत ही थोड़ा और नहीं के सदृश है। अस्तु! यहां यह विवेचना संक्षेप से करनी है। कि ये तीर्थ ही वास्तविक तीर्थ है या केवल अनुकरण मात्र है।

ये तीर्थ केवल अनुकरण मात्र है और अब ब्राह्मणों पण्डों आदि का जीवन के साधन मात्र ही हैं। इन से लोक दुःख का तारण अब नहीं होता। हां उस समय अवश्य जीवन तरजाते थे जब महात्माओं का इन स्थानों पर निवास था पर अब यह सब उलट गया। प्राचीन हितैषियों ने यह सोच कर कि साधारण जनता घर में पड़ी हुई आलसी न हो जाय, घर में तथा निष्पण्डित और निरक्षर वेद वक्ता रहित स्थानों में पड़ी २ धर्म के उपदेशों से वञ्चित न रह जाय, लक्ष्मी के भोग विलासों में पड़कर केवल शिश्नोदर परायण होकर प्रकृति के पवित्र ईश्वर निर्मित चमत्कारों से वञ्चित तथा उसकी परम प्रकृति सुन्दरता के अनुशीलन से वञ्चित न रह जाय, तथा अपने चारदिवारियों में पड़ी २ कापुरुष भीरु तथा कूपमण्डूक जब न बन जाय, अपने सुन्दर स्वर्गमय भारत के अलौकिकस्थानों को भूलकर स्वकल्पित [illegible] जातीय देश को भारतीय रत्न में रखने से वञ्चित न रहती तथा इनके [illegible] पुरातन ऋषियों के ज्वलन्त तप तथा वीर्य द्वारा उपार्जित कीर्ति

और प्रताप के प्रत्यक्ष दर्शन करना न भूल जांय, समभाव से एकधर्म के सूत्र में [illegible] कर एक मात्र देवता की छत्रछाया में एक तीर्थ के द्वार पर खड़े होकर एक [illegible] हात्मा की कुटी में उपदेशामृत पीकर एक सतीर्थ्य हो कर वास्तविक जातीय बन्धन को न तोड़ सके इत्यादि अनेक परमोन्नतियों को अपने चित्त में रखकर यह प्रथा चलाई थी परन्तु इनके असली तात्पर्यों को भुलाकर अज्ञान के सागर में डूब कर आर्यजाति ने अपना बड़ा ही अपकार किया है। अस्तु ! अब हम पुराणों के ही आधार पर तीर्थ की वास्तविकता तथा जड़जल प्रस्तरमय तीर्थों की तुच्छता को उदार शब्दों में उद्धृत करते हैं। सच्चे तीर्थ बताने के उद्देश्य से पद्म पुराणकारने उत्तरखण्ड में मानस तीर्थों का प्रतिपादन इस क्रम से किया है।

* वसिष्ठ बोले "भूमि के तीर्थ मैंने कह दिये। अब मानस अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखने वाले तीर्थ कहता हूं। जिन में कि मनुष्य अच्छी तरह से नहा कर परम गति को प्राप्त होता है। सत्यतीर्थ है, क्षमा तीर्थ है। इन्द्रियनिग्रहतीर्थ है। सबभूतों पर दया करना तीर्थ है। ऋजुता या कुटिलता का न होना तीर्थ है। दान तीर्थ है। दम तीर्थ है। संतोष तीर्थ है। ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। नियमों का पालन करना तीर्थ है। मन्त्रों का जप करना तीर्थ है। प्रिय भाषण करना तीर्थ है।

---

* तीर्थान्येतानि भौमानि मया प्रोक्तानि तेऽनघ !
मानसान्यपितीर्थानि वक्ष्यामि शृणु पार्थिव ॥ ११ ॥
येषुसम्यग् नरः स्नात्वा प्रयातिपरमांगतिम् ॥
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १२ ॥
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेवच ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमेवच ॥ १३ ॥
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थमुच्यते ॥
मन्त्राणां तु जपस्तीर्थं तीर्थं तुप्रियवादिता ॥ १४ ॥
ज्ञानंतीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसातीर्थमुच्यते ॥
आत्मतीर्थं ध्यानतीर्थं पुनस्तीर्थं शिवस्मृतिः ॥ १५ ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः ॥
नजलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ॥ १६ ॥
सस्नातो योदमस्नातः शुचिस्निग्धः मनामलः ॥
योलुब्धः पिशुनः क्रूरः दाम्भिकोविषयात्मकः ॥ १७ ॥
सर्वतीर्थेष्वपिस्नातः पापोमलिन एव सः ॥

ज्ञानतीर्थ है । धृति तीर्थ है । अहिंसा तीर्थ है । आत्मा तीर्थ है । ध्यान तीर्थ है । और फिर भी शिव का स्मरण करना तीर्थ है । तीर्थों में भी सब से उत्तम तीर्थ मन की शुद्धि है । जल से देह को भिगो लेना ही स्नान नहीं कहाता परन्तु दम से नहाया हुआ शुद्ध और स्नेह युक्त चित्त हो वह नहाया हुआ है । जो लोभी, क्षुद्र, चुगलखोर, दम्भी, विषयी, पापी है वह सब तीर्थों में भी नहा कर पापी और मैला ही रहता है । * शरीर के मल छोड़ देने से नर निर्मल नहीं है मन के मल छोड़ देने पर वह अत्यन्त निर्मल हो जाता है । विषयों में संग करना ही मन का मैल है उन्हीं से हट जाना निर्मलता कहाती है । जल में रहने वाले मच्छ कच्छ मगरमच्छ आदि जल जन्तु सदा जल ही में रहते और पैदा होते और मरते हैं परन्तु उनके निर्मलचित्त ज्ञानवान् न होने से वे स्वर्ग को नहीं जाते । दान याग तप शौच तीर्थ और वेद श्रवण ये सब वास्तव में तब ही तीर्थ कहाते हैं जब भाव निर्मल होते हैं । अपनी इन्द्रियों को वश करने वाला जितेन्द्रिय जहां जहां भी रहता है उसके उसी २ स्थान पर नैमिषारण्य तथा कुरुक्षेत्र या पुष्कर तीर्थ हैं । ज्ञानसे पवित्र ध्यानरूप जल वाले" रागद्वेषादि मल से सर्वथा रहित मानस तीर्थ में जो स्नान कर लेता है वही परमगति को प्राप्त होता है । हे राजन् ! यह तुम को मानस तीर्थ का लक्षण कह दिया ।

तीर्थों की पुण्यता का हेतु

भौम अर्थात् भूमि के तीर्थों की पुण्यता में भी कारण सुनो । जिस प्रकार शरीर के कोई स्थान अत्यन्त पवित्र समझे जाते हैं उसीप्रकार पृथिवीमें भी कई देश बहुत पुण्य समझे जाते हैं अद्भुत भूमि के और जल के और तेज के प्रभाव से तथा मुनियों के सम्पर्क से

---

* न शरीरमलत्यागात् नरो भवति निर्मलः ॥ २१ ॥
मानसे तुमले त्यक्ते भवत्यत्यन्तनिर्मलः ॥
जायन्ते चम्रियन्तेच जलेष्वेवजलौकसः ॥ २२ ॥
न च गच्छन्ति तेस्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते ॥ २३ ॥
तेष्वेवहिविरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥
दानमिज्या तपःशौचं तीर्थमेव श्रुतं तथा ॥ २४ ॥
सर्वाण्येतानितीर्थानि यदिभावोहिनिर्मलः ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र वसेन्नरः ॥ २५ ॥
तत्रतस्यकुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणिच ॥
ज्ञान पूतेध्यानजले रागद्वेषमलापहे ॥ २६ ॥
यः स्नातिमानसे तीर्थे सयाति परमांगतिम् ॥
एतत्तेकथित राजन् मानसं तीर्थलक्षणम् ॥ २७ ॥

तीर्थों की पुण्यता समझी गयी है। इस लिये जो दोनों प्रकार के तीर्थों में स्नान कर लेता है वह पुण्य गति को प्राप्त होता + है।

फल का अधिकारी

* "जिस के हाथ, पैर और मन सब सुसंयत हों, जिसकी विद्या और तप तथा कीर्त्ति हो वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है।" दान देने वाला, मन में संतुष्ट, अहंकार से रहित हो वह तीर्थ फल का भोग करता है। श्रद्धा से युक्त समाहित चित्त होकर कृतघ्न भी तीर्थ यात्रा करता हुवा शुद्ध हो जाता है।" इत्यादि। (देखो पद्म पु०, उत्तर ख० अ० २३७)

अब पाठकों ने देखा कि पुराणकार तीर्थों का इतना महत्व कदापि नहीं मानते जितना महत्व श्रद्धा, समाधि, जितेन्द्रियता, पाप रहितता तथा दया क्षमा अहिंसा सत्य इन पवित्र भावों का मानते हैं। इसी से पुराणकार ने कहा कि जल में रहने वाले मच्छ कच्छ संसार सागर को नहीं तरते प्रत्युत पूर्वोक्त निर्मल भावों से शुद्ध चित्त वाला जहां कहीं भी रहे वहां ही उसका नैमिषारण्य तथा कुरुक्षेत्र होता है। ठीक है "मन चंगा तो कठौती में गंगा"। इसी आधार पर पुराणकारों के प्रयाग हरिद्वार पुष्कर गया तथा काशी आदि अन्यान्य प्रसिद्ध तीर्थों की अतिशयोक्तिरूप प्रशंसाओं के पुल सब निःसार हैं और उनका निर्माण भोले लोगों को फन्दे में फंसाने मात्र के लिये हुवा है।

\+ भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु ॥
यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः २८॥
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा ॥ २९ ॥
परिग्रहान् मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता ॥ ३० ॥
तस्मात्तीर्थेषु सर्वेषु मानसेषु च नित्यशः ॥
उभयेष्वपि यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥३१ ॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥
विद्यातपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ ३२ ॥
तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानः समाहितः ।
कृतघ्नोऽपि विशुध्येत किम्पुनः शुद्धकर्मकृत् ॥ ३३ ॥
(पद्म उ० ख० अ० २३७)

अब इसके अतिरिक्त जंगम तीर्थों का स्वरूप बताते हैं जिनके परिग्रह या जन्ममात्र से सहस्रों नदियों के तट तथा संगम प्रदेश तथा घाटों को तीर्थ पदवी मिल गई है।

तीर्थपति

+ पद्म पुराण में भूमि खण्ड के ४१ अध्याय में वेन विष्णु से प्रश्न करता है पुत्र भार्या माता पिता और गुरु किस प्रकार तीर्थ हैं इस पर विष्णु ने कृकल तथा सुकला नामक दम्पती की कथा का वर्णन किया। प्रतिपाद्य विषय को पुराण इस रूप में वर्णन करता है।

"पतिव्रत धर्म नारियों के पाप को नाश करने वाला, तथा गति देने वाला है। पतिपराण स्त्री ही लोक में पुण्या कहाती है। भर्त्ता के अतिरिक्त युवतियों का पृथक् कोई तीर्थ नहीं, पति के अतिरिक्त अन्य कोई तीर्थ स्त्री को सुख नहीं देता है और न स्वर्ग तथा मोक्ष को ही देने वाला है अपने पति का ही दायां पैर प्रयागराज है और बांया पुष्कर राज है उस के धुले पैरों के पानी से नहाना ही पुण्य है यही स्नान प्रयाग और पुष्कर स्नान के सदृश है। पति ही में सब तीर्थ तथा सब धर्म हैं यज्ञों के करने से जो पुण्य होता है वही भर्त्ता की सेवा से, इस लोक में मिलता है। जो फल प्रयाग पुष्कर की यात्रा से मिलता है वही फल भर्त्ता की शुश्रूषा से भी मिलता है।

+ वेनउवाचः—पुत्रोभार्या कथं तीर्थं मातापिता कथं वद।
गुरुश्चैवकथं तीर्थं तन्मे विस्तरतो वद॥ ११॥
विष्णु उ०:—युवतीनां पृथक् तीर्थं विनाभर्त्तुर्द्विजोत्तम।
सुखदं नास्ति वै लोके स्वर्गमोक्षप्रदायकम्॥ १२॥
सव्यंपादंस्वभर्त्तुश्च प्रयागंविद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारीपरिकल्पयेत्॥ १३॥
तस्यपादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥ १४॥
सर्वतीर्थसमोभर्त्ता सर्वधर्ममयः पतिः।
मखानांयजनात्पुण्यं यद्वै भवति दीक्षिते।
तत्पुण्यं सर्वमाप्नोतिभर्त्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥ १५॥
प्रयागपुष्करं चैव यात्रां कृत्वा हि यद्भवेत्।
तत्फलंसर्वमाप्नोति भर्त्तुः शुश्रूषणादपि॥ १६॥
(पद्म, भूमि खंड, अ० ४१)

भार्या तीर्थ

× कृकल तीर्थयात्रा को चला गया था, उसकी पत्नी सुकला उस के वियोग से अतिदुःखित थी । कृकल सब तीर्थ यात्रा करने के अनन्तर अपने जीवन को धन्य समझता था, परन्तु उस के समक्ष दिव्यमय मूर्ति आकर बोली कि "हे कृकल ! तेरी तीर्थयात्रा का कुछ फल नहीं, तैने वृथा श्रम किया ।" यह सुनकर कृकल को विस्मय और दुःख हुवा उसने उससे अपनी निष्फलता का कारण पूछा वह दिव्यमूर्तिरूप, धर्म बोलाः—

"विनीत विमल प्रिय पुण्यमयी भार्या को छोड़कर जो चला जाता है उस का सभी पुण्य कार्य वृथा ही जाता है । जिस के घर में आचार से सम्पन्ना धन्या धर्मपरायणा सती साध्वी पतिव्रता ज्ञानयुक्ता प्रेममयी भार्या रहती है । उस के गृह में यही वीर्य शाली देवता वास करते हैं उसी गृह में यज्ञ, गौवें ऋषि जन भी वास करते हैं वहां ही सब तीर्थ सब पुण्य रहते हैं ये सब भार्या के साथ रहने से प्राप्त है । पुण्य भार्या के योग से ही अच्छा गृहस्थ चलता है गृहस्थ से परम धर्म भूतलभर में दूसरा नहीं गृहस्थ का गृह ही पुण्य है, सत्य

× दिव्यरूपो महाकायः कृकलं वाक्यमब्रवीत् ।
तीर्थयात्राफलं नास्ति श्रमएव वृथाकृतः ॥
कृकल उ०:—कस्मात्तीर्थफलं नास्ति मम यात्राकथं न हि ॥
धर्म उ०:—विनीतां विमलांपुण्यां भार्यांत्यक्त्वा प्रयाति यः ॥
तस्य पुण्यतमंसर्वं वृथाभवति नान्यथा ॥
धर्माचारपरां पुण्यां साधुव्रतपरायाणाम् ।
पतिव्रतपरांभार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम् ।
तामेवापिपरित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति यः ।
वृथातस्यकृतः सर्वो धर्मो भवतिनान्यथा ॥
सर्वाचारपरा धन्या धर्मसाधनतत्परा ।
सतीव्रतपरानित्यं सर्वज्ञा ज्ञानवत्सला ।
एवंगुणाभवेद्भार्या यस्यपुण्यामहासती ।
तस्यगेहे सदादेवास्तिष्ठन्ति च महौजसः ।
पितरो गृहमध्यस्था यशोवाञ्छन्तितस्य च ।
गंगाद्याः सरितः पुण्याः सागरास्तत्रनान्यथा ।
तत्रसर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
भार्यायोगे तिष्ठन्ति सर्वाण्येतानिनान्यथा ॥
पुण्यासती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा ।

पुण्य से युक्त सर्व तीर्थमय सर्व देवमय है। गार्हस्थ्य के आश्रय से ही सब जीव जन्तु जीते हैं इस सदृश दूसरा आश्रम भी मुझे नहीं दीखता। मन्त्र, अग्नि होत्र देवता सर्व सनातन धर्म दान आचार यही सब उस के घर में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार का जो भार्या से रहित हो जाता है उस का घर भी बन की तरह सूना हो जाता है। उस के यज्ञ दान भी सिद्ध नहीं होते। भार्या से रहित पुरुष के महाव्रत भी सिद्ध नहीं होते, धर्म तथा नाना पुण्य भी नहीं बनते। भार्या सदृश धर्म साधन कारण भूत दूसरा तीर्थ नहीं, भार्या समासुख नहीं, भार्या सम पुण्य नहीं, यही तराता है यही हित करता है, हे कृकल! तू धर्म युक्त साध्वी भार्या को छोड़ कर चला गया था। इस लिये तू नराधम है, गृह धर्म को छोड़ कर जाने वाले तेरे धर्म का फल कहां है। उस के बिना तीर्थ तथा श्राद्ध में तैने दान दिया उसी दोष से तेरे पूर्वपितामह फिर बृद्ध हो गये।" *

तत्रयज्ञाश्चगावश्च ऋषयस्तत्रनान्यथा।
पुण्यभार्या प्रयोगेण सुगार्हस्थमुजायते॥ १७॥
गार्हस्थात्परमोधर्मोद्वितीयोनास्तिभूतले।
गृहस्थगृहः पुण्यः सत्यपुण्यसमन्वितः॥ १८॥
सर्वतीर्थ मयोवैश्यः सर्वदेवसमन्वितः।
गार्हस्थ्यं चसमाश्रित्य सर्वेजीवन्ति तत्वतः॥ १९॥
तादृशं नैवपश्यामि ह्यन्यमा श्रममुत्तमम्।
मन्त्राग्निहोत्रं देवाश्च सर्वेधर्माः सनातनाः॥ २०॥
दानाचाराः प्रवर्त्तन्ते यस्य पुंसश्चवैगृहे।
एवं योभार्ययाहीनस्तस्यगेहं वनायते।
यज्ञाश्चैव नसिद्धयन्ति दानानिविविधानिच॥ २१॥
भार्याहीनस्यपुंसोऽत्र नसिद्धयति महाव्रतम्।
धर्मकर्माणिसर्वाणि पुण्यानिविविधानि च॥ २२॥
नास्तिभार्यासमं तीर्थं धर्मसाधनहेतवे।
शृणुष्वत्वं गृहस्थस्य नान्योधर्मो जगत्त्रये॥ २३॥
नास्तिभार्यासमं तीर्थं नास्तिभार्यासमं सुखम्।
नास्तिभार्यासमं पुण्यं तारणायहिताय च॥ २४॥
धर्मयुक्तां सतीभार्यांत्यक्त्वा याति नराधमः।
गृहधर्मं परित्यज्य क्वास्तेधर्मस्य ते फलम्॥ २५॥

(पद्म पु०, भूमि० खं०, अ० ५९)

पितृ-तीर्थ

फिर वेनने पूछा कि सब तीर्थों से उत्तम भार्यातीर्थ तुमने कहा। अब पितृ तीर्थ जो पुत्रों को तराने के लिये परम साधन है। सोभी कहो:*—तिसपर विष्णु बोले*:—

"पिप्पल नामक तपस्वी ने सहस्रों वर्ष तप किया। और सब देवताओं को वश में करके विद्याधर बन गया और गर्व करने लगा। तिसपर ब्रह्मा ने सारस का रूप धर कर उसे कहा कि जो फल तथा ज्ञान तैने सहस्रों वर्षों में किया वह सुकर्मानामक ब्राह्मण बालक ने अपने माता पिता की प्रेम से शुश्रूषा मात्र करके भी प्राप्त किया है। यही बात देखने की इच्छा से पिप्पल सुकर्मा के घर आया और सब बात सत्य पाई। इस पर सुकर्मा ने माता पिता के गुणगाते हुवे कहा:+—

* वेन उ०:—भार्या तीर्थं समाख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
पितृ तीर्थं समाख्याहि पुत्राणांतारणंपरम्।

\+ सुकर्मा उ०:—एतदेव न जानामि नकृतंकायशोषणम्।
यजनंयाजनंधर्मं न ज्ञानं तीर्थसाधनम्।
मनया साधितं चान्यत् पुण्यं किंचित्सुकर्मजम्।
स्फुटमेकंप्रजानामिपितृमातृ प्रपूजनम्।
उभयोस्तुस्वहस्तेन मातापित्रोश्चपिप्पल।
पादप्रक्षालनं पुण्यं स्वयमेव करोम्यहम्॥
अङ्ग संवाहनं स्नानं भोजनादिकमेवच।
त्रिकालोपासनं भीतः साधयामि दिने दिने॥ ६०॥
पादोदकंतयोश्चैव मातापित्रोर्दिने दिने।
भक्त्याभावेन चिन्दामि पूजयामि स्वभावतः॥ ६१॥
गुरूमेजीवैमानौतौ यावत्कालं हिपिप्पल।
तावत्कालं तुमेलाभोह्यतुलश्च प्रजायते॥ ६२॥
त्रिकालं भोजयाम्येतौ भावशुद्धेन चेतसा।
स्वच्छन्दशीलसंचारो वर्त्ताम्येवं हिपिप्पल॥ ६३॥
किंमेचान्येन तपसा किंमेकायस्य शोषणैः।
किं मे सुतीर्थयात्राभिरन्यैः पुण्यैश्च साम्प्रतम्॥ ६४॥
मखानामेव सर्वेषां यत्फलं प्राप्यते बुधैः।
तत्फलंतुमया दृष्टं पितुः शुश्रूषणादपि॥ ६५॥
मातृ शुश्रूषणं तद्वत् पुत्राणां गतिदायकम्।
सर्वधर्मस्य सर्वस्वं सारभूतं जगत्त्रये॥ ६६॥
पुत्रस्य जायते लोकोमातुः शुश्रूषणादपि।
पितुःशुश्रूषणे तद्वत् तत्पुण्यं प्रजायते॥ ६७॥

"हे पिप्पल ! मैंने काय नहीं सुखाया, यज्ञयाग धर्म न किया, न तीर्थाटन किये, कुछ और भी धर्म नहीं किया । बस एक मात्र पिता माता की पूजा जानता हूं । दोनों के अपने हाथ से पैर धोना मात्र पुण्य कार्य करता हूं । उनके पैर दबाना नहलाना, भोजन कराना, और उनकी उपासना प्रतिदिन करता हूं । उन्हीं का ही चरण जल प्रतिदिन स्वयं ग्रहण करता हूं । जब तक मेरे माता और पिता जीते रहे तब तक मुझे अतुल लाभ प्राप्त होगा । तीनों कालों में मैं शुद्ध भाव से इन की पूजा करता हूं । मुझे अन्य तप से क्या, शरीर के शोषण से क्या, तीर्थ यात्राओं से क्या, और पुण्यों से क्या. जो दानों से लाभ मिलता है वही मैंने पिता की शुश्रूषा से प्राप्त होता देखा । और वही फल पुत्र को माता की सेवा से भी प्राप्त होता है । × पिता और माता में गंगा गया और पुष्कर तीर्थ बसते हैं इस में संदेह नहीं । और भी सब पुण्यमय तीर्थ पुत्र को पिता की शुश्रूषा से प्राप्त होते हैं । सत्पुत्र को पितृ शुश्रूषा से ही दान का फल तथा सब सुकर्मों का फल मिलजाता है । पिता माता की सेवा करते हुए पुत्र को जो फल होता है सो सुनोः—देवताओं और पुण्य के प्रेमी ऋषिजन और तीनों लोक उस के तुष्ट होजाते है । जो पुत्र माता पिता के नित्य पादप्रक्षालन करता है उसका दिनों दिन भागीरथ स्नान हो जाता है । पवित्र मिष्ट मधुर अन्न पानादिक जो माता पिता को खिलाता है । उसको अश्वमेध का फल मिलता है । इसी प्रकार भक्ति से पान बीड़ा देने वाला सर्वज्ञानी हो जाता है । प्रेम से आलाप करने वाले के सिद्धि सब सिद्ध हो जाती हैं ।"

× तत्र गंगा गया तीर्थं तत्र पुष्करमेव च ।
तत्र माता पिता तिष्ठेत्पुत्रस्यापि न संशयः ॥ ६८ ॥
अन्यानि च तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
भजन्ते तानि पुत्रस्य पितुः शुश्रूषणादपि ॥ ६९ ॥
मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत्सुतः ।
तस्य भागीरथी स्नानमहन्यहनि जायते ॥ ७० ॥
(पद्म भूमि खं० अ० ६२)

पद्म पुराण के अतिरिक्त देवीभागवतकारने भी तीर्थों को विशेष मुख्यता देने का ठेका नहीं लिया उस ने भी स्थान २ पर तीर्थों के अन्दर विशेषता न मान कर आत्मा की आन्तरिक स्वच्छता को ही मुख्य माना है अतएव शुकजनक संवाद में जनक कहते है कि+:—

"कुछ तीर्थों में घूम २ और नहा नहा कर भी जब तक चित्त निर्मल नहीं तब तक सब व्यर्थ ही है।"

इसी प्रकार प्रह्लाद च्यवन संवाद में प्रह्लाद के तीर्थ विषयक प्रश्न करने पर च्यवन भी तीर्थों के लक्षण करते हुवे उपरोक्तभाव को ही निम्न प्रकार से दर्शाते हैं।

×हे राजन्! मनवाणी और काय से शुद्ध हुवे मानवों का पद पद पर तीर्थ होता है मलिन चित्तों के लिये गंगा भी चौवच्चे के सदृश है। यदि प्रथम ही

+ भ्रमन्सर्वेषुतीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ॥ २ ॥
निर्मलं नमनोयावत् तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥ ३८ ॥
(भागवत स्क० १ अ० १८)

× च्यवन उवाचः—मनो वाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे।
तथामलिनचित्तानां गंगापि कीकटाधिका ॥ २८ ॥
प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम्।
तदातीर्थानिसर्वाणि पावनानि भवंति वै ॥ २९ ॥
गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्ति नगराणिच।
व्रजाश्चैवाकराग्रामा सर्वेस्खेटास्तथापरे ॥ ३० ॥
निषादानां निवासाश्च कैवर्त्तानां तथापरे।
हूणवंगखशानां च म्लेच्छानांदैत्यसत्तम ॥ ३१ ॥
पिबंतिसर्वदागांगंजलं ब्रह्मोपमंसदा ॥
स्नानंकुर्वन्ति दैत्येन्द्राः त्रिकालंस्वेच्छयाजनाः ॥ ३२ ॥
तत्रैकोऽपिविशुद्धात्मा नभवत्येनमारिष ॥
किंफलंतर्हि तीर्थस्यविषयोपहतात्मसु ॥ ३३ ॥
कारणंमनएवात्रनान्यद्राजन्विचिन्तय ॥
मनःशुद्धिप्रकर्तव्या सततंशुद्धिमिच्छता ॥ ३४ ॥
तीर्थवासीमहापापी भवेत्तत्रान्यवंचनात् ॥
तत्रैवाचरितंपापमानंत्याय कल्पते ॥ ३५ ॥

पाप से रहित और शुद्ध चित्त है तब सभी तीर्थ पवित्र है। गंगा के तीर पर सब स्थानों पर नगर है, ग्राम है, गो व्रज हैं, खेड़े हैं, भीलों के निवास है, मछियारों की बस्तियां हैं, हूण बंगदवश और म्लेच्छों के भी स्थान हैं वे सदा निर्मल गंगा जल पीते हैं तीनों कालों में उसमें नहाते हैं पर उनमें से कोई भी विशुद्ध चित्त नहीं होता। इससे विषय में रत मनों को तीर्थ का कुछ फल नहीं। इसमें कारण मन ही है और कुछ नहीं। शुद्धि चाहने वालेको मनकी ही शुद्धि करनी चाहिए। तीर्थ में रहने वाला बहुत पापी हो जाता है क्योंकि वह वहां औरों को छला ही करता है। वहां किया हुवा पाप सदाके लिये दुख फल देता है। * जिस प्रकार इन्द्र और वरुण देवता का चरु कभी दुष्ट नहीं होता उसी प्रकार भाव दुष्ट पुरुष करोड़ों बार स्नान करके भी शुद्ध नहीं होता। पहले शुद्ध होने के लिये मनकी शुद्धि करनी चाहिये। मन के शुद्ध होने पर द्रव्य की भी शुद्धि रहती है। इसी प्रकार आचार भी शुद्ध होना चाहिये फिर तीर्थ का फल होता है। अन्यथा सब किया कराया क्षण भर में व्यर्थ हो जाता है।

बहुत से लोगों का विश्वास है कि तीर्थ में देवता बसता है देवता का दर्शन मन्दिरों में कर लेने मात्र से तीर्थ का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है अतएव ये तीर्थ एक पवित्र तथा यात्रा योग्य स्थल हैं। परन्तु यह भी केवल भ्रम युक्त कल्पना है। लोगों को तीर्थ पर आते देख रुपये पैसे चढ़ावा लेने के ब्याज से ढोंगी पाखण्डियों ने मन्दिरों का भी पचड़ा तीर्थोंपर व्यर्थ छल जाल फैलाने के लिये

* यथेन्द्रवारुणंपक्कमिष्टंनैवोपजायते ॥
भावदुष्टस्तीर्थेकोटिस्नातोनशुद्धयति ॥ ३६ ॥
प्रथमंमनसः शुद्धिकर्त्तव्याशुद्धिमिच्छता ॥
शुद्धे मनसिद्रव्यस्य शुद्धिर्भवतिनान्यथा ॥ ३७ ॥
तथैवाचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिद्धयति ॥
अन्यथातु कृतंसर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात् ॥ ३८

खड़ा कररखा है वास्तव में ये सब देवालय और मन्दिर आजकल कुकर्म के और पाखण्ड के अड्डे और लुटेरों के डेरे हैं। जहां भांग और सुलफ़े के नशे में चूर पुजारी हरहर बमबम का नाद बजाने वाले शैव तथा बकरा घाती मांस लोलुप व्यभिचारी चण्डी के पुजारी तथा शराब और स्त्रीसंग का परम सुख माननने वाले शिश्नोदर परायण काली के उपासक तान्त्रिक भोले भाले आदमियों को नाना जालों में शतशः प्रकार से फंसाने के लिये द्रव्यरूपी मत्स्य का शिकार करने के लियेसदा घात लगाये बैठे रहते हैं। जिनसे देश की कितनी ही द्रव्य राशि का नाश होता है। जिनके पास पहनने को लंगोटी की भी फिकर न होनी चाहिये थी, वे अब साधु महात्माओं की गद्दियों के मौरूसी मालिक बनकर सहस्रों रुपया फूंक फूंक कर मुक़दमें बाजी में लुटा देते हैं। यदि इसका शतांश भी देश में ज्ञान फैलाने के निमित्त लगा दिया जाता तो अब तक इतनी अविद्या का राज्य न होता।

परन्तु पाठक गण! यह देवता की तीर्थ में स्थिति का भी एक भ्रममूलक ही विश्वास है। पुराणकार भी इसी बात को वास्तविक रूप से समर्थन करता है।

देवीभागवत के सातवें स्कन्द के ३६ सवें अध्याय में देवी कहती है।

"मैं नतो तीर्थों में रहती हूं न कैलास में न वैकुण्ठ में और न कहीं और पर मैं तो ज्ञानी के हृदयकमल में बसती हूं"। *

उपरोक्त उद्धरण इस तीर्थ के रहस्य को दिखलाने के लिये पर्याप्त हैं। इससे

---

* नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित्।
वसामि किंतुमज्ज्ञानि हृदयांभोजमध्यमे॥ १२॥
(देवी भा० स्कं० ७ अ० ३६)

यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकार समझते हैं कि तीर्थादि सभी जड़ोपासना से छल का राज्य बढ़ता है। जैसाकि देवीभागवत वाले ने लिखा है कि+:—

इसी छल प्रवञ्चना को देखकर पुराणकारों ने स्वयं ही अंधविश्वास को शिथिल करने के लिये उपरोक्त प्रकार से सीधा मार्ग कहने में भी कोई संकोच नहीं किया।

\+ तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रान्यवञ्चनात् ॥ ३५ ॥
(दे० भा० स्कं० ४ अ ८)

त्रिंशोऽध्यायः

पुराणों में वैदिकसिद्धान्तों का समर्थन

पुराण के सिद्धान्तमर्म में कुछ है और लोक में प्रचलित कुछ और है। जितनी ... की प्रथाएं हैं, लोग उन पर अन्धविश्वासी हैं। यद्यपि पुराण उन का भी स... करता है, पर वे वहां भी गौण वृत्ति से वर्णित हैं मुख्य सिद्धान्तों की लोगों ने उपेक्षा की हुई है। हम अब यही दिखाना चाहते हैं कि वैदिक सिद्धान्तों को पुराणोंने कितने पाखण्ड को आश्रय देकरें भी वास्तविक वैदिक सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं की।

वर्णव्यवस्था, तीर्थ, मूर्त्तिपूजा और एकेश्वर के बारे में हम पहले पृथक् २ अध्यायों में विस्तार पूर्वक दर्शा चुके हैं। शेष कतिपय सिद्धान्तों को क्रम से यहां दिखाया जाता है।

ईश्वर एक है

वर्त्तमान पौराणिकों को यह विश्वास है कि तीनों वेद पृथक् २ हैं इसी कारण पृथक् २ देवता के उपासक परस्पर लड़ते और झगड़ते हैं।

परन्तु पुराणों का इस विषय में निम्नलिखित सिद्धान्त है।

"एक मूर्त्ति ही तीन देवता ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर हैं तीनों में कुछ अन्तर नहीं परन्तु गुण भेद मात्र है।" *

बराह पुराण में (७२ अ०) में लिखा है कि इन तीनों देवताओं की एक ही में भावना करे पृथक् न समझे। जो पक्षपात से इन को पृथक् समझता है वह घोर नरक में जाता है।" +

---

* एकमूर्त्तिस्त्रयोदेवाः ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
त्रयाणामन्तरंनास्ति गुणभेदः प्रकीर्त्तिताः॥

\+ एतत्त्रयंचैकमेव न पृथक्भावयेत्सुधीः।
योऽन्यथाभावयेदेतत्पक्षपातेन सुव्रत॥ १५॥
स याति नरकं घोरम्॥ (वराह० अ० ७२)

विष्णु पुराण (अंश १, अ० २) में लिखा है:—

"जगत की सृष्टि स्थिति और संहार करने के कारण वही एक भगवान् ब्रह्मा विष्णु और शिव नाम को धारण करता है स्रष्टा ब्रह्मा इस को पैदा करता है विष्णु पालन करता है। अन्त में वही एकशिव बन कर संहार करता है

देवीभागवत में लिखा है:—

"मैं ईश्वर हूं मैं सूत्रात्मा हूं। मैं विराट् हूं। मैं ब्रह्मा विष्णु रुद्र हूं, मैं गौरी ब्राह्मी वैष्णवी शक्ति हूं।"

कूर्मपुराण में लिखा है:—

एक ही होता हुवा देव भी तीन प्रकार से स्थित है। सर्जन करना, रक्षा करना, और प्रलय करना इन तीन गुणों से निर्गुण भी तीन प्रकार का है।" +

इन सभी प्रमाणों से ईश्वर की एकता का ही सिद्धान्त दृढ़ होता है। इस प्रकार एक मात्र परमात्मा के भक्त होकर सम्प्रदाय बना कर झगड़ना सिवाय पाखण्ड के अन्य बात नहीं।

वेद सब के शिरोधार्य हैं

पौराणिकों का यद्यपि वेद ग्रन्थ भी अत्यन्त आदरास्पद है तथापि वेद का पढ़ना पढ़ाना तथा वैदिक क्रिया काण्ड में लाना वे सर्वथा भूल गये हैं। वेदों का स्थान अब उन्हों ने पुराण, जो मिथ्या कथा ग्रन्थ हैं उन को दिया है, वास्तव में पुराण भी वेदों की

× सृष्टिस्थित्यन्तकरणात् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
स संज्ञांयाति भगवान् एकएव जनार्दनः ॥ ५३ ॥
स्रष्टासृजति चात्मानं विष्णुः पालयश्च पाति च।
उपसंह्रियते चान्तेसंहर्त्ता च स्वयंप्रभुः ॥ ३० ॥
(विष्णु अंश० १, अ० २,)

* ईश्वरोऽहंच सूत्रात्माविराडात्माहमस्मिच।
ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौचगौरीब्राह्मी च वैष्णवी ॥ १३ ॥
(दे० भा० स्कं ७ अ० ३३)

+ एकोऽपि सनमहादेवः निधासौसमवस्थितः।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपिनिरञ्जनः ॥ (कूर्म पु० अ० ४)

मुक्त कण्ठ से महिमा गाते हैं। ब्राह्मणों को चेतना चाहिये, सूत मागधोचित कथा ग्रन्थों को त्याग कर विप्रोचित वेदों को फिर से धारण करें।

देवीभागवत में लिखा है:—

"श्रुति स्मृतियों ने जो धर्म कहा है, वही धर्म कहाता है। अन्य शास्त्रों ने जो धर्म कहा है वह, धर्माभास है। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमात्मा से वेद उत्पन्न हुआ है। उस परमात्मा में अज्ञान न होने से श्रुति प्रमाण है। श्रुति के अर्थ को लेकर स्मृति निकली हैं। मन्वादि स्मृतियों को इसीसे प्रमाण समझना चाहिये। कहा कभी २ शास्त्र की बात की झलक दिखा कर कोई कुछ कोई कुछ कहदेता है यद्यपि लोग उसे धर्म कहते हैं। परन्तु फिर भी उसको वैदिक लोग ग्रहण न करें और अन्य शास्त्रकारों के अज्ञानवश होने के कारण अज्ञान के दोष होने से उनके बनाये ग्रन्थ प्रमाण नहीं, इससे मोक्ष चाहने वाले सर्वदा वेद का आश्रय लें। जिस प्रकार राजा की आज्ञा लोक में नहीं तोड़ी जाती है। तो फिर परमात्मा की आज्ञा श्रुति किस प्रकार छोड़ी जा सकती है वेद के धर्म को छोड़ कर जो अन्य धर्म का आश्रय करते हैं राजा उन अधर्मी लोगों को अपने देश से निकाल दें। ब्राह्मण उन के साथ बात भी न करें। द्विज लोग उन्हें पंक्ति में भी न बिठायें। और भी जितने नानाप्रकार के शास्त्र हैं। श्रुतिस्मृति के विरुद्ध सब तामस ही हैं। वाम कापालक भैरवागम ये सब पाखण्ड शिवने मोहन के लिये बनाया है और किसी कारण से नहीं, दक्ष शाप से भृगु के शाप से और दधिचि के शाप से दग्ध होकर अच्छे ब्राह्मण भी वेद मार्ग से बाहर होगये। उन्हीं के ही सहारे के लिये सीढ़ी व सीढ़ी शैव वैष्णव सौर शाक्त गाणपत्य आदि आगम शंकर ने बनाये उन में वेद से विरुद्ध बात भी जगह २ कही है। वैदिक लोगों को उसके ग्रहण में कोई दोष नहीं। परन्तु वे विरुद्ध बातों के ग्रहण में द्विज अधिकारी नहीं, जो वेद के अधिकारी नहीं, वह वहां जाते हैं। इसलिये सब प्रयत्न करके वैदिक वेद का ही आश्रय लें और धर्म सहित ज्ञानस्वरूप ब्रह्म का प्रकाश करें। ×

× श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंयत्सधर्मः प्रकीर्तितः।
अन्यशास्त्रेणयःप्रोक्तःधर्माभासः स उच्यते ॥ १५ ॥
सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तोवेदः समुत्थितः।
अज्ञानस्यममाभावाद्प्रमाणा नच श्रुतिः ॥ १६ ॥

यह उपरोक्त बात भांग पीकर लिखी गयी दीखती है। क्योंकि परस्पर विरोध भी इसमें दीखता है। पहले कहा "सोऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकः" फिर पीछे कहते हैं "वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित्" ॥

वेद की ही पुष्टि में देवी भागवत कहता है:—

वेद स्मृति तथा अन्यतन्त्र इन तीनों में जहां विरोध हो श्रुति ही वहां प्रमाण है। दो का विरोध हो तो स्मृति अच्छी है। और जहां श्रुति दो प्रकार की मिले

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः।
मन्वादीनां स्मृतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥ १७ ॥
क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थं कटाक्षेण परोदितम्।
धर्मं वदन्ति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥ १८ ॥
अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानप्रभवत्वतः।
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥ १९ ॥
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत्।
राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥ २० ॥
सर्वेशान्याममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः
मदाज्ञा रक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥
यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत्।
राजा प्रवासयेदेतान्निजाद्देशादधर्मिणः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणैर्न च संभाष्या पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः।
अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥ २६ ॥
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः।
वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ॥ २७ ॥
शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः।
दक्षशापात् भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः ॥ २८ ॥
दग्धा ये ब्राह्मणवराः वेदमार्गबहिष्कृताः।
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥ २९ ॥
शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च।
गाणपत्या आगमाश्चैव प्रणीताः शंकरेण तु ॥ ३० ॥
तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित्।
वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥ ३१ ॥
सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥ ३१ ॥

वहां दोनों ही धर्म हैं। यदि दो प्रकार की स्मृति मिले तो, दोनों का विषय, पृथक् २ समझना चाहिये। पुराणों में कहीं २ तन्त्र के अनुसार भी धर्म कहा गया है, उस को कभी ग्रहण न करे। वेद से विरोध न करने वाला तन्त्र निःसन्देह प्रमाण है। श्रुति विरुद्ध कर्म भी प्रमाण नहीं। धर्म मार्ग में प्रमाण केवल वेद ही प्रमाण है। जो वेदधर्म को छोड़ कर अन्य को प्रमाण मानता है उसके लिये यमलोक (नरक) कुण्ड दण्डार्थ तैयार हैं। इस लिये सर्व प्रयत्नों से वेदोक्त धर्म का आश्रय लेवे।"

इसी प्रकार अन्यत्र भी देवीभागवत कहता है—

"व्यासने अल्पायु और अल्पमति ब्राह्मणों के लिये पुराण बनाया है। स्त्री शूद्र नीच और द्विजों के लिये पुराण बनाया है जिनको वेद श्रवण का अधिकार नहीं॥" +

---

* विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम्।
श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्यात् द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥ २२॥
श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्पयतां पृथक्॥ २३॥
पुराणेषु क्वचिच्चैव तन्त्रसृष्टं यथातथम्।
धर्मं वदन्ति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथंचन॥ २४॥
वेदाविरोधि चेत्तन्त्रं तत्प्रमाणमसंशयः।
प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च॥ २५॥
सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः।
तेनाविरुद्धं यत्किञ्चित्तत्प्रमाणं न चान्यथा॥ २६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत्।
वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा॥ ३२॥
(दे० भा० स्कं० ११ अ० १)

अल्पायुषोऽल्पबुद्धीन् विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे॥ २०॥
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥ २१॥
(दे० भा० स्कं १ अ० ३।)

मूर्त्ति को पूजने वाला नीच है	मूर्त्ति के पूजन विषय में विस्तार से लिख आये हैं। कुछ प्रसङ्गागत यहां भी देखिये। पौराणिक लोग मन्दिर और मन्दिर में बनी मूर्त्ति के बहुत भक्त हैं। इन्हीं पत्थरों में

अपने सिर रगड़ने और उस पर पैसा चढ़ाने में ही अपना सर्वस्वधर्म समझते हैं। परन्तु सच देखा जाय तो इस का रहस्य कुछ और ही है। आलसी ब्राह्मणों ने पेटपूजा का यह एक तरीका निकाला है। अपने परिश्रम से न कमा कर देवता के नाम पर पेट पालते हैं। पुजारी लोग देवता का चढ़ावा, आप अपने पेट में डालते हैं। उस से प्राप्त रुपयादि अपने स्वार्थभोग में लगाते हैं। इससे उन्हें वास्तविक शान्ति भी उपलब्ध नहीं होती। जैसा कि महाभारत में लिखा है कि:—

मट्टी, शिला, धातु, काठ, आदि की मूर्ति में ईश्वर बुद्धि करने वाले जो मूढ व्यर्थ तप से अपने को कष्ट देते हैं वे शान्ति नहीं पाते। तीर्थों में और पशु द्वारा किये यज्ञों में और पत्थर काठ की और मिट्टी की प्रतिमादिकों में जिन का मन है वे मूढ ही हैं। *

उत्तरगीता में भी लिखा है:—

आत्मध्यान में लगे हुवे योगी पानी के तीर्थों और पाषाणमय देवों के समीप नहीं जाते×।

"कुमारतन्त्र में लिखा है—"सहजावस्था अर्थात् स्वाभाविक अनुचिन्तन उत्तम है, ध्यान धारणा मध्यम और जपस्तुति अधम और मूर्त्ति पूजा अधम से भी अधम है।" + ठीक है भागवत भी ऐसा ही कहता है कि:—

• मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यन्तितपसामूढाः परांशान्तिं न यान्ति ते ॥
तीर्थेषुपशुयज्ञेषुकाष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमायांमनोयेषां तेनरामूढचेतसः ॥ महाभारतम् ॥

× उत्तमासहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
जपः स्तुतिस्यादधमा मूर्त्तिपूजाधमाधमा ॥ कु० तन्त्र० ।

+ तीर्थानितोयरूपाणि देवान् पाषाणमृण्मयान्।
योगिनोनप्रपद्यन्ते आत्मध्यानपरायणाः ॥ उ० गी० ॥ ६० ॥

"तीर्थ जलमय नहीं और देवता मट्टी और शिला के बने हुवे नहीं होते" × मैं सभी भूतों में सदा समानभाव से रहता हूं इस बात को जानकर मेरी मूर्ति बनाकर पूजना ढोंग है* ।"

" जो भी मुझको सब भूतों में विद्यमान होते हुए परमात्मा का त्याग करके मूर्ति पूजा में लगाता है वह मानों राख में आहुति डालता है+ ।"

जिसको तीन धातुओं के बने देह में आत्माभिमान कलत्रादिक में ममता और मिट्टी आदिकी बनी हुई मूर्तियों में देवता बुद्धि और पानीमें तीर्थ बुद्धि है। वह विद्वान लोगों में गौओं में गधे के सदृश है÷ ।

इसी प्रकार वे पुजारी जो अपने आप मन्दिर के महन्त बनकर सारे जन समाज के धर्मको लेकर बैठते हैं । और मदिर पर चढ़ावा सीदा सामग्री तथा रुपया पैसा संग्रह कर जीवन बिताते हैं बहुत नीच समझे जाते हैं । वे देव लोक कहाते हैं ।

जैसाकि विष्णु पुराण में लिखा है

देव लोक को श्राद्ध में स्थान नहीं देना चाहिये । ४०१

× नह्यम्मयानितीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः ॥

(भाग० १०, स्क०, अ० श्लो० ११)

* अहं सर्वेषुभूतेषुभूतात्माऽवस्थितः ।
समवज्ञायमांमर्त्यः कुरुतेर्चाविडम्बनाम् ॥ २० ॥

\+ योमांसर्वेषुभूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चांभजतेमौढ्याद् भस्मन्येवजुहोतिसः ॥ २१ ॥

(भाग० स्क० ३ अ० २६)

÷ यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातौ ।
स्वधीःकलत्रादिषुभौमइज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिसलिलेनकर्हिचित् ।
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

(भाग० स्क० १०,८४,१३)

(४) तथा देवलकश्चैव श्राद्धे नार्हतिकेतनम् ॥ ८ ॥

(विष्णु० अ० ३ अ० १५)

मनुभगवान भी लिखते हैं कि:

असिजीवी जीवी देवल और ग्राम याजक धावक और पाचक ये द्विज शूद्र की तरह हैं × देवीभागवत में भी देवलोक को ही बतलाया गया है। तो विचारणीय बात है कि जब मन्दिर का पुजारी ही दूषित है तब मूर्तिपूजा किस प्रकार से श्रेष्ठ हो सकती है।

स्त्री शिक्षा

पुराणों में स्त्री और शूद्र को वेद के पढ़ने का अधिकार नहीं दिया प्रत्युत उनको केवल भोग का साधन मात्र तथा, संसार के सुखों में सब से प्रबल प्रलोभन ही माना है यही सनातनाभिमानी पुराण धन अन्ध विश्वासी मूर्ति पूजकों का भी आग्रह है। परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो यह स्त्री जाति पर कठोर तथा नीचबुद्धि भ्रष्टाचारियों की लेखनी का अपराध है। वास्तव में ऐसा नहीं है प्राचीन कथाओं में हमें कहीं भी ऐसा नहीं मिलता। प्रत्येक कुमारी का कौमारावस्था में विद्या और कला में निपुण हो कर पूर्ण युवती हो कर विवाह होता था। विद्या पढ़ना भी उसके बाल्यकाल तथा विवाह से पूर्व अवस्था का एक आवश्यक कार्य होता था। जिस प्रकार मार्कण्डेय पुराण में मंदालसा की कथा अतिरोचक है। मंदालसा ऋषि कन्या का ज्ञानसागर भी परिमित न था। परन्तु बाद में स्वार्थी लोगों के वश चलने पर बाल विवाह तथा स्त्रियों को अबोध रखने की प्रथा भी भारतदेश में बहुत प्रबलता से फैल गयी। अर्वाचीन संगठित पुराण जैसे स्कान्द ब्राह्म भविष्य नारद इनमें इस प्रकार की बातें और स्वार्थकपोलकल्पनाएं बहुत हैं। शेषों में भी बहुत हैं प्राचीन काल में ऐसा न था इस को दर्शाने के लिये हम पुराणों से ही कुछ उद्धृत करते हैं।

देवी भागवत् में सवित्री के प्रतियम कहता है।

"हे वत्से! अभी तू द्वादश वर्षीया कन्या है और योगी ज्ञानी विद्वानों का ज्ञान भी तुझे प्राप्त है।" *

× असिजीवीमसिजीवीदेवलोग्रामयाजकः।
धावकः पाचकश्चैवषडेतेशूद्रवद्द्विजाः॥

* कन्याद्वादश वर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना।
ज्ञानंते पूर्वविदुषां ज्ञानिनांयोगिनां परम्॥ २॥
(दे० भा० स्क० ६ अ० २६)

इसी प्रकार रक्तबीज और चामुण्डा के संवाद में रक्तबीज कहता है:—

"तैने वृद्धों की सेवा की है, तैने पहले नीति शास्त्र सुने हैं, अर्थ विज्ञान पढ़ा है, विद्वानों की सभाओं में तैने भाग लिया है, तुझे साहित्यशास्त्र का विज्ञान होगा। मेरा ज्ञान से युक्त सत्यवचन सुन।" ×

सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त प्राचीन काल में स्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर युद्ध की शिक्षा भी दी जाती थीं जैसाकि कल्कि पुराण में लिखा है:— कि "उनकी स्त्रियें रथों गजों विमानों गधों बैलों पर चढ़ी हुयीं अपने पति और पुत्रों की सुख तथा घरबार को छोड़ कर युद्ध करने के लिये उपस्थित हुई। +

स्वयंवर की प्रथा

प्राचीन काल में स्वयंवर की प्रथा बहुत प्रचलित थी इस में संदेह नहीं। परन्तु आज कल कन्या की तरफ से स्वयंवार का नाम लेना ही पौराणिक मण्डल में हल चल मचा देता है। इस अज्ञानता का कारण यह है कि भारत सन्तान में स्त्रियों की स्वतन्त्रता को इतनी प्रबलता से कुचला गया है कि स्त्रियों को जीवन भर जिह्वा हिलाने का अवसर नहीं मिलता इसी का परिणाम है कि सन्तानें इतनी पराधीन तथा दब्बू होती हैं कि उनका किसी प्रकार निरवधिक पराधीनता के भी विरुद्ध आवाज उठाने में साहस नहीं होता। वास्तव में पुत्र माताओं के ही प्रतिरूप होते हैं। पुराण स्वयं कोई स्वयंवर का विरोध नहीं करते प्रत्युत उस का समर्थन ही करते हैं।

× वृद्धाश्चसेविता पूर्वं नीतिशास्त्रं त्वया श्रुतम्।
पठितश्चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठी कृताऽथवा ॥ ५४ ॥
साहित्यतंत्र विज्ञानं चेदस्तिनवसुन्दरि।
शृणुवचनं पथ्यंतथ्यंप्रमितिवृंहितम् ॥ ५५ ॥
(दे० भा० स्क० ६ अ० २६)

\+ तेषां स्त्रियो रथारूढागजारूढा विहंगमान्।
समारूढा हयारूढाः खरोष्ट्रवृषवाहनाः ॥ ११ ॥
योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वापत्यापत्यसुखाश्रयान् ॥ १२ ॥
[कल्कि० अ० ३, श्लो० १]

देवीभागवत में काशीराजपुत्री का स्वयंवर लिखा है।

×काशीराजपुत्री भीष्म से छूट कर शाल्वराज के पास जा कर बोली:—

तेरे चित्त की मुझे समझकर भीष्म ने मुक्त किया है। हे महाराज! मैं तेरे पास आई हूं। मेरा पाणिग्रहण कर मैं तुम्हारी धर्मपत्नी बनूंगी मैंने ही तुझ को पहले सोचा था तूने भी मेरे ही को अपनाया था। यद्यपि अन्य भी बहुत से महा-सम्पतिशाली राजा लोग हैं तो भी वे मुझे पसन्द नहीं, मुझे तो यही राजा राज्य हीन होता हुआ भी इष्ट ही है।

"विद्वान लोगों ने स्वयंवर तीन प्रकार का कहा है। राजाओं का विवाह स्वयंवर से ही होना चाहिये अन्यों का नहीं। एक इच्छा स्वयंवर दूसरा पणस्वयंवर तीसरा शौर्य स्वयंवर। राम का धनुष तोड़कर स्वयंवर करना पण स्वयंवर था"*

पुराण में नियोग वा क्षेत्रज की प्रथा

स्वामी दयानन्द के प्रदर्शित नियोग प्रथासे सनातनी पौराणिक एकाएक बहुत घबरा गये हैं। नियोग का नाम सुन कर ही पौराणिक लोग ऐसा भय खाते है जैसे उन को कोई पाप का उपदेश हो रहा हो। परन्तु यह केवल उनका भ्रममात्र है।

नियोग की पवित्र प्रथा को वे अभी समझे नहीं। अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं केवल इतना कहना ही आवश्यक है कि नियोग रीतिसे पुत्र का उत्पन्न करना या दूसरे शब्दों में क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करना दोनों एक ही बात है। मनु ने

× विनिर्मुक्तास्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः।
आगतास्मिमहाराज! गृहाणाद्यकरंमम॥ ४३॥
धर्मपत्नी तवात्यन्तं भवामिनृपसत्तम॥
चिन्तितोऽस्मिमयापूर्वं त्वयाहं नात्र संशयः॥ ४४॥
[दे० भा० स्कं० ९ अ० २०]

* स्वयंवरस्तु त्रिविधोविद्वद्भिः परिकीर्त्तितः।
राज्ञांविवाह योग्योवैनान्येषां कथितः किल,॥ १४॥
इच्छा स्वयंवरश्चैको द्वितीयश्चपणाभिधः।
यथा रामेण भग्नंवैत्र्यम्बकस्य शरासनम्॥ ४२॥
तृतीयशौर्यशुल्कश्च शूराणांपरिकीर्त्तितः।
इच्छा स्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः॥ ४३॥
(दे० भा० स्कं० ३, अ० १८)

स्त्र। क्षेत्रज पुत्र की आज्ञा दी है । इसी प्रकार अन्य स्मृतिकार याज्ञवल्क्यादि कों ने क्षेत्रज पुत्र को समर्थन ही किया है । इस बात की पुराणकार भी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकते थे । क्योंकि ये पुत्र का उत्पन्न करना कोई कामोपभोग शान्ति के लिये नहीं, प्रत्युत गोत्र का नाम रखने के लिये होता है । इस लिये क्षेत्रज पुत्र भी औरस पुत्र से न्यून नहीं है ।

प्राचीन काल में राजाओं के कितने ही गोत्र इस नियोगज पुत्र या क्षेत्रज पुत्र के आधार पर ही अभी तक भी स्थिर हैं शुद्ध क्षत्रिय वंश तो पुराणों के अनुसार अब कोई हो ही नहीं सकता ।

हम ही पुराण के सर्वस्व मानने वाले पौराणिकों से पूछते हैं कि तुम वीर्य को ही वर्ण में और जाति में प्रयोजक मानते हो तो कहो जब जामदग्न्य ने सर्व क्षत्रियों का सर्वथा संहार किया तो फिर क्षत्रिय कहां से पैदा हुये । इसी प्रकार जामदग्न्य के २१ बार क्षत्रसंहार के अनन्तर यही शंका पैदा होती है कि क्षत्रिय कहां से पैदा हुये । है कोई उत्तर ? नहीं तो अब सुनिये उत्तरः—

महाभारत आदि पर्व में भीष्म कहते हैं:—

भार्गवने जब २१ बार निःक्षत्रिया पृथ्वी की थी तब वेदपारग ब्राह्मणों से क्षत्रिया रानियों ने नियोग किया । क्योंकि वेदमें भी पाणि ग्रहण करने वाले के नाम से पुत्र बनता है इससे क्षत्रियवंश फिर चल पड़ा । क्षत्रियों में पुनर्भव की रीति सुनी ही जाती है । +

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया मही ।
पुनमुत्सावचैरस्त्रैर्भार्गवेणमहात्मना ॥ ४
एवंनिःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा ।
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥
पाणिग्राहस्यतनय इति वेदेषुभावितम् ।
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्तान् समभ्ययुः ६ ॥
लोकेयथाचरितोदृष्टः क्षत्रियाणांपुनर्भवः ।
ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत्तदा ॥ ७ ॥

इसी प्रकार हम दूसरा प्रश्न पूछते हैं कि:—

हे पौराणिको ! बताओ, और्व की उत्पत्ति कैसे हुई ? क्या यह क्षत्रिय राज कन्या में पराशर से नियोग द्वारा नहीं हुई ।

इसी प्रकार हम तीसरा प्रश्न पूछते हैं कि:-

हे पौराणिको, बताओ, अङ्ग वंग कलिङ्ग पुण्ड्र सुह्म आदि देश किस प्रकार प्रसिद्ध हुये, क्या इन के बनाने वाले अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग सुह्म पुण्ड्र नाम के प्रतापशाली राजपुत्र काशीराजबलि की धर्मपत्नी सुदेष्णा में दीर्घतमा के नियोग से पैदा नहीं हुये थे ? इसमें निम्नलिखित प्रमाण देखिये +

(महाभारत आदि० अ० १०४)

नियोग प्रथा के नाम को कलङ्कित करने के लिये सम्पूर्ण भारत वर्ष इस समय प्रमाण में बैठा है । इस से अधिक हम क्या कहें, जब कि सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति इस पक्ष को समर्थन करने तथा रक्षा करने पर सम्बद्ध है ।

महाभारत के आदिपर्व १०६ अ० में व्यास ने विचित्र वीर्य की स्त्रियों से जो नियोग द्वारा पुत्रोत्पादन किया उसका पूरा वृत्तान्त देवीभागवत के स्कं० ६ अ० २४ में भी वैसा का वैसा ही दिया है ×

\+ ततः प्रसादयामास पुनस्तं मुनिसत्तमम् ।
बलिः सुदेष्णां स्वां भार्यां तस्मै स प्राहिणोत्पुनः ॥ ४६ ॥
तां तु शीर्णतमाङ्गं तु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत् ।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः ॥ ५७ ॥
अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः ।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ॥ ५८ ॥

× काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः ॥
स चो विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते ॥ ४३ ॥
तास्वां संगम्य मेधाविन् पुत्रानुत्पादनं कुरु ।
रक्षस्व भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कश्चित् ॥ ४४ ॥
द्वैपायनविचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयानघ ।
मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथा सुखम् ॥ ५५ ॥

(देवी. भा० स्कं० ६ अ० २४)

"इसी प्रकार प्रथम में भी भीष्म ने सत्यवती को यही सम्मति दी थी"।

कुलीन द्विज को बुलाकर पुत्रवधू के साथ सुला दो कुलरक्षा करने के प्रयोजन से इस विधि में वेदानुसार भी कोई दोष नहीं, इस प्रकार अपना पौत्र पैदा कराकर उस को राज्य दे दें" (१)

जब स्वयं ही देवीभागवत पुराण इस विधि को वेदोक्त मानता है, पौराणिक होकर नियोग के विरुद्ध कटाक्ष या आक्षेप करना मात्र भी सनातनाभिमानी को लज्जाजनक है।

अथवा रामायण में कल्माषपाद के पुत्र अश्मक की कथा हमने लिखी है वह भी वसिष्ठ के नियोग से हुआ, यह भी पाठक विष्णुपुराण से देखलें। + इतिहास में से और भी बहुत से उदाहरण निकाले जा सकते हैं।

पशुयज्ञ या मांस बलि

इस ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में महाभारत से हमने सिद्ध किया था कि यज्ञ में पशुहिंसा धूर्तों का चक्र है। यहां भी पुराणों के उल्लेख से यही बात पुष्ट करता हूं।

देवीभागवत में ७ वें स्कन्द के १६ अध्याय में शुनःशेप और अजीगर्त की कथा, छेड़ी है। वहां शुनःशेप की रक्षा के निमित्त शुनःशेप को रोते चिल्लाते देख विश्वामित्र हरिश्चन्द्र राजा से कहते हैं। कि:—

(१) कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय।
तत्रदोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल ॥ ६० ॥
पौत्रं चैवसमुत्पाद्य राज्यं देहिशुचिस्मिते ॥
(देवी० भा० स्क०, अ० २०, श्लो० ६,६१)

ततस्तस्य द्वादशाब्दपर्यये विमुक्तशापस्य स्त्री,
विषयाभिलाषिणीमदयं स्मारयामास ॥ ३७ ॥
ततश्चापरमसौख्यसंभोगंतत्याज वसिष्ठश्चापुत्रिणा
राज्ञापुत्रार्थमभ्यर्थितोमदयंत्यांगर्भाधानं चकार।
यदा च सप्तवर्षाण्यसौगर्भोनजज्ञे।
ततस्तंगर्भमश्मना सादेवीजघान पुत्रश्चाजायत
तस्यचाश्मकइत्येवनामाभवत् ॥ ३८ ॥ (विष्णु० अं०४ अ० ४)

"हे राजन् रोते हुवे शुनः शेप को छोड़ दे, तेरा यज्ञ बिना इसके रोगरहित और पूर्ण भी हो जायगा। दया सदृश पुण्य नहीं और हिंसा सदृश पाप नहीं। यह चोदना केवल राजा लोगों के लिये समस्त शुभ चाहने वाले को चाहिये कि अपने देह की रक्षा के लिये दूसरे के देह का नाश न करें।"

वायु पुराण अ० ५६ श्लो० १००—१२४ में पूर्वोक्त वसु राजा की कथा ज्यों की त्यों उद्धृत है। जिससे ज्ञात होता है कि पुराणकार भी पशुहिंसा आर्यमत से सम्मत नहीं। उसे हम दूसरी बार विस्तारभय से उद्धृत नहीं करते।

दासों का बेचना प्राचीनकाल में राज नियम से पाप था

दासकी तरह पुत्रादिकों या किसी को भी बेचना सर्वथा पाप समझा जाता था। यह कोई नयी बात नहीं है। परन्तु इस मनुष्य जाति की वास्तविक स्वतन्त्रता का ऋषियों ने प्राचीन काल में ही अनुभव किया था।

देवीभागवत में शुनः शेप की कथा के उपसंहार में विश्वामित्र हरिश्चन्द्र से कहते हैं:—

"देश के बीच में होने वाले पाप का छटा भाग राजा को भोगना पड़ता है। इस में संदेह नहीं। तुझ राजा को पहले ही इसे रोकना चाहिये था कि यह अपने पुत्र को न बेचे। तैने पुत्र को बेचते हुवे इसे क्यों नहीं रोका। तू सूर्यवंश में पैदा होकर त्रिशंकु का पुत्र होकर और आर्य होकर अनार्य की तरह कार्य करना चाहता है।×

' राजन् मुञ्चशुनःशेपं रुदन्तंभृशदुःखितम्।
क्रतुस्तेभवितापूर्णो रोगनाशश्चसर्वथा॥ ३९॥
दयासमं नास्तिपुण्यं पापंहिंसासमं नहि।
राज्ञिणांरोचनार्थाय चोदनेयंविचार्यताम्॥ ४०॥
आत्मदेहस्यरक्षार्थंपरदेहविकृन्तनम्।
नकर्त्तव्यम्महाराज सर्वतः शुभमिच्छता॥ ४१॥

× देशमध्येचयःकश्चित् पापकर्मसमाचरेत्।
षष्ठांशस्तस्यपापस्य राज्ञाभुक्तो न संशयः॥ ४९॥
निरोधनीयोराज्ञासौ पापंकर्तुं समुद्यतः॥
नजिषिद्धस्त्वया कस्मात् पुत्रंविक्रेतुमुद्यतः॥ ५०॥
सूर्यवंशेसमुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः।
आर्यश्चनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव॥ ५१॥

इस से प्रतीत होता है कि आर्यजाति की यह प्रथा नहीं थी कि कोई किसी को बेचे। प्रत्युत अनार्य कर्म था। और इसी प्रकार नरबलि भी अनार्य ही थी।

एवं संक्षेप से हमने वैदिक सिद्धान्तों का उपदेश किया। शेष पाठक स्वयं भी विचारेंगे।

एकविंशोऽध्यायः ।

पौराणिक देवताओं का चरित्र.

साम्प्रदायिक पाखण्ड ने पुराणों में व्यास जी की ओट लेकर इतना अनर्थ खड़ा किया है कि बड़े २ महात्माओं तथा ऋषियों के चरित्रों को अनर्गल लेखनी से कलङ्कित किया है । इसके नमूने हम प्रथम अध्याय में भी स्थान २ पर दिखा आये हैं, अब कतिपय निदर्शन और भी देखिये ।

इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास भी पञ्चम वेद तथा ज्ञानोपदेश और धर्मोपदेशों के देनेका साधन होने से तथा कर्म और लोक व्यवहार के ज्ञान का एक अपूर्व द्वार होने से एक बड़ा श्रद्धा तथा वेद कहलाने के योग्य ज्ञान का भाग है । इसी से प्राचीनों ने इसे इतिहास का पांचवां वेद मानकर इसकी श्लाघा की, इसमें सन्देह नहीं । पुराण भी इतिहास के एक भाग होने से भारतीयजनता में ये भी उसी मान्य पद को प्राप्त हैं जिस पद को स्वयं वे भगवान प्राप्त हैं नहीं २ वेद भगवान को एक अन्धकारमय कोठे में बन्द करके केवल पुराण की ही सर्वस्व विजयपताका मनायी जा रही है । जो पुराण प्रथम वेद का एक अंग तथा कथोपकथन से या सृष्टि के उत्पत्ति और प्रलय के सिद्धान्त को विशद करने के लिये परमोपयोगी भी होकर वेद के प्रकाश के लिये एक साधनमात्र समझे जाते थे । वे ही अब अंगी रूप वेद के लुप्त हो जाने पर स्वयं कुनीति आग के धूम पटल के सदृश चतुर्दिकमें अन्धकार फैलाने तथा चक्षुष्मान पुरुषों के भी चक्षुओं में भ्रम तथा अज्ञान के तिमिर का एक मात्र कारण बनरहे हैं । गत अध्यायों में हमने दिखाया था कि ये पुराण प्राचीन नहीं हैं । प्राचीन पुराण ये ही ब्राह्मण भाग हैं जिनमें सृष्टि की प्रलय तथा उत्पत्ति का विषय विशद किया है यही वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य का भी मत पूर्व उद्धरण कर आये हैं परन्तु उस उत्पत्ति तथा प्रलय को लेश मात्र स्पर्श करके शेष प्रपञ्च फैलाने वाले साम्प्रदायिक गद्दीदार कथक्कड़ सूत मागध नामधारी व्यासों ने देवताओं में और मनुष्यों का परस्पर जोड़ तोड़ मिलाकर ऐसा जाल बिछाया है जिसको समझाना बहुत कठिन है । इसीकारण इस में बहुत से विरोध तथा एक दूसरे के प्रति घृणा भाव राग द्वेष की अधिकता एक दूसरे के देवताओं का

अपमान, असम्भव कथायें तथा मान्यगण्य पुरुषों पर मिथ्या कलंक प्रक्षेप तथा ग्राम्य अश्लीलता का बहुत ही निःशङ्कतया प्रदर्शन कराया गया है जिनमें से देवता और मान्य व्यक्तियों के कुछ चरित्र का अवलोकन पर एक मात्र दृष्टि देना इस अध्याय का प्रयोजन है।

विष्णुदेव

महाविष्णु की उत्पत्ति—ब्रह्मवैवर्त पुराण में सृष्टि उत्पत्ति को कृष्ण से ही पैदा किया है। परन्तु पुराणकार ने भ्रष्टता का कुछ भी विचार न कर यथेच्छाचार ही को प्रधानता दी है। आप लिखते हैं कि सब देवताओं की समाज में चारों ओर खड़ी थीं। अग्नि वायु आदि की स्त्रियें भी उनके पार्श्व में थीं मध्य में कृष्ण थे, उनका वीर्य स्खलन हो गया। लज्जा से कृष्ण ने उसे पानी में छोड़ दिया और वहां १००० वर्ष के बाद वह बच्चा हुआ। और विराट् हो गया और वही कृष्ण परमात्मा का यहां विष्णु अवतार जानना चाहिये। (१)

विष्णु का छल—यज्ञदानादि वैदिक कर्म में प्रवृत्त दैत्य दानव अर्थात् दिति और दनु के पुत्रों को देखकर ईर्षा से भड़ककर देवतालोग विष्णु के पास गये। विष्णु ने दैत्यों को छलने के लिये मायामोह का रूप धारण किया और सब को बौद्ध तथा जैन बना दिया। **द्वितीय छल**:—बलि जो एक धार्मिक राजा था उसको छलने के लिये वामन का रूप धारण किया। **तीसरा छल**:—समुद्र मथन में दैत्यदानवों को अमृत भाग न मिल जाय इस ईर्षा के भाव से मोहिनी स्त्री का रूप धारण किया। यह सब हम स्पष्टतया अवतार प्रकरण में दिखा चुके हैं।

फिर भी दिग्दर्शन के लिये कुछ उद्धरण देते हैं। कृष्ण के चरित्र को पुराणकारों ने जितनी भी भक्ति से देखा उस को उतनी ही अश्लीलता से भरने का प्रयत्न किया। किसी का भी प्रत्यक्ष में मैथुन वर्णन करना या नाटक में दिखाना अभव्य समझा जाता है। इसी प्रकार जुगुप्सा जनक शब्दों का प्रयोग भी बहुत

---

(१) कृष्णस्य कामबाणेन रेतः पातो बभूव ह।
जले तत्र्यजल्लज्जो लज्जया सुरसंसदि॥ २३॥
(ब्रह्मवैवर्त ब्र० खं० अ ४)

ग्राम्य तथा सदाचार और शिष्टाचार के विरुद्ध कहा है परन्तु पुराणकारों ने शृंगार कोश गन्दगी ऐसी लिखी है कि जिसका सुनना और मुख से निकालना तथा हृदय में विचारना भी अत्यन्त घृणाजनक तथा सभ्यता की मर्यादा को उल्लंघन कर गया है । हम उस जनता को सचेत कर देना चाहते हैं जो पुराणों के झूठे जादू से मोहित किये गए हैं । वे आंखें खोल कर पढ़ें कि उनके अभिमत देवताओं और इष्ट पुरुषाओं को किस प्रकार का भोग विलासी तथा अत्यन्त ग्राम्य धर्मरत बनाया गया है । ये सब धूर्तता और पाखण्ड की पोल है ।

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में कृष्ण चरित्र भी वर्णित है ।

उसमें कृष्ण को प्रवीण भक्त से कृष्ण को वेश्यागामी से कम नहीं रखा । कृष्ण के उपभोग के लिये अनन्त गोलोक और उस में अनन्त गोपियों के साथ खुले बाजार भोग का दृश्य दिखाया है ।

नारद जाबाली उग्रतपा हरिलोम आदि सहस्रों मुनियों को गोपी बनाकर कृष्ण से भोग कराया गया है । पाताल खण्ड का २१ वां अध्याय इसी से भरा हुआ है । जिसके हम अनुवादन कर केवल मात्र उदाहरण देते हैं जिनका अर्थ करना अति अश्लील होने से हमारी लेखनी ऐसा दुष्कर्म करने से घबराती है । ठीक भी है "कथापि खलुपापानामलमश्रेयसे पुनः"

(१) ईश्वर उवाच:—

आसीदुग्रतपो नाममुनिरेको दृढव्रतः ।
साग्निको ह्यग्निभक्तश्च चचारात्यद्भुतंतपः ॥
दध्यौ च श्यामलं कृष्णं रासोन्मत्तंवरोत्सुकम् ।
पीतपटधरं वेणुं करेणाधरमर्पितम् ॥
नवयौवनसम्पन्नं स्पन्दन्तंपाणिनाप्रिया ।
एवंध्यानपरः कल्पशतान्ते देहमुत्सृजन् ॥
सुनन्दा नाम गोपस्य कन्याभूत् सुमहामुतिः ।
(२) मुनिरन्यः सत्यतपाः इतिख्यातोमहातपाः ।
सशुष्कपत्रभुक्‌योगे भजनाप परं पसुम् ॥

रयन्तं कामबीजेन पुटितञ्चदशाक्षरम् ।
समद्ध्यौ मुनिवरश्चित्रवेषधरं हरिम् ॥
शृङ्गारमाधादीवल्लीर्हितपंकङ्कणोज्ज्वलम् ।
नृत्यन्तं तन्मुदंतं च श्लिष्यन्तञ्च मुहुर्मुहुः ॥
दश कल्पान्तरे चायं जातो नन्दवनादिह ।
सुभद्रनाम्नोगोपस्य कन्या भद्रेति विश्रुता ॥
(३) हरिधामाभिधानस्तु कश्चिदासोन्महामुनिः ।
दध्यौ वृन्दावने रम्ये माधवी मण्डमस्थम् ॥
उत्तानशायिनंचारुपल्लवास्तरणोपरि ।
कदाचिदनिकामार्त्तं वल्लव्या रक्तनेत्रया ॥
वक्षोजयुगमाच्छाद्यविपुलोरःस्थलं मुहुः ।
संचुम्ब्यमानं गण्डान्तस्तल्पयानं वदच्छुरम् ॥
कलयन्तं मिथा दोर्भ्यां सहासंसमुदाद्भुतम् ।
समुनिश्चबहून् देहांस्त्यक्त्वा कल्पत्रयान्तरे ॥
सारङ्गनाम्नोभूपस्य कन्याभूत् शुभलक्षणा ।
(४) बृहद्वादीमुनिः कश्चिज्जाबालिरिति विश्रुतः ।
दध्यौपरमभावेन कृष्णयानन्दरूपिणम् ॥
चरंतं ब्रजवीथीषु विचित्रगतिलीलया ।
श्लथन्तीभिरागत्य सहसालिङ्गिताङ्ककम् ॥
नकल्पान्तरे जातामे कुलेदिव्यरूपिणी ।
कन्याप्रचण्डनाम्नस्तु गोपस्यातियशस्विनी ॥
(५) अपरेमुनिवर्यास्तु सततं पूतमानसाः ।
अथ कल्पान्तरे देहत्यक्त्वा जाताइहाधुना ॥
यासांकर्णेषुदृश्यन्तेताटङ्कारत्ननिर्मिताः ।

इसी प्रकार इस सम्पूर्ण अध्याय में मुनियों को गोपी बनाया गया । कृष्ण को कामी चित्रित किया है । पाठकों के सामने संक्षेप से उद्धृत किया गया । पाठक मूल में देखलें ।

ब्रह्मा देवः—

तीन देवों में एक देव ब्रह्मा है इनका आचार अधिक क्या कहें ।

पौराणिकों ने कन्यागामी का दोष इन पर आरोपित किया है । जैसा ब्रह्मवैवर्त्त में लिखा है:—

> क्षणेन चेतनाम्प्राप्य ददर्शाग्रे च कन्यकाम् ।
> तां सम्भोक्तुमनश्चक्रे साऽदुद्राव भयात्सती ॥ ४७ ॥
> दृष्ट्वा पश्चात्पितरं धावन्तं हृतचेतनम् ।
> जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातृणां तत्परस्विनाम् ॥ ४८ ॥

ऋषयः ऊचुः—

> अहो किमेतज्जनक कर्मैतेति विगर्हितम् ।
> त्वं स्वयं वेदकर्त्ता च कन्यासंभोक्तुमिच्छति ॥ ५२ ॥
> (ब्रह्मवैवर्त्त, खं० ४ अ० ३५)

शंकरदेव का आचार:—इसे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं तथापि यह तामस देवता बहुत भ्रष्टाचार है । जैसे पार्वती से विवाह होने पर पार्वती का उप-भोग स्थान २ पर पुराणकारों ने किया है उस में भी गणेश की उत्पत्ति तथा स्कन्द की उत्पत्ति में कितना अश्लील है । हर पार्वती के सुरत में प्रवृत्त होते हुवे देवताओं का आना विलास में विघ्न हो जाने पर अग्निदेव के मुख में वीर्य प्रक्षेपादि कितना ही भ्रष्टाचार है । इसी प्रकार समुद्र मथन के समय मोहिनी को देख कर शंकर का वीर्यपात, ऋषि कन्याओं के बीच में नग्न हो कर भ्रमण, ये सब कथाएं प्रायः लिंगपूजक पाखण्डियों ने घड़कर अपने देवता को पर्याप्त भ्रष्ट बना दिया है ।

शेष देवता

बृहस्पति और चन्द्र:—बृहस्पति चन्द्रमा के गुरु थे । बृहस्पति की स्त्री चन्द्र के घर गयी । चन्द्र का बृहस्पति की स्त्री से अनुचित प्रेम हो गया, और उस से बुध पुत्र उत्पन्न हुवा इसी से पुराणों में चन्द्र को गुरुदारा का कलंक लगाया है ।

बृहस्पति ने पीछे अपनी स्त्री से मांगा भी, परन्तु चन्द्रमा ने देने से इन्कार कर दिया इस पर बृहस्पति ने चन्द्र को कहा तू अति पापी है । तैंने अपने गुरु की दारा से संभोग किया । इस पर चन्द्रने कहा हे बृहस्पति ! तू भी पापी है, तैंने अपने छोटे भाई की पत्नीसे सम्भोग किया, इत्यादि । (देखो देवीभागवत स्कं० १ अ० ११)

गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी ।
दृष्टा च शशिनात्यर्थं रूपयौवनशालिनी ॥ ६ ॥
कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति ।
सापि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता ॥ ७ ॥
तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्त्तौ संबभूवतुः ।
तारा शशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ८ ॥
दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः ।
बृहस्पतिस्तु दुःखार्त्तस्तारामानयितुं गृहम् ॥ ९ ॥
प्रेषयामास शिष्यन्तु नायाता सा वशीकृता ॥ १० ॥

बृहस्पतिवाच:—

त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं यथा ।
नस्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥

इस पर चन्द्रमा को समझाया जाता है कि तेरी तो २८ स्त्रियें हैं तो फिर किस कारण गुरुपत्नी को भोग करना चाहता है ।

अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षकन्यकाः ।
गुरुपत्नीं कथं भोक्तुमिच्छसि त्वं सुधानिधे ॥

अहल्या और इन्द्र:—

गौतम ऋषि की धर्मपत्नी अहल्या थी उसको इन्द्र ने कामवश होकर भोग किया, इस पर गौतमने उसे शाप देकर उसके लिंग तथा वृषण गिरा दिये । जैसा कि देवीभागवत में लिखा है:—

सहस्रभगसम्प्राप्तिः दुःखं चैव शचीपतेः ।
स्वर्गाद्भ्रंशस्तथावासः कमलमानसेऽमरे ॥
(देवी० भा० स्क० १, अ० ९ श्लो० ४६)

इन कुकर्मों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत प्रकार के अनाचार पुराणोंने वर्णित किये हैं जिन का यथावसर उल्लेख किया जायगा ।

इन्हीं देवताओं का आपस का व्यवहार भी कोई अच्छा नहीं विष्णु और ब्रह्मा का ब्रह्मा और शिव का, और इन तीनों देवों का ऋषियों से परस्पर वैर रहना युद्ध ,

होना आदि स्थान २ पर वर्णन रूप में आता ही है। जैसे दधीचि और क्षुपके विवाद प्रसंग से ब्रह्माविष्णु का युद्ध लिंगपुराण अ० ३७ में देखो। नरसिंह के साथ शिवके वीरभद्र का युद्ध वामनपुराण अ० ४ में वर्णित है। कभी दैत्यों को छलना, जैसे वामन बलि की कथा, कभी मनुष्यों को दुःख देना, कभी ऋषियों के तप में विघ्न करना, जैसे इन्द्रने प्रायः अप्सरायें भेज कर विश्वामित्रादि कितने ऋषियों को भ्रष्ट किया। इत्यादि सहस्रों कथायें हैं। जिन में देवताओं का आचार भ्रष्ट तथा अनुकरणीय नहीं है।

इसी प्रकार इन पुराणकारों ने अपने पूर्वज ऋषियों के भी कोई आदर्शचरित गूंथने का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत दूषित चरित्र को दिखाने में भी कमी न की, जैसे पराशर मुनिका दास कन्या में काम से आसक्ति आदि (देखो देवी० भा० स्कन्द २ अ० २ श्लो ६-१०)

भविष्यपुराण में स्त्रियों के प्रति बहुत ही घृणित दृष्टि से देखा है। भविष्य के प्रथम पर्व के चतुर्थ पञ्चम में स्त्रियों के अंग प्रत्यंग का वर्णन अपाठ्य है। १२, और १३ अध्याय में स्त्रियों के लिये ऐसे २ साधनों का वर्णन किया है जिन से वो उच्छृंखल होकर पतियों को वश किया करें। इसी प्रकार २४ वें में स्त्री को वश करने के लिये पुरुषों को उपाय सुझाये हैं।

ब्रह्मपुराण में १०१, १०४, १०५, । ८ । १६ । विष्णु का परस्त्रीगमन बालखिल्यादि की भ्रष्ट उत्पत्ति का वर्णन बहुत निर्लज्जता से किया है। इस के अतिरिक्त स्त्रियों को पठन का अधिकार न होना, उनको केवल भोगसाधन मानना आदि हीन विचारों की पुराणों में कमी नहीं है। जो पुराणों में स्थान २ पर पायी जासकती हैं।

संक्षेपतः हम पुराणों के देवता आदि की भ्रष्टता पर अपनी नई सम्मति न बनाकर पुराण कार की ही सम्मति का उल्लेख करते हैं। जिससे पुराणपर श्रद्धा रखने वालों का चित्त भी अनायास संतुष्ट हो जाय, देवीभागवत स्कं० ४ अ० १३ में इस प्रकार लिखा है:—

राजा बोला हे मुने! देवताओं के गुरु सब विद्या के निधि हैं और अंगिरा के पुत्र हैं उन्होंने छल क्यों किया? यदि वाचस्पति ही मिथ्यावादी है तो संसारमें

सत्यवादी कौन होगा। भोजन से अधिक तो ब्रह्माण्ड में भी नहीं मिलता तो केवल भोजन के लिये मुनियों ने भी झूठ क्यों बोला। देव सात्विक हैं, मनुष्य राजस हैं, और तिर्यग् तामस हैं, यदि देव गुरु ने झूठ बोला तो तामस सत्य कैसे बोलेंगे। अब धर्म की स्थिति कहां है यह मुझे बहुत सन्देह है। विष्णु ब्रह्मा और इन्द्र तथा अन्य सभी देवता छल करने में चतुर हैं तो मनुष्यों का कहना ही क्या है। काम क्रोध, लोभ में फंसकर सब मुनि और देव यदि छलमें चतुर हो गये तो धर्म की क्या गति है, इन्द्र चन्द्र और ब्रह्मा ये सब परस्त्री गामी हैं। तो भुवनों में आर्यता कहां जायगी। अब हम बात किसकी मानें जब सभी लोभ में पड़ गये। इसपर व्यास बोले:—

राजा उवाच:—

गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तदा।
सुतोऽङ्गिरस एवासौ स कथं छलकृन्मुनिः ॥ २ ॥
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम्।
कथितं मुनिभिर्येन परमात्मापि लभ्यते ॥ ३ ॥
वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ता चेद्दानवान्प्रति।
कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी ॥ ४ ॥
आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्माण्डे विभवेऽपि न।
तदर्थं मिथ्यामुनयः प्रवर्तन्ते कथं मुने ॥ ५ ॥
शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम्।
छलकर्मप्रवृत्तोऽपि गीतत्वं कथं गुरोः ॥ ६ ॥
देवाः सत्वसमुद्भूताः राजसा मानवाः स्मृताः।
तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः उत्पत्तौ मुनिभिः किल ॥ ७ ॥
अमराणां गुरुः साक्षाद् मिथ्यावादी यदि स्वयम्।
तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः ॥ ८ ॥
क्वस्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहोऽयं ममात्मनः।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये ॥ ९ ॥
हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथान्ये सुरसत्तमाः।
सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा ॥ १० ॥
कामक्रोधाभिसंतप्ता लोभोपहतचेतसः।
छलेदक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ ११ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा।
एते पापरताः का च गतिर्धर्मस्य मानद ॥ १२ ॥

" विष्णु रागी शिवरागी और ब्रह्मा भी रागी है। रागी होकर कोई क्या पाप नहीं करता, चतुरता के कारण रागी पुरुष दो देह वाला प्रतीत होता है। ब्रह्मादि ये सब देवताओं में सब के कारण गुणही हैं, ये सब समय पर मरण धर्मा हैं। दूसरों का उपदेश करने के लिये तो सब साफ है। पर अपने कार्य सभी के चौपट हैं। देहधारी होकर लोभ मोह क्रोध द्रोह अहंकार मत्सर कौन त्याग कर सकता है "

व्यास के इस उत्तर से इन सब देवताओं का परम देवत्व सर्वथा नष्ट हो जाता है। ये सब देही कर्म बन्धन में बद्ध प्रतीत होते हैं। छल आदि कर्म के फल भोगी होकर अधर्माचारपरायण होने से पूजा के योग्य भी नहीं।

किं बहुना पाठक इसीप्रकार शेष देवताओं के आचार का भी अनुशीलन करेंगे, विस्तार भयसे इतना ही पर्याप्त है।

इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधाः परदाराभिलम्पटाः।
आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद ॥ १३ ॥

व्यास उवाचः—
किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥ १५ ॥
रागी विष्णुः शिवोरागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।
रागवान्किमकृत्यं न करोति नराधिप ॥ १६ ॥
रागवानपि चातुर्याद्विदेहइव लक्ष्यते।
संप्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः संबाध्यतेकिल ॥ १७ ॥
ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एवहि कारणम्।
कालेमरणधर्मास्तेसंदेहः कुत्रतेनृप ॥ १८ ॥
परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वेभवन्तिच।
विप्लुतिर्हि विशेषेण स्वकार्येसमुपस्थिते ॥ १९ ॥
कामः क्रोधस्तथालोभ द्रोह अहंकार मत्सराः।
देहवान्कः परित्यक्तुमीशोभवति तान्पुनः ॥ २० ॥
(देवीभागवत स्कं ४ अ० १३)

द्वाविंशोऽध्यायः

असम्भव गप्पें ।

पुराणकारों की असम्भव कल्पनाएं देख कर एक लौकिक छोटी सी गल्प याद आती है। दो मिथ्याभाषी परस्पर एक जगह एक तालाब के किनारे पर बैठे बातें करने लगे। उनमें शर्तबंधी कि देखें सब से बड़ा के किस का झूंठ है। एकने कहा कि मेरे बाबा के अधिकार में एक इतनी बड़ी घुड़साल थी कि जिसमें सारी दुनिया के आदमी समा सकते थे। और मेरा बाप इतना जंगी था कि जहां पानी न बरसता था। वहां से गांव को उठाकर दूर बरसते बादल के नीचे करदेता था। इस पर दूसरा बोला कि तेरे बाप को मैं जानता हूं कि मिट्टी ढोने वाले से कम न था। पर देख मेरे बाबा के पास एक इतना लम्बा बांस था। जब पानी न बरसता था तो उस बांस से आस्मान को फाड़ देता था और पानी झड़ पड़ता था। इस को सुन कर पहला बोला कि चल झूंठे यह बात नहीं बन सकती भला कहीं ऐसा लम्बा बांस भी हो सकता है। यदि था तो वह उसे कहां रखता था? इस पर दूसरा बोला तेरे बाबा की घुड़ साल में।" बस इसी प्रकार पुराण कार सभी मिल कर गप्प लगाते हैं और जब एक दूसरे पर आक्षेप होने लगे तो सबने ही परस्पर के देवताओं को आपस में शाप आदि दे दिवाकर ऐसा जाल बनाया कि सब गप्पें सम्बद्ध भी हो गयीं और बातें भी सब देवों की अलग २ ही रहीं। इन देवताओं की कल्पनाएँ किस आधार को लिये हैं इस का कोई मूल नहीं मिलता। और ये सब गप्पें कथाएं तथा और विचित्र घटनायें और देवताओं पर शाप आदि की कल्पनायें किस आधार पर इकट्ठी हो गयीं इस का भी कोई मूल सूत्र नहीं मिलता। केवल साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्द्धा को पूरा करने के लिये ये सब पुराण रचे गये प्रतीत होते हैं। जिन में अपने देवता द्वारा सभी ने दूसरों पर शाप वरादि देदे कर अपने देवता को बढ़ाया है। साथ ही यदि रोचकता ही करनी थी तो सम्भव मिथ्या कथा भी घड़ी जासकती थीं परन्तु लोकोत्तरता को प्रकट करने के निमित्त से उन्होंने अपनी सभी बातों में असम्भव की मर्यादा स्थिर की है। इतिहास को लिखते २ भी देवताओं को मनुष्यों के इतिहास का ऐसा सहयोग दिया है। कि जिस के साथ देवताओं के अन्दर तथा कथञ्चित् मानकर सन्तोष कर लेने योग्य असम्भवता मनुष्यों के इतिहास में भी आजाती है। जो कि गप्प या असम्भव को झट ही बदला देती है।

जैसे कृष्ण मनुष्य होकर विराट् बन जाय। हज़ार मुखों वाला हो जाय, या सहस्रों स्त्रियों से भोग करे। इत्यादि नाना असम्भव घटन्त किये गये है। इनके प्रतिवाद में सनातनी यह उत्तर दिया करते हैं कि कृष्ण योगीश्वर थे तो सिद्धि द्वारा ऐसा किया, तो आश्चर्य क्या है। ठीक है। कृष्ण की सिद्धिएँ संसार में भोगविलास कर्मा छने के लिये तथा लोक मर्यादा (एक नारीपरायणता) को तोड़ने के लिये थीं। मर्यादा पुरुषोत्तम का यह लक्षण है, सब मर्यादा का नाश करके उच्छृंखल होना। बस इतने ही से सब गप्पें कृष्ण के बारे में विलासी भक्तों ने उसको अपने सदृश बनाने तथा भोगविलास के लिये अपने प्रति लोक गर्हा को कम करने के लिये घड़ी हैं। इस में भी सन्देह नहीं। असम्भव वह कहाता है जो प्रकृति के विरुद्ध है। जैसे लोहा फाड़ करके आदमी का निकलना आदि।

अब सुनिये गप्पें—

(१) समुद्र मथनः—समुद्रमथन की कथा सभी पुराणों में आती है इसकी कथा यही है कि दैत्यदानवों ने मिलकर शेषनाग से मन्द्राचल को लपेटकर मथानी बनाया। और समुद्र को मथा, १४ रत्न पैदा हुवे। चौदहरत्न ये थे, हविर्धानि, स्त्रीरूप वारुणी वारुणी, पारिजात वृक्ष, ६० करोड़ अप्सराएँ चन्द्र, कालकूट विष, धन्वन्तरि वैद्य, श्याम कर्ण घोड़ा, कमल में बैठी लक्ष्मी, एक नगर, कौस्तुभ, ऐरावतगज, कल्प द्रुम, और अमृत। अमृत के लिये लड़ाई होने लगी इसपर विष्णु ने मोहनी रूपधारण करके दैत्यों को मोहलिया। और अमृत देवता पीगये।

नगर श्रीनगर कहाता था। उस श्रीनगर को भृगु ने लेलिया इस पर लक्ष्मी ने विष्णु से कह दिया कि मुझे मेरा नगर दो। विष्णु ने वह नगर दिला दिया। इस पर भृगुने विष्णु को शाप दिया कि तू जा मर्त्य लोक में पैदा हो। तुझे भार्या का वियोग आदि सहना पड़ेगा। विष्णु ने भृगु को शाप दिया, कि तुझे पुत्र प्रेम न मिलेगा। शाप लेकर विष्णु ने अपना रोना भृगु के पिता ब्रह्मा से कहा कि मुझे तेरे पुत्र ने शाप दिया है मैं तीनों लोक त्याग कर समुद्र में सोऊंगा, तू ही सब संसार को चला, इत्यादि।

(देखो० पद्म पु० सृ० खं० ४, अ० ४)

अब कहिये । समुद्र कौनसा, देव दैत्य कौन । मन्द्राचल कैसा, शेषनाग कौनसा, क्या देवों को रस्सी न मिलती, क्या मथानी न मिली, समुद्र था कि दही का कूंडा था । मथा तो घोड़ा हाथी चान्द आदमी क्या निकला, चान्द मथे से निकला यह झूठ है । उससे कोई वस्तु भी नहीं निकल सकती । जिस पर फिर भृगु का शाप विष्णुदेव को, देवता कैसा जिस पर मनुष्य के शाप चलते हैं । ये सब ही कपोल कल्पना है । यदि ये कुछ और रहस्य भी बताता है तोभी किसी प्राकृतिक घटना को देख कर यह कल्पना ही की गयी है । इसी प्रकार विष्णु का समुद्र में शेष पर सोना, शेष के सिर पर कच्छु और कच्छु के पीठ पर पृथिवी आदि ये सब भी मिथ्या बाते हैं । पर वर्तमान विज्ञान के जानने में भी विश्वास करना जान बूझ कर अपने को जड़ बनाये रखना है ।

(२) मरुदुत्पत्याख्यान:—कश्यप की स्त्री दिति ने गर्भ धारण किया इन्द्र ने उसके पेट में जाकर उसका गर्भ फाड़ दिया और सात टुकड़े कर दिये । वो सात मरुत हो गये । (पद्म, सृ० ख० ५, अ० ७)

यह कल्पना है इस में संशय नहीं । दिति कोई स्त्री था नहीं कश्यप भी उसका पति कोई मनुष्य नहीं । इससे अन्यों की सत्ता भी पाठक आप समझले । एक सौतेली माता का पेट काटना इन्द्र की दुष्टता का प्रमाण और संग्रह करके ।

(३) इलोपाख्यान:—शरवण में शंकर ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो भी इस वन में प्रवेश करेगा वह स्त्री बन जायगा । मृगया वश राजा इल ने भी उस में प्रवेश किया वह राजा इल स्त्री हो गया । उस के रथ के घोड़े घोड़ी हो गये । वह राजा स्त्री बना हुआ वह बुध की स्त्री बन गई । और उस के शेष भाई जो इक्ष्वाकुवंश के थे सो उसे ढूंढते हुवे उधर आ निकले । उन्हें वह घोड़ी मिली । तिसपर उन्हें वसिष्ठ से पूछने पर उसका कारण प्रतीत हुआ । उन्होंने शंकर की स्तुति की, शम्भु और पार्वती दोनों ने प्रसन्न हो कर कहा कि हमें १ अश्वमेध का फल दो तो वह किंपुरुष हो जायगा । वह एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहा । बुध से उस के एक पुत्र हुआ, वह एल वंश इलावर्त स्थान पर फैला । इत्यादि ।

(पद्म० सृ० खं० ५, अ० ८)

यह देखिये कैसी विरुद्ध असंगत बातें हैं । इन्द्र कुबेरराज वीर का स्त्री बनाना और उसका बुध तारे से योग, ये सर्व सृष्टि के नियम से विरुद्ध है ।

(४) पुरूरव आख्यान:—यह बड़ा प्रतापी राजा इला का पुत्र था। उर्वशी को देखकर इसने नाचने की आज्ञा दी। उर्वशी नाचती नाचती राजा पर मोहित होकर नाचना भूल गई। इस पर भरताचार्य ने शाप दिया तू ५५ वर्ष बेल बनी रहेगी। वहां ही बनमें पुरूरवा पिशाच बनेगा। शाप के बाद फिर दोनों का विवाह हुआ। पुरूरवा के आयु आदि आठ पुत्र हुए।

ये भी कैसा जादू है कि मनुष्य का रूप धरने वाली उर्वशी लता बनजाते।

(५) शिव और पार्वती के विवाह के समय वेदी पर आती पर्वतराज की पुत्री को देख कर ब्रह्मा का वीर्य, स्खलन होगया जैसे टूटे घड़े से पानी। तब ब्रह्मा ने वीर्य बांये हाथ में लेकर आग में हवन कर दिया इस से तेजोमय ८८००० ऋषि बालखिल्य बन गये। (**सौर पुराण अ० ५९ श्लो०, ५५-६२**). बिना गर्भ के ऋषि कैसे पैदा हो गये, कैसी अश्लील गाथा है। पुराण कार को लिखते लज्जा नहीं आती।

(६) कार्तिकेय की उत्पत्ति:—तारकासुर के मारने के लिये कार्तिकेय की आवश्यक्ता थी। देवताओं की प्रार्थना सुनकर शिव ने विवाह किया था। परन्तु शिव पार्वती के उपभोग में प्रवृत होने पर त्रैलोक्य कांपा। देवताओं ने अग्नि को भेजा कि रत में विघ्नकर इससे उसने हंसका रूप धर उनके घरमें प्रवेश किया और विघ्न किया। इसपर शिव ने अपना वीर्य अग्नि के मुखमें त्याग अग्नि देवताओं का मुख होने से सब के पेट में बच्चा पैदा होने लगा देवताओं के पेट में दर्द होने लगा। शंकर के कहने पर उन सबों ने शरावण में गर्भ त्यजन किया, वह सब मिलकर छः मुख वाला कार्तिकेय बना इत्यादि।

बिना माता के देवताओं के पेट में गर्भ का होना, फिर नर होकर बिना योनि के ही त्यागना, फिर नाना खण्ड होकर बालक का जुड़ना, ये सब कल्पना सिवाय गप्प के और कुछ नहीं। और कितनी अश्लील है।

(देखो सौरपुराण अ० ६०–६२)

(७) गणेश की उत्पत्ति:— पार्वती ने स्वयं स्नानगृह में नहाने के लिये अपने पुत्र गणेश को रक्षक नियत किया। शंकर ने गृह में प्रवेश का आग्रह किया परन्तु पुत्र ने जाने न दिया। इसपर उस ने पुत्र का शिर काट दिया अश्विनी कुमारों ने उसके शरीर पर हाथी का सिर जोड़ दिया।

खूब चक्कर की, यही तो देवी पौराणिक कौशल है। हाथीका कपाल मनुष्य की गर्दन पर जोड़ने का अपूर्व सामर्थ्य भी तो किसी प्रकार दिखाना था।

(८) इक्ष्वाकु की छींक से उत्पत्तिः—मनुजी के थूकते और छींकते हुए नाक से इक्ष्वा पुत्र पैदा हो गया।

(विष्णु पुराण अंश ४ अ० २ श्लो १६-१८ २)

क्षुवतश्च मनोरिक्ष्वाकुर्घ्राणतः पुत्रो जज्ञे॥ ३॥

खूब गप्प चढ़ी, क्या कहीं थूकते छींकते भी पुत्र हुए हैं।

(९) युवनाश्व निरपत्यथा। उस ने यज्ञ यष्टि की। इसपरक यर्थ करते आधी रात बीत गयी ऋषि लोग सो गये युवनाश्व को प्यास लगी उठकर उसने वेदी में घुसकर मन्त्र से पूत जल से भरे घड़े में से जल पी लिया। इसपर युवनाश्व ने ये समझकर कि इसको यज्ञ जल पीने पर पुत्र पत्नी में पुत्र पैदा होगा। यह समझ कर कहा कि मैंने पिया। इसपर युवनाश्व को ही गर्भ हो गया। नौ मास के बाद गर्भ बालक युवनाश्व की कोख फाड़कर बाहर निकला। युवनाश्व भी नहीं मरा अब उस को दूध कौन पिलावेगा यह शंका ऋषियोंको हुई, इसपर इन्द्र बोला मैं पिलाऊंगा। इन्द्र ने अपनी उंगली उसके मुख में दे दी उससे उसे दूध अमृत कता हुआ मिला। वही मान्धाता हुआ।

(विष्णु अं० ४ अ० २ श्लो० १६-१८)

(१०) सुदास के पुत्र सौदासने यज्ञ में वसिष्ठ को मांस परोस दिया। इसपर वसिष्ठ ने शाप दिया कि हमें अभक्ष्य खिलाता है। यही मांस भोजन तुझे १२ वर्ष राक्षस बनकर खाना होगा। इधर राजा भी प्रतिशाप देने को उद्यत हुआ पर अपनी पत्नी के कहने से रुककर उसने अपने पैरों पर जल फेंक दिया। इससे उसके पैर चितकबरे हो गये। तब से उसकानाम कल्माषपाद हुआ। इसराजा ने वसिष्ठ को नियोग के लिये प्रार्थना की। वसिष्ठ ने राजा पत्नी मद यंती को गर्भ धारण कराया। इसपर ७ वर्ष तक गर्भ रहा। पीछे से पत्थर से तोड़कर गर्भ को निकाला गया। उसका पुत्र अश्मक हुआ। और बच्चा जीता रहा। (विष्णु अं० ४ अ० ४)

क्या कभी पत्थरों से भी तोड़कर गर्भ निकाला जा सकता है

यह १० नमूने हम ने असम्भव गप्पों के पाठकों के समक्ष केवल निदर्शनार्थ उपस्थित किये हैं। पुराणों की असम्भव गप्पों की वास्तव में कोई संख्या नहीं, पुराण का आदि मध्य और अवसान सभी गप्प मय है। और स्कन्द पुराण पद्मपुराण देवीभागवत ब्रह्मवैवर्त भविष्य में तो मानो कथाओं के आकर हैं। सभी प्रकार की कथा कहानियें इन में बांधकर रखी हैं। और सभी सृष्टिनियम और लोक मर्यादा की उपेक्षा करती हैं। जैसे वेन का हाथ से उत्पन्न होना और का उससे पैदा होना, नासिकेत का नाक से पैदा होना, अगस्त्य का घड़े से पैदा होना, जरासन्ध के पिता बृहद्रथ का विमान मार्ग से जाते हुए राजा के एक मेनका दर्शन से प्रस्खलित वीर्य के नदी में गिरने से मच्छी के गर्भ से पैदा होना। पुराण का द्वीप में सहसा पल भर बड़ा हो जाना। ये सब भी गप्पों के सिवाय और सत्यविश्वास्य नाम के योग्य नहीं। हम अधिक पाठकों को क्या सुनावें इनका गप्पमय विज्ञान अब आविष्कारों के समय झूठा सिद्ध हो गया है। पुराणकार अल्प दृष्टि से पृथ्वी को चपटा मानकर बीच में मेरु खड़ा करके द्वीपों की कल्पना करते तथा भूमी समुद्र भूमीसमुद्र इसप्रकार परम्परा को स्वीकार करते हैं। सुरासागर, क्षीर रसागर आदि नाना सागर मानते हैं। चन्द्र को सुधा का कुण्ड मानते हैं। उसमें हरिण मानते हैं। ग्रहण में कारण राहु को मानते हैं। इत्यादि सभी दूरदर्शियों के बुद्धि गम्य वस्तुओं को इन्हों ने अपनी अल्प बुद्धि से आग्रह पूर्वक गप्प घड़कर ऐसाही अर्थ का अनर्थ किया है कि सभी देश के विज्ञान को दूषित कर दिया है और देवताओं की व्यर्थ मिथ्या कथा प्रवादों से पुराणसाहित्य को गदभराय बनाकर अपनी मूर्खता का पूरापरिचय दिया है यद्यपि देखा जाय तो सभी वंशावली तथा सिद्धान्त और अद्भुत कथाएं भी जो यथा कथञ्चित् दृष्टान्त या काल्पनिक गल्पमात्र होकर स्थूलबुद्धियों को उपयोगी हो सकतीं, सो एक साधारण ग्रन्थ में आ सकती थीं। इनसे भी साम्प्रदायिक कथक्कड़ों को सन्तोष नहीं हुआ। कि बहुना शेष सब यथोचित परिणाम पर पाठक अपने ही अनुशीलन से स्वयं पहुंच जायेंगे।

त्रयोविंशोऽध्यायः

पुराणों के कर्त्ता व्यासजी ।

पुराणों की समालोचना तथा स्वरूप, देवी देवताओं की कल्पना, संक्षेप से पुराणों का प्रतिपाद्य विषय, साम्प्रदायिक भाव तथा नवीनता का निदर्शन हम गत पुस्तक में अति विस्तार से दिखा चुके । असम्भव गप्प भी पाठकों के निदर्शनार्थ उल्लेख करदी है, इन सब के होते हुवे भी यह स्वीकार करना कि वेदान्तसूत्रों के कर्त्ता के सदृश महाविद्वान् तत्ववेत्ता ऐसे असम्बद्ध और अश्लील पुराणों को भी रचेगा इस पर विश्वास नहीं आता ।

हमारे बनाये भारत के इतिहास के आदिपर्व में महाभारत की समालोचना की जा चुकी है । और स्पष्टतया दिखाया है कि प्रथम जय इतिहास व्यासने बनाया, उस पर वैशम्पायन का दूसरा परिष्कार, उस पर लोमहर्षण का तीसरा परिष्कार, और उस पर भी सूत पुत्र सौति की लेखनी का चमत्कार हुआ, जिससे कि अनन्त सोपाख्यान महाभारत प्रकट हुआ । इसी प्रकार पुराणों की भी अभिवृद्धि हुई । प्रथम व्यासदेव ने पुराण ही क्या बनाया, वेदों का व्यास किया, इतिहास का व्यास किया और साथ ही सम्भवतः पुराणों का भी व्यास किया हो इसमें संदेह नहीं । परन्तु व्यास ने वर्तमान अठारह पुराण बनाए हों यह कदापि सम्भव नहीं । जिसमें निम्नलिखित युक्तियें क्रम से उपयुक्त हैं ।

यह बात विदित है कि व्यास महाभारत के एक पात्र हैं युधिष्ठिर के समकालीन हैं । शुक और विदुर के पिता हैं । धृतराष्ट्र और पाण्डु के रेतोधा तथा पराशर के कानीन पुत्र हैं । इन्होंने वेदों का व्यास किया इनसे ये वेदव्यास कहलाये । जय नामक इतिहास बनाया इससे जय इतिहास के कर्त्ता प्रसिद्ध हुवे । वही जय प्रथम भारत, फिर महाभारत नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस से महाभारतकार प्रसिद्ध हुवे । पीछे से पुराणकारों ने अपना भार भी व्यास जी के गले मढ़ दिया, तब से पुराणकार भी व्यास हुवे ।

(१) व्यासकृत पुराण का परिचय:—वैशम्पायनमुनि कहते हैं कि जय-नामक इतिहास ही पुराण पट् बात सहस्र अर्थात् १ लक्षश्लोक तक संख्या भी के पुत्र

से बनाया है । यह वेदों से सम्मत है, पवित्र है, सब श्रवण करने योग्य श्रुतियों से प्रशंसित पुराण है ।"

इससे पुराण की स्पष्ट प्रतीति हो गई । "१८ पुराण व्यास के हैं" इसकी सर्वथा जड़ कट गई । इतने बड़े भारी महापाख्यान के महाभारत में कहीं पुराणों का उल्लेख भी नहीं और किसी भी अन्य पुराण का उल्लेख नहीं । प्रत्युत पुराणों को कहीं प्रायः सभी मुख्यबातों की रीति प्रोक्त उपाख्यानों में अवश्य ही प्राप्ति होता है ।

(२) पुराण के पाठकों को विदित है कि बुद्धदेव एक अवतार हैं इनकी कथा पुराणों में स्थान २ पर है जैन और बौद्ध मतों का कई पुराणों में वर्णन है जो पहले दिखाया जा चुका है । व्यास का काल है ईसा से ३ हजार वर्ष पूर्व और बुद्ध हुए ईसा से ६०० वर्ष पूर्व, अतः बुद्ध के विषय में व्यास के मुख से कथा का होना सर्वथा असंगत है । वास्तव में ये सब कथा कहने वाले सूत ऋषि संवाद की ओर लेकर कथक्कड़ गद्दीदार व्यासों ने पुराणों का प्रपञ्च फैलाया है ।

(३) रामानुज ने चक्राङ्कित मत चलाया है । इसका उल्लेख भी कितने ही पुराणों में है । पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में इसका उल्लेख है । इसी प्रकार ब्राह्मण में चक्राङ्कितों के प्रति द्वेष विष उगला गया है:—

शंखचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते ॥
सजीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

जिसका देह शंख चक्र तपा कर दागा गया हो वह क्षुद्र जीवित ही त्याज्य सब धर्मों से बहिष्कृत है ।

रामानुज १२०० विक्रम में उत्पन्न हुआ अब जान लीजिये ये पुराण कब की कहते हैं ।

इदं शत सहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणा ।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥ १४ ॥
इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
श्रव्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥ १६ ॥
(महा० आदि० अ० ६२)

(४) एक पुराण को कहीं दूसरा नहीं मानता किसी देवता की एक निन्दा करता है तो दूसरा उसको अच्छा कहता है इत्यादि नाना द्वेष युक्त विरोध होने से इनका कर्त्ता एक विद्वान् नहीं माना जा सकता है ।

(५) आलू और तमाखू जहांगीर के जमाने में विदेशीय लोग अमेरीका से लाये हैं परन्तु ब्रह्माण्डपुराण में तमाखू का निषेध है ।

प्राप्ते कलियुगे घोरे..............

तमाखभक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवम् ॥

जिसने तमाखू खाया वह नरक को जावेगा । जब पहले तमाखू था ही नहीं तो निषेध कैसे हो सकता है ।

सिक्खों के प्रथम ६ गुरुओं में से किसी ने भी तमाखू का निषेध नहीं किया, क्योंकि वर्त्ताव में ही न था । परन्तु दशम गुरु के समय इसका प्रचार प्रारम्भ हुआ उसने निषेध किया, सो पाठक समझ लें कि पुराण कब बने ।

पद्म पुराण में भी:—

"धूम्रपानरतंविप्रम्" इत्यादि शब्द आते ही हैं ।

(६) पद्म पुराण में पार्वती कहती हैं ।

"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ।
मयैवकथितन्देविकलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥"

यह शंकर से प्रचारित मायावाद का उल्लेख भी हो गया, शंकर स्वामी को हुवे २१०० वर्ष हो चुके ।

(७) सभी प्राचीन तत्ववेत्ता स्वीकार करते हैं कि राजा अनंग भीमदेव ने, १२२१ वि० में उड़ीसा में जगन्नाथ की काठ की मूर्त्ति का स्थापन कराया था ।

स्कन्द पुराण में इसका बहुत माहात्म्य वर्णित है ।

(८) भागवत दो हैं । कौन सच्चा कौनसा झूठा । कौनसा व्यासोक्त, कौन अन्योक्त इत्यादि निर्णय दुष्कर है ।

(९) झूठी बातें पुराणों में बहुत हैं। जैसे प्रह्लाद को वर दिया, कि तेरी २१ पीढ़ी तर जायंगी। यद्यपि उस की २१ पीढ़ियें हैं। (भागवत) दूसरा तर जाने पर फिर वे महाभारत काल में आत्मायें आ उतरी। तो तरी क्या ? वेतो फिर डूबीं।

(१०) वेदव्यास ने जिस प्रकार महाभारत के पहले ब्रह्म की स्तुति वेद-मन्त्रों से की है और वैदिकता को अंगीकार किया है पुराण में सब पाखण्डियों के तान्त्रिक मन्त्रों को ही पवित्र समझा यह क्यों।

इत्यादि नाना प्रकार की शंका है जिन से वेदव्यास को पुराणों का कर्त्ता मानना एक प्रकार से ऋषि की मानहानि करना है।

अब पुराणों का बनाने वाला व्यास गद्दीदार कौन होता है इस का निर्णय सुनिये। यह प्राचीनकाल से चला आया है कि सूत और मागध ये राजाओं के बन्दी होते थे। बनाये इतिहास को स्थिर रखना पुराण इतिवृत्त अर्थात् प्राचीन कथाओं को रक्षित रखना तथा समय २ पर यज्ञयागादि के अन्त में मनोरञ्जन तथा लोक मर्यादा के लिये यही पौराणिक सुनाया करते थे। जैसा कि रामायण काल में सुमन्त्र पौराणिक सूत कहाता था। बाद को लोमहर्षण सूत वंशोद्भव के पास ही महा-भारत की कथा कहने का कार्य था उस के बाद पुत्र सौति। एवं प्रकारेण पुराणों को सुनाने वाला हरेक स्थान पर सूत है। इस प्राचीन प्रथा को देखकर पीछे से पुराणों को एक द्वार बनाया गया कि लोक में यथेच्छ मत तथा बातें फैलाई जायं।। माहात्म्य, तीर्थ, स्तुति, पाठ, पूजा आदि सभी बातों के विज्ञापन कर देने वाले अखबारों की न्यायी पौराणिक सूत समझे जाने लगे। और गद्दी पर बैठ कर कथा कहने वाला ही व्यास कहाता था। यह औपाधिक नाम था। जैसा कि कतिपय पुराणों से समर्थित भी है, जैसे भविष्य पुराण में इतिहास महाभा-रतादि सुनाने वाले को जयोपजीवि व्यास कहा है।

(देखो भविष्य० पु० ब्रा० प० अ० २१०)

जयोपजीवी व्यासश्च, समःस्याज्जीवलस्तथा ।
यान्येतानि पुराणानि स्येतिहासानि भारत ॥ २५ ॥
जयेतिकथितानीह स्वयंदेवेन भास्वता ॥ २६ ॥
एकंनिवासयन् यस्तु ब्राह्मणं नृपजीवति ॥
जयोपजीवीसंज्ञेयो वाचकश्चतथा नृप ॥ २७ ॥

उसी के जीवक और वाचक यह भी नाम हैं । उसी को बैठ कर सुनाने की गद्दी या चौकी को व्यास पीठ कहा जाता है ।

(देखो भविष्य० ब्राह्म० अ० २१५ श्लोक ५१

इस प्रकार के व्यास सामान्य पद से व्यवहार में आये पुरुषों ने इतना जाल और साम्प्रदायिक ताना बाना रचा हो इस में सन्देह नहीं ।

शेष पाठक इसी रीति से स्वयं ही पुराणों की समस्या हल कर लेंगे और यह भी देख लेंगे कि श्रोताओं के विलासी और भ्रष्टाचारी हो जाने पर अवश्य व्यासों की भी पूर्व प्रदर्शित अश्लील वाणी में प्रवृत्त हों तो इस में आश्चर्य ही क्या है ।

भागवत का बोपदेव कर्ता है इस में हेमाद्रि और भविष्य दोनों ही एक मत हैं इत्यादि गवेषणाएं भी पुराणों की अर्वाचीनता में पर्याप्त प्रमाण हैं ।

इसी प्रकार विरोध भी परस्पर में बहुत हैं जैसे:—

शैवों के विरुद्ध भागवत में लिखा है ।

जो शैव व्रत धारण करने वाले हैं या जो उन के अनुगामी हैं वे सत्शास्त्रों के द्वेषी पाखण्डी हैं । और मुक्ति चाहने वाले घोर मूर्ति शिव को त्याग कर शान्त नारायण की कलाओं का ध्यान करते हैं ।

इसके विरोध में पद्मपुराण में विष्णु पर पुष्प वर्षा की गयी है । कि:—

विष्णु के देखने मात्र से शिव का द्रोह है । और शिव का द्रोह करने से अवश्य नरक को जाता है । इस से विष्णु का नाम भी कभी न लेना चाहिये ।

उसी पुराण में अपने लेख के ही विरुद्ध ये भी लिख दिया है कि:—

शिवव्रतधराय च येचतान्समनुव्रताः ।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवोघोररूपां हित्वाभूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ताः भजन्तीत्यनसूयवः ॥
विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिवद्रोहान्नसंदेहो नरकं यातिदारुणम् ॥
तस्मात्तद्विष्णुनामापि नवक्तव्यं न कदाचन ॥

"वासुदेव को छोड़ कर जो अन्य देव की उपासना करता है वह प्यासा ही गंगा के तीर पर खड़ा होकर भी कुआ खोदता है ।

आदि पुराण में लिखा है—

"मेरा भक्त जिस का प्रेमी है वह भी मेरा वल्लभ है परन्तु अन्य का भक्त मेरा वल्लभ किसी प्रकार भी नहीं ।" ×

इसी प्रकार स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में यह भी कथा आती है कि ब्रह्माने कहा कि मैं जगत्कर्ता हूं, इस पर क्रुद्ध होकर शिव ने कालभैरव का रूप धर कर ब्रह्मा का पांचवा सिर फोड़ डाला ।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के २५२ अध्याय में चक्रांकितों की प्रशंसा में लिखा है । +

"शंख और चक्र से ब्राह्मण अपने बाहु दगवावे । इस से उस के सब पाप शुद्ध हो जाते है । चक्र या शंखचक्र या पांचों शस्त्रों का चिन्ह लगवा कर धारण करके वह ब्रह्मकर्म करे । अग्नि से तपाये चिन्ह को धारण करके नर यमपुर को त्याग विष्णुपुर को जाता है । बिना चिन्ह केशव को जो पूजता है उस का सब क्रिया मन्त्र जप आदि व्यर्थ जाता है ।"

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥
मद्भक्तोऽन्यभक्तोऽपि स एव ममवल्लभः ।
अन्यदासभक्तो नास्ति सत्यं सत्यं धनञ्जय ॥
शंखचक्राङ्कितं कुर्यात् ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ।
हुताग्निनाऽङ्कयित्वा सर्वपापविशुद्धये ॥
चक्रं वा शंखचक्रे वा तथा पंचायुधानि वा ।
धारयित्वैव विधिवत् ब्रह्मकर्म समाचरेत् ॥
अग्नितप्तं पवित्रं च धृत्वा वै भुजमूलयोः ।
यममार्गपुरं घोरं यांति विष्णोः परंपदम् ॥

इन चक्राङ्कितो का ही पूरा बदला पुराण ने देवी वाक्य में लिया है। इसी प्रकार नारद पुराण ने चक्राङ्कितों को खूब रगड़ा है कि :—

"चक्रांकित जहां रहे वहां और कोई दूसरा न रहे। यदि रहेगा तो वह महा-पापी, और सहस्त्र ब्रह्महत्या का भागी होगा। गंगा नहाकर अश्वमेधवाले भी चक्राङ्कित देह को देख कर सूर्य का दर्शन करे और पवित्र मन्त्रों का जाप करे। फिर शतरुद्री का जाप करे नहीं तो नरक को जायेगा।

ब्राह्मण की देह में सभी देव समाये हैं। पर यदि उस पर छाप लग गयी है तो वह महापापी हो जाती है।" इत्यादि। *

यहां साम्प्रदायिक द्वेष इतना भड़क गया कि स्थान २ पर वेदों के प्रति भी विष उगला है।

"जो चारों वेदों को भी जानता है और अङ्ग सहित उपनिषदों को भी जानता हो, यदि वह पुराणं को नहीं जानता है तो वह विद्वान् नहीं है। ×

इसी प्रकार शिव पुराण में शिव सब का बाप, विष्णु आदि गुलाम के सदृश हैं। वैष्णव पुराण में विष्णु सब कर्त्ता धर्त्ता, शेष सब नीच हैं और देवीभागवत में शेष सब छली और देवी सर्वविश्व माता है। सूर्य पुराण में सूर्य अनुपम देव हैं।

चक्रचिन्हविहीनस्तु यः पूजयति केशवम्।
वैफल्यं तस्य तद्याति पूजामन्त्रजपादिकम्॥
(पद्म० उत्तर खं० अ० २५२.)

* चक्राङ्कित तनुर्यत्र तत्रकोपिनसंवसेत्॥
यदितिष्ठेत् महापापी सहस्त्रब्रह्महा भवेत्।
गंगास्नानरतोवापि अश्वमेधरतोपिवा।
चक्राङ्किततनुं दृष्ट्वा पश्येत्सूर्यं जपेन्मनुः।
जपेच्चशतरुद्रीयमन्यथा रौरवं व्रजेत्।
ब्राह्मणस्य तनुर्यापि सर्वदेवसमाश्रिता।
सा चेत्संतापिता राजन् किं वक्ष्यामि महेनसः॥
योविद्याच्चतुरोवेदान् साङ्गोपनिषदोद्विजः।
नचेत्पुराणं संविद्यान्नैवसस्याद्विचक्षणः।
(बृहन्नारद ६ अ० १४, श्लो० ११४-४०)

पद्मपुराण का चक्रांकित सम्प्रदाय तथा उसका दर्शनों से विरोधादि हमने सब प्रथम पद्म की साम्प्रदायिकता दिखाते हुवे पूर्व ही उद्धृत कर दिया है।

[देखो० पद्म० उत्तर अ० २६३]

इसी सब जंजाल के फैले हुए होने से ये स्पष्ट है कि व्यास जी इन पुराणों के कर्त्ता बनना स्वयं ही स्वीकार न करेंगे। इतने पर भी पौराणिकों का आग्रह कि इन पाखण्डियों के ग्रन्थों के कर्त्ता सत्यवती के पुत्र व्यास हैं ये "मान न मान मैं तेरा महमान" की तरह शिष्टता नहीं। तथापि अन्त में इस बात की पुष्टि में गणेश उत्पत्ति के विषय में लगाई गप्पों में भी कैसे एक पुराण दूसरे से बढ़ता है सो सुनिये।

शिव पुराण ज्ञान संहिता में यह लिखा है कि—

कभी पार्वती नहा रही थीं। इतने में नन्दी को भिड़क कर स्वयं शिवजी आगये। नहाती हुवी पार्वती लज्जासे उठ खड़ी हुवी। उस समय पार्वती ने विचार किया कि मेरा एक मात्र सेवक होना चाहिये जिस की आज्ञा से यह फकीर [illegible] भी आगे न बढ़े। यह सोच उसने पानी में पड़े कीचड़ को हाथों से मसला और एक पुत्र बना दिया।" *

पद्म पुराण में लिखा है कि:—

"पार्वती उबटन कर रही थीं कि उस समय शरीर की मैल बहुत उतरी उसने उसी से एक हाथी के सिर वाला मनुष्य तय्यार किया और उसे पानी में डाल दिया।" ×

---

* कदाचिन्मज्जमानायां पार्वत्यामीश्वरः शिवः।
नन्दिनं परिभर्त्स्यैव आजगामस्वयं तदा॥
उत्तस्थौ मज्जमाना सा लज्जिता सुन्दरी तदा।
एवं जाते तदा काले कदाचित्पार्वती शुभा॥
मदीयसेवकः कश्चिद्भवेच्छुभतरस्तदा।
इत्थं विचार्य सा देवी करयोर्मलसम्भवम्॥
शङ्कमुत्सार्य तेनैव निर्ममे पुत्रकं शुभम्॥
(शिव पु०, ज्ञान सं०, अ० ३२)

कदाचिद् गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा।
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलेनापूरितं वपुः॥
तदुद्वर्तनकं गृह्य नरञ्चक्रे गजाननम्।
पुरुषं क्रीडती देवी तं चाक्षिपदम्भसि॥
(पद्म पु० सृ० खं० अ० ४५४ श्लोक ४८५)

इसी बात को बराह पुराण इस प्रकार कहता है कि:—

शिव हंस रहे थे कि इतने में शिव के हंसते एक तेजस्वी कुमार मुख से निकल पड़ा। उसको चमकते देख पार्वती की आंखें तिल मिला कर बन्द हो गयीं। शंकर ने समझा कि बालक की सुन्दरता पर पार्वती मोहित होगई है। इस बात से कुपित होकर उसने कुमार को शाप देदिया कि तू हाथी के मुख वाला तथा [illegible] पेट वाला होजा। वह वैसा गणेश होगया।" ×

अब कहिये पाठक शिव पुराण पद्मपुराण और बराह पुराण इन तीनों झूठों में से किस की गप्प बढ़िया है। हम कहां तक लिखें। इन गप्पों का कोई अन्त नहीं सभी आदि से लेकर अन्त तक यही प्रमाणित हो रहा है कि यह व्यास सदृश बुद्धिमान् पुरुष की कृति नहीं है।

× यच्चापि हसितं तेन देवेन परमेष्ठिना।
मूर्त्तिमान्पि तेजस्वी हसतः परमेष्ठिनः॥
प्रदीप्तास्योमहादीप्तः कुमरोभासयन्दिशः।
संदृष्ट्वा परमंरूपं कुमारस्यमहात्मनः॥
उमानिमेषनेत्राभ्यां सहापश्यत्भामिनी॥
तंदृष्ट्वाकुपितो देवः स्त्रीभावंचञ्चलंतथा, मत्वा कुमाररूपंतं शोभ नंमोहनं दृशाम्। ततः शशापतंदेवोगणेशंपरमेश्वरः
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा॥
(बराह० अ० २१ श्लो० १४—१८)

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पुराणों में वैज्ञानिक सिद्धान्त

पुराण साहित्य के सागर में जहां अनेक असम्भव बातें हैं और बड़े विद्वानों के लिए एक अश्रद्धा और अरुचि का कारण है वहां ही साथ एक रुचिकर भी प्रवृत्ति निमित्त बैठा हो है । और वह नाना विद्याओं का स्थान भू पर विन्यास है इतिहास कहते २ उपदेश परम्परा का योग ज्योतिष वैद्यक वृक्षायुर्वेद सर्पायुर्वेद अश्वविद्या साहित्य शकुन धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र कर्मकाण्ड देवतास्तुति मन्त्रशास्त्र सभी का ऐसा पंचमेल बनाया है कि पुराण में ये नहीं, ऐसा कहना कठिन है ।

कूर्मपुराण में ज्योतिष, भविष्य में ज्योतिषचक्र ग्रहगति सर्पविद्या स्त्री पुरुष लक्षण, अग्नि में साहित्य राजनीति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की उत्पत्ति, ब्रह्मवैवर्त में जाति की उत्पत्ति का इतिहास, भविष्य में कल्कि की दाशरी, बृहन्नारद में व्युत्पत्ति और पुराणों के संक्षेप शिवपुराण में योग प्रक्रिया आदि विषय बहुत अच्छे २ प्रतिपादित हैं । इन का विस्तार यहां उल्लेख करना बहुत दूरूह है क्योंकि ग्रन्थ का बहुत बढ़ जाने का भय है कतिपय ज्वलन्त निदर्शन मात्र दिखाना पर्याप्त है ।

(१) दिन रात्रि का कारण

"वि० पुराण में लिखा है:—सूर्य ही दिन रात्रिका कारण है दिन के मध्य में सूर्यसदा उपर सिरपर होता है ठीक पृथ्वी दूसरी ओर रात्रिका मध्य काल होता है ।" ×

दक्षिणोत्तर अयन

"उत्तर अयन के आदि में सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है फिर कुंभ में फिर मीन में, इस राशि से राश्यन्तर में जाता है । इन राशियों से चलकर फिर वैषुवती गति चलता है । अर्थात् दिन रात बराबर हो जाते हैं । फिर रात छोटी होने लगती है दिन बढ़ता जाता है । फिर मिथुन राशि के परले किनारे पर जाकर कर्कराशि में प्रवेश करता है तो दक्षिणायन प्रारम्भ होता है ।" *

× दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालव्यवस्थितः ।
सर्व द्वीपेषु मैत्रेय निशार्धस्य च सम्मुखः ॥ १ ॥
(विष्णु० अ०, अ० ८)

* अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः ।
ततः कुम्भश्च मीनञ्च राशे राश्यंतरं द्विज ॥ ३० ॥